गांधी युगीन हिन्दी गद्य साहित्य में कुछ प्रतिनिधि लेखकों के सन्दर्भ में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्ता
इमैनुएल जॉन डेविड

निर्देशक
डा० उमाकान्त तिवारी
अध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

प्राक्कथन

साहित्य और समाज का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट होता है। समाज में घटित होने वाली सभी घटनाओं का प्रभाव साहित्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से होना स्वाभाविक है। साहित्यकार अपने समाज से जुड़ा होता है। अत: सामाजिक गतिविधियों से आँख मून्द लेना न तो उसके लिए सम्भव है और न ही उचित। इस प्रकार साहित्यकार अपने समाज की वास्तविकता को स्वीकार करते हुए अपने साहित्य में उसको अंकित करने का प्रयास करता है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन आधुनिक भारतीय समाज की एक ऐसी वास्तविकता थी जिसका किसी न किसी रूप में समाज के प्रत्येक सदस्य पर प्रभाव पड़ा था। अत: हिन्दी साहित्यकार का उससे प्रभावित होना स्वाभाविक था।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गान्धीयुग का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि इस युग में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एक जनान्दोलन के रूप में उभर कर सामने आया। जिसमें न केवल शहरों की जनता वरन् भारत के गाँवों की जनता भी सम्मिलित हुई। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की राजनैतिक समस्याओं के साथ-साथ गान्धी जी ने सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर भी बल दिया। इसके साथ ही साथ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रान्तिकारी और समाजवादी आन्दोलन का भी विकास हुआ। अत: हिन्दी साहित्यकारों का भारतीय समाज को इस वास्तविकता से अछूता सम्भव नहीं था।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के कुछ प्रतिनिधि लेखकों की रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के विश्लेषण का प्रयास किया गया है। इस शोध प्रबन्ध

को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है । पहले अध्याय में राष्ट्रीयता तथा उसका स्वरूप एवं उसके निर्धारक तत्वों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । इसी अध्याय के दूसरे भाग में साहित्य और सामाजिक जीवन के मध्य सम्बन्धों पर विचार किया गया है तथा इस दृष्टि से साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है ।

दूसरे, तीसरे तथा चौथे अध्यायों में हिन्दी उपन्यास, नाटक एवं कहानी में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के विश्लेषण का प्रयास किया गया है ।

पाँचवे अध्याय में उपर्युक्त अध्यायों के आधार पर निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि गान्धी युग का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में क्या महत्व है तथा इस युग में हिन्दी साहित्य के उपन्यास, नाटक तथा कहानी में किस प्रकार राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई । इस प्रयास में मुझे डा० यू० के० तिवारी, अध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय का प्रोत्साहन तथा मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ है, जिसे मैं इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता हूँ तथा उनका हृदय से आभारी हूँ । इसके अतिरिक्त (स्वर्गीय) डा० आर० मैसी जी, जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष थे, का आभारी हूँ जिन्होंने xxx मेरी भरपूर सहायता की तथा अपने ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर समय-समय पर मेरा मार्ग-दर्शन करते रहे । मैं नेहरू म्यूज़ियम लाइब्रेरी , नयी दिल्ली का भी हृदय से आभारी हूँ जहाँ जाकर मैंने अपने शोध प्रबन्ध के अध्ययन से सम्बन्धित अनेक प्रकार की सहायता प्राप्त की । इसके अतिरिक्त पब्लिक लाइब्रेरी, कम्पनी बाग, इलाहाबाद के

प्रति भी सहायता हेतु आभार प्रकट करता हूँ । हिन्दी साहित्य सम्मेलन लाइब्रेरी, इलाहाबाद का भी आभार प्रकट करता हूँ जहाँ पर अनेक उपयोगी पुस्तकों के अध्ययन की सुविधा प्राप्त हो सकी । मैं अपनी पूज्य माता जी का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने 1987 तक अपने जीवन काल में मुझे प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करने का कार्य किया । इसके साथ ही सा मैं यूइंग क्रिश्चियन महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० एस० डी० चन्द तथा श्री एन० एस० चौहान, अध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, यूइंग क्रिश्चियन महाविद्यालय, का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिनके शैक्षणिक संसर्ग से मुझे अपने शोध कार्य हेतु पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ ।

इमैनुएल जॉन डेविड

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

एवं मजदूर समस्या; प्रेमचन्दोत्तर युग : सामाजिक, राजनीतिक: साम्राज्यवाद की समाप्ति के लिए अहिंसक साधन - सत्याग्रह, हृदय परिवर्तन, स्वदेशी एवं बहिष्कार, देशभक्ति तथा आत्मबलिदान; हिंसक साधन - मातृभूमि के प्रति प्रेम एवं आत्मबलिदान की भावना, खुला विद्रोह एवं क्रान्तिकारी संगठन, आतंकवाद तथा राजनैतिक डकैतियाँ, आजाद हिन्द फौज : सुभाषचन्द्र बोस और विदेशी सहायता, भारत छोड़ो आन्दोलन; नाविक विद्रोह , आर्थिक।

नाटक : भारतेन्दु युग; द्विवेदी युग; प्रसाद युग: सामाजिक-छुआछूत समस्या, भाग्यवाद, साम्प्रदायिक समस्या, मद्यनिषेध, स्त्री समस्या; राजनीतिक-साम्राज्यवादी अत्याचार, निरंकुश शासन का विरोध तथा लोकतंत्र का समर्थन, राजा-प्रजा सम्बन्ध, व्यक्ति स्वातन्त्र्य, साम्राज्यवादी अत्याचार तथा विदेशी शासन से मुक्ति की भावना: (अ) प्राचीन भारतीय गौरवमयी अतीत की प्रशंसा एवं वर्तमान के प्रति विक्षोभ की भावना से उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्र प्रेम एवं आत्मबलिदान की भावना, स्वाधीनता की भावना, एक राष्ट्र

अध्याय - एक -

राष्ट्रीयता तथा उसका स्वरूप

अनेक आधुनिक इतिहासकार "राष्ट्रीयता" को एक आधुनिक धारणा मानते हैं जिनके अनुसार इसकी प्रथम अभिव्यक्ति फ्रांस की राज्यक्रान्ति में हुई। जी० पी० गुच के अनुसार" राष्ट्रीयता फ्रांस की क्रान्ति का शिशु है।[1] परन्तु यह मानना भ्रान्तिपूर्ण होगा कि फ्रांस की क्रान्ति ने राष्ट्रीयता को जन्म दिया है। क्योंकि संसार में अनेक क्रान्तियाँ हुई और इन सभी क्रान्तियों का प्रेरणास्त्रोत राष्ट्रीयता की कोई एक निश्चित धारणा नहीं थी वरन् भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न क्रान्तियों के पीछे एक विशेष कारण था, चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक या अन्य कोई कारण रहा हो। अतः राष्ट्रीयता, जो सामान्यतया लोगों को एकता सूत्र में बान्धने तथा किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रेरित करने वाली शक्ति होती है, आज अपने वर्तमान रूप में अनेक वर्षों में उत्पन्न अनेक कारणों का परिणाम है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि राष्ट्रीयता का स्वरूप भिन्न-भिन्न समयों में, भिन्न-भिन्न स्थानों में, भिन्न रहा है। हैन्स कोहन के अनुसार " यह इतिहास के एक निश्चित स्तर पर सामाजिक और बौद्धिक कारणों के विकास की उपज है।"[2]

1- जी०पी० गुच -स्टडीज इन माडर्न हिस्ट्री, 1931, पृ0 217

2- हैन्स कोहन- दि आइडिया ऑफ नेशनलिज्म, ए हिस्ट्री इन इट्स ओरिजिन एण्ड बैकग्राउन्ड, 1960, पृ0 6 ।

राष्ट्रीयता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में चाहे जितना भी विवाद हो, यह तो निश्चित ही है कि आधुनिक युग मे राष्ट्रीयता एक महत्त्वपूर्ण विषय बन चुका है । आज यह विषय राजनीति शास्त्र का केन्द्र बना हुआ है, यद्यपि विद्वान इसकी कोई निश्चित परिभाषा या अर्थ ढूँढ निकालने में असमर्थ रहे हैं । अतः राष्ट्रीयता शब्द का अर्थ स्पष्ट करने हेतु हमें विभिन्न विद्वानों द्वारा की गई इसकी परिभाषाओं का अध्ययन करना अपेक्षित होगा ।

राष्ट्रीयता का अर्थ -

" इनसायक्लोपीडिया ऑफ फिलासफी " में यह मत व्यक्त किया गया है कि राष्ट्रीयता की परिभाषा करने पर उसके कम से कम पाँच अर्थ पहचाने जा सकते हैं । §1§ एक राष्ट्र के प्रति भक्ति भाव की भावना, §2§ अन्य राष्ट्रों के हितों की अपेक्षा अपने राष्ट्र के हित के सम्बन्ध में पूर्णरूप से विचार करने की क्षमता, §3§ वह प्रवृत्ति जो एक राष्ट्र की विशिष्ट विशेषता के महत्व को बढ़ाती है, §4§ राष्ट्रीय संस्कृति को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति, §5§ एक राष्ट्र तथा उसके सदस्यों को मान्यता प्रदान करने के लिए वह निश्चित नियम जो प्रत्येक राष्ट्र को अपनी एक स्वतन्त्र सरकार का अधिकार देता है । राज्य तभी वैध माने जायेंगे जब इन सिद्धान्तों के आधार पर उनका निर्माण किया जायेगा, तथा विश्व तब उचित अर्थों मे मान्य होगा, जब राजनीतिक भाषा में, प्रत्येक राष्ट्र एक राज्य होगा तथा प्रत्येक राज्य

एक न पूर्ण राष्ट्र होगा ।[3] "दि न्यू इनसायक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटनिका" में राष्ट्रीयता को उस विशिष्ट मानसिक अवस्था के रूप में परिभाषित किया गया है जिसमें व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसकी सर्वोच्च लौकिक निष्ठा राष्ट्र-राज्य के प्रति हो ।[4] फ्रेडरिक हर्ट्स के अनुसार" राष्ट्रीय चेतना एक विशेष प्रकार की समूह चेतना, या समूहगत सुदृढ़ता है, जिसमें एक समूह के सदस्य कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए परस्पर एक दूसरे से बन्धे रहते हैं।"[5] जे0 केनेडी ने राष्ट्रीयता को " एक सम्प्रभु राष्ट्र में एकबद्ध होने की लोगों की इच्छा "[6] बताया है । हैन्स कोहन ने राष्ट्रीयता की परिभाषा करते हुए लिखा है कि " राष्ट्रीयता प्रमुखत: एक मन:स्थिति है तथा चेतना की एक अभिव्यक्ति है । यह एक धारणा है जो मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय में नवीन विचारों तथा नवीन भावनाओं को जन्म देती है तथा उसे अपनी चेतना को संगठित कार्यों में परिवर्तित करने की प्रेरणा देती है । अत: राष्ट्रीयता से उस समूह का बोध होता है जो एक सम्प्रभु राज्य में संगठित कार्य के सर्वोत्तम रूप में अपनी अभिव्यक्ति की खोज करता

3- इनसायक्लोपीडिया ऑफ फिलासफी, पंचम भाग सम्पादक पाल एडवर्ड्स पृ0 442 ।

4- दि न्यू इनसायक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका, पंद्रहवाँ संस्करण, खण्ड 19, पृ0 149 ।

5- फ्रेडरिक हर्ट्स - नेशनलिटी इन हिस्ट्री एण्ड पालिटिक्स: ए स्टडी ऑफ दि सायकोलोजी एण्ड सोशयोलोजी ऑफ नेशनल सेन्टिमेन्ट्स एण्ड कैरेक्टर, 1945, पृ0 15 ।

6- जे0 केनेडी -एशियन नेशनलिज्म. इन दि ट्वेन्टियेथ सेन्चरी, 1968,

है ।[7] सी0 जे0 एच0 हेज के अनुसार "राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रभक्ति का सम्मिश्रण है ।"[8] लुईस एल0 स्नाइडर ने राष्ट्रीयता को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "राष्ट्रीयता एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले तथा सामान्य भाषा बोलने वाले किसी ऐसे समूह के लोगों की मानसिक भावनाओं की स्थिति होती है जिनके साहित्य में राष्ट्र की भावना की अभिव्यक्ति हो, जो सामान्य परम्पराओं से जुड़े हों तथा कुछ अर्थ में एक सामान्य धर्म को स्वीकार करते हों ।"[9] स्मिथ ने राष्ट्रीयता को एक समूह की ओर से स्वशासन और स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा उसे बनाये रखने के लिए एक विचारात्मक आन्दोलन बताया है जिसके कुछ सदस्य उसे एक वास्तविक और शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में संगठित करना चाहते हैं ।[10] एनी बेसेन्ट के अनुसार, " राष्ट्रीयता लोगों के मध्य एकता की चेतना है, या राष्ट्र भक्ति का प्रकटीकरण है, या एक प्रकार का अपनी भूमि, साहित्य या धर्म के प्रति लगाव है ।"[11] आर0 एस0 चावन के अनुसार, " राष्ट्रीयता विदेशी राजनीतिक प्रभुत्व, आर्थिक शोषण, तथा जातिगत भेदभाव तथा असमानता के विरूद्ध विद्रोह की धारणा है ।"[12] डी0 एल0 . . स्टर्जों राष्ट्रीयता

7- हैन्स कोहन - दि आयडिया ऑफ नेशनलिज्म, ए स्टडी इन इट्स ओरिजिन एण्ड बैकग्राउण्ड, 1960, पृ0 10 ।

8- लुईस एल0 स्नाइडर (सम्पादक)- दि डायनामिक्स ऑफ नेशनलिज्म रीडिंग्स इन इट्स मीनिंग एण्ड डेवेलपमेन्ट, पृ0 1 पर उद्धृत ।

9- वही, पृ0 2

10- आर0 सुन्थरालिंगम-इण्डियन नेशनलिज्म: एन हिस्टरिकल एनालीसेस, पृ0 10 पर उद्धृत ।

11. वही, पृ0 23 पर उद्धृत ।

12- आर0 एस0 चावन -नेशनलिज्म इन एशिया, 1973, पृ0 460

को एक सैद्धान्तिक धारणा तथा एक प्रयोगात्मक क्रिया के रूप में देखते हैं जो राष्ट्र को बहुत ऊँचा उठाना चाहती है तथा इसको न केवल एक प्रभुत्वशील वरन् एक सम्प्रभुता युक्त नैतिक – राजनैतिक सिद्धान्त बनाना चाहती है ।[13]

उपर्युक्त परिभाषाओं में विद्वानों ने राष्ट्रीयता के विभिन्न पक्षों पर विचार किया है। वास्तविक रूप में राष्ट्रीयता एक ऐसा वृहद् तथा जटिल विषय है जिसके सम्बन्ध में किसी एक निश्चित समय में, निश्चित स्थान पर या निश्चित व्यक्ति द्वारा पूर्ण रूप से विचार कर पाना दुष्कर वरन् असम्भव कार्य प्रतीत होता है । यही कारण है कि भिन्न-भिन्न समयों में, भिन्न-भिन्न स्थानों पर, भिन्न-भिन्न विद्वानों के द्वारा राष्ट्रीयता के भिन्न - भिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है । अतः राष्ट्रीयता का अर्थ निश्चित करने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न विद्वानों के मतों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीयता की मुख्य विशेषताओं को स्पष्ट किया जाय ।

वास्तव में राष्ट्रीयता एक राष्ट्र से सम्बन्धित अवधारणा है । इसमें राष्ट्र को केन्द्र मानकर चला जाता है । यह राष्ट्र को गौरवान्वित करने की अवधारणा है । जिसके सदस्य अपनी निष्ठा एवं भक्ति को राष्ट्र के प्रति समर्पित करते हैं तथा अन्य राष्ट्रों की तुलना में अपने राष्ट्र को अधिक गौरवपूर्ण मानते हैं । अतः किसी विदेशी आक्रमण के समय से अपने राष्ट्र के लिए तन-मन-धन से समर्पित हो जाते हैं । ऐसे समय में राष्ट्र पूर्ण रूप से एकीकृत हो जाता है तथा राष्ट्रीय भावना अपनी चरम सीमा पर

13- डी0एल0 स्टर्जो -नेशनलिज्म एण्ड इन्टरनेशनलिज्म, 1946, पृ0 25 ।

पहुँच जाती है । एक राष्ट्र पर किसी दूसरे देश के शासन की स्थापना के फलस्वरूप उस राष्ट्र की राष्ट्रीय भावना विदेशी शासन के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होती है । भारतीय राष्ट्रीय चेतना का विकास अंग्रेजी शासन के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूपमें ही हुआ था ।

राष्ट्रीयता एक राष्ट्र में ऐक्य की भावना को प्रोत्साहित करती है । आचार्य नरेन्द्र देव इस ऐक्य की भावना को किसी भी पराधीन राष्ट्र के लिए एक "जबर्दस्त अस्त्र" बताते हैं ।[14] कोई मनुष्य जब किसी राष्ट्र का सदस्य होता है तो उस राष्ट्र के प्रति उसमें एक लगाव उत्पन्न हो जाता है । क्योंकि वह उस राष्ट्र के अन्तर्गत जन्म लेता है, उस राष्ट्र के पर्यावरण में पलता तथा बढ़ता है, उस राष्ट्र में प्रचलित भाषा, धर्म, साहित्य एवं संस्कृति का अनुकरण करताहै तथा उस राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्रियाकलापों में भाग लेता है । वह अपने आपको उस राष्ट्र का अभिन्न अंग मानने लगता है तथा राष्ट्र के उत्थान एंव पतन का उसके जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। चूँकि मनुष्य स्वभाव से ही स्वाभिमानी होता है अत: वह अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रखना चाहता है । जिसके लिए वह सब कुछ करने का साहस रखता है । राष्ट्र का एक अभिन्न अंग होने के नाते वह राष्ट्रीय स्वाभिमान को भी सुरक्षित रखने के लिए हर प्रकार का बलिदान करने हेतु उद्यत रहता है । वास्तव में जब यही भावना राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य या उसके सदस्यों के बहुमत की होती है तब उस राष्ट्र में राष्ट्रीय भावना का जन्म

14- आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 192

होता है ।[15] इसी भावना के आधार पर किसी राष्ट्र के सदस्य एकता के सूत्र में बन्धते है । यह एकता जाति एवं धर्म, भाषा एवं संस्कृति और परम्पराओं आदि की एकता के आधार पर अधिक बल पकड़ती है । भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन की अभिव्यक्ति इसी समूह चेतना के उदाहरण स्वरूप ली जा सकती है ।

राष्ट्रीयता के निर्धारक तत्व -

राष्ट्रीयता के निर्धारण में अनेक तत्वों का महत्व होता है जिनमें धार्मिक एकता, भौगोलिक एकता, आर्थिक हितों की एकता, भाषागत एकता, संस्कृति तथा परम्पराओं की एकता, जातीय एकता तथा वाह्य एवं आन्तरिक परिस्थितियों के विरुद्ध असन्तोष की भावना के स्थान प्रमुख है। इन्ही तत्वों को राष्ट्रीय भावना के उद्‌भव और विकास का स्त्रोत माना जा सकता है। विश्व इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालें तो यही पायेंगे कि जहाँ कहीं भी क्रान्तियाँ हुई या राष्ट्रीय आन्दोलन हुए वहाँ उपर्युक्त तत्वों का प्रभाव किसी न किसी रूप में रहा है ।

प्रत्येक आन्दोलन की कसौटी उसकी एकता और संगठन के तत्व से आंकी जाती है, यहाँ पर ए० सी० मजूमदार के कथन का उल्लेख किया जा सकता है कि " राष्ट्र पैदा नहीं होते वरन् बनाये जाते है और व्यक्तिगत जीवन की भाँति ही राष्ट्रीय जीवन के सर्वोत्तम विकास की प्राप्ति संगठित प्रयास की एक धीमी तथा परिश्रमशील प्रक्रिया द्वारा होती है ।"[16] अत:

15- फ्रेडरिक हर्ट्ज - पूर्वोल्लिखित,पृ० 3

राष्ट्रीयता के निर्धारण में सहायक उपर्युक्त तत्वों का विश्लेषण आवश्यक है ।

धार्मिक एकता -

फ्रेडरिक हर्ट्ज के अनुसार, "धर्म समाज के सदस्यों के मध्य एक शक्तिशाली बन्धन रहा है, तथा अभी भी है, राष्ट्रीय एकता तथा सुदृढ़ता अधिकांशत: धार्मिक मूल से उत्पन्न हुई है, तथा प्रत्येक राष्ट्रीय सभ्यता धार्मिक शक्तियों के द्वारा बनाई गई है ।"[17] हर्ट्ज का कथन उचित भी प्रतीत होता है । क्योंकि मनुष्य के जीवन में धर्म का पर्याप्त महत्व होता है। धर्म के आधार पर वह अपने आपको अन्य लोगों के साथ सम्बद्ध करता है । अत: धर्म लोगों में एकता की भावना को उत्पन्न करता है । यदि मनुष्य की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचती है तो वह उसको भूल नहीं पाता है वरन् एक विरोध की प्रवृत्ति का उसमें जन्म हो जाता है । सम्भवत: मनुष्य की इस प्रवृत्ति के आधार पर ही मैक्यावली ने अपने "प्रिंस" में शासक को मनुष्य के धर्म में हस्तक्षेप न करने की परामर्श दी थी ।[18]

लेकिन इसके साथ ही साथ यह विवाद का विषय है कि धर्म राष्ट्रीय भावना के विकास तथा राष्ट्रीयकरण के लिए कहाँ तक सहायक रहा है । इस प्रश्न के उत्तर में हम कह सकते हैं कि पश्चिमी देशों में भी मध्यकाल तथा आधुनिक काल के प्रारम्भिक वर्षों में धर्म का स्थान महत्वपूर्ण रहा है ।

17- फ्रेडरिक हर्ट्ज - नेशनलिटी इन हिस्ट्री एण्ड पालिटिक्स: ए स्टडी ऑफ दि सायकोलोजी एण्ड सोशियोलोजी ऑफ नेशनल सेंटिमेन्ट्स एण्ड कैरेक्टर, 1945, पृ0 98 ।

18- डब्ल्यू ए0 डनिंग- ए हिस्ट्री ऑफ पालिटिकल थियरीज, पृ0 303

एशिया के देशों में विशेषत: मध्यपूर्व के देशों में वर्तमान समय में भी इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। किन्तु धर्म के सम्बन्ध में यह भी सत्य है कि यह लोगों के मध्य विभाजन का कारण भी बन सकता है। क्योंकि जिस राष्ट्र में एक से अधिक धर्मावलम्बी निवास करते हैं, वहाँ उनके अलग-अलग धार्मिक विश्वास के कारण अलगाववाद की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है और ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ जाती है। उदाहरणार्थ धार्मिक विभेद के कारण ही भारतवर्ष का विभाजन हो गया। यद्यपि गांधी जी और अन्य नेताओं ने धार्मिक सद्भाव को स्थापित करने के प्रयास किये किन्तु वे देश के विभाजन को रोक न सके। अत: इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि धर्म राष्ट्रीय एकता के लिए तब ही अधिक उपयोगी हो सकता है जबकि राष्ट्र में एक धर्मावलम्बी निवास करते हों अथवा विभिन्न धर्मावलम्बियों में परस्पर सद्भाव की भावना पाई जाती हो। इसीलिए धर्म के सम्बन्ध में केनेडी का विचार था कि "धर्म एशिया की राष्ट्रीयता के विकास में बाँधने और अलग दोनो करने की शक्ति रहा है।"[19]

भौगोलिक एकता -

पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार " राष्ट्रीय उत्थान के समस्त आन्दोलनों का उदय तथा उनकी सीधी खोज उस पर्यावरण में की जा सकती है जिससे वे घिरे होते हैं।"[20] मनुष्य जहाँ जन्म लेता तथा जहाँ अपने जीवन

19- जे0 केनेडी -एशियन नेशनलिज्म इन द ट्वेन्टियेथ सेन्चुरी, 1968, पृ0 95।

20- पट्टाभि सीतारमैया-- सोशलिज्म एण्ड गान्धीज़्म, पृ0 17

का विकास करता है वह स्थान उसके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन जाता है। क्योंकि स्वभाव से ही मनुष्य में "त्व" की भावना विद्यमान रहती है। अतः वह अपनी जन्मभूमि को अपनी मातृभूमि मानता है तथा उसके प्रति आदर और निष्ठा का भाव रखता है। इसके अतिरिक्त एक निश्चित भौगोलिक सीमा में रहने वालों में शारीरिक, मानसिक तथा सांस्कृतिक समानताएँ पाई जाती है जिसके आधार पर वे परस्पर एकता के सूत्र में बन्धते हैं। इस प्रकार से एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों में एकता की भावना उत्पन्न होती है और वे अपने क्षेत्र की सुरक्षा का दायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं। पानिक्कर महोदय के अनुसार भारत में भौगोलिक एकता का यही आधार माना जा सकता है।[21]

आर्थिक हितों की एकता -

समाज में मनुष्य की सर्वप्रथम आवश्यकताएँ[22] रोटी, कपड़ा, और मकान की होती हैं। मनुष्य के समस्त कार्य इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किये जाते हैं। वह उन्हीं कार्यों की ओर प्रेरित होता है जिनसे उसके आर्थिक हितों को ठेस न पहुँचे। अतः जहाँ उसके आर्थिक हितों का अतिक्रमण होता है वहीं उसमें एक प्रतिक्रिया की भावना दिखाई देती है और वह अपने आर्थिक हितों को सुरक्षित करने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ, भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण जनता का आर्थिक शोषण किया जा

21- के0 एम0 पानिक्कर -इण्डिया एण्ड द इण्डियन ओशन, पृ० 107

22- डॉ0 सुखबीर सिंह- हिस्ट्री ऑफ पालिटिकल थॉट, पृ0 23

रहा था ।[23] इस शोषण के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ ।[24]

भाषागत एकता -

भाषा राष्ट्रीयता के निर्माण में अत्यन्त शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । यह वह माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों को दूसरो के समक्ष व्यक्त करता है । इस प्रकार भाषा एकता का निर्माण करती है । जब किसी राष्ट्र में एक भाषा का प्रचलन होता है । तो वह राष्ट्र एक इकाई के रूप में संगठित होता है । इस सम्बन्ध में ड्यूश के मत का उल्लेख किया जा सकता है कि "राष्ट्रीयता की कसौटी लोगों की अपने साथियों के साथ, बाहरी लोगों की अपेक्षा, अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से संचार क्षमता होती है ।[25] इसके साथ ही साथ भाषा के माध्यम से मनुष्य अपने विचारो को अभिव्यक्त करके सन्तोष प्राप्त करता है। वह भाषा के माध्यम से समूह की पहचान करने लगता है । इससे न केवल वह संगठित होता है वरन् अपने व्यक्तित्व का विकास भी करता है । जैसा कि हर्ट्ज का कथन है "भाषा दूसरों के साथ संचार का साधन ही नही है। इसमें व्यक्तिगत और सामूहिक, दोनो ही प्रकार के व्यक्तित्व के विकास के शक्तिशाली तत्व निहित होते हैं ।[26]

23- दादाभाई नौरोजी - पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया, पृ०

24- रूस मे आर्थिक शोषण के कारण ही श्रमिकों और किसानों ने संगठित होकर जार के विरूद्ध क्रान्ति की थी ।

25- लुईस एल स्नायडर- दि डायनमिक्स ऑफ नेशनलिज्म, रीडिंग्ज इन इट्स, मीनिंग एण्ड डेवलपमेन्ट, पृ0 2 पर उद्धृत ।

26- फ्रेडरिक हर्ट्ज- नेशनालिटी इन हिस्ट्री एण्ड पॉलिटिक्स, ए स्टडी आफ दि सायकोलॉजी एण्ड सोशयोलोजी आफ नेशनल सेन्टिमेन्ट्स एण्ड कैरेक्टर,

भाषा राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने में सहायक होती है। इसके माध्यम से लोगों का राजनीतिक-सामाजीकरण सम्भव हो पाता है जिससे वे राष्ट्र की समस्याओं के प्रति जागरूक हो सकें तथा राष्ट्रीय उत्थान में सहयोग दे सकें। बी0 आई0 कल्यूयेव के अनुसार, " लोगों की राष्ट्रीय चेतना के जागरण के साथ, किसी दिये हुए क्षेत्र में, अत्यधिक रूप में एक सामान्य भाषा की आवश्यकता का अनुभव होता है। भाषा सार्वजनिक जीवन तथा राजनीतिक संग्राम में एक महत्वपूर्ण तत्व बन जाती है।"[27] हर्टज के अनुसार " राष्ट्रीय चेतना राष्ट्रीय भाषा में समाज के प्रमुख परम्परागत बन्धन को देखती है, जो लोगों को सुदृढ़ता में शिक्षित करने का साधन है तथा राष्ट्रीय व्यक्तित्व का प्रतीक है।"[28] इसीलिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रयास किया[29] तथा बाद में गान्धी जी ने भी इसके महत्व को स्वीकार किया था।

संस्कृति तथा परम्पराओं की एकता -

संस्कृति तथा परम्पराओं की एकता से तात्पर्य एक सामान्य आचार - विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन एवं समाज की प्रथाओं और परम्पराओं से होता है। जो किसी समाज के सदस्यों को परस्पर संगठित

27- बी0आई0 कल्यूयेव -इण्डिया: नेशनल एण्ड लैंगुएज प्राब्लम, 1981, पृ0 165।

28- फ्रेडरिक हर्टज -नेशनालिटी इन हिस्ट्री एण्ड पॉलिटिक्स: ए स्टडी ऑफ दि सायकोलोजी एण्ड सोशियोलोजी ऑफ नेशनल सेंटिमेन्ट्स एण्ड कैरेक्टर, 1945, पृ0 87

29- देखिये अवस्थी और अवस्थी -आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, 1987-88, पृ0 66 तथा पुरूषोत्तम नागर- आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी

करते हैं। इनमें किसी समाज की अतीत की उपलब्धियों को भी लिया जा सकता है। इनके आधार पर मनुष्य में एक समूह की भावना उत्पन्न होती है, वह एक दूसरे के सुख-दुख में सम्भागी होता है। अर्नेस्ट रेनन के अनुसार, "प्रथमतः राष्ट्र का निर्माण एक सामान्य इतिहास, विशेषतः मनुष्य के कष्ट से सम्बन्धित सामान्य स्मृतियों से होता है जो सामान्य सहानुभूति तथा गर्व का स्त्रोत होती है। राष्ट्रीयता की दूसरी शर्त संगठित जीवन तथा सामान्य प्रथाओं को जीवित रखने की इच्छा होती है।"[30] इस प्रकार " एक राष्ट्र का अस्तित्व वहाँ होता है, जहाँ व्यक्तियों का एक समूह सामान्य प्रतीकों के समूह के साथ जुड़ा होता है, जो एक दूसरे को, जो इसी प्रकार की भावना उन प्रतीकों के प्रति रखते हैं, अपने साथी सदस्यों के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं, और इसके कारण एक दूसरे की चिन्ता तथा भक्ति इस प्रकार करते हैं जैसी वे बाहरी लोगों की नहीं कर पाते।"[31] इस प्रकार राष्ट्रीयता अतीत की स्मृतियों तथा उपलब्धियों से पोषित होती है।[32]

इस प्रकार संस्कृति तथा परम्पराएँ समाज में एक सामूहिक चेतना का विकास करती है और इस चेतना से राष्ट्रीय चेतना का विकास होता है। राष्ट्रीय चेतना इस बात की कामना करती है कि हम अपने देश में अपनी संस्कृति, अपने आदर्श और विश्वासों की प्रतिष्ठा करें। एशिया के देशों में तो राष्ट्रीय चेतना के विकासमें ऐतिहासिक अतीत, संस्कृति तथा परम्पराओं

30- इनसायक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसॉफी, सम्पा0 पाल एडवर्ड्स, भाग 5, पृ0 443

31- वही, पृ0 444

32- वी0पी0 एस0 रघुवंशी -इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट एण्ड थॉट, 1950, पृ04

ने महत्वपूर्ण योगदान किया है । जे0 केनेडी के अनुसार, एक ऐतिहासिक अतीत के प्रति जागरूकता अधिकांश राष्ट्रीय आन्दोलनों की, विशेष रूप में एशिया के देशों में, प्रेरक शक्ति रही है ।"[33] केनेडी के कथन में पर्याप्त मात्रा में सत्य के दर्शन होते हैं । यद्यपि यह भी सत्य है कि परम्पराएँ तथा संस्कृति ही राष्ट्रीय आन्दोलनों की एकमात्र प्रेरक शक्तियाँ नही होती हैं तथापि इन्हें महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति माना जा सकता है ।

जातीय एकता -

रक्त सम्बन्ध एकता का एक महत्वपूर्ण साधन है । व्यक्ति रक्त सम्बन्ध के आधार पर सामूहिक रूप में संगठित होते हैं । जाति रक्त सम्बन्ध के आधार पर ही निश्चित होती है । केनेडी के अनुसार" जातिगत राष्ट्रीयता वह शब्द है जिसका प्रयोग उन विचारों के लिए किया गया है जो "रक्त" और जातिगत शुद्धता के बन्धनों के साथ जुड़े होते हैं ।"[34] अपनी जाति के लोगों के साथ स्वाभाविक रूप में ही व्यक्ति परस्पर सहयोग की दिशा में अग्रसर होता है । जाति का सुख दुख उसका अपना सुख-दुख होता है । जाति के कल्याण के लिए व्यक्ति आत्म बलिदान तक करने के लिए उद्यत होता है । इस प्रकार जाति एकता की भावना को विकसित करती है जो राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। परन्तु यह कहना उचित न होगा कि पत्येक अवस्थाओं में जाति राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करती है । क्योंकि यदि

33- जे0 केनेडी-एशियन नेशनालिज्म इन दि ट्वेन्टियेथ सेन्चुरी, 1968, पृ0 79

34- वही, पृ0 9

किसी राष्ट्र में एक से अधिक जातियाँ निवास करती है तो निश्चित ही जाति पर आधारित एकता की भावना भी अलग-अलग होगी । इनके आधार पर मनुष्य अपनी जाति के हित की पूर्ति का प्रयास अलग ढंग से करते हैं । इन परिस्थितियों में राष्ट्रीय एकता के स्थान पर पृथक्करण की भावना आ जाती है । जातिगत एकता ऐसे राष्ट्र केलिए अधिक लाभकारी होती है जहाँ एक ही जाति के लोग सामान्य आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक उद्देश्यों से परस्पर जुड़े होते हैं । ऐसे राष्ट्र में एक राष्ट्र की कल्पना साकार हो जाती है ।[35]

परन्तु वर्तमान युग में राष्ट्र के वृहद रूप के कारण यह सम्भव नहीं है कि किसी राष्ट्र में केवल एक ही जाति के लोग रहें । आधुनिक राष्ट्रों मे अनेक जातियाँ निवास करती हैं । उनके अलग-अलग जातिगत हित होते हैं । परन्तु इन हितों का राष्ट्रीय हित से आवश्यक रूप में विरोध नहीं होता । वास्तव में राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए जाति के हितों तथा राष्ट्र के हितों के मध्य सामन्जस्य स्थापित किया जाना चाहिए । आज राष्ट्रीय भावना व्यक्ति में राष्ट्र को ऊँचा उठाने में एक गर्व की भावना को उत्पन्न करती है । राष्ट्र केहित और जाति के हित में राष्ट्र के हित को अधिक महत्व प्रदान करना चाहिए । क्योंकि राष्ट्र पहले है और जाति राष्ट्र के बाद तथा राष्ट्र के अन्तर्गत है । राष्ट्रीय भावना के अभाव में जाति हित को प्राप्त करना सम्भव नहीं ।

35- डेविड बीथम- मैक्सबेबर एण्ड दि थियरी ऑफ मॉडन पालिटिक्स, अध्याय - 5

बाह्य तथा आन्तरिक परिस्थितियों के विरुद्ध असन्तोष की भावना-

किसी भी आन्दोलन का जन्म किसी न किसी प्रकार के असन्तोष से होता है। मनुष्य स्वभाव से ही स्वतन्त्रता प्रेमी होता है। वह समाज में अपने आचार-विचार, रहन - सहन तथा समाज के अन्य सदस्यों के साथ अपने सम्बन्धों के लिए स्वतन्त्र वातावरण चाहता है। इतिहास साक्षी है कि चाहे पश्चिम के देश हो या एशिया के या अफ्रीका के या विश्व के किसी अन्य भाग के, वहाँ जो भी क्रान्तियाँ हुई उनका मुख्य उद्देश्य किसी न किसी प्रकार के असन्तोष का निवारण रहा है।

किसी भी समाज में यह असन्तोष दो प्रकार से होता है। पहला, आन्तरिक कुरीतियों के प्रति असन्तोष तथा दूसरा, विदेशी शासन या आक्रमण से उत्पन्न असन्तोष।

जब किसी समाज में कुछ कुरीतियों का जन्म हो जाता है तो उन्हें दूर करने के लिए अनेक सुधार आन्दोलनों का जन्म होता है। इन सुधार आन्दोलनों के माध्यम से सामाजिक ढाँचे को स्वस्थ बनाने का प्रयास किया जाता है। आर्थिक दृष्टिकोण से समाज में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है। वास्तव में मनुष्य की राजनीतिक स्वतन्त्रता का आधार आर्थिक स्वतन्त्रता है।[36] जब मनुष्य आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होगा तभी वह राजनीतिक

36- जवाहर लाल नेहरू ने इसी आधार पर संविधान सभा में भारत को समाजवादी रेखा को स्वीकार करने की बात कही थी।

स्वाधीनता के लिए प्रयत्न कर सकेगा । आर्थिक आवश्यकता मनुष्य की मौलिक आवश्यकता होती है ।[37] अपनी मौलिक आवश्यकताओं को प्राप्त करके ही वह जीवन के अन्य क्षेत्रों में पूर्णरूप से कार्य कर सकता है । अतः राजनीतिक स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय भावना के लिए यह आवश्यक है कि समाज में सभी वर्ग आर्थिक दृष्टि से सन्तुष्ट हो । यदि ऐसा नहीं होता तो सर्वप्रथम वह अपने आर्थिक लक्ष्य के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने का प्रयास करता है तथा इसके लिए उत्तरदायी लोगों या संस्थाओं के विरूद्ध आन्दोलन छेड़ता है ।[38] इसी प्रकार राजनीतिक लक्ष्यों के लिए व्यक्ति आन्दोलन का सहारा लेता है। व्यक्ति एक राष्ट्र का सदस्य होता है । सदस्य होने के नाते वह उस राष्ट्र से कुछ अधिकारों की कामना करता है ।[39] यदि इस क्षेत्र में उसे निराशा होती है तो वह उन अधिकारो को प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील होता है । जिसके लिए वह आन्दोलन का सहारा लेता है ।

इसके अतिरिक्त व्यक्ति स्वभाव से अपने राष्ट्र के प्रति निष्ठा और भक्ति रखता है। वह अपने राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ मानता है । उसके लिए उसका राष्ट्र ही सब कुछ होता है ।[40] यदि उसका राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र के आक्रमण का शिकार होता है या उस राष्ट्र

37- पूर्वोल्लिखित

38- एच0जे0 लास्की -पालिटिक्स थॉट इन इंग्लैण्ड, पृ0 45

39- इ0 बार्कर - पालिटिकल थॉट इन इंग्लैण्ड, अध्याय- दो

40- यह प्रवृत्ति फासीवादी तथा नाजीवादी राष्ट्रों मे तीव्रतम दिखाई देती है ।

पर किसी अन्य राष्ट्र का अधिकार हो जाता है तब उसमें राष्ट्रप्रेम की भावना तीव्रतम् हो जाती है और वह अपने राष्ट्र की मुक्ति तथा सुरक्षा के लिए राष्ट्र के अन्य सदस्यों के साथ संगठित होकर आन्दोलन का सूत्रपात करता है । बॉयड शेफर के अनुसार ," मनुष्य जन्म से राष्ट्रवादी नहीं बनते हैं । वे राष्ट्रीय चेतना को ग्रहण करते हैं और राष्ट्रभक्त बनते हैं क्योंकि उनके समय की राजनीतिक , आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ तथा विचार उन्हें ऐसा बनाते है ।"[41] अतः असन्तोष, चाहे राष्ट्रगत हो या विदेशी शासन के प्रति, एक संगठित आन्दोलन को जन्म देता है । आन्दोलन की सफलता की कसौटी इस बात पर निर्भर करती है कि सम्बन्धित व्यक्ति किस सीमा तक संगठित होते हैं । अतः जहाँ संगठन होता है, वहीं शक्ति भी होती है ।[42] बिना संगठन के न तो कोई आन्दोलन सफल होता है और न ही असन्तोष का अन्त होता है । अतः राष्ट्रीय भावना राष्ट्र से सम्बन्धित असन्तोष तथा राष्ट्रीय पराधीनता के प्रति असन्तोष का निवारण करने की भावना होती है ।[43]

राष्ट्रीयता के निर्माण में सहायक तत्वों का अध्ययन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि "राष्ट्रीयता" कोई ऐसा सिद्धान्त या विचार नहीं है जो किसी एक निश्चित समय में किसी निश्चित कारण से उदित हुआ हो । जैसा कि केनेडी नेकहा है," आधुनिक राष्ट्रीयता उस झरने केसमान है जो अनेक

41- आर० सुन्धरालिंगम- इण्डियन नेशनलिज्म ए हिस्टारिकल एनालिसिस, 1983, पृ० 5 पर उद्धृत ।

42- राष्ट्रीय आन्दोलन में लोगों को संगठित होने को प्रेरणा साहित्य एव राष्ट्रीय नेताओं द्वारा जो जा रही थी ।

43- आर० सुन्धरालिंगम-इण्डियन नेशनलिज्म ए हिस्टारिकल एनालिसिस, 1983 पृ० 7

स्रोतों से निकलता है । उसके बहाव की गति और दिशा विभिन्न देशों में तथा विभिन्न समयों में भिन्न रही है ....।"[44]

आधुनिक भारत में राष्ट्रीयता का उद्भव और विकास-

आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता के जन्म के लिए उत्तरदायी कारणों के सम्बन्ध में दो प्रकार के विचार प्रस्तुत किये जाते हैं । पहला, भारत में राष्ट्रीयता की भावना उसकी अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा उसके गौरवमय अतीत का परिणाम है । यही भावना ब्रिटिश साम्राज्य के आधिपत्य के दौरान अधिक तीव्र एवं स्पष्ट होकर समक्ष आती है ।[45] दूसरा, भारतीय राष्ट्रीयता पश्चिम की देन है ।[46] दोनों ही विचारों में सत्यता के अंश हैं । लेकिन इस बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उपर्युक्त मतों में से कोई एक निश्चित मत पूर्णतया सत्य है । वास्तविकता तो यह है कि उपर्युक्त दोनों ही मत भारतीय राष्ट्रीयता के उदय के लिए समान रूप से उत्तरदायी हैं जैसा कि ए०आर० देसाई का मत है कि " भारतीय समाज का ऐतिहासिक

44- जे० केनेडी - एशियन नेशनलिज्म इन दि ट्वेन्टियेथ सेन्चुरी । 1968, पृ० 79

45- स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसी आधार पर भारतीय राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया था । देखिये -बी०बी० मजूमदार, - हिस्ट्री ऑफ इण्डियन सोशल एण्ड पालिटिकल आइडियाज: फ्रॉम राममोहन टु दयानन्द, बुकलैण्ड, कलकत्ता, 1967, पृ० 251 ।

46- आर० सी० मजूमदार {सम्पा०} दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, भाग 5, भारतीय विद्या भवन, बम्बई 1968 पृ० 96, तथा आर०सी० मजूमदार- हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट, 1971, भाग 1, पृ० 278 ।

आन्दोलन आन्तरिक सामाजिक शक्तियों के अन्तर्द्वन्द्व की ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय विश्व की शक्तियों के तथा भारतीय समाज पर उनके प्रभाव की उपज है।"[47] आर० पी० दत्त ने भी स्वीकार किया है कि " भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन यहाँ की सामाजिक परिस्थितियों से, साम्राज्यवाद की परिस्थितियों और उसकी शोषण प्रणाली से पैदा हुआ।"[48] ब्रिटिश शासन ने भारत को न केवल राजनीतिक दृष्टि से दास बनाया वरन् उसका हर प्रकार से शोषण किया। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने भी लिखा है " भारत में अंग्रेजी शासन ने न केवल भारतीयों से उनकी स्वतन्त्रता छीनी वरन् स्वयं को जनता के शोषण के आधार पर स्थापित किया तथा भारत को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक रूप से नष्ट किया।"[49]

अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत भारतीयों की दासता ने, जिससे सम्पूर्ण भारतीय समाज पीड़ित था, लोगों को इस बात पर विचार करने के लिए बाध्य किया कि वे किस प्रकार अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सुधार सकते हैं तथा दासता के दानव से मुक्ति पा सकते हैं। वास्तव में भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म सर्वप्रथम सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में व्याप्त कुरीतियों तथा राजनीतिक दासता से मुक्ति की इच्छा से हुआ।[50] भारतीयों में व्याप्त

47- ए०आर० देसाई- रीसेन्ट ट्रेन्ड्स इन इण्डियन नेशनलिज्म, 1960, पृ02 तथा ए०आर०देसाई-भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1976, पृ0 4

48- आर०पी० दत्त- आज का भारत, पृ0 314

49- जे०एल० नेहरू- आत्मकथा, अपेन्डिक्स ए0 पृ0 612

50- स्पीचेज एण्ड राइटिंग्ज ऑफ सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, पृ0 140-41

असन्तोष का कारण राष्ट्रीय और विदेशी दोनों ही था। अत: जहाँ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन विदेशी शासन को देश से उखाड़ फेंकने का प्रयास था, वहीं इस कार्य की सफलता के मार्ग में बाधक अनेक सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त असमानता को भी समाप्त करने का प्रयास था।[51]

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में सहायक तत्व -

राष्ट्रीयता के विकास में लोगों के मध्य एकता की भावना का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारत एक ऐसा राष्ट्र है जिसमें अनेक धर्मावलम्बी, भिन्न-भिन्न भाषा के बोलने वाले तथा विभिन्न संस्कृतियों का अनुसरण करने वाले लोग रहते हैं। ए० आर० देसाई ने इसी मत को व्यक्त किया है।[52] अत: इस अपेक्षित एकता को प्राप्त करने केलिए भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने यह अनुभव किया कि भारतीय समाज को पुन: संगठित किया जाय और समस्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अनेकताओं के मध्य राष्ट्रीय एकता को विकसित किया जाय। जैसा केनेडी का मत था कि "भारत अनेक संस्कृतियों तथा परम्पराओं का महाद्वीप था और राष्ट्रीय एकता तभी प्राप्त की जा सकती थी जब बहुत सारे अवरोधक तोड़ दिये जाते तथा बहुत सारी रिक्ततायें भर दी जातीं।"[53]

51- देखिये पुरूषोत्तम नागर- आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1984, पृ0 44 पर वेलेन्टाइन शिरोल का उद्धरण दयानन्द सरस्वती के सम्बन्धमेंजिसको राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य नेताओं से भी सम्बन्धित किया जा सकता है।

52- ए0 आर0 देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1976 पृ0 4।

53- जे0 केनेडी- एशियन नेशनलिज्म इन दि ट्वेन्टियेथ सेन्चुरी, 1968, पृ034

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास का इतिहास वास्तव में इसी एकता को चरितार्थ करता है । राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह विभिन्न भाषी हो, मातृभूमि के प्रति समर्पित था । इस भावना ने सम्पूर्ण भारतवासियों को एक कर दिया ।

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के लिए उत्तरदायी कारक -

भारत में राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक काल की उपज है यद्यपि सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्पराएँ जिन पर भारतीय राष्ट्रवाद विकसित हुआ, प्राचीन काल से ही विद्यमान रही थीं । अपने आधुनिक रूप में इसका विकास ब्रिटिश शासन काल से माना जा सकता है । जिस प्रकार प्रत्येक कार्य का एक कारण होताहै, उसी प्रकार आधुनिक काल में भारतीय राष्ट्रीयता के जन्म और विकास के भी कुछ कारण थे जिनके फलस्वरूप भारतीय मन में राष्ट्रीय भावना का उदय होना स्वाभाविक था।

भारतीय राष्ट्रीय चेतना के उदय के पीछे मुख्य रूपसे साम्राज्यवादी शासन एवं अत्याचार का हाथ था। साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत भारतीयों का सामाजिक,आर्थिक एव राजनीतिक शोषण किया जा रहा था । शोषण के लिए राजनैतिक, आर्थिक एव सैनिक संस्थाओं की स्थापना की गई थीं। अत: शोषण एवं अत्याचार के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीय राष्ट्रीय चेतना का उदय एवं विकास हुआ ।[54] इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय चेतना साम्राज्यवादी

54- आर०एस० चावन- नेशनलिज्म इन एशिया, 1973, पृ० 7।

शासन के विरूद्ध नकारात्मकएवं सकारात्मक दोनो ही कारणों से उदित हुई ।

राष्ट्रीयता के विकास के नकारात्मक कारक -

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के नकारात्मक कारकों में प्रमुख रूप से साम्राज्यवादी शासन के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शोषण को लिया जा सकता है। साम्राज्यवाद की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि यह दूसरे पर अपने हितों के लिए दूसरे की भूमि पर शक्ति और विजय के माध्यम से शासन होता है । इसका सबसे प्रमुख उद्देश्य अधीन देश के लोगों, धन तथा प्राकृतिक सम्पदाओं का विजयी के हित में शोषण करना है। यही कारण है कि एशिया के देशों में, विशेषतः भारत में साम्राज्यवाद ने राष्ट्रीयता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।[55] यदि हम इस कथन को दृष्टि में रखते हुए भारतीय राष्ट्रीयता पर विचार करें तो पायेंगे कि भारतीय राष्ट्रीयता अपने स्पष्ट रूपमें साम्राज्यवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप ही आई ।[56] ए0 आर0 देसाई के मत मेंभी वास्तव में भारतीय राष्ट्रवाद का मूल कारण देशी आबादी पर विदेशी सरकार के शासन का विरोध था ।[57] सुरेन्द्रनाथ

55- वही, भूमिका XIII
तथा बिपिन चन्द्र-नेशनलिज्म एण्ड कोलोनियलिज्म इन माडर्न इण्डिया, 1981, पृ0 313

56- गान्धी जी ने अन्यायी शासन के विरोध में स्वराज्य की कल्पना की थी। देखिये मोहनदास करमचन्द्र गान्धी-हिन्द स्वराज्य, पृ0 6 तथा श्रीमती एनी बेसेन्ट के मत में गुलामी के ऐशोआराम से स्वतन्त्रता की कठोरता श्रेष्ठ है। देखिये- सी0पी0 रामास्वामी अय्यर-ऐनी बेसेन्ट, पृ0 137 ।

57- ए0 आर0 देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, 1976, पृ0 145

बनर्जी ने भी लिखा है कि साम्राज्यवादी शासन राष्ट्रीय भावना के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे सोते हुए शेर को नींद से जगा देते हैं, वे जन चेतना को जागृत करते हैं तथा राष्ट्रीय एकता को पोषित करते है,.........।[58]

सामाजिक शोषण -

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने 1857 के स्वाधीनता संग्राम में भारतीय जनता की संगठित शक्ति का अनुभव कर लिया था। अतः उन्होंने "फूट डालो और राज्य करो" की नीति का अनुसरण किया। अतः ब्रिटिश शासकों ने जानबूझ कर भारतीय एकता को तोड़ने का प्रयास किया। उनकी इस नीति का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ा। भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति के मार्ग में इस "फूट" ने बाधा अवश्य उत्पन्न की और वास्तविकता तो यह है कि भारत दो भागों में विभाजित ही हो गया।

भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियाँ निवास करतीं थीं। शूद्र का स्थान सबसे निम्न माना जाता था। उच्च जाति के लोग शूद्रों से दूर रहते थे, वे उन्हें सामाजिक अधिकारों से वंचित, समाज से बहिष्कृत करना चाहते थे। वे उन्हें अछूत मानते थे। अतः शूद्रों की स्थिति भारतीय समाज में अत्यन्त दयनीय हो गई थी। गान्धी जी ने इसका पूर्ण विरोध किया। उनके मत में

58- देखिये - सुरेन्द्रनाथ बनर्जी - ए नेशन इन मेकिंग, 1926, पृ. 195, तथा सुखबीर चौधरी- ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, भाग 1, 1973, पृ0 5 तथा वी0 पी0 एस0 रघुवंशी -इण्डियन नेशनल मूवमेंट एण्ड थॉट, 1950, पृ0 19

अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं है।[59] अंग्रेज शासकों ने भारतीय समाज की इस स्थिति का लाभ उठाने का प्रयास किया। उन्होंने शूद्रों को, जो कि समाज का एक बड़ा भाग था, समाज का एक अलग भाग बनाये रखना चाहा। इसके लिए उन्होंने शूद्रों के लिए पृथक निर्वाचन का समर्थन किया। अंग्रेजों की इस कूटनीति को अछूतों तथा दलित वर्गों के नेता डॉ० अम्बेदकर ने समझ लिया तथा 1930 में अखिल भारतीय दलित वर्ग कांग्रेस के अध्यक्ष पद से उन्होंने अपने भाषण में कहा, " मुझे आशंका है कि ब्रिटिश सरकार हमारी दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों का विज्ञापन इसलिए नहीं करती कि वह इन्हें दूर करना चाहती है, बल्कि इसलिए करती है ताकि इसको वह भारत की राजनीतिक प्रगति को पीछे खींच ले जाने का एक बहाना बना सके।"[60]

भारतीय एकता ब्रिटिश शासकों की आंखों में सदा ही खटकती रही। विशेषत: हिन्दुओं और मुसलमानों ने जब भी एक दूसरे के साथ कदम से कदम मिलाकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में आगे बढ़ने का प्रयास किया तो ब्रिटिश साम्राज्य के हाथ पैर ढीले पड़ गये। अत: उन्होंने इन दोनो सम्प्रदायों के लोगों को पृथक रखने का भरपूर प्रयास किया। ब्रिटिश शासकों ने "सन् 1892 के भारतीय परिषद अधिनियम "में मुसलमानो को प्रथम बार पृथक प्रतिनिधित्व प्रदान किया। यहीं से साम्प्रदायिक चेतना का बीज भारतीय स्वातन्त्र्य संघर्ष की राजनीति में अंकुरित होना आरम्भ हुआ।[61] भारतीय

59- लुई फिशर -गान्धी, पृ० 165 तथा देखिये अवस्थी और अवस्थी-आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ० 66, दयानन्द सरस्वती ने भी अस्पृश्यता का विरोध किया था।

60- आर०सी० दत्त - आज का भारत, 1977, पृ० 306 पर उद्धृत।

61- डी०डी० तिवारी-भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष और हिन्दी उपन्यास {शोध प्रबन्ध} पृ० 54।

साम्प्रदायिक समस्या का यह आरम्भ ही कालान्तर में मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा के उदय का कारण बना ।

परन्तु वास्तव में ब्रिटिश शासकों की फूट डालो और शासन करो की नीति अधिक दिनों तक उनके हित में सफल नहीं हो पाई । क्योंकि जहाँ ब्रिटिश शासकों ने "फूट" को बनाये रखना चाहा, वहीं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने भारतीय समाज की गिरती हुई हालत को सुधारने का प्रयास किया । उन्होंने भारतीय समाज की इस त्रुटि को समझ लिया था । अतः उन्होंने पराधीनता को दूर करने के लिए सम्पूर्ण भारतीय समाज को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया तथा जो वर्ग ब्रिटिश साम्राज्य की इस कुटिल नीति के फंदे में फंसे हुए थे उनको अपने देश, अपने राष्ट्र के हित के लिए एक होने का संदेश दिया ।

आर्थिक शोषण -

ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना में आर्थिक तत्वों का स्थान महत्त्वपूर्ण था ।[62] ब्रिटिश साम्राज्य की अर्थनीति से भारतीय आर्थिक ढांचा अत्यधिक प्रभावित हुआ । इससे परम्परागत भारतीय अर्थव्यवस्था की जड़ें हिल गई ।

62- पुरूषोत्तम नागर- आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1984, पृ0 116
दादा भाई नौरोजी के अनुसार- ब्रिटिश साम्राज्य की अर्थनीति का उद्देश्य भारतीय हितों की प्राप्ति नहीं था वरन् ब्रिटिश आर्थिक हितों को प्राप्त करना था ।

परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस ऐसे साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष करने की तैयारी करने लगा । आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार, " आधुनिक युग से उद्योग- व्यवसायों के लिए जो पदार्थ विशेष रूप से उपयोगी है उनकी पैदावार संसार के जिस किसी भूभाग में प्रचुरता से होती है उस भूभाग पर आधिपत्य प्राप्त करने के लिए ये औद्योगिक राष्ट्र प्रयत्न करते हैं ।"[63]

ब्रिटिश साम्राज्य का भारत भूमि पर आगमन उसके आर्थिक उद्देश्यों से हुआ था । व्यापार के दृष्टिकोण से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारत में स्थापना की गई थी । बाद मेंभी अंग्रेजी शासन की नीति भारत का आर्थिक शोषण करने की ही थी । भारत में आकर अंग्रेजी साम्राज्य ने सम्पूर्ण भारतीय अर्थव्यवस्था को बदल डाला । भारतीय समाज ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आधारित था ।[64] आदिम हल और बैल से खेती और साधारण औजार की मदद से दस्तकारी की भित्ती पर टिका आत्मनिर्भर गाँव, यही अंग्रेजो के आने के पहले की भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल सत्य है। ये स्वपर्याप्त गाँव सदियों से भारतीय जीवन की मूल इकाई थे ।"[65] लेकिन विदेशी शासन के अधीन प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था का विघटन हो गया । ए० आर० देसाई के शब्दों में, भारत पर अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के विस्तार की दिशा में

63- आचार्य नरेन्द्र देव,-राष्ट्रीयता और समाजवाद,प्रथमावृत्ति,पृ09 तथा बिपिन चन्द्र- नेशनलिज्म एण्ड कोलोनियलिज्म इन माडर्न इण्डिया, 1981,पृ0 313 ।

64- राधाकुमुद मुकर्जी - हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद,पृ016

65 ए0 आर0 देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ0 6

उठाया गया हर कदम पुरानी अर्थव्यवस्था के विघटन और नये आर्थिक रूपों के उन्नयन की दिशा में ही अलग कदम था।"[66]

नयी अर्थव्यवस्था से किसानतथा कारीगर की स्थिति शोचनीय होगई। वह गाँव जिसमें सम्पत्ति पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होता था, उसमें अब निजि स्वामित्व का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार जमींदारी व्यवस्था का आरम्भ हुआ।[67] देश के कुछ भागों में जमींदारी तथा अन्य भागों में किसान के निजि अधिकार की स्थापना हुई। अब यह कानून बना दिया गया कि नये भू-स्वामी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के खजाने में निश्चित रकम जमा करेगें। अतः अब कृषि उत्पादन की उस प्राचीन पद्धति, जिसके अनुसार उतना ही उत्पादन किया जाता था, जितनी गाँव की आवश्यकता होती थी, के स्थान पर बड़े बाजारों के लिए उत्पादन किया जाने लगा। चूँकि जमींदार या भूस्वामी को राज्य के खजाने में एक निश्चित रकम हर वर्ष हर हालत में भरनी पड़ती थी, चाहे फसल अच्छी हुई हो अथवा नष्ट हो गई हो। यह भूमिकर फसल के रूप में न होकर भूमि के आधार पर रूपये के रूपमें निर्धारित होने लगा। परिणामस्वरूप किसानों पर करों का बोझ बढ़ने लगा, जमींदार मनमाने ढंग से कर वसूल करने लगा। यदि किसान कर चुकाने में असमर्थ होता था तो वह साहूकार से ऋण लेने को विवश था। कर न चुका पाने अथवा ऋण न भर सकने

66- वही० पृ० 29

67- ए० आर० देसाई के अनुसार" राजा किसी प्रकार का हो, दयालु या क्रूर, परोपकारी या निरंकुश, हिन्दू, बौद्ध या मुस्लिम, कभी यह कोशिश नही हुई कि ग्राम समुदाय को जमीन से वंचित किया जाय।....... दूसरी तरफ किसी खास किसान का भी जमीन पर कोई निजि हक नहीं था, प्राक् ब्रिटिश भारत में भूमि पर किसी भी प्रकार का व्यक्तिगत स्वत्व नहीं था।"वही पृ० 30-31

की स्थिति में उसे अपनी जमीन बेचनी पड़ती थी या रेहन करनी पड़ती थी । परिणाम यह हुआ कि "काश्तकार मालिकों की संख्या घटी और जमीन धीरे-धीरे गिने चुने लोगों के अधिकार में आती गई ।"[68]

इस प्रकार भारत में ब्रिटिश पूँजी के अनुप्रवेश के फलस्वरूप यहाँ के किसान वर्ग की गरीबी और परेशानी बढ़ रही थी और 19वीं सदी के उत्तरार्ध तक और खासतौर से इसके अन्तिम तीस वर्षों के दौरान स्थिति यह होगई कि किसान हर तरफ से निराश हो गये और जन -असन्तोष की घटनाएँ सामने आने लगीं । .... 1875 का दकन का किसान विद्रोह इस बढ़ते हुए असन्तोष का एक खतरनाक संकेत था ।"[69]

औद्योगीकरण के कारण भारतीय लघु उद्योग नष्ट हो गये । मशीन युग के आगमन से हाथ से बनी वस्तुओं का महत्व घट गया । आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार "इग्लैंड के द्वारा मशीन से तैयार सामान का भारत के घरेलू उद्योगों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा ।"[70] मशीन से बने हुए सामान का मुकाबला हथकरघों से बने सामान किस प्रकार कर सकते थे । जहाँ मशीन से बना सामान देखने में सुन्दर होता था वहीं मशीन से उसका उत्पादन हाथ से बने सामान की अपेक्षा काफी अधिक होता था। इसलिए आर०पी० दत्त का कथन उचित प्रतीत होता है कि "इग्लैण्डके मशीन से बने कपड़ों ने जहाँ भारत के बुनकरों कोबर्बाद किया वहीं दूसरी तरफ मशीन के बने सूत ने भारत के सूत कातने

68- वहीं, पृ० 53 ।

69- आर०पी० दत्त - आज का भारत ,प्रथम संस्करण, 1977,पृ० 320

70- आचार्य नरेन्द्रदेव -राष्ट्रीयता और समाजवाद, प्रथमावृत्ति, पृ० 7

वालों को उजाड़ दिया ।"[71]

अंग्रेजों ने भारत को इंग्लैण्ड के कारखानों के लिए कच्चा माल पैदा करने वाला जहाँ कृषि प्रधान देश बनाये रखना चाहता था वहीं भारत को इंग्लैण्ड के सामान की खपत के लिए एक मण्डी भी बनाना चाहा । इसके साथ ही अंग्रेज पूंजीपतियों ने भारत में कारखाने लगाने आरम्भ किये तथा खेती को भी प्रोत्साहन दिया । इस समय आवागमन के साधनों का विकास भी किया गया जिसके माध्यम से व्यापार की गति और तीव्र हुई । चूँकि औद्योगीकरण बढ़ रहा था अतः भारतीय उद्योगपति वर्ग का पैदा होना स्वाभाविक ही था । कारण यह था कि नई लगान व्यवस्था से कृषि पर निर्भर रहना सम्भव नहीं था। अब ब्रिटिश और भारतीय उद्योगों में प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी । " भारत के इस नये पूँजीपति वर्ग और ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग के बुनियादी आर्थिक संघर्ष की अभिव्यक्ति 1882 में ही उस समय हो गई जब लंकाशायर के निर्माताओं की मांग पर सरकार ने भारत के विकसित हो रहे कपड़ा उद्योग के विरूद्ध भारत में आने वाले सूती कपड़े पर से हर तरह का सीमा शुल्क हटा लिया ।"[72] परिणामस्वरूप भारतीय पूंजीपति वर्ग "भारत की राष्ट्रीय मांग को सबसे पहले अभिव्यक्ति देने और देश का नेतृत्व करने के लिए बाध्य था ।"[73]

यद्यपि नवीन अर्थव्यवस्था को लागू करने के पीछे ब्रिटिश शासकों का अपना स्वार्थ था, लेकिन इस अर्थव्यवस्था का भारतीय जीवन पर भी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा । वास्तव में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था ने "भारत को

71- आर०पी० दत्त -आज का भारत ,प्रथम संस्करण, 1977, पृ० 143

72- वही, पृ० 319 - 320

73- वही, पृ० 319

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक रूप में पहले की अपेक्षा अधिक मजबूत किया।"[74] नई लगान व्यवस्था से किसान-जमींदार संघर्ष उत्पन्न हुआ, किसानों पर अत्याचार हुए, सूदखोरो के प्रति किसानों की ऋणग्रस्तता का प्रारम्भ हुआ, किसान खेती छोड़कर मिलों-कारखानों में मजदूरी करने को बाध्य हुआ जिससे आर्थिक क्षेत्र में पूंजीपति-मजदूर संघर्ष पैदा हुआ, आवागमन के साधनों की सुविधा होने से सम्पूर्ण देश एकता के सूत्र में बन्ध गया। एक इकहरी आर्थिक व्यवस्था के कारण अब सम्पूर्ण देश के किसानों- मजदूरों के हित-अहित समान हो गये।[75] इन सभी कारणों से राष्ट्रीय चेतना को पर्याप्त बल मिला।[76] वास्तव में आर्थिक कारणो से ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जन-आन्दोलन बन सका। इस समय सम्पूर्ण राष्ट्र के लोग, विशेषत: किसान-मजदूर आदि संगठित रूप में स्वाधीनता संग्राम में आ खड़े हुए। अत: बिपिन चन्द्र के शब्दों में कहा जा सकता है कि "नवीन भारत को व्यग्र बनाने वाली सभी उलझन भरी समस्याओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा सर्वाधिक संपीडक आर्थिक समस्या है।"[77] न्यायाधीश रानाडे के अनुसार भी" सत्य तो यह है कि यदि भारतीयों को केवल भरपेट भोजन और कुछ अंशो में न्याय ही उपलब्ध हो सके तो वे सन्तुष्ट होकर अंग्रेजी राज्य के अधीन रहने को तैयार हैं।"[78] अत: संक्षेप में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ब्रिटिश आर्थिक नीति के विरूद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम माना जा सकता है।

74- सुखबीर चौधरी-ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, भाग1, 1973, पृ07

75- ताराचन्द्र-हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, वाल्यूम दो, पब्लिकेशन्स डिवीजन, 1967, पृ0 279

76- वही, पृ0 278

77- बिपिन चन्द्र-भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास हिन्दीअनुवाद, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद द्वारा प्रवर्तित प्रथम हिन्दी संस्करण, 1977, पृ0 3

78- वही, पृ0 3 पर उद्धृत "परन्तु श्री रानाडे के विचार उचित नहीं प्रतीत होते क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन आर्थिक शोषण का कारण दासता को मानता है अत: दासता से मुक्ति मिलने पर ही आर्थिक शोषण समाप्त हो सकता है।

राजनीतिक शोषण -

ब्रिटिश शासकों ने भारतीय जनता का राजनीतिक शोषण करने का भी प्रयास किया। वास्तव में, भारत में ब्रिटेन का शासन मुख्य रूप में भारतीयों के आधार पर ही चलाया जा रहा था। ब्रिटेन को ऐसे भारतीय लोगों की आवश्यकता थी जो तन से तो भारतीय रहें लेकिन मन से अंग्रेज जिससे वे ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी निष्ठा एवं भक्ति को रखते हुए शासन को सफल बनानेमें सहायक हों उन्होंने अनेक राजनैतिक, आर्थिक एवं सैनिक संस्थाओ को भारत में स्थापित किया। अधिकांश संस्थाएँ, जैसे-सेना, कार्यकारिणी न्यायपालिका, लोकसेवाएँ, विधायिका, रेलवे इत्यादि अखिल भारतीय स्तर पर कार्य करतीं थीं। यद्यपि उच्च पदों पर भारतीयों को नियुक्त होने की सुविधा नहीं प्राप्त थी, फिर भी जिन पदों पर वे नियुक्त होते थे, उनका अपने ही देश के दूसरे भाग के लोगों से सम्पर्क स्थापित होता था जिससे राष्ट्रीय एकता की स्थापना सम्भव होती थी। इन कर्मचारियों को कम वेतन पर रखा जाता था। जिससे ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपने देश के भारत में नियुक्त पदाधिकारियों को अधिक वेतन दे सकता था तथा भारत का आर्थिक निर्गम सम्भव हो सकता था।

ब्रिटिश शासकों ने भारतीय रियासतों के सम्बन्ध में भी इसी नीति को लागू किया। जैसा कि आर० पी० दत्त ने लिखा है कि "साम्राज्यवाद ने भारत को असमान खण्डों में बाँट रखा है, एक खण्ड है ब्रिटिश भारत तथा दूसरा खण्ड है तथाकथित "भारतीय रियासतें"।[79] सभी ब्रिटिश शासकों ने इस नीति

79- आर०पी० दत्त- आज का भारत, पृ० 445।

को अंग्रेजी राज्य के बने रहने के लिए महत्वपूर्ण बताया।[80]

इन राजाओं ने साम्राज्यवादी संरक्षण प्राप्त करके जनता पर मनमाने अत्याचार शुरू कर दिये। वे गरीब मजदूरों से बेगार लेते थे। काम करने में असमर्थ होने पर उन्हें कोड़े लगवाये जाते थे जिसमे बूढ़ों, औरतों, बच्चो किसी को भी नहीं छोड़ा जाता था।[81] इन रियासतों में नागरिक अधिकारो जैसी कोई चीज नहीं थी।[82]

इन देशी रियासतों को संरक्षण प्रदान करने का एक मात्र कारण यह था कि भारतीय आबादी के बीच ही एक ऐसा सामाजिक आधार रखा जाय जो साम्राज्यवाद के साथ सम्बद्ध हो।

इस प्रकार ब्रिटिश शासकों ने जहाँ भारतीय जनता का राजनीतिक शोषण स्वयं अनेक संस्थाओं को स्थापित कर उनमें भारतीयों को नौकरी देकर करने का प्रयास किया, वहीं देशी रियासतों को इस प्रकार के शोषण का दूसरा आधार बनाया। ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत राजनीतिक समानता, अधिकार एवं न्याय भारतीय जनता को उपलब्ध नहीं थे। यही कारण था कि जब अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से पश्चिमी उदारवाद का ज्ञान भारतीयों को प्राप्त हुआ वे ब्रिटिश शासन के विरूद्ध अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो उठे। जैसा कि रशब्रुक विलियम्स

80- देखिये, वही, पृ0 448

81- देखिये पी0एल0 चुरगर-इण्डियन प्रिन्सेज अण्डर ब्रिटिश प्रोटेक्शन, 1929, पृ0 37

82- देखिये वही पृ0 72-73

के विचारों से स्पष्ट है कि "इंग्लैण्ड के इतिहास ने लोगों को धीरे-धीरे नागरिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने का पाठ पढ़ाया । अंग्रेजों के राजनीतिक विचारों ने जिन्हें बर्क और मिल ने अभिव्यक्ति दी इस पाठ को और मजबूती से उनके दिलों में स्थान दिया । बुनियादी तौर पर कुशाग्रबुद्धि वाले और तेजी से उत्साह में आने वाले शिक्षित भारतीयों को ज्ञान का नया भण्डार मिला ।"[83]

राष्ट्रीयता के विकास में सकारात्मक कारक -

अंग्रेजी शिक्षा - भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में सहायक सकारात्मक कारकों में सर्वप्रथम अंग्रेजी शिक्षा तथा उसके प्रभाव को लिया जा सकता है । विभिन्न संस्थाओं की स्थापना के साथ ही ब्रिटिश शासकों को एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता हुई जो तन से तो भारतीय हों परन्तु मन से अंग्रेज । एक ऐसा वर्ग जो भारत में अंग्रेज कर्मचारियों की कमी को पूरा कर सके । क्योंकि इंग्लैण्ड से इतने कर्मचारी भारत नहीं भेजे जा सकतेथे। इसके अतिरिक्त भारतीय कर्मचारियों को कम वेतन में रखा जा सकता था । लेकिन भारतीयो को ब्रिटिश ढाँचे मे ढलने के लिए यह आवश्यक था कि उनके लिए एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जाय जिसका माध्यम अंग्रेजी हो । इस प्रकार की शिक्षा ने राष्ट्रीय एकता को अधिक बढ़ाया ।

83- रशब्रुक विलियम्स - वाट अबाउट इण्डिया 1928, पृ0 105 तथा देखिये रेम्जे मैक्डोनल्ड-अवेकनिंग ऑफ इण्डिया, पृ0 124-125 तथा देखिये वी0पी0 एस0 रघुवंशी इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट एण्ड थॉट, 1950, पृ0 20 तथा देखिये आर0 सुन्थरालिंगम -इण्डियन नेशनलिज्म एन हिस्टारिकल एनालिसिस, पृ0 73

अंग्रेजी शिक्षा का दोहरा प्रभाव हुआ । एक, भारत के लोगों को ,जो विभिन्न प्रान्तों में रहते थे, भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते थे, विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक सामान्य भाषा उपलब्ध हो गई । इस समय भारत के सभी लोग बंगाली, मद्रासी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, आदि क्षेत्रीयता के घेरे के बाहर निकल सके । दूसरे, अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से अब भारतीय लोग पश्चिम के विचारों से अवगत हो सके । " इस शिक्षा ने आधुनिक बुद्धिवाद के गुप्त भेदों को प्रकट किया तथा भारत के लोगों को प्रजातान्त्रिक विचारों से अवगत कराया । इससे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में प्रेरणा मिली। "[84] इंग्लैण्ड के इतिहास, साहित्य तथा नागरिक स्वतन्त्रता के अध्ययन के आधार पर भारतीय प्रबुद्ध वर्ग जागृत हो उठा ।[85] मिल और बर्क के विचारों के सम्पर्क में आकर भारतीयों ने स्वतन्त्रता एवं समानता का पाठ सीखा ।[86]

अतः यह कहा जा सकता है कि "ब्रिटिश हुकूमत ने शिक्षा पद्धति द्वारा जानबूझ कर भारतीय नवजागृति तथा नवीन चेतना को कुचलने का प्रयास किया फिर भी सम्पूर्ण देश में एक काफी बड़ा शिक्षित समुदाय उत्पन्न करने में सहायता दी, जिसके कि एक जैसे ही विचार थे और जो संकीर्ण प्रान्तीयता के ऊपर उठकर समूचे भारत की समस्याओं को सोच सकता था, राष्ट्रीय दृष्टिकोण को सामने रखकर समस्या पर विचार कर सकता था और

84- सुखबीर चौधरी-ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, भाग1, 1973, पृ0 16-17 ।

85- वी0पी0 वर्मा- आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रकाशक, आगरा, संस्करण, 1987-88, पृ0 7 तथा देखिये ताराचन्द भारतीयस्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड 3 पृ0 167 ।

86- देखिये रशब्रुक विलियम्स -वॉट अबाउट इण्डिया, 1928, पृ0 105

... भाषा के द्वारा उन समस्याओं के समाधान हेतु आपस में वार्ता कर सकता था ।"[87]

संक्षेप में, पाश्चात्य शिक्षा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का पथ प्रदर्शन करने तथा एक प्रेरणा शक्ति का कार्य करने में निश्चय ही एक महत्वपूर्ण कारण रही ।[88] यदि पाश्चात्य शिक्षा को भारत में लागू न किया गया होता तो सम्भवत: भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन उन विचारों एव सिद्धान्तो को समुचित रूप मे न समझ पाता, जो किसी राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रोत्साहित करने हेतु आवश्यक होते हैं ।[89] पाश्चात्य शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए ए0 आर0 देसाई ने भी लिखा है, " वस्तुत: ब्रिटिश शासनकाल मे भारत में जितने भी प्रगतिशील सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आन्दोलन हुए वे शिक्षित लोगों के ही काम थे, जिन्होने नई पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा का अध्ययन किया था ।[90]

87- आर0 सी0 शर्मा -हिन्दी साहित्य में गान्धी चेतना, प्रथम संस्करण, 1981 पृ0 6-7 ।

88- पुरूषोत्तम नागर - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1984, पृ0 14

89- देखिये सुमित सरकार- माडर्न इण्डिया, 1985, पृ0 66 "पाश्चात्य शिक्षा अपने साथ विश्व प्रवाह तथा धारणाओं के प्रति जागरूकता लायी जिसके बिना राष्ट्रीयता के एक चैतन्य सिद्धान्त का निर्माण पर्याप्त कठिन हो जाता ।"

90- ए0 आर0 देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, प्रथम हिन्दी संस्करण 1976, पृ0 166

पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार आन्दोलन :- पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार आन्दोलन ने भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान की ।[90(अ)] भारतीय समाज के अनेक दोषों ने मनुष्य को अकर्मण्य बना दिया था । अपने ही दोषों में ग्रस्त होने से समाज अपनी अन्य समस्याओं पर विचार करने में असमर्थ था । संक्षेप में, समाज सुषुप्तावस्था में पहुँच गया था । अतः भारतीय समाज को अपनी निन्द्रा से मुक्त हो जागरण की आवश्यकता थी । अरस्तू ने कहा था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है ।[91] परन्तु यह नहीं भूला जा सकता कि भारतीय मनुष्य एक धार्मिक प्राणी भी है । अतः धर्म के क्षेत्र में पुनर्जागरण की आवश्यकता थी ।[92] इस क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयास राजाराम मोहन राय द्वारा किया गया । उनके उपरान्त दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, रानाडे, अरविन्दो इत्यादि ने भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया । इन लोगों ने प्राचीन भारतीय गौरव को महत्व प्रदान किया । और उसी के आधार पर वर्तमान को स्थापित करने का प्रयास किया । प्राचीन भारत के इस मत को कि हम मरण से अमरत्व की ओर जा रहे हैं, अज्ञान से ज्ञान की ओर जा रहे हैं, लोग भूल चुके थे । अतः इस बात से लोगों को अवगत कराने की आवश्यकता थी कि हमारा राष्ट्रीय इतिहास महान है । हम किसी अन्य से निकृष्ट नहीं हैं । हमें विश्व को अपने आध्यात्मिक आलोक से आलोकित करना है ।

90-(अ) देखिये - दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल भाग 5, सम्पा० आर०सी० मजूमदार, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1968-69, पृ० 96 ।

91- अरस्तू -पालिटिक्स ।

92- देखिये - वी०पी० वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रकाशक, आगरा, 1987-88, पृ० 123 तथा बी०एस० नरवणे - आधुनिक भारतीय चिन्तन, पृ० 108

किसी भी राष्ट्र का इतिहास, उसकी संस्कृति तथा परम्परायें उस राष्ट्र के लोगों के जीवन पर पर्याप्त प्रभाव डालते हैं। विशेष रूप से ऐसे राष्ट्र में जहाँ का इतिहास राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण रहा हो, राष्ट्र के लोगों ने राष्ट्र की वेदी पर आत्म - बलिदान किया हो। ऐसी ऐतिहासिक उपलब्धियों के आधार पर ही राष्ट्रीय जीवन का निर्माण होता है। वी०पी० एस० रघुवंशी के अनुसार " राष्ट्रीयता का पोषण अतीत की स्मृतियों तथा उपलब्धियों से होता है। .... साम्राज्यवादी अत्याचार के कारण, इसकी राष्ट्रीय चेतना अतीत से प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयास करती है।"[93]

भारतीय इतिहास भी विश्व इतिहास में अपना एक सम्मान जनक स्थान रखता है।[94] यह उस देश का इतिहास है जहाँ पर अनेक महान विभूतियों ने जन्म लिया। अनेक ऐसे राजा हुए जिनके समय में भारतवर्ष स्वर्ण युग में प्रवेश पा सका, सम्पूर्ण भारत एकता के सूत्र में संगठित हो सका। जहाँ का साहित्य लोगों को कर्म की प्रेरणा देता रहा। वेद, पुराण, गीता इत्यादि का अध्ययन लोगों को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाता रहा। जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है - "भारत में बहुत पुराने जमाने से ही संसार के चक्रवर्ती राजाओं का जिक्र मिलता है .... भारत पर हुकूमत करने वाला सारी दुनिया का सरताज है .... पौराणिक राजा भरत, जिसके नाम पर हमारा देश भारत कहलाता है, ऐसा ही एक चक्रवर्ती राजा माना गया है।"[95]

93- वी०पी० एस० रघुवंशी - इण्डियन मूवमेन्ट एण्ड थॉट, 1950, पृ० 4

94- ए० आर० देसाई - सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, बम्बई, 1966, पृ० 328

95- जे०एन०नेहरू-ग्लिम्प्सेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, पृ० 304

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार "आर्यावर्त एक ऐसा देश है जिसके समान भूगोल में कोई दूसरा देश नहीं है। भारत देश ही सच्चा "पारसमणि" है जिसे "लोहे रूपी दरिद्र विदेशी" छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाता है।"[96] ऐसा देश आर्यों का देश है। इस देश पर किसी दूसरी जाति या देश का आधिपत्य देश के निवासियों के लिए लज्जा की बात है।

ऐसी पराधीनता की स्थिति से छुटकारा पाने का रास्ता आत्म-शक्ति से होता है। वास्तव में जो स्वतन्त्र होना चाहता है उसे आत्म-शक्ति का अनुभव होता है। अतः आवश्यक यह है कि अन्य देशों का अनुकरण छोड़कर स्वयं अपने देश के इतिहास को देखने का प्रयास किया जाय।[97] वह इतिहास जो हमारी शक्ति को दर्शाता है कि हम कैसे थे। अतः इतिहास से प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त करके हम पुनः उस युग को वापस ला सकेंगे जो हमारे गौरव का युग था। इसी लिए अनेक धर्म एवं समाज सुधारकों ने भारतीयों को अतीत की ओर देखने की प्रेरणा दी।[98] उन्होंने भारतीयों को आत्मशक्ति का ज्ञान

96- स्वामी दयानन्द सरस्वती -सत्यार्थ प्रकाश, पृ0 172।

97- वी0पी0 वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 1987-88 पृ0 3

98- आधुनिक भारतीय चिन्तन प्राचीन भारतीय चिन्तन से एकदम विच्छिन्न नहीं है। "देखिये वी0एस0 नरवणे, मॉडर्न इण्डियन थॉट, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1970, पृ0 8 तथा" मूल रूप से वह प्राचीन चिन्तन का परिवर्धित रूप ही है। पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव से इसमें आधुनिक संदर्भ जोड़े गये हैं। जिन विचारों का आधार भारत से लुप्त हो गया है उन आधारों को पश्चिम से यथावत् ग्रहण किया गया है। पुरूषोत्तम नागर- आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1984, पृ0 3

करा के अपने धर्म एवं संस्कृति को सुरक्षित रखने हेतु क्रियाशील होने के लिए प्रेरित किया।

भारत के पुनर्जागरण की प्रक्रिया में एक नवीन वर्ग मध्यम वर्ग के[99] उदय ने भी महत्वपूर्ण सहयोग पहुँचाया। प्रारम्भ में ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में आगमन के समय से ही भारत में परिवर्तन का अनुभव किया जाने लगा था। इसका कारण भारत का एक राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण रूप में आ जाना था। इस एकता ने राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण किया।[100] जो पुराने वर्ग थे उनमें से नवीन वर्गों का जन्म हुआ। यद्यपि इन वर्गों के धन, शिक्षा, व्यवसाय इत्यादि में भिन्नता पाई जाती थी तथापि इनमें कुछ सामान्य विशेषताएं पाई जाती थीं जिनके माध्यम से वे एक वर्ग में संगठित हुए। इस वर्ग की नवीन महत्वाकांक्षाएं थीं, व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवहार के सम्बन्ध में नवीन अवधारणाएं थी। इन वर्गको मध्यम वर्ग का नाम दिया गया।[101] यद्यपि इस मध्यम वर्ग की आर्थिक क्षेत्र में भूमिका पाश्चात्य बुर्जुआ वर्ग से भिन्न थी, तथापि राज-नीतिक क्षेत्र में दोनों की भूमिकाएँ समान थीं। इस वर्ग के द्वारा सामान्य जनता में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार, स्वतन्त्रता आन्दोलन के संगठन तथा अन्तत:

99- देखिये- ताराचन्द हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, खण्ड III पृ0 134 इस वर्ग में कृषक, उद्योगपति तथा व्यापारी उप वर्ग थे।

100- देखिये - ताराचन्द -हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग 2, पब्लिकेशन्स डिवीजन, 1967, पृ0 108 ।

101- वही, पृ0 108-109

विदेशी शासन से मुक्ति के लिए महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई गई।

भारत में मुगल शासन के आर्थिक पोषक एवं समर्थक जागीरदार एवं भूस्वामी थे। सामन्ती व्यवस्था ने मुगल शासन के आर्थिक आधार का काम किया। किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना से तथा व्यापार और वाणिज्य के पूँजीवादी आधार पर संगठित होने के कारण भारत मे एक नये मध्यवर्ग का जन्म हुआ।[102] यह वर्ग वणिक वर्ग था इसके धनी होने का कारण भूराजस्व नहीं वरन् व्यापारिक लाभ तथा ब्याज था। इस वर्ग ने सामाजिक तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों का वित्तीय उत्तरदायित्व वहन किया।[103] बीसवीं शताब्दी में भारत में औद्योगिक पूँजीवाद का भी विकास हुआ।[104]

इस वर्ग के उत्थान के लिए भी पाश्चात्य राजनीतिक साहित्य को उत्तरदायी माना जा सकता।[105] इस वर्ग ने "अपनी सारी कमजोरियों के बावजूद ब्रिटिश शासन को एक चुनौती दी।"[106]

102- वी0पी0 वर्मा -आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1987-88, पृ0 11 ।

103- देखिये वही, पृ0 11 तथा अवस्थी औरअवस्थी आधुनिक भारतीय सामाजि एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1987-88, पृ0 18

104- देखिये वी0पी0 वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ0 12

105- बी0सी0 पाल - बर्थ ऑफ आवर नेशनलिज्म, मेमोरीज़ ऑफ माई लाइफ एण्ड टाइम्स, जिल्द।, पृ0 245-249 ।

106- देखिये - अवस्थी और अवस्थी - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ0 18 ।

अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएं :- भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास में विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया था । ब्रिटिश साम्राज्य ने नवीन शिक्षा पद्धति को लागू करके भारत में एक ऐसा वर्ग खड़ा कर दिया था जो अब प्रान्तीयता से हटकर राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार कर सकता था । अठारहवीं शताब्दी में स्वाधीनता की भावना का पर्याप्त विकास हुआ । इससे समानता और मानवता के दृष्टिकोण का उदय हुआ । अमेरिका और फ्रांस की क्रान्तियों का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ा । भारत भी इनसे अछूता न रहा । इनसे भारतीयों में स्वतन्त्रता एवं समानता की भावना का जन्म हुआ । इसके अतिरिक्त इंग्लैंड के निरंकुश तन्त्र का उन्मूलन भी भारतीयों का प्रेरणास्रोत बना ।

इसके अतिरिक्त 1904- 5 ई0 में रूस - जापान युद्ध हुआ जिससे सम्पूर्ण एशिया में एक नवीन चेतना का जन्म हुआ । इससे भारतीयों में भी आत्मगौरव एवं शक्ति का आभास हुआ । जापान की औद्योगिक, सामाजिक एवं राजनीतिक प्रगति के परिणाम स्वरूप भारत में स्वदेशी की भावना को प्रोत्साहन मिला । रूस- जापान युद्ध का प्रभाव जवाहरलाल नेहरू पर अत्यधिक हुआ था ।[107] इस युद्ध ने भारतीय क्रान्तिकारियों को भी प्रभावित किया । एस0 प्रधान के अनुसार" इन गुणों से जादू हो सकते हैं । ये भारत जैसे पराधीन तथा निहत्थे देश को भी इंग्लैंड की कुचलने वाली दासता से मुक्त होने के योग्य बना सकते हैं ।"[108]

107- देखिये - जवाहर लाल नेहरू - आत्म कथा, पृ0 16

108 - एस0 प्रधान - इण्डियाज स्ट्रगल फॉर स्वराज, पृ0 75 ।

1905 ई0 में रूसी क्रान्ति जार की तानाशाही के विरुद्ध की गई थी, जिससे भारत के लोगों में तानाशाही के विरुद्ध आवाज उठाने की शक्ति जागृत हुई थी। विशेष रूप से भारतीय क्रान्तिकारियों ने हड़तालों एवं दंगों के माध्यम से विदेशी शासन का अन्त करने का प्रयास किया।

1912-13 ई0 के बालकन युद्ध ने सम्पूर्ण मुस्लिम विश्व में "पान इस्लामिज्म" की भावना को जागृत किया। तुर्की का खलीफा सम्पूर्ण मुसलमान समाज का धार्मिक प्रधान माना जाता था। इस युद्ध में ब्रिटिश सरकार ने तुर्की के विरुद्ध इटली का समर्थन किया जिससे मुसलमानों का ब्रिटिश सरकार विरोधी होना स्वाभाविक था। इस युद्ध ने विशेषतः हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के समीप ला दिया।[109]

रूस की बोल्शेविक क्रान्ति (1917) ने ज़ार की तानाशाही को जड़ से उखाड़ कर विश्व के समक्ष अत्याचार का विरोध करने तथा विजय प्राप्त करने का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया। इसका प्रभाव भारतीय नेताओं पर भी पड़ा। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि ब्रिटिश अत्याचार का भी अन्त इसी प्रकार किया जा सकता है। इस क्रान्ति के माध्यम से स्वतन्त्रता, समानता तथा जनतान्त्रिक सिद्धान्तों की स्थापना हुई।[110] इस क्रान्ति ने न केवल भारतवासियों को राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रोत्साहित किया वरन् आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए भी मार्ग प्रशस्त किया जिससे भारत में समाजवाद का जन्म हुआ। इसने क्रान्तिकारियों को भी सशस्त्र संघर्ष के लिए प्रोत्साहित किया

109- एन0एम0 पी0 श्रीवास्तव- ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, 1973, पृ0 56

110- देखिये -के0एम0 पानिक्कर-एशिया एण्ड वेस्टर्न डामिनेंस, पृ0 250 ।

इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय चेतना के नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही कारणो का अध्ययन करने के उपरान्त निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रीय चेतना का विकास एक लम्बे समय के बाद, अनेक कारणो से हुआ। जिसमे ब्रिटिश साम्राज्यवाद सर्वाधिक उल्लेखनीय था। पराधीनता राष्ट्रीय चेतना को जन्म देती है। भारत, जिसकी पराधीनता का कारणब्रिटिश साम्राज्य था, अपनी पराधीनता की प्रतिक्रिया स्वरूप जागृत होकर साम्राज्यवाद के विरूद्ध आ खड़ा हुआ। वह इस साम्राज्यवाद को, जो कि सब प्रकार के शोषण का प्रतीक था, जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए कटिबद्ध हो गया। इन सभी के पीछे जहाँ स्वयं ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने सकारात्मक भूमिका निभाई, उदाहरणार्थ, नवीन शिक्षा प्रणाली, नयी अर्थव्यवस्था इत्यादि का प्रचलन कराया, जिससे भारत के लोगों में एकता तथा स्वाधीनता की भावना जागृत हुई,[1] वहीं भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण ने भी भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का विकास किया। उन्होंने अपने प्राचीन गौरवमय अतीत के आधार पर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने का प्रयास किया। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी इस चेतना को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

भारत में राष्ट्रीय भावना के विकास का इतिहास 1857 ई0 के

1- देखिये- सुखबीर चौधरी -ग्रोथ ऑफ नेशनालिज्म इन इण्डिया, 1973 पृ0 5 तथा ए0 आर0 देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ-भूमि, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1976, पृ0 14।

स्वाधीनता संग्राम से माना जा सकता है। उस समय से अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन अनेक स्तरों से गुजरता हुआ एक स्वतन्त्र भारत की उपलब्धि के बाद समाप्त होता है। अंग्रेजों ने भारत को एक लम्बे समय तक गुलाम बनाये रक्खा। चूँकि स्वतन्त्रता मानव स्वभाव में निहित होती है [112] इसलिए यह सम्भव नहीं था कि इस गुलामी से छूटने की इच्छा भारतीयों के हृदय में न हो। यह सम्भव है कि यह इच्छा उस वातावरण के अभाव में जिसमें परतन्त्रता को सीधे रूप में उतार फेंका जा सके, स्पष्ट रूप में सामने नहीं आ सकी हो। वास्तव में इसको उस स्थिति की खोज थी जो उसे सर्वप्रथम 1857 ई0 में प्राप्त हुई। भारतीय जनता के इस विरोध तथा संघर्ष ने अंग्रेजी राज्य की नींव को झकझोर दिया।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अनेक भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(अ) 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम तथा उसके उपरान्त ब्रिटिश नीति में परिवर्तन एवं भारतीय राष्ट्रीय भावना का स्वरूप।

(ब) समाज तथा धर्म-सुधार आन्दोलन।

(स) 1885 ई0 में कांग्रेस की स्थापना तथा 1905 ई0 के पूर्व तक कांग्रेस की नीतियाँ।

(द) 1905 ई0 से 1918 ई0 तक का कांग्रेसी आन्दोलन।

(य) गान्धीवादी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय भावना।

112- जे0 जे0 रूसो- सोशल कान्ट्रेक्ट, पृ0 3

§र§ क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय भावना।

§ल§ समाजवादी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय भावना।

§व§ द्वितीय विश्व युद्ध तथा 1942 ई0 का भारत-छोड़ो आन्दोलन और अंग्रेजी सरकार की नीति।

§ष§ 1942 ई0 के उपरान्त राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप तथा स्वतन्त्रता की प्राप्ति।

§अ§ <u>1857 ई0 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम तथा उसके उपरान्त ब्रिटिश नीति में परिवर्तन एवं भारतीय राष्ट्रीय भावना कास्वरूप :-</u>

1857 ई0 में हुए प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय चेतना एक स्पष्ट रूप धारण कर सकी। इस समय सम्पूर्ण भारत एक राष्ट्र के रूप में अंग्रेजी साम्राज्य का विरोध करने के लिए संगठित हो गया। डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार, "आधुनिक राष्ट्रीयता का प्रथम उत्थान हमें सन् 1857 के विद्रोह मेंमिलता है। अंग्रेजी शासन के विरूद्ध हिन्दुस्तानकी संगठित राष्ट्र-भावना का वह प्रथम आह्वान था और इसी समय से हमारी राष्ट्रीयता का जयनाद आरम्भ हो गया।"[113] यद्यपि इस विद्रोह का दमन बड़ी क्रूरता के साथ कर दिया गया था तथापि भारतवासियों में अत्याचार का विरोध करने की भावना का विकास हुआ। अब वे संगठित रूप में अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए सोचने हेतु प्रयत्नशील हुए।[114]

113- डॉ0 नगेन्द्र - आस्था के चरण, पृ0 236

114- देखिये- सुखबीर चौधरी-ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इनइण्डिया, प्रथम भाग, 1973, पृ0 57 तथा मन्मथनाथ गुप्त, भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, द्वितीय संस्करण, 1960, पृ0 6

यह इस विद्रोह का ही परिणाम था कि भारत पर से कम्पनी का शासन समाप्त हो गया तथा भारत का सीधा सम्बन्ध ब्रिटिश पार्लमेंट से सम्भव हुआ। इस समय महारानी विक्टोरिया की ओर से 1858 ई० में एक घोषणा-पत्र जारी किया गया जिसमें शासन की ओर से उदारता, दया और धार्मिक सहिष्णुता का आश्वासन दिया गया। यद्यपि यह आश्वासन अन्य ब्रिटिश नीतियों की भाँति मुख्यतः ब्रिटिश हित का ही पोषक था। फिर भी इसविद्रोह ने इसे स्पष्ट कर दिया था कि शासन की सफलता के लिए भारतीयों को कुछ दृष्टियों से ब्रिटिश शासन से सम्बद्ध किया जाना चाहिए। अतः 1861 ई० के अधिनियम के माध्यम से भारतीय सदस्यों को वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में भी स्थान दिया गया।

1857 ई० से 1885 ई० के बीच कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं घटित हुईं जिनका प्रभाव न केवल अंग्रेजी शासन पर पड़ा वरन् जिन्होंने राष्ट्रीय भावना के विकास में भी सहायता दी।

प्रथम, 1833 ई० मे एक कानून बनाया गयाथा कि भारतवासी बिना किसी धर्म, जाति या वर्ण के भेदभाव के नौकरी प्राप्त करने केलिए योग्य होंगे। 1853 ई० में सिविल सर्विस के लिए प्रतिस्पर्धी परीक्षाएँ जारी की गईं। यद्यपि वह भारतवासियों के लिए लाभदायक प्रतीत होती हैं लेकिन इन परीक्षाओं केलिए इंग्लैण्ड जाकर अंग्रेजी भाषा और साहित्य की परीक्षाओं में अंग्रेजों कामुकाबला करना बहुत कठिन था। फिर भी भारत के कुछ लोग इन

परीक्षाओं में सफल हुए। लेकिन 1880 ई0 में लार्ड सेलिसबरी ने सिविल सर्विस की अवस्था कमकरदी। जिसका विरोध देशव्यापी आन्दोलन के रूप में किया गया। नरेन्द्र देव के शब्दों में " यह पहला ही अवसर था जब यह स्पष्ट हो गया कि भारत में एक ऐसे वर्ग का प्रादुर्भाव हो गया है जिसकी आकांक्षाएं, जिसकी भावनाएँ एवं जिसके विचार एक ही प्रकार के हैं।"[115]

द्वितीय, लार्ड रिपन का शासन काल भारतीय राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। उसने 1879 ई0 में लार्ड लिटन द्वारा जो वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास किया गया था, उसे रद्द कर दिया, शासन सुधार की दृष्टि से अनेक प्रान्तों में स्थानीय स्वशासन को लागू किया, उसने भारतीयों को उच्च पदों पर बिना भेदभाव के नियुक्त होने का अधिकार प्रदान किया। इस समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना 1883 ई0 में इलबर्ट बिल का प्रस्तुत किया जाना था, जिसके अनुसार भारतीय तथा विदेशी सभी को न्याय के समक्ष समान स्वीकार किया गया। इस बिल का अंग्रेज और एंग्लो-इण्डियन सम्प्रदाय के लोगों नेघोर विरोध किया। फलस्वरूप यह बिल संशोधित रूप में ही पास हो सका।[116] लेकिन इस संशोधन पर भारतीयों ने भी असन्तोष व्यक्त किया। इससे भारतवासियों कोदो पाठ मिले। एक, कि वे अंग्रेजों की दृष्टि में किस स्तरकेहैं तथा दूसरा, अंग्रेजों के विरोध के सामने शासन के झुक जानेसेभारतीयों ने समझा कि जनान्दोलन में शक्ति होती है

115- आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 12

116- देखिये - पी0 सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास, 1935, पृ0 9

जिसका प्रयोग वे भविष्य में करते रहे । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि " इलबर्ट बिल के स्थगन ने लोगों को सबसे बड़ी शिक्षा दी - जनान्दोलन तथा जन-प्रदर्शन शक्ति की ।[117]

तृतीय, ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा नई लगान व्यवस्था लागू की गई थी । उसका किसानों पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ा था । इसके द्वारा एक निश्चित लगान अदा किया जाना आवश्यक था। अकाल पड़ने पर भी, जो दुर्भाग्यवश काफी पड़े, लगान की रकम जमा करनी आवश्यक थी । अतः किसान कर्ज लेकर, भूमि धरोहर के रूप में रखकर या बेचकर लगान अदा करता था । जिससे किसानों और साधारण आदमी की हालत बिगड़ती चली गई । अतः जनता में विशेषकर किसानों में असन्तोष का भड़कना स्वाभाविक ही था ।[118]

§ब§ समाज तथा धर्म सुधार आन्दोलन -

19 वीं शताब्दी में भारत मे कई समाज तथा धर्म-सुधार आन्दोलनों का आरम्भ हुआ जिन्होंने राष्ट्रीयता की भावना के विकास में सहायता दी। इन सुधार आन्दोलनों ने भारतीय समाज को, जो अनेक अन्धविश्वासो तथा सामाजिक कुरीतियो से पीड़ित था, एक स्वस्थ रूप प्रदान करने का प्रयास किया तथा राष्ट्रीय निर्माण में भाग लेने केलिए प्रेरित किया। किसी भी समाज की स्वतन्त्रता का सम्बन्ध उस समाज की सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं से

117- देखिये - सुखबीर चौधरी- ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, भाग 1, 1973, पृ0 145 ।

118- देखिये - ए0 आर0 देसाई -भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1976, पृ0 265, तथा आर0पी0 दत्त- आज का भारत, पृ0 320, तथा एफ0 बी0 फिशर -इण्डियाज साइलेंट रिवोल्यूशन, पृ0 37-38

होता है । जब इन क्षेत्रों में कुरीतियाँ व्याप्त हो जाती हैं तो स्वतन्त्रता के आधार भी कमजोर हो जाते हैं । इन सुधार आन्दोलनो ने उस वातावरण को तैयार करने में सहायता दी जिससे राष्ट्रीय भावना का विकास हो सका तथा अन्ततोगत्वा देश स्वतन्त्र हो सका ।

भारतवासियों को पश्चिमी उदारवाद ने एक नया दृष्टिकोण दिया अब वे जान गये कि उनकी प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा उनके अपने ही समाज में पोषित हो रहीं सामाजिक कुरीतियाँ हैं जिनके कारण सम्पूर्ण समाज छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया हैं ।[119]

साथ ही साथ भारतीयों का ध्यान अपने गौरवमय अतीत की ओर भी आकृष्ट हुआ । वे अपने प्राचीन सिद्धान्तों से प्रभावित हुए । विशेष रूप से उन पर वेद, उपनिषद् तथा गीता का प्रभाव पड़ा । उन्होंने प्राचीन विचारों को नवीन दृष्टि से समझने का प्रयास किया ।[120]

समाज व धर्म-सुधार आन्दोलन एक ओर छुआछूत या जातिप्रथा की समाप्ति , स्त्रियों की समानता, बाल-विवाह उन्मूलन तथा विधवा-विवाह के समर्थन के लिए हुए, दूसरी ओर धार्मिक अन्धविश्वास और मूर्तिपूजा बहुदेववाद, पशु-बलि, भूत-प्रेतादि के विरोध में तथा तीसरी ओर अशिक्षा और मादक-पदार्थों के सेवन के विरोध में हुए ।

119- देखिये - फ्रेडरिक हर्टज -नेशनलिटी इन हिस्ट्री एण्ड पालिटिक्स, 1945, पृ0 139

120- देखिये - ए0 आर0 देसाई -भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि प्रथम हिन्दी संस्करण, 1976, पृ0 200-201

इन सुधारों के क्षेत्र में सर्वप्रथम राजाराम मोहन राय का आगमन हुआ । उन्होंने 1828 ई0 में ब्रह्म समाज की स्थापना की । इस संस्था के माध्यम से उन्होंने सती प्रथा को अप्रजातान्त्रिक, अमानवीय तथा अराष्ट्रीय मानकर उसके विरूद्ध एक प्रबल आन्दोलन का सूत्रपात किया तथा बहुदेववाद, मूर्ति - पूजा [121] और बहुविवाह के विरूद्ध संघर्ष किया ।[122] इसके माध्यम से लोगों को उनके पिछड़ेपन का अनुभव कराया गया । राममोहन राय ने अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन करके उसके माध्यम से भारतवासियों में एक नवीन विचारधारा का संचार किया । जिसने भारतीयों को प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं से ऊपर उठने के लिए प्रेरित किया । इसीलिए श्रीमती एनी बेसेन्ट के मत में "ब्रह्म समाज ने भारतीय राष्ट्र को निश्चेतना की अवस्था से जगा दिया ।"[123] अतः पी0 सीतारमैया ने राजाराम मोहन राय को "भारत की राष्ट्रीयता के पैगम्बर और आधुनिक भारत के पिता"[124] के रूप में स्वीकार किया है ।

121- देखिये रामगोपाल - भारतीय राजनीति-विक्टोरिया से नेहरू तक, पृ0 56 तथा बी0एस0 नरवणे - आधुनिक भारतीय चिन्तन, पृ0 32

122- अवस्थी, और अवस्थी - आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1987-88, पृ0 25 ।

123- एनी बेसेंट - इण्डिया ए नेशन, 1930, पृ0 92 तथा जकारिया-रिनासेंट इण्डिया, एलन एण्ड अनविन, लन्दन, 1933, पृ0 15

124- पी0 सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास, 1935, पृ0 10 [परन्तु वी0पी0 वर्मा सीतारमैया के इस कथन से सहमत नहीं है । द्रष्टव्य वी0पी0 वर्मा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ0 18

महादेव गोविन्द रानाडे ने 1884 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय समाज सभा को स्थापित किया। इस सभा का मुख्य उद्देश्य पददलितों की स्थिति में सुधार करना तथा जाति-प्रथा की कट्टरता को कम करना था।[125] इसके समर्थकों ने कहा कि चूँकि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तथा स्वशासन प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसलिए हमें भारतीय समाज को भी प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर संगठित करना चाहिए। जिसमें समाज के सभी वर्गों को समानता एवं स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त हो सके। इस प्रकार इस सभा ने समाज के उन वर्गों को, जिन्हें समाज में हीन या अयोग्य समझा जाता था, जिनमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं, अन्य वर्गों के समक्ष समानता का स्तर प्रदान करने का प्रयास किया।[126]

इन सुधार आन्दोलनों में आर्य समाज का, जिसके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे, विशेष महत्व है। इसने भारतवासियों में विशेषतः हिन्दुओं में, राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया। एनी बेसेन्ट के अनुसार" हम आर्य समाज और इसकी राष्ट्रभक्ति के उत्साह को भारतीय राष्ट्रीयता के प्रवाह में सर्वाधिक शक्तिशाली धारा मानते हैं।"[127]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लोगों को प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक विचार का अध्ययन करने को प्रोत्साहित किया जो कि आधुनिक यूरोप के

125- अवस्थी और अवस्थी - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ0 134।

126- वी0पी0 वर्मा, - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ0 134-135

127- एनी बेसेन्ट-इण्डिया ए नेशन, 1930, पृ0 94

भौतिकवाद से श्रेष्ठ है। अतः उनका कहना था कि पश्चिम की चमक से चकाचौंध होने की आवश्यकता नही है। उन्होंने स्वदेशी राज्य को महत्वपूर्ण माना।[128] उनके मत में हमारा इतिहास अपने आप में महान है, जो हमारी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति तथा संस्थाओं इत्यादि के बारे में बताता है कि भारतवर्ष का अतीत कितना गौरवशाली था। इसीलिए उन्होंने वेदो की ओर चलने का नारा दिया था।[129] उन्होंने हिन्दी और संस्कृत के अध्ययन पर बल दिया। वास्तव में जब सम्पूर्ण भारतवर्ष अंग्रेजी भाषा और साहित्य की ओर प्रेरित हो रहा था तब यह स्वामी दयानन्द सरस्वती का हो विचार था कि भारत में शिक्षा भारतीय माध्यम से दी जाय।[130] वास्तव में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने "अंग्रेजी के बढ़ते हुए प्रभाव को हिन्दी के व्यापक प्रचार से रोका तथा हिन्दी को सच्चे अर्थों में लोकभाषा बनाया। राजनीति के क्षेत्र में स्वदेशी स्वराज्य की अवधारणा कर स्वराज्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया जिसने आगे चलकर गान्धी जी को भी प्रेरणा दी।"[131] दयानन्द सरस्वती ने इस बात को समझ लिया था कि अंग्रेजी यद्यपि राष्ट्रीय एकता को लाने तथा प्रगतिशील विचारों के लिए महत्वपूर्ण थी, तथापि भारतीय समाज का बहुसंख्यक भाग इन विचारों का लाभ नहीं उठा सकता था। अतः उन्होंने जन सामान्य की भाषा के माध्यम से

128- देखिये - दयानन्द सरस्वती - सत्यार्थ प्रकाश, पृ0 14।

129- देखिये- रामगोपाल- भारतीय राजनीति-विक्टोरिया से नेहरू तक, पृ0 57।

130- अवस्थी और अवस्थी - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन रिसर्च पब्लिकेशन्स, 1987-88, पृ0 72।

131- आर0सी0 शर्मा -हिन्दी साहित्य में गान्धी चेतना, प्रथम संस्करण, 1981, पृ0 16, तथा यशपाल -सिंहावलोकन, प्रथम भाग, छठा संस्करण, 1978, पृ0 28

राष्ट्रीय विचारों को लोगों तक पहुँचाने का प्रयास किया । जिसके लिए उन्होंने हिन्दुत्व की खोई हुई आत्मा को ढूँढने का प्रयास किया तथा उसका प्रयोग राष्ट्रीयता के विकास के लिए किया ।[132] उन्होंने जाति-प्रथा का भी विरोध करते हुए मनुष्य की मानसिक प्रवृत्तियों, गुणों तथा कर्म को महत्त्वपूर्ण माना ।[133] इस प्रकार दयानन्द ने जो आन्दोलन शुरू किया उससे आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न हुई और भारतीयों में आत्म सम्मान की भावना को जोर पहुँचा ।[134] उन्होंने ज्वलन्त शब्दों में स्वराज्य का गौरवगान किया । राष्ट्रवाद के सन्देशवाहक के रूप में उनका स्थान इसी से स्पष्ट है कि उन्होंने गौरवपूर्ण अतीत से प्रेरणा लेकर स्वराज्य का शक्तिशाली नारा लगाया ।[135] उन्होंने अयोग्य, अज्ञानी तथा वेदों के ज्ञान से रहित लोगों की आज्ञाओं एवं उनके द्वारा निर्मित कानूनों की अवहेलना का समर्थन किया ।[136] जो आगे चलकर सविनय अवज्ञा एवं असहयोग आन्दोलन का मार्गदर्शक भी बना ।[137]

132- हैंस कोहन - हिस्ट्री ऑफ नेशनलिज्म इन ईस्ट, पृ0 62, तथा वी0पी0 एस0 रघुवंशी - इण्डियन नेशनल मूवमेंट एण्ड थॉट, 1950, पृ0 23 ।

133- वी0पी0 वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, चतुर्थ संस्करण, 1987-88, पृ0 38 ।

134- ताराचन्द -हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया, वाल्यूम 2, पब्लिकेशन्स डिवीजन, 1967, पृ0 424 ।

135- वी0पी0 वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ0 43

136- दयानन्द सरस्वती - सत्यार्थ प्रकाश, पृ0 131-133
{ आगे चलकर गांधी जी ने भी कहा था कि अन्यायपूर्ण कानूनों का पालन का-पुरूषताहै, यदि व्यक्ति इसका अनुभव कर ले तो उसे स्वराज्य या होमरूल की प्राप्ति हो जायेगी देखिये - मो0 क0 गान्धी- हिन्द स्वराज्य, पृ0 6 }

137- बी0बी0 मजूमदार -हिस्ट्री ऑफ इण्डियन सोशल एण्ड पालिटिकल आइडियाज: फ्राम राममोहन टु दयानन्द, बुकलैंड, कलकत्ता, 1967, पृ0 256 ।

राष्ट्रीय जागरण में स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द का नाम उल्लेखनीय है । स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज प्रचलित त्यागमय जीवन का घोर विरोध किया । उन्होंने कर्मयोग की शिक्षा दी । उन्होंने निर्भीकता के सिद्धान्त को स्थापित किया जिसे वी0पी0 वर्मा ने प्रतिरोध के सिद्धान्त की संज्ञा दी है ।[138] उनके अनुसार सबसे पहले शक्ति और पौरुष से परिपूर्ण होना चाहिए । जो चीज़ हमें शारीरिक, बौद्धिक या आध्यात्मिक रूप में कमजोर बनाती है उसे हमें विष समझकर छोड़ देना चाहिए, इसमें कोई जीवन नही होता, यह सच नहीं हो सकता ।"[139] अतः उन्होंने धार्मिक अन्धविश्वासों तथा वाह्याडम्बरों से लोगों को मुक्त करके जीवन की वास्तविकता से उनका परिचय कराना चाहा । हैंस कोहन के अनुसार,"दयानिन्द की तरह विवेकानन्द ने नवयुवक भारत को आत्मविश्वास तथा अपनी शक्ति पर भरोसा करना सिखाया ।"[140]

स्वामी विवेकानन्द ने भी स्वामी दयानन्द सरस्वती की तरह प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा संस्थाओं के गौरवशाली अतीत का गुणगान किया तथा भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक

138- वी0पी0 वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन. पृ0 103

139- रोमां रोला - दि लाइफ ऑफ विवेकानन्द एण्ड यूनीवर्सल गास्पल, पृ0 112 ।

140- हैंस कोहन - नेशनलिज्म इन दि ईस्ट, पृ0 72

विचार का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया । जिससे भारतीय मन में आत्मगौरव का भाव जागृत हो सके । [141] उनका विचार था कि पश्चिम के प्रभाव में आकर शिक्षित वर्ग अपने पूर्वजों की प्राचीन महान परम्पराओं को भूल गया, जबकि सच्चाई भारतीय अतीत में छिपी हुई है ।

स्वामी विवेकानन्द ने छुआछूत के विरोध मे भी आवाज उठाई । उन्होंने सम्पूर्ण भारत को भाई-चारे की शिक्षा दी जिसके अनुसार गरीब, पददलित, ब्राह्मण सबके सब भाई हैं ।

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने प्राचीन भारतीय गौरवशाली अतीत के आधार पर राष्ट्रीयता के निर्माण का प्रयास किया । उन्होंने कर्म की शिक्षा दी । उनके अनुसार" मन, प्राण और शरीर सेहमें काम में लग जाना चाहिए और जब तक हम एक और एकही आदर्श के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार न रहेंगे तब तक हम कदापि आलोक नहीं देख पायेंगे ।" [142] उन्होंने गांधी जी के सत्याग्रह पर अपने विचार पहले ही प्रकटकर दिये थे । उन्होंने कहा था, "सतर्क रहो, जो कुछ असत्य है, उसे पास न फटकने दो । सत्य पर डटे रहो, बस तभी हम सफल होंगे -शायद थोड़ा अधिक समय लगे, पर सफल हम अवश्यहोंगे । [143]

141- बी०एन० लूनिया- भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति काविकास, पृ० 527

142- अवस्थी और अवस्थी -आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली ,1987-88, पृ० 80 पर उद्धृत ।

143- रोमा रोलाँ - विवेकानन्द, पृ० 166

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि विभिन्न सुधार आन्दोलनों ने भारत में राष्ट्रीय भावना को जागृत करने का प्रयास किया। इनके माध्यम से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास हुआ। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि " धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में पुनरूत्थान और पुनर्जागरण आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। भारतीय समाज के वर्ग ने प्राचीन अन्ध विश्वासों को त्याग दिया। भारतीयों ने उच्च शिक्षा केलिए विदेश जाना प्रारम्भ किया और विदेश से शिक्षा ग्रहण कर लौटे भारतीय अधिक प्रबल देश भक्त और क्रान्तिकारी बने। साहित्य को नये आयाम मिले और नवीन राजनीतिक सिद्धान्तों, संगठनों एवं आन्दोलनों का आधार तैयार हुआ। संक्षेप में, ब्रिटिश प्रभाव ने भारत को मध्ययुग से निकाल कर आधुनिक युग में पहुँचा दिया।"[144] इस पुनर्जागरण के प्रभाव से हिन्दुओं में आत्म सम्मान तथा बिटिश साम्राज्य के प्रति असन्तोष जाग उठा।[145] जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल प्राप्त हुआ।

(स) 1885 ई से 1905 ई0 के पूर्व तक कांग्रेस की नीतियाँ -

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म भारतीय राष्ट्रीय असन्तोष तथा भारतवासियों में अपनी पराधीनता की स्थिति के अनुभव का परिणाम

144- आर0 सी0 मजूमदार (सम्पा0) दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, भाग 5, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1968-69, पृ0 96।

145- अवस्थी और अवस्थी -आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1987-88, पृ0 36।

था । ब्रिटिश शासक भारतीयों की शक्ति का अनुभव 1857 ई0 के विप्लव में कर ही चुके थे । अतः स्वाभाविक ही था कि वे उन कारणों को नहीं उत्पन्न होने देना चाहते थे जिनसे भारतीय जन-असन्तोष पुनः भड़क उठे । इस कारण उन्होंने यह उचित समझा कि भारतीयों के लिए एक ऐसा सामान्य मंच बनाया जाय जिससे वे अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में शान्तिपूर्ण ढंग से अपने विचार प्रकट कर सके ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 ई0 में एक अवकाश प्राप्त आई0 सी0 एस0 अफसर ए0 ओ0 ह्यूम के द्वारा लार्ड डफरिन के शासन काल में की गई थी । प्रारम्भ में इस संस्था का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार का विरोध करना नहीं था वरन् यह एक राजभक्त संस्था थी । जिसका झण्डा यूनियन जैक था तथा प्रार्थना और निवेदन को इसमें महत्व दिया जाता था। अतः कांग्रेस के प्रारम्भिक रूप को देखकर अंग्रेजों की चिन्ता अवश्य ही कम हुई होगी । लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना दब गई थी वरन् इस संस्था के माध्यम से अब भारतीयों का अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि " राजा राममोहन राय से दयानन्द सरस्वती तक भारतीय समाज के जागरण और उत्थान के लिए जो प्रयास किये गये उनके फलस्वरूप देश में स्वराज्य और स्वदेशी की चेतना जागृत होगई थी । इस चेतना को एक मंच कांग्रेस के रूप में मिल गया था। "[146] गुरु मुख निहाल सिंह

146- आर0सी0 शर्मा -हिन्दी साहित्य में गांधी चेतना, प्रथम संस्करण, 1981, पृ0 21-22 तथा रजनी कोठारी- भारत में राजनीति, पृ032

का मत है कि 1892 ई० का अधिनियम जिसके माध्यम से प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को कौंसिलों में स्वीकार किया गया, कांग्रेस के प्रयत्नों का पहला परिणाम था।[147]

इस काल का एक पक्ष आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। दादा भाई नौरोजी ने भारत की आर्थिक दुर्दशा पर खेद व्यक्त करते हुए कहा कि भारतीय अर्थतन्त्र भारी निर्गम का शिकार है।[148] भारत के आर्थिक साधनों के निर्गम के परिणामस्वरूप जनता का भयंकर और विशाल पैमाने पर शोषण हो रहा है।[149] परन्तु उन्हें अंग्रेजों की न्याय-प्रियता में विश्वास था। उनके अनुसार यदि वर्तमान निर्गम बन्द कर दिया जाए और भारतीयों को विधि निर्माण

147- डा० सत्या एम० राय (सम्पा०) भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम, कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, द्वितीय संशोधित संस्करण, 1985, पृ० 186।

148- राजा राममोहन राय ने भी इस पर खेद व्यक्त किया था, देखिये अवस्थी और अवस्थी - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन, दिल्ली, 1987-88, पृ० 55 तथा दादा भाई नौरोजी- पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, पृ० 16 ।

149- वी०पी० वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, चतुर्थ संस्करण, 1987-88, पृ० 166, तथा दादाभाई नौरोजी-पावर्टी एण्डअनब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लन्दन, 1901, पृ०33-56 तथा आर० सी० दत्त - दि इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया इन दि विक्टोरियन एज, 1906, पृ० 126-127 तथा 140 ।

के सम्बन्ध में राय देने का अवसर प्रदान किया जाय[150] तो ब्रिटिश शासन सर्वश्रेष्ठ शासन सिद्ध होगा ।[151] अतः उन्होंने ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत स्वराज्य की मांग की ।[152] परन्तु अपने राजनीतिक विचारों में स्वराज्य को जितना स्पष्ट नहीं किया उतना उनकी आर्थिक विचारधारा ने आर्थिक साम्राज्यवाद का पर्दाफाश कर भारत में नव-जागरण उत्पन्न किया ।[153]

(द) 1905 ई० से 1918 ई० तक का कांग्रेसी आन्दोलन -

1905 में किये गये लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल के विभाजन ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया रूप प्रदान किया । अभी तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति उदार रही थी । लेकिन बंगाल विभाजन से इसमें उग्रवाद का जन्म हो गया ।[154] सम्भवतः यह उग्र नीति जापान की रूस पर विजय से प्रभावित थी । क्योंकि 1857 ई० के विद्रोह की असफलता के फलस्वरूप भारतीयों के मन में यह धारणा पैदा हो गई थी कि यूरोपीय राष्ट्रों को

150- 1892 ई० के अधिनियम से वाइसराय की कौंसिल में भारतीयों को निर्वाचित होने का अधिकार प्रदान किया भी गया था फिर भी यह भारतीयों के लिए किसी ठोस लाभ को प्रस्तुत न कर सका। देखिये- सत्या एम० राय-भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, द्वितीय संस्करण, पृ० 188 ।

151- दादा भाई नौरोजी - पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया, पृ० 201-202

152- अवस्थी और अवस्थी-आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ० 156 ।

153- पुरूषोत्तम नागर- आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन, पृ० 120 ।

154- आर० सी० शर्मा -हिन्दी साहित्य में गान्धी चेतना, प्रथम संस्करण, 1981, पृ० 21

पराजित नहीं किया जा सकता । लेकिन जापान ने, जो एक एशियाई देश है, यूरोपीय देश रूस को पराजित कर इस धारणा का अन्त कर दिया । जैसा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा है, " जिस समय पूर्व का उगता हुआ सूरज भारत पर अपना तेज फैला रहा था तथा भारत को पश्चिमी शक्ति की अजेयता के भ्रम के बारे में बता रहा था , उस समय बंगाल का विभाजन घोषित हुआ । "[155]

ब्रिटिश शासकों ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास को रोकने के लिए ही बंगाल का विभाजन किया था । लेकिन इस घटना से भारत- वासियों को अंग्रेजों की "फूट की नीति" का बोध हो गया। क्योंकि बंगाल उन दिनों भारत में राजनीतिक प्रगति का केन्द्र था। इसलिए लार्ड कर्जन ने बंगाल को हिन्दू और मुस्लिम दो प्रान्तों में विभाजित करने का प्रयास किया।[156]

बंगाल के विभाजन का एक आर्थिक कारण भी था । साम्राज्यवादी कोष तथा ब्रिटिश पूंजीवाद को बढ़ाने के लिए लार्ड कर्जन ने न केवल प्रान्त की जनता वरन् जमींदार वर्ग के भी कुछ लोगों के हितों का, जो अंग्रेजों के स्वामीभक्त थे , उल्लंघन करने का प्रयास किया । उसने बंगाल को पूर्व और पश्चिम दो भागों में विभाजित कर दिया । जिसका विरोध लोगों ने आर्थिक कारणो से भी किया ।[157] बंग - भंग के विरूद्ध जो आन्दोलन खड़ा हुआ उसका केन्द्र- बिन्दु स्वदेशी था क्योंकि स्वदेशी आन्दोलन से ब्रिटिश व्यापार पर प्रहार किया जा सकता था। स्वदेशी की भावना को भारतवासियों ने जापान से ग्रहण

155- सुरेन्द्र नाथ बनर्जी - ए नेशन इन मेकिंग , पृ0 187

156- वी0पी0 एस0 रघुवंशी- इण्डियन नेशनल मूवमेंट एण्ड थॉट, 1950, पृ0 88

157- सुखबीर चौधरी- ग्रोथ ऑफ नेशन-लिज्म इन इण्डिया, भाग 1, 1973, पृ0 280

किया था। क्योंकि रूस पर जापान की विजय का कारण जापान की आत्मनिर्भरता थी।[158]

बंगाल विभाजन के बाद भारतवासियों में स्वराज्य की भावना और तीव्र हो गई, जो दो प्रकार की विचारधाराओं में अभिव्यक्त हुई। पहली विचारधारा नरम दल की थी, जिसके अनुसार शान्तिपूर्ण ढंग से स्वराज्य की प्राप्ति की जानी चाहिए। इसके समर्थकों में दादा भाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है। दूसरी विचारधारा गरमदल की थी। इसके समर्थकों में बालगंगाधर तिलक, विपिन चन्द्रपाल, लाला लाजपतराय, अरविन्दो घोष जैसे लोग थे। तिलक ने इस पर बल दिया कि "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, और हम इसे लेकर रहेंगे। इससे राष्ट्रीय चेतना के विकास को एक नई गति मिली।

स्वराज्य की नीति चाहे जो भी रही हो। यह स्पष्ट हो गया था कि अब भारतीयों में स्वशासन की भावना आ चुकी थी। अब वे इस पर बल देने लगे कि उन्हें अपने देश का शासन स्वयं चलाने का अधिकार होना चाहिए। इस प्रकार अंग्रेजों की न्यायप्रियता में भारतीयों का विश्वास धीरे-धीरे समाप्त होने लगा।[159] 1906 ई0 में कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में प्रथम बार स्वराज्य की घोषणा की गई और वह भी संयोगवश नरमदलीय नेता दादा भाई

158- एन0एम0 पी0 श्रीवास्तव-ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, 1973, पृ0 108

159- ए0सी0 मजूमदार- इण्डियन नेशनल इवोल्यूशन, जी0ए0 नटेसन, 1971, द्वितीय संस्करण, पृ0205 ।

नौरोजी के द्वारा।[160] इस कांग्रेस में यह मत व्यक्त किया गया कि ब्रिटिश साम्राज्य में रहते हुए भारत को स्वयं अपना शासन चलाने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। इस समय बहिष्कार आन्दोलन का समर्थन किया गया। "स्वदेशी" उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने का समर्थन किया गया और राष्ट्रीय शिक्षा की हिमायत की गई। कांग्रेस कार्यक्रम की अब ये चार मूलभूत बातें हो गईं - स्वराज, विदेशी माल का बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा।[161] आगे चलकर इस कार्यक्रम को गान्धी जी ने स्वीकार किया तथा आगे बढ़ाया।

बंगाल विभाजन के कारण जो उग्रवादी आन्दोलन चला वह उदारवादियों की नीतियों की असफलता के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप था। सुमित सरकार के अनुसार, " जुलाई 1905 ई0 के पश्चात आन्दोलन परम्परावादी पथ से हट गया, तथा इसने अनेक प्रकार की नयी तथा क्रान्तिकारी तकनीकों का विकास किया, जिससे पहले की अपेक्षा बहुत सारे लोग इसकी ओर आकर्षित हुए तथा स्वराज्य के संघर्ष में सम्मिलित हुए।"[162]

उग्रवादी भी जापान से प्रभावित थे। उन्होंने त्याग और बलिदान को अपना आदर्श बनाया तथा प्रथम बार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में आतंकवाद का उदय हुआ।[163] जिसके माध्यम से अंग्रेजों के हृदय मे भय पैदा

160- अवस्थी और अवस्थी- आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन, पृ0 156।

161- आर0पी0 दत्त - आज का भारत, हिन्दी अनुवाद, पृ0 340।

162- सुमित सरकार- माडर्न इण्डिया, 1985, पृ0108।

163- देखिये जवाहरलाल नेहरू ग्लिम्पसेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, पृ0 441 तथा जवाहरलाल नेहरू- आत्मकथा- बम्बई, 1962, पृ0 21

करने का प्रयास किया गया।[164]

भारतीय उग्रवाद के विकास में भारतीय परम्पराओं से भी सहायता मिली। बाल गंगाधर तिलक ने प्रान्तीय स्तर पर राष्ट्रीय भावना के जागरण के लिए गणपति पूजा को प्रारम्भ किया। उन्होंने गीता के निःस्वार्थ कर्मयोग कोमहत्वपूर्ण माना[165] और शिवाजी[166] का उदाहरण देकर कहा कि शिवाजी ने आततायियों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष किया ताकि मराठा जाति का उद्धार हो सके। तिलक ने मनु का उदाहरण देते हुए भी कहा, " इस प्रकार के आततायी की बिना किसी दया के या बिना यह सोचे कि वह गुरु है या वृद्ध या शिशु है या विद्वान ब्राह्मण हत्या कर देनी चाहिए। क्योंकि शास्त्रों के अनुसार ऐसे अवसरो परहत्या करने वाला पाप नहीं करता वरन् आततायी अपने ही अधर्म के कारण मरता है।"[167]

164- देखिये- ताराचन्द - भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास खण्ड III पृ0 148 पर रैंड और आयर्स्ट की हत्या के सम्बन्ध में तिलक परब्रिटिश साम्राज्य को आतंकित करने का आरोप लगाया।

165- बाल गंगाधर तिलक- गीता रहस्य, द्वितीय संस्करण, पृ0 664

166- शिवाजी को तिलक ने इस आधार पर उचित ठहराया था कि "महान व्यक्ति नैतिकता के सामान्य नियमों से परे होते हैं। ताराचन्द-"भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास" खण्ड III पृ0 148 पर उद्धृत परन्तु यह गांधीवादी दर्शन के अन्तर्गत स्वीकार नहीं किया जा सकता।

167- सुखबीर चौधरी- ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, भाग 1, 1973 पृ0 553 पर उद्धृत तथा मनुस्मृति.

अरविन्द घोष ने राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादी नीतियों का समर्थन परम्परागत आधार पर किया। उनके अनुसार क्षत्रियों को नैतिकता के अनुसार युद्ध के समय हिंसा न्यायोचित होती है । क्योंकि बहिष्कार भी एक प्रकार का युद्ध है। इसमें न्याय के लिए किसी साधन को स्वीकार कर सकते है। योद्धा की तलवार न्याय तथा धार्मिकता केलिए उतनी ही आवश्यक है जितनी साधु केलिए पवित्रता । न्याय की रक्षा तथा दुर्बल की शक्तिशाली के दमन से रक्षा केकार्य के लिए क्षत्रिय की रचना हुई ।[168]

इसी समय कांग्रेस ने स्वदेशी के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा की मांग को प्रस्तुत किया । यह सत्य है कि अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतीय एकता के सूत्र में बन्ध सके तथा पश्चिमी प्रजातान्त्रिक एवं उदारवादी विचारों से अवगत हो सके । लेकिन अंग्रेजी का लाभ भारतीय जनता का एक अल्प भाग ही उठा सका । अत: अंग्रेजी के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय जनता में एकीकरण सम्भव नहीं था । अंग्रेजी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती है। अत: राष्ट्रीय कांग्रेसी नेताओं ने एक राष्ट्रीय शिक्षा का कार्यक्रम रखा तथा इस शिक्षा का माध्यम भी स्वदेशी अर्थात् हिन्दी रखा ।

भारतीय राष्ट्रीयता का यह विकास अंग्रेजो की आंखों में खटक रहा था । अत: उन्होने हिन्दुओं और मुसलमानो को पृथक करने की नीति को अपनाया । यही बंगाल विभाजन का आधार था।[169] 1906 ई0 में

168- वही, पृ0 295 ।

169- ताराचन्द-भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड 3, पृ0 325 ।

मुस्लिम लीग की स्थापना अंग्रेजों की नीतियों के अनुसार थी । 1909 ई0 में मार्ले-मिन्टो रिफार्म्स में भारतीय मुसलमानो के लिए पृथक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई ।[170] अतः हिन्दू -मुस्लिम साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिला परिणामस्वरूप 1909 ई0 में पंजाब में प्रान्तीय हिन्दू सभा की स्थापना हुई ।[171]

बंग-भंग के परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन काफी तीव्र हो गया । अनेक स्थानों पर हिंसात्मक घटनाएँ हुईं । स्वदेशी का प्रचार किया गया तथा बहिष्कार ने मूर्त रूप धारण किया । परिणामस्वरूप 1911 ई0 में लार्ड हार्डिंग के समय में बंग-भंग रद्द कर दिया गया । इससे लोगों के हृदय में ब्रिटिश न्याय के प्रति पुनः विश्वास जाग उठा ।[172]

1912-13 ई0 में बालकन युद्ध में तुर्की की हार के फलस्वरूप 1913 ई0 के करांची कांग्रेस के सभापति नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर ने मातृभूमि के लिए हिन्दुओं और मुसलमानों को एक होने का नारा दिया ।[173] परिणामस्वरूप 1916 ई0 में "लखनऊ पैक्ट" के अनुसार हिन्दुओं ने मुसलमानों को उनकी संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व देना स्वीकार किया ।[174]

इधर 1914 ई0 में जब तिलक जेल से छूटे तो श्रीमती एनी बेसेन्ट ने उनके साथ मिलकर होमरूल आन्दोलन को प्रारम्भ किया । इस आन्दोलन से नरम और गरम दल दोनों ही आकर्षित हुए । एनी बेसेन्ट की आवाज ने कि " होमरूल" भारत का अधिकार है",

---

170- 1892 ई0 के भारतीय कौंसिल अधिनियम द्वारा ।

171- डॉ0 सत्या एम0 राय (सम्पा0)- भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम, कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1885, पृ0 608

172- पी0 सीतारमैया -कांग्रेस का इतिहास , 1935, पृ0 59

173- पी0 सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास, हिन्दी सम्पा0- हरिभाऊ उपाध्याय, 1935, पृ0 42

174- आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद ,प्रथमावृत्ति पृ0 34

उग्रवादियों का ध्यान आकर्षित किया तथा उनके संविधानिक आन्दोलन ने उदारवादियों को आकर्षित किया ।[175] इससे 1907 ई0 में सूरत में कांग्रेस का जो विभाजन हो गया था, पुनः एक सूत्र में बन्ध सकी ।

1914 ई0 में जब प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तो भारत ने उसमे ब्रिटेन को पूर्ण सहयोग देने का फैसला किया । क्योंकि गान्धी जी का मानना था कि "इंग्लैंड की आवश्यकता हमारा अवसर नही बननी चाहिए । "[176] तिलक ने भी इसका समर्थन किया ।[177]

युद्धोपरान्त राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप -

युद्धोपरान्त भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन अनेक धाराओं में विभाजित हो गया । एक ओर दक्षिण अफ्रीका से लौटे महात्मा गान्धी के व्यक्तित्व तथा कार्यक्रम का भारतीय जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा । इससे राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नये युग, जिसे गान्धी युग के नाम से जाना जाता है, का सूत्रपात हुआ । लेकिन साथ ही साथ कुछ और विचारों का भी इस युग में विकास हुआ । जिन्होंने राष्ट्रीय चेतना को प्रभावित किया । इस समय समाजवादी तथा क्रान्तिकारी

175- वी0 पी0 एस0 रघुवंशी- इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट एण्ड थॉट, 1950, पृ0 135

176- महात्मा गान्धी - आत्मकथा, पृ0 67

177- एस0एल0 करन्दिकर - लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, पृ0 380

आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ ।

(य) गान्धीवादी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय भावना -

अपने राजनीतिक दर्शन में गान्धी जी ने पाश्चात्य राजनीति की आलोचना की है ।[178] क्योंकि यह अपने स्वरूप में भौतिकवादी है तथा आत्मोन्नति में सहायक नहीं है । अत: उनके अनुसार जो राजनीति आत्मोन्नति में सहायक नही है, उसका विरोध करना चाहिए ।[179] इस दृष्टि से उन्होंने स्वशासन की आवश्यकता पर बल दिया तथा अंग्रेजी शासन का विरोध किया । उनके अनुसार जीवन का वास्तविक उद्देश्य सत्य की प्राप्ति है [180] जिसे अहिंसा के द्वारा ही प्राप्त कर सकते है ।[181] उन्होंने साधन और साध्य दोनों के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध माना है । वे अंग्रेजी शासन के उन कार्यों का विरोध करना अपना परम कर्तव्य समझते थे, जो सत्य के अनुरूप नहीं थे ।[182] सत्य के लिए अहिंसात्मक विरोध ही सत्याग्रह है । सत्याग्रह के अन्तर्गत उन्होंने असहयोग, बहिष्कार, सविनय-अवज्ञा आन्दोलन आदि को प्रमुख माना है ।

178- देखिये सी0एफ0 एन्ड्रूज - महात्मा गान्धी - हिज ओनस्टोरी पृ0 353-54

179- अवस्थी और अवस्थी - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ0 371 तथा देखिये डी0जी0 तेन्दुलकर - महात्मा खण्ड2 पृ0 98

180- वी0पी0 वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ0 343

181- देखिये - अवस्थी और अवस्थी - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ0 343

182- देखिये पूर्वोल्लिखित -मो0 क0 गान्धी -हिन्द स्वराज, पृ0 6

उन्होंने सत्याग्रह के माध्यम से शत्रु के प्रति प्रेम को दर्शाने का प्रयास किया है, ऐसा प्रेम जो शत्रु का हृदय परिवर्तन कर देता है ।[183] गान्धी जी का यह विश्वास था कि जब लोग इच्छा और दृढ़ता के साथ एक उचित लक्ष्य के लिए संघर्ष करते है तो वे एक शक्तिशाली तथा सुसज्जित सेना पर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं ।[184] यही उनके अनुसार सत्याग्रह का अर्थ है । उनके अनुसार सत्याग्रही एक उत्कृष्ट व्यक्ति होता है, वह अहिंसा में विश्वास करता तथा उसका अनुगामी होता है, अपनी शक्ति की परिपूर्णता में, आत्मशक्ति का प्रयोग करते हुए, गलत कार्य करने वाले को क्षमा करता है तथा उसे अहिंसा और प्रेम के माध्यम से उचित कार्य करने को प्रेरित करता है ।[185]

गान्धी जी का आदर्श सर्वोदय की स्थापना था । इस दृष्टि से वे न केवल राजनीतिक स्वशासन को आवश्यक मानते थे वरन् सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में भी उचित व्यवस्था पर बल देते थे । वे समाज में व्यक्तियों के मध्य समानता के पक्षपाती थे तथा कर्म की महत्ता पर बल देते थे । उन्होंने समाज में व्याप्त छुआछूत का विरोध किया ।[186]

183- देखिये - बिपन चन्द्र - नेशनलिज्म एण्ड कोलोनियलिज्म इन मॉडर्न इण्डिया, प्रथम संस्करण 1979, पृ0 131

184- देखिये प्राण चोपड़ा - दि सेज इन रिवोल्ट, प्रथम संस्करण, गान्धी पीस फाउन्डेशन, पृ0 37

185- देखिये वही, पृ0 114

186- देखिये लुई-फिशर गान्धी, पृ0 165

उनके अनुसार व्यक्ति की महानता जाति से नहीं वरन् कर्म से निश्चित होनी चाहिए ।[187] उन्होंने स्त्रियों की दशा को भी सुधारने का प्रयास किया ।[188] उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानो में साम्प्रदायिक एकता को प्रोत्साहित करने का भी प्रयास किया । उन्होंने कहा " सब धर्म एक दूसरे के साथ शान्ति से रहें, हर एक आदमी के लिए अपना निज का धर्म बना रहे, यही हिन्दू धर्म है ।"[189]

आर्थिक क्षेत्र में वे विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के पक्षपाती थे । उनके मत मे भारत ग्रामों का देश है । अत: यहाँ की अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए ग्रामों की अर्थव्यवस्था में सुधार की आवश्यकता है । अत: उन्होंने जिस आदर्श समाज की कल्पना की, उसमें विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था की स्थापना की गई है तथा आत्मनिर्भर ग्राम उसके केन्द्र हैं । उन्होंने कुटीर उद्योगों को विकसित करने के लिए भी प्रयास किया । उन्होंने प्राचीन भारतीय आदर्शो को स्वीकार करने का समर्थन किया । वे वेद और गीता के आधार पर समाज को संगठित करना चाहते थे।[190]

187- जे0बी0 कृपलानी - गान्धी - हिज लाइफ एण्ड थॉट, पृ0 337

188- अवस्थी और अवस्थी -आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिन्तन, पृ0 402-403 तथा पुरूषोत्तम नागर - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ0 432

189- अवस्थी और अवस्थी - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, पृ0 374 पर उद्धृत तथा देखिये ताराचन्द - भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड 3, पृ0 209

190- देखिये वी0पी0 वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ0 346

परन्तु उन्होंने दयानन्द सरस्वती के "वेदों की ओर " के नारे को बदलकर गाँवों की ओर चलने का नारा दिया ।[191]

गान्धी जी कोई सिद्धान्तवादी नहीं थे । उन्होंने जीवन में कर्म को महत्ता दी थी । यही कारण था कि दक्षिण अफ्रीका में अपने साथ हुए अभद्र व्यवहार से उत्पीड़ित होकर उन्होंने भारतीयों की मुक्ति की बात सोची ।[192] उन्होंने भारतीयों के अधिकारों के लिए, उनकी स्वतन्त्रता और समानता हेतु, सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग किया जो सफल भी हुआ ।

जनता के समक्ष प्रत्यक्ष रूप में एक नेता के रूप में गान्धी जी बिहार के चम्पारन जिले के किसानों की समस्याओं का समाधान करने हेतु 1917 ई0 में प्रकट हुए । गान्धी जी के नेतृत्व में किसानों ने नील बगीचों के मालिकों के विरूद्ध संघर्ष किया, जिसमें गान्धी जी ने प्रथम बार भारत में सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग किया ।[193] इसमें किसानों

191- वही, पृ0 347
192- देखिये एम0 ए0 बुच - राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, प्रथम संस्करण, 1939, पृ0 8
193- देखिये ए0 आर0 देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, प्रथम संस्करण, 1976, पृ0 159

की विजय भी हुई थी ।[194] भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अभी तक राष्ट्रीय समस्या के रूप में आर्थिक समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया गया । गान्धी जी ने प्रथम बार राष्ट्रीय समस्याओं में आर्थिक समस्या को स्थान दिया ।

खेड़ा सत्याग्रह -

1917 ई0 में गुजरात के खेड़ा जिले में अतिवृष्टि के कारण फसल नष्ट हो गई । ऐसी स्थिति में किसानों के द्वारा कानून के अनुसार लगान को स्थगित करने की माँग की गई ।[195] परन्तु सरकार ने भूमि लगान वसूल करने का निश्चय किया । परिणामस्वरूप किसानों ने सविनय अवज्ञा का निश्चय किया । अन्त में किसानों तथा सरकार के मध्य समझौता हुआ जिसके अनुसार गरीब किसानों को कर से मुक्त कर दिया गया । इस आन्दोलन के सम्बन्ध में जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि " करबन्दी आन्दोलन का एक खास नतीजा दिखाई दिया । इससे हमारे संग्राम का आकर्षण केन्द्र शहरी प्रदेश से हटकर देहाती प्रदेशों में चला गया । इससे आन्दोलन में नवजीवन आ गया और उसकी

194- देखिये - ए0 आर0 देसाई [सम्पा0] पीजेन्ट्स स्ट्रगल इन इण्डिया, द्वितीय संस्करण, 1982, पृ0 223

195- एस0 मेहता - दि पीजेन्टरी एण्ड नेशनलिज्म, 1984, पृ0 30 "बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू कोड के सेक्शन 84 ए0 - एन0 2, 1879 के अनुसार अकाल या सूखा पड़ने की स्थिति में किसानों को भूमि लगान से मुक्त किया जाना स्वीकार किया गया है ।"

बुनियाद को अधिक व्यापक और मजबूत बना दिया ।[196]

अहमदाबाद का मजदूर सत्याग्रह -

अहमदाबाद में मजदूरों एवं मिल मालिकों के मध्य मजदूरी में वृद्धि के प्रश्न को लेकर संघर्ष प्रारम्भ हो गया । मजदूर 35 प्रतिशत वृद्धि की मांग कर रहे थे, जबकि मिलमालिक 20 प्रतिशत वृद्धि करने के ही पक्ष में थे । मजदूरों को गान्धी जी ने सत्याग्रह की सलाह दी । परिणामस्वरूप पंचों के निर्णयानुसार 35 प्रतिशत वृद्धि को स्वीकार कर लिया गया । मजदूरों की इस विजय ने कांग्रेसी नेताओं और मजदूरों के मध्य सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित कर दिया ।[197]

1919ई0 का रालट एक्ट तथा असहयोग आन्दोलन -

गान्धी जी भारतीय राजनीति के मंच पर 1919 ई0 में अवतरित हुए । इस वर्ष रालटएक्ट पारित किया गया जिसके माध्यम से युद्ध के दौरान जो दमन के असाधरण अधिकार सरकार ने अपने हाथ में ले लिए थे, उन्हें युद्ध समाप्त हो जाने तथा विशेष कानूनो की अवधि समाप्त हो जाने के बाद भी सरकार के हाथों में बनाये रखा गया था ।[198]

196- पं0 जवाहर लाल नेहरू - मेरी कहानी, पृ0 359

197- देखिये - पी0 सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास, 1935, पृ0 202

198- देखिये वही, पृ0 150

यह कानून पूर्णरूपेण अत्याचारी कानून था । अतः भारत में सर्वप्रथम गान्धी जी ने विस्तृत रूप में सत्याग्रह आन्दोलन चलाने का निश्चय किया ।[199] उन्होंने जनता से अपील की कि 6 अप्रैल को हड़ताल करें, जिसका उत्तर जनता ने बड़े उत्साह से दिया ।[200] सरकार का दमन चक्र पूर्ण वेग से चल पड़ा। 13 अप्रैल 1919 ई0 को अमृतसर के जालियाँवाला बाग में भीषण नरसंहार हुआ ।[201] जिसकी जाँच के लिए हण्टर कमीशन की नियुक्ति की गई । लेकिन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार जनरल डायर के कृत्यों को उचित बताया गया । अतः 2 जून 1920 को इलाहाबाद में सर्वदल बैठक हुई और असहयोग करना निश्चित किया गया । उधर टर्की के अंग-भंग के कारण भारतीय मुसलमानों में आग भड़क उठी और उन्होंने भी हिन्दुओं के साथ मिलकर खिलाफत आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । इस समय भारत में जो आन्दोलन चला - वैसा पहले कभी नहीं हुआ था ।[202]

199- सुमित सरकार - माडर्न इण्डिया, 1985, पृ0 187

200- ए0 आर0 देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि प्रथम हिन्दी संस्करण, 1976, पृ0 293 तथा 298 तथा महात्मा गान्धी - माई एक्सपेरिमेन्ट्स विद ट्रुथ, भाग दो, पृ0 486

201- देखिये पी0 सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास, 1935, पृ0 115

202- जगदीश शरण शर्मा (सम्पा0) - इण्डियाज स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, भाग3, 1965, पृ0 814 तथा वी0पी0 एस रघुवंशी - इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट एण्ड थॉट, 1950, पृ0 161

असहयोग आन्दोलन पूरे जोर के साथ चला जगह - जगह हड़तालें हुई, धरने दिये गये, प्रिन्स ऑफ वेल्स के स्वागत का बहिष्कार किया गया । संक्षेप में आन्दोलन सफलता की ओर अग्रसर हो रहा था । तभी 1922 ई0 में चौरी-चौरा नामक स्थान पर एक थाने को जिसमें 22 पुलिस कर्मी थे, हिंसा पर उतारू भीड़ ने जला दिया । गान्धी जी ने आन्दोलन रोकने का फैसला किया । उनके मन में जनता आन्दोलन के योग्य नहीं थी । अत: उसे शिक्षित करने की आवश्यकता थी । इसके लिए उन्होंने 21 दिन का उपवास रखा तथा रचनात्मक कार्यों में, जिनमें अछूतोद्धार ,चर्खा और करघा, हिन्दू - मुस्लिम एकता, मद्य-निषेध, नारी उत्थान, राष्ट्रभाषा की उन्नति, राष्ट्रीय शिक्षा, ग्रामीण उद्योग- धन्धों का विकास, स्वदेशी का प्रचार [203] इत्यादि थे, लग गये ।

यद्यपि आन्दोलन को रोके जाने से अनेक लोग गान्धी जी के विरूद्ध हो गये । जवाहर लाल नेहरू के अनुसार, " जब हमें आन्दोलन के रोके जाने का पता चला तो हमें बड़ा क्रोध हुआ

203- स्वदेशी का प्रचलन दयानन्द सरस्वती ने बहुत पहले ही कर दिया था । जिसे गान्धी जी के नेतृत्व में देशव्यापी समर्थन प्राप्त हुआ । देखिये पुरूषोत्तम नागर - आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1984, पृ0 44

क्योंकि उस समय हमारी स्थिति काफी सुदृढ़ थी तथा हम हर मोर्चे पर आगे बढ़ रहे थे।[204] आन्दोलन को रोकने के कारण गान्धीवादी तकनीक पर से लोगो का विश्वास हटने लगा था। विशेष रूप में इस समय क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। जो अहिंसात्मक साधनो की अपेक्षा गोली, बम इत्यादि को महत्त्व देता था। इसी कारण से कांग्रेस में भी मतभेद खड़ा हो गया जिसके परिणामस्वरूप स्वराज्य पार्टी का जन्म हुआ।

लेकिन इस सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि गान्धी जी न तो अंग्रेज पूँजीपति वर्ग के हिमायती थे, न ही उन्होंने अकारण ही आन्दोलन को स्थगित किया था, वरन् इसके पीछे अनेक कारण थे। सर्वप्रथम, गान्धी जी आत्मशक्ति में विश्वास रखते थे, जो पाशविक शक्ति के द्वारा विकृत हो गई थी। दूसरी ओर मालाबार जिले में 1922 ई0 के अन्त में मोप्ला विद्रोह के कारण हिन्दू - मुस्लिम तनाव बढ़ रहा था। अतः राष्ट्रीय आन्दोलन में साम्प्रदायिकता

204- जवाहर लाल नेहरू, आत्मकथा, 1955, पृ0 81, आर0 पी0 दत्त ने भी इस सम्बन्ध में गान्धी जी को पूँजीपति वर्ग का सहायक माना है। आर0पी0 दत्त - आज का भारत, पृ0 367

के प्रवेश की सम्भावना बढ़ गई थी और जैसा आगे चलकर हुआ भी ।[205] लेकिन जवाहर लाल नेहरू ने इन साम्प्रदायिक दंगो का दोष गान्धी जी के द्वारा आन्दोलन रोके जाने पर मढ़ा ।[206] लेकिन जवाहरलाल नेहरू का यह तर्क उचित प्रतीत नहीं होताहै क्योंकि उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा का समर्थन किया था जबकि गान्धी जी पूर्णरूपेण अहिंसा के समर्थक थे । अतः यदि यह कहा जाय कि गान्धी जी ने आन्दोलन को विकृत होने से बचा लिया तो अत्युक्ति नहीं होगी यद्यपि यह सत्य है कि यह आन्दोलन असफल रहा । इसके उपरान्त गान्धी जी को राजद्रोह के अपराध में गिरफ्तार कर लिया गया ।

कौंसिल प्रवेश -

इसी समय स्वराज्य पार्टी के सदस्यों ने, जिसमें मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चितरंजनदास थे, कौंसिल प्रवेश का प्रस्ताव किया । उनके अनुसार कौंसिल के अन्दर जाकर अंग्रेजी साम्राज्य को तोड़ा जा

205- 6 अप्रैल 1926 को लार्ड इरविन के भारत पधारने पर हुआ साम्प्रदायिक दंगा, 1927 ई0 में हुए लाहौर और नागपुर के दंगे, जिनके परिणामस्वरूप 1927 ई0 में डॉ0 अन्सारी को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया । देखिये - पी0 सीतारमैया कांग्रेस का इतिहास, 1935, पृ0 293, 307, 310

206- देखिये जवाहर लाल नेहरू - आत्मकथा, पृ0 86

सकता है । परन्तु गान्धी और उनके सहयोगी इसके पक्ष में नहीं थे । 1925 ई0 तक कांग्रेस में स्वराज्य पार्टी का बहुमत हो गया । गान्धी जी कुछ समय के लिए पृष्ठभूमि में चले गये । 1927 ई0 तक कांग्रेस पर स्वराज्य पार्टी का ही अधिकार रहा ।

साइमन कमीशन -

8 नवम्बर 1927 ई0 को भारत में साइमन कमीशन की घोषणा की गई । सरकारी शब्दों में कमीशन को यह काम सौंपा गया था कि वह "ब्रिटिश भारत के शासन कार्य की, शिक्षा वृद्धि की, प्रतिनिधिक संस्थाओं के विकास की एवं तत्सम्बन्धी क्रियाओं की जांच करे और इस बात की रिपोर्ट पेश करे कि उत्तरदायी शासन का सिद्धान्त लागू करना ठीक है अथवा नहीं ..... ।"[207] इस कमीशन में कोई भारतीय सदस्य नहीं था । सम्पूर्ण भारत में कमीशन के विरूद्ध रोष प्रकट किया गया । फिर भी लार्ड इरविन ने भारतीयों को समझाने का प्रयास किया तथा धमकी भी दी कि भारतीयों का सहयोग न प्राप्त होने पर भी कमीशन अपना कार्य करेगा ।[208] इससे भारतीयों में और अधिक रोष की वृद्धि हुई ।

207- पी0 सीतारमैया- कांग्रेस का इतिहास, 1935, पृ0 309

208- वही, पृ0 315

" साइमन वापस जाओ" के नारे लगाये गये । सरकार ने भी आन्दोलन के दमन में कोई कसर नहीं छोड़ी । लाहौर में लाला लाजपतराय को पुलिस की लाठियों से चोटें आई ।[209] सम्भवत: इसी से उनकी मृत्यु हो गई । जिसका प्रभाव भारतीय जनता, विशेषकर क्रान्तिकारियों पर बहुत गहरा पड़ा ।[210]

1928 ई0 में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ । इस समय कांग्रेस का झुकाव पुन: गान्धी जी की ओर हो गया । इस समय जो प्रस्ताव किये गये उनके अनुसार कांग्रेस का भावी कार्यक्रम मद्यनिषेध, खादी का प्रचार, स्त्रियों का राष्ट्र निर्माण में प्रोत्साहन, सामाजिक कुरीतियों का निवारण इत्यादि निश्चित किया गया तथा इनको कार्यरूप देने के लिए अनेक उपसमितियाँ बनाई गईं । विदेशी वस्त्र के बहिष्कार, मादक द्रव्यों के निषेध, अस्पृश्यता के निवारण इत्यादि की समितियाँ नियुक्त की गईं । गान्धी जी को विदेशी वस्त्र बहिष्कार समिति का अध्यक्ष बनाया गया ।

बारडोली सत्याग्रह -

1928 ई0 में बारडोली ताल्लुके में किसानों ने करबन्दी आन्दोलन शुरू किया । बारडोली में फिर से बन्दोबस्त होने तथा लगान

209- वही, पृ0 316

210- देखिये - मन्मथनाथ गुप्त - भारत के क्रान्तिकारी, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ0 15

बढ़ने की सम्भावना थी । इससे लगभग 25% लगान बढ़ जाता था । किसान चाहते थे कि एक निष्पक्ष कमेटी के द्वारा आर्थिक दशा व मजदूरी, सड़कों, कीमतों व करों की जाँच के आधार पर निश्चय करे कि लगान बढ़ाना उचित है अथवा अनुचित ? बढ़ाई जाय तो कितनी ? लेकिन 25 प्रतिशत लगान बढ़ा दी गई ।[211] अतः सरदार पटेल के नेतृत्व में कर - बन्दी आन्दोलन प्रारम्भ हो गया । सरकार ने 40 पठान बुलाकर अन्धाधुन्ध कुर्कियाँ करवाना शुरू कर दिया । लोगों ने गान्धीवादी नीति का परिचय दिया । इस प्रकार यद्यपि गान्धी प्रत्यक्षतः आन्दोलन में सम्मिलित नहीं हुए थे । फिर भी लोगों की आस्था उनमे थी । यहाँ तक सुभाषचन्द्र बोस ने तो उनसे देश का नेतृत्व अपने हाथ में लेने की बात कही थी ।[212]

अन्त में सरकार ने शासन और न्याय विभाग के प्रतिनिधियों की एक अदालत बैठाई । अदालत ने मामले की जाँच की और यह निश्चय किया कि मालगुजारी केवल 6 $\frac{1}{4}$ प्रतिशत बढ़ाई जाय । इसका लाभ बारडोली के अतिरिक्त अन्य जगहों के किसानों को भी मिला । जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में " बारडोली भारतीय किसानों की आशा, शक्ति तथा विजय का चिन्ह और प्रतीक बन गया ।[213]

211- वही, पृ0 319

212- शीरीन मेहता - दि पीजेन्टरी एण्ड नेशनलिज्म, 1984, पृ0 190

213- जवाहर लाल नेहरू - आत्मकथा, 1962, पृ0 171

पूर्ण स्वराज्य -

1929 ई0 में जवाहर लाल नेहरू को कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस अधिवेशन में कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य निश्चित किया गया। यद्यपि इस लक्ष्य को 1927 ई0 के मद्रास अधिवेशन में ही उस समय स्वीकार कर लिया गया था जब जवाहरलाल नेहरू मास्को से वापस आये थे। लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष पद से उन्होंने अपने भाषण में कहा " नाम कुछ भी रखिये, असली चीज तो है सत्ता का हाथ में आना। मैं नही समझता कि भारत वर्ष को मिलने वाला किसी भी तरह का औपनिवेशिक स्वराज्य हमें ऐसी सत्ता देगा।"[214] अत: 26 जनवरी 1930 ई0 को पूर्ण स्वराज्य दिवस मनाने का निश्चय हुआ तथा स्वाधीनता का घोषणा पत्र तैयार किया गया जिसमें अंग्रेजी सरकार से पूर्ण रूप से सम्बन्ध विच्छेद करने पर बल दिया गया क्योंकि भारतीय पराधीनता, गरीबी और शोषण का कारण अंग्रेज सरकार है।[215] फलस्वरूप 31 दिसम्बर 1929 ई0 को कांग्रेस ने रावी नदी के तट पर पूर्ण स्वतन्त्रता का झंडा फहरा दिया तथा 26 जनवरी 1930 ई0 को सम्पूर्ण भारत में स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया। इस घटना का सम्पूर्ण भारतीय जनमानस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

214- पी0 सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास, 1935, पृ0 350

215- देखिये वही, पृ0 356

जनता में तीव्र उत्साह की उमंग उठने लगी । जनता के इस जागरण से अंग्रेज सरकार सशंकित हो उठी ।

दाण्डी यात्रा -

इसी समय गान्धी जी नमक कानून के विरोध में अपने 79 साथियों को लेकर 12 मार्च 1930 को दाण्डी कूच पर निकल पड़े ।[216] उन्होंने 6 अप्रैल 1930 ई0 को दाण्डी पहुँचकर नमक कानून भंग किया । इस प्रकार नमक कानून के विरोध में गान्धी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को प्रारम्भ किया । उसके बाद तो चारों ओर नमक बनाने की धूम सी मच गई । जवाहरलाल नेहरू के अनुसार " जैसे कोई बटन दबा दिया गया और अचानक सारे देश में, शहरों और गांवों में जिधर देखो रोज़ नमक बनाने की धूम मच गई । "[217]

गान्धी जी ने इस सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए जो कार्यक्रम निश्चित किया था उसमें नमक कर मिटाने के अतिरिक्त विदेशी वस्त्र का बहिष्कार, खादी का प्रचार, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, साम्प्रदायिक सद्भाव प्रमुख थे ।[218] इस आन्दोलन का लक्ष्य नमक कानून भंग करना ही नहीं था वरन् यह पूर्ण स्वराज्य के उद्घोष को पूर्णता

216- वही, पृ0 369
217- जवाहर लाल नेहरू - मेरी कहानी, पृ0 306
218- देखिये - आचार्य नरेन्द्रदेव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 72

प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण कदम था । गान्धी जी का कहना था कि स्वराज्य नही मिला तो रास्ते में मर जाऊँगा या आश्रम के बाहर रहूँगा । नमक कर न उठा सका तो आश्रम लौटने का भी इरादा नहीं है । वे अंग्रेजी राज्य को अभिशाप समझते थे और उसे समाप्त करने का प्रण कर चुके थे ।[219] इस आन्दोलन में स्त्रियों ने भी पर्दा छोड़कर खूब उत्साह के साथ भाग लिया । नमक भण्डारों पर धावे बोले गये । शराब और विदेशी वस्त्रों की दूकानों पर धरना दिया गया ।

5 मई 1930 ई० को गान्धी जी को गिरफ्तार कर लिया गया । लेकिन उनकी गिरफ्तारी के परिणामस्वरूप चारों ओर हड़तालों की बाढ़ सी आ गई । बम्बई, पेशावर, कलकत्ता इत्यादि जगहों पर जुलूस निकाले गये व हड़तालें की गईं । सरकार का दमन चक्र भी पूर्ण वेग से चल पड़ा । लेकिन जनता का उत्साह बढ़ता ही गया । अतः सरकार ने समझौता करना चाहा ।

12 नवम्बर 1930 ई० को गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया गया । यद्यपि इस सम्मेलन का आयोजन भारतीय समस्याओं को सुलझाने के लिए किया गया था । लेकिन इसमें भारतीयों के हितों के लिए कोई निर्णय नही लिया गया । इसके विपरीत वाइसराय की शक्ति में अपार वृद्धि कर दी गई ।

219- देखिये - पी० सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास, 1935, पृ० 375

गान्धी-इरविन समझौता तथा द्वितीय गोलमेज सम्मेलन -

5 मार्च 1931 ई0 को गान्धी- इरविन समझौता हुआ । इस समझौते के अनुसार अहिंसात्मक राजनीतिक कैदियों को रिहा करने तथा कांग्रेस को गोलमेज सम्मेलन में आमन्त्रित करने इत्यादि का फैसला हुआ । इस प्रकार 7 सितम्बर 1931 ई0 को दूसरा गोलमेज सम्मेलन हुआ । इस सम्मेलन में कांग्रेस की ओर से गान्धी जी एक मात्र प्रतिनिधि बनकर गये । इस सम्मेलन की शर्तों के अनुसार घोर दमन रोका जाना था, जो पूरी नहीं हो सकी ।[220] अतः गान्धी जी असन्तुष्ट होकर भारत आ गये ।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन -

17 नवम्बर 1932 ई0 को तृतीय गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया । लेकिन इसमें कांग्रेस ने भाग नहीं लिया । इसमें भारतीय स्वाधीनता के सम्बन्ध में चर्चा तक नहीं हुई । इससे समस्त भारतीय जनता में असन्तोष की लहर फैल गई ।

इसी वर्ष अगस्त 1932 ई0 में अंग्रेजों ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की, जिससे हिन्दू और हिन्दू के बीच भेद स्थापित किया जाय । यद्यपि अंग्रेजों की इस चाल को दलित एवं अछूत

220- देखिये वही, पृ0 483

जातियों के नेता डॉ० भीमराव अम्बेदकर ने पहचान लिया । [221]
गान्धी जी ने इस सम्बन्ध मे भारत मन्त्री सैम्युएल होर को पत्र भी लिखा था कि यदि दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन रखा गया तो वे अनशन कर देंगे । अन्ततः सर्वदल नेताओं ने मिलकर समझौता किया जिसके अनुसार दलित जातियों ने अपने पृथक निर्वाचन के अधिकार को त्याग दिया । इस समझौते को पूना-पैक्ट के नाम से जाना जाता है ।

(२) क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय भावना -

साधारणतया क्रान्ति का अर्थ वर्तमान अवस्था में अचानक तथा मौलिक परिवर्तन होता है । दूसरे शब्दों में क्रान्ति तब होती है, जब वर्तमान अवस्था से असन्तोष होता है । अतः इस असन्तोष का निवारण करने हेतु समाज का कोई वर्ग या सम्पूर्ण समाज क्रान्ति कर देता है । इस क्रान्ति के लिए हिंसक तथा अहिंसक दोनों ही साधनों को प्रयोग में लाया जा सकता है ।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी क्रान्तिवाद का उदय इसी प्रकार के असन्तोष के कारण हुआ । कांग्रेस की स्थापना के समय उदारवादी राष्ट्रीय नेताओं ने अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास किया था । लेकिन 19वीं शताब्दी के अन्त में लगभग 1896 ई0 के आस-पास दक्षिण में भयंकर अकाल पड़ा । लोग भूखों मरने लगे हिंसात्मक

221- देखिये - आर0पी0 दत्त - आज का भारत, पृ0 306

घटनाएँ होने लगीं तिलक ने लगान बन्दी आन्दोलन शुरू किया ।[222]

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में सम्भवत: यह पहला क्रान्तिकारी आन्दोलन था जिसे तिलक ने प्रारम्भ किया ।[223]

तिलक ने स्वराज्य को जन्म-सिद्ध अधिकार के रूप में स्वीकार किया ।[224]

उनकी इसी धारणा के आधार पर 1905 ई० में कांग्रेस नरम और गरम दो दलों में विभाजित हो गई ।

भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन मुख्य रूप में प्रथम विश्व युद्ध के बाद एक महत्वपूर्ण आन्दोलन के रूप में समझा आता है ।[225]

222- वैलेन्टाइन शिरोल - इण्डियन अनरेस्ट, लन्दन, 1910, पृ० 48

223- यद्यपि भारतीय क्रान्तिवाद एवं आतंकवाद का उदय तो 1857ई० के विद्रोह से ही प्रारम्भ हो चुका था जब मंगल पांडे ने अंग्रेज अफसरों पर गोलियाँ चलाईं । 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वासुदेव बलवंत फड़के ने अंग्रेजी शासन को आंतकित करना प्रारम्भ किया । वैसे तो 1857 ई० में गदर के बाद अंग्रेजी अफसरो रैण्ड और आयर्स्ट की गोलीमारकर हत्या करने वाला पहला व्यक्ति दामोदर चापेकर था ।
देखिये -मन्मथनाथ गुप्त - भारत के क्रान्तिकारी- हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली पृ० 22, 23, 29, 39, तथा वी० पी० वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ० 228

224- वी०पी० वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ० 229

225- प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व भी क्रान्तिकारी एवं आंतकवादी गतिविधियाँ होती रहीं - देखिये - भारत के क्रान्तिकारी पृ० 55

इसका कारण एक ओर अंग्रेजो का अत्याचार तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में गान्धीवादी तकनीक की असफलता का होना था । अतः गान्धी-वादी नीति का त्याग कर उसके किसी विकल्प को ढूंढ़ने का प्रयास किया गया ।[226] दूसरी ओर विश्व के अन्य देशों के इतिहास तथा क्रान्तियों का प्रभाव भारतीयों पर होना था । विशेष रूप में 1917 ई0 की रूसी क्रान्ति ने भारतीय क्रान्तिकारियों को अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया । इस समय भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन दो भागों में विभाजित हो गया । एक हिन्दू राष्ट्रपरस्त, जिसके नेता बाबा सावरकर तथा दूसरे समाजवादी-आतंकवादी, जिसके नेता भगतसिंह, "आजाद", यशपाल आदि नौजवान भारत सभा के सदस्य थे ।[227] ये दोनों ही क्रान्तिकारी साधनों के माध्यम से देश को आजाद करने के समर्थक थे । बिपिन चन्द्र ने क्रान्तिकारियों के

226- देखिये - प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार आन सोशलिज्म इन इण्डिया {1919ई0 से 1939ई0} भाग 1, 1970, पृ0 126 तथा एस0 गोपाल-सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहर लाल नेहरू पृ0 251, बी0 आर0 सुन्थरलिंगम - दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस एण्ड दि राज {1929 -42} 1976 पृ0 50

227- यशपाल - सिंहावलोकन, 1966, लखनऊ, भाग दो, पृ0 114

लक्ष्य के सम्बन्ध में कहा कि " क्रान्तिकारी आतंकवादियों का प्रथम मुख्य कार्य विदेशी शासन से भारत को स्वतन्त्र कराना तथा क्रान्ति के माध्यम से भारतीय समाज को बदल देना था ।"[228]

भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन गान्धीवादी नीति के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी । गान्धी जी ने स्वराज्य की कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की थी ।[229] सुभाष चन्द्र बोस जैसे नेता परेशान थे । उन्होंने स्वीकार किया कि " गान्धी जी क्या आशा रखते थे यह मैं न समझ सका । या तो वे रहस्य को समय से पूर्व प्रकट नहीं करना चाहते थे या तो वे स्वयं ही नहीं जानते थे कि सरकार को किस तरह से परास्त कर लेंगे ।[230] परिणामस्वरूप देश में एक ऐसा वर्ग उदित हो गया था जो क्रान्तिकारी साधनों द्वारा देश को पराधीनता के पाश से मुक्त कराने के लिए कृत संकल्प हो उठा ।[231]

228- बिपिन चन्द्र - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन माडर्न इण्डिया, पृ0 229

229- यशपाल - सिंहावलोकन, प्रथम भाग, छठा संस्करण, 1978, पृ0 68 पर सीतारमैया का कथन ।

230- वही, पृ0 68-69 पर उद्धृत ।

231- टेररिज़्म इन इण्डिया {1917-1936}, कम्पाइल्ड इन दि इन्टेलिजेंस ब्यूरो, होम डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, 1974, पृ0 1

चौरी चौरा काण्ड के बाद गान्धी जी ने असहयोग आन्दोलन को समाप्त करने का निर्णय लिया उसके परिणामस्वरूप हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशियेशन की स्थापना हुई । यशपाल के मत में, "गान्धीवादी कांग्रेसी आन्दोलन में भरोसा न हो सकना ही क्रान्तिकारियों को सशस्त्र क्रान्ति के प्रयत्नों की ओर ले जा रहा था ।"[232] सुमित सरकार के अनुसार " सचिन सान्याल, और जोगेश चन्द्र चटर्जी ..... ने हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशियेशन का संगठन किया और डकैतियों के माध्यम से धन एकत्रित करना शुरू किया ।[233] बाद में इस संगठन का सम्बन्ध भगतसिंह के नेतृत्व वाले पंजाब के संगठन से हुआ तथा परिणाम सितम्बर 1928 में प्रसिद्ध हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी की स्थापना हुई । इस प्रकार एक दृष्टि से क्रान्तिकारी आतंकवाद को राष्ट्रीय आघात का प्रगटीकरण माना है ।[234] क्रान्तिवाद को बढ़ाने में प्राचीन भारतीय गौरवमय अतीत ने भी महत्वपूर्ण योगदान किया ।[235]

232- यशपाल - सिंहावलोकन, प्रथम भाग, छठा संस्करण, 1978 पृ0 14

233- सुमित सरकार - माडर्न इण्डिया, 1885, 1947, 1985, पृ0 251

234- सुखबीर चौधरी-ग्रोथ ऑफ नेशनालिज्म इन इण्डिया, 1857-1918, 1973, पृ0 117-118

235- ए0 आर0 देसाई- भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, 1976, प्रथम हिन्दी संस्करण, पृ0 276 तथा ताराचन्द-भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड तीन, प्रथम संस्करण, 1982, प्रकाशन विभाग, 368

क्रान्तिकारियों को अपना आन्दोलन चलाने के लिए धन की आवश्यकता थी । क्योंकि इनका लक्ष्य बम, पिस्तौल आदि के माध्यम से अंग्रेज सरकार को डराना तथा उससे भारत को स्वतन्त्र कराना था । अत: धन की समस्या को हल करने केलिए उन्होंने राजनैतिक डकैतियाँ डालीं जिनमें काकोरी की ट्रेन डकैती विशेष महत्वपूर्ण है ।[236]

क्रान्तिकारी आतंकवादी अपने उद्देश्य की प्राप्ति में बाधक सरकारी अधिकारियों को समाप्त कर देते थे । वे मातृभूमि के प्रति विश्वासघात करने वाले को भी नहीं छोड़ते थे । एक बार खुदीराम बोस को गिरफ्तार करवाने में दरोगा नन्दलाल मुकर्जी का हाथ था । कुछ दिन बाद नन्दलाल क्रान्तिकारियों द्वारा दिन दहाड़े कलकत्ता में मारे गये ।[237] लाला जी की मृत्यु के बदले हेतु सौन्डर्स को गोली से उड़ा दिया गया ।[238] 8 अप्रैल 1929 ई0 को भगतसिंह

236- मन्मथनाथ गुप्त - भारत के क्रान्तिकारी, हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ0 134 तथा यशपाल- सिंहावलोकन प्रथम भाग, छठा संस्करण, पृ0 101

237- मन्मथनाथ गुप्त - भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ0 156

238- वही, पृ0 264

और बटुकेश्वर दत्त ने असेम्बली में बम फेंका ।[239] 23 दिसम्बर 1929 ई0 को लार्ड इरविन की गाडी के नीचे बम रखा गया । 1930 ई0 में अनेक स्थानो पर बम विस्फोट हुए, रेल गाड़ियों को पटरी से उतारने का प्रयास किया गया । सरकारी अफसरो को मारने का प्रयास किया गया । 1930 के दिसम्बर में पंजाब के गवर्नर और उनके दल पर, जब वे पंजाब विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में उपस्थित थे, गोली चलाई गई । लाहौर में बम बनाने का कारखाना पकड़ा गया ।

1930 ई0 में ही लगभग 150 बंगाली नवयुवकों ने खाकी कपड़ो में, नेताओं ने अफसरी वर्दी में पुलिस शस्त्रागार पर आक्रमण कर दिया तथा काफी अस्त्र-शस्त्र लूट लिया । इसके सात महीने बाद दिसम्बर 1930 ई0 में क्रान्तिकारी दल के तीन सदस्यों ने जेल के वरिष्ठ अधिकारी लेफ्टिनेन्ट कर्नल सिम्पसन की हत्या गोली मारकर कर दी । 1931 ई0 के आरम्भ मे ही मिदनापुर के जिलाधीश तथा अलीपुर के जिला जज को गोली से मार दिया गया । पंजाब, बंगाल तथा उत्तर प्रदेश में अनेक स्थानों पर बम विस्फोट तथा हत्याएँ हुई ।

239- मन्मथनाथ गुप्त - भारत के क्रान्तिकारी , हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृ0 190-191

फरार क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद को जब इलाहाबाद के एल्फ्रेड पार्क में पुलिस गिरफ्तार करने आ रही थी तो उसने पुलिस का मुकाबला किया। अन्त में वह मारा गया।[240]

यद्यपि क्रान्तिकारियों ने आतंकवाद के माध्यम से अंग्रेजी साम्राज्य को समाप्त करने का प्रयास किया लेकिन कहाँ तक उनको इस कार्य में सफलता प्राप्त हुई, इस सम्बन्ध में सन्देह है। वास्तविकता तो यह है कि कुछ गिने-चुने लोगों के द्वारा इतने विशाल साम्राज्य को समाप्त नहीं किया जा सकता था। उनका कोई राष्ट्रीय संगठन भी नहीं था। जैसा रामगोपाल ने लिखा है " भारतीय क्रान्तिकारी एक अखिल भारतीय संगठन नहीं प्रस्तुत कर सके। उनकी छिटपुट कार्यवाहियों के द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य के भौतिक अस्तित्व को कोई नुक्सान नहीं हुआ।[241] फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि राष्ट्रीय भावना के विकास में इस आन्दोलन का कोई योगदान नहीं है। यह सच है कि इसे लोकप्रियता नहीं प्राप्त हो सकी, परन्तु इसने अंग्रेजी शासकों में एक आतंक को उत्पन्न किया। अंग्रेजी शासन के शोषक रूप को जनता के समक्ष स्पष्ट करने की कोशिश की। यह कहा जा सकता है कि इससे जो पृष्ठभूमि तैयार हुई उससे बाद में आजाद हिंद फौज के लिए सहायता मिली।

240- देखिये - रामगोपाल -हाऊ इण्डिया स्ट्रगल्ड फॉर फ्रीडम, ए पालिटिकल हिस्ट्री, 1967, पृ0 353-354, 388-390

241- वही, पृ0 231

(ल) समाजवादी आन्दोलन -

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में समाजवादी विचारों की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही है । इस विचार का विकास मुख्यत: 1917 ई0 की रूसी बोल्शेविक क्रान्ति के पश्चात हुआ ।[242] इस क्रान्ति के द्वारा रूस से जारशाही का अन्त कर दिया गया । जिससे एक नवयुग का सूत्रपात हुआ । प्रथम बार स्पष्ट रूप से किसानों और मजदूरों में नवीन चेतना व जागरण के दर्शन होते हैं क्योंकि यह एक समाजवादी क्रान्ति थी, जिसका ध्येय वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना था ।[243] आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार " समाजवाद प्रचलित समाज का संगठन करना चाहता है कि वर्तमान परस्पर विरोधी स्वार्थों वाले शोषक और शोषित , पीड़क और पीड़ित वर्गों का अन्त हो जाये, वह सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का ऐसा समूह बन जाय जिसमें एक सदस्य की उन्नति का अर्थ स्वभावत: दूसरे की उन्नति हो और सब मिलकर सामूहिक रूप से परस्पर उन्नति करते हुए जीवन व्यतीत कर सकें ।"[244]

242- देखिये, जवाहरलाल नेहरू- हिन्दुस्तान की कहानी,, 1960, पृ0 36

243- पी0 सीतारमैया- सोशलिज्म एण्ड गान्धीज्म, पृ0 1

244- आचार्य नरेन्द्रदेव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 409

वास्तव में इस क्रान्ति के पश्चात ही प्रमुख कांग्रेसी नेताओं का ध्यान किसानों तथा मजदूरों की संगठन शक्ति की ओर गया था वे उन्हें शिक्षित करने तथा उनका सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करने लगे।[245] इस क्रान्ति ने ही मजदूर वर्ग के हृदय में विश्वास तथा प्रेरणा को भर दिया जो अब राष्ट्रीय आन्दोलन के रणक्षेत्र में प्रविष्ट हो गया।[246] कांग्रेस के इतिहास में यह पहला अवसर था कि यह किसानों और मजदूरों की ओर मुड़ी तथा यह निर्णय किया कि उनकी सहायता और सहयोग के अभाव में भारत की राजनीतिक मांग पूरी नहीं हो सकती।[247] आर० पी० दत्त के अनुसार भी " प्रथम विश्व युद्ध के बाद जो परि-स्थितियाँ पैदा हो गईं थीं और रूसी क्रान्ति तथा इसके फलस्वरूप समूचे विश्व में जो क्रान्तिकारी लहर आई थी उसने भारत के मजदूर वर्ग को भी पूरी तरह सक्रिय बना दिया और भारत में आधुनिक मजदूर आन्दोलन का सूत्रपात किया।"[248] 1918 ई० तथा 1920 ई० के बीच अनेक शहरों में औद्योगिक केन्द्रों में हड़तालें हुईं।[249] जिनमें 1919ई०

245- ए०आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० 300

246- एन०एम० पी० श्रीवास्तव - ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, 1973, पृ० 108

247- वही, पृ० 132

248- आर०पी० दत्त - आज का भारत, पृ० 413

249- देखिये ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० 177

का अहमदाबाद मजदूर आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था । एन0 एम0 जोशी, लाल लाजपतराय तथा जोजेफ बैपटिस्टा के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1920 ई0 में एक अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना हुई ।[250] कांग्रेस ने इस ट्रेड यूनियन का स्वागत किया तथा इसको अपना पूर्ण सहयोग देने की इच्छा प्रकट की । धीरे-धीरे समाजवादियों के संगठन मजबूत बनते गये । 1924 ई0 में एम0 एन0 राय के दिशा निर्देशन में एक "अखिल भारतीय साम्यवादी दल " का संगठन किया गया ।[251] यद्यपि यह सत्य है कि उपर्युक्त संगठनों के बावजूद भारत में कोई संगठित समाजवादी दल नहीं था फिर भी यह कहा जा सकता है कि युद्ध के बाद के वर्षों में समाजवाद का जन्म भारत में हो चुका था । अत: ब्रिटिश पूँजीवाद साम्यवाद के प्रभाव एवं प्रसार को रोकने हेतु प्रयत्नशील हो उठा। पेशावर षड्यन्त्र (1922-23 ई0) कानपुर षड्यन्त्र (1924ई0) तथा बाद में मेरठ षड्यन्त्र भारत में साम्यवादी आन्दोलन के दमन के प्रमाण माने जा सकते है ।[252]

250- देखिये - प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार आन सोशलिज्म इन इण्डिया(1919-1939) भाग 1, 1970, पृ0 75, बी0 आर0 नन्दा (सम्पा0) सोशलिज्म इन इण्डिया, दिल्ली, 1972, पृ0 3

251- देखिये रामगोपाल - हाउ इण्डिया स्ट्रगल्ड फॉर फ्रीडम, ए पालिटिकल हिस्ट्री, 1967, पृ0 354-55

252- देखिये - प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार ऑन सोशलिज्म इन इण्डिया (1919ई0 से 1939ई0) भाग 1, 1970, पृ0 76

भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रभाव 1926-27 ई0 तक स्पष्ट हो चुका था । इस समय समाजवादी गतिविधियों में तेजी आ गई थी । काग्रेस के बामपन्थी कार्यकर्ता तथा ट्रेड यूनियन आन्दोलन के जुझारू तत्वो ने मिलकर काम करना शुरू कर दिया था । 1926 ई0 में प्रथम बार बंगाल में किसान मजदूर पार्टी का संगठन किया गया ।[253] गान्धीवादी तकनीक तथा लाला लाजपतराय की मृत्यु के विरोध[254] में लाहौर में एक क्रान्तिकारी संगठन " नौजवान भारत सभा" की स्थापना ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध में क्रान्ति तथा समाजवाद के प्रचार के लिए की गई ।[255] 1928 ई0 में "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशियेशन" का नाम बदलकर "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी" रखा गया ।

जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस भी समाजवादी विचार-धारा से प्रभावित हुए । जवाहर लाल नेहरू ने 1929 ई0 के कांग्रेस

253- आर0 पी0 दत्त - आज का भारत, पृ0 419

254- देखिये - प्रोसीडिंग्स ऑफ सेमिनार आन सोशलिज्म इन इण्डिया (1919-1939) नवम्बर 28-29, 1968 को आयोजित नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी, तीन मूर्ति हाउस, नई दिल्ली 1970, पृ0 35

255- देखिये रामगोपाल - हाऊ इण्डिया स्ट्रगल्ड फॉर फ्रीडम : ए पालिटिकल हिस्ट्री, 1967, पृ0 352

के लाहौर अधिवेशन में स्वयं अपने आपको समाजवादी कहा था ।[256] इसका कारण यह था कि वे 1926 ई0 में यूरोप गये थे तथा इस विश्वास के साथ वापस लौटे कि समाजवाद ही वह दर्शन है जिससे वर्तमान भारतीय समस्याओं का निवारण किया जा सकता है ।[257]

1928ई0 का वर्ष मजदूर आन्दोलनों का वर्ष था। । इसी वर्ष सभी किसान-मजदूर पार्टियों ने मिलकर"अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी"को जन्म दिया । इसीलिए आर0 पी0 दत्त ने कहा है "1928 ई0 में मजदूर आन्दोलन जिस तेजी से आगे बढ़ा और उसने जिस सक्रियता का परिचय दिया, वह लड़ाई के बाद के वर्षों में पहले

256- देखिये - प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार आन सोशलिज्म इन इण्डिया (1929-1939) भाग 1, 1970, पृ0 72, तथा जवाहर लाल नेहरू -इण्डियाज फ्रीडम, लन्दन , 1962, पृ0 14, तथा लक्ष्मी गुरहा-दि ग्रोथ आफ सोशलिज्म इन इण्डिया (शोध प्रबन्ध) पृ0 98

257- देखिये -लक्ष्मी गुरहा- दि ग्रोथ ऑफ सोशलिज्म इन इण्डिया (1920-51 ई0) शोध प्रबन्ध पृ0 100 । सुभाष चन्द्र बोस ने भी अखिल भारतीय नौजवान भारत सभा के करांची सम्मेलन में 1931 ई0 में भारत में एक समाजवादी गणराज्य की आवश्यकता पर बल दिया था । देखिये एम0 अरूमुघम -सोशलिस्ट थॉट इन इण्डिया, दि कॉन्ट्रिब्यूशन ऑफ राम मनोहर लोहिया, 1978, पृ0 38, तथा सेलेक्टेड स्पीचेज ऑफ सुभाषचन्द्र बोस, 1962, पृ0 62-64

कभी देखने में नहीं आई थी ।"[258] किसान - मजदूरों में आई जागृति को देखकर सरकार ने 1928 ई0 के सितम्बर महीने में सार्वजनिक सुरक्षा बिल असेम्बली में पेश किया, जिससे राष्ट्रवादी एवं समाजवादी प्रवृत्तियों का दमन किया जा सके ।[259] यद्यपि यह बिल अध्यक्ष के निर्णायक मत से अस्वीकृत कर दिया गया फिर भी 1929 ई0 में इसे वाइसराय के एक अध्यादेश द्वारा लागू कर दिया गया ।

इस समय तक गान्धी जी तथा स्वराज्य पार्टी का प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के क्षेत्र में पर्याप्त कम हो चुका था । अब भारतीय नवयुवकों का एक वर्ग एक नये विचार और कार्यक्रम की ओर प्रेरित हो रहा था । मजदूरों और किसानों पर सोवियत रूस के समाजवादी विचारों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था ।[260] क्योंकि पूंजीवाद, चाहे वह देशी हो अथवा साम्राज्यवादी, शोषण का प्रतीक माना जा रहा था । अतः देशी तथा साम्राज्यवादी दोनो

258- आर0पी0 दत्त-आज का भारत पृ0 420, तथा ए0 आर0 देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 303 तथा आचार्य नरेन्द्रदेव-राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 67

259- देखिये - पी0 सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास, 1935, पृ0 323

260- देखिये - प्रोसीडिंग्स आफ दि सेमिनार ऑन सोशलिज्म इन इण्डिया (1919-1939) भाग 1, 1970, पृ0 205

ही शोषकों से स्वतन्त्र होने की आवश्यकता थी । जैसा कि भगत सिंह ने जेल से कहा था ।[261] जवाहर लाल नेहरू के अनुसार भी " यदि स्वदेशी सरकार विदेशी सरकार का स्थान लेती है तथा सभी निहित स्वार्थों को सुरक्षित रखती है तो यह स्वतन्त्रता की छाया भी नहीं होगी ।"[262]

अतः अब भारतीय राजनीति में मजदूर तथा किसान वर्ग एक सक्रिय तत्व के रूप में उभरकर सामने आते हैं । 1929 ई० मे हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी के घोषणा पत्र में कहा गया, "अतः सर्वहारावर्ग की आशा अब समाजवाद पर केन्द्रित है जो कि अकेले पूर्ण स्वाधीनता की स्थापना तक ले जा सकता है तथा सामाजिक विशिष्टताओं औरअसुविधाओं को समाप्त कर सकता है।"[263]

यह विश्व आर्थिक संकट का समय था । इस समय अनाज के दामो में भारी गिरावट आई जिससे किसान की दशा दयनीय होती जा रही थी । दूसरी ओर पुलिस तथा जमींदारों के अत्याचार बढ़ रहे थे । जवाहर लाल नेहरू ने लगान में छुट की मांग की तो जो

261- देखिये- गोपाल ठाकुर- भगतसिंह : दि मैनएण्ड हिज आइडियाज नई दिल्ली, 1952, पृ0 39 पर उद्धृत तथा बिपन चन्द्र- नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन माडर्न इण्डिया, पृ0 235 । आर0पी0 दत्त ने भी इसका समर्थन किया है। देखिये आज का भारत, पृ0 365

262- जवाहर लाल नेहरू- रीसेन्ट एसेज एण्ड राइटिंग्स , पृ0 19

263- प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार ऑन सोशलिज्म इन इण्डिया (1919-1939) भाग 1 1970 पृ0 140

छूट दी गई वह इतनी कम थी कि उससे किसानों की समस्याओं का निवारण नहीं हो सकता था । गान्धी जी ने भी वाइसराय से इस सम्बन्ध में बात की । लेकिन सरकार ने यह घोषणा कर दी कि यदि पूरा लगान एक महीने के अन्दर नहीं किया जाता, तो जो छूट दी गई है वह समाप्त कर दी जायेगी ।[264] अत. कांग्रेस ने किसानों को लगान न देने की सलाह दी । सरकार ने भी दमन का सहारा लिया।[265]

लेकिन 1932 ई0 तक सविनय अवज्ञा आन्दोलन काफी कमजोर पड़ने लगा था । इस समय क्रान्तिकारी घटनाएँ काफी हो रही थीं । क्रान्तिकारियों पर कांग्रेस के आदेशों का कोई प्रभाव नहीं था ।[266] अत: सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बन्दियों ने 1932-33 ई0 में नासिक जेल में भारतीय समाज की समस्याओं पर विचार किया तथा एक राष्ट्रीय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के निर्माण की बात सोची।[267] जय प्रकाश नारायण, जो स्वयं नासिक जेल में बन्दी थे, ने कहा, "गान्धीवाद ने अपनी भूमिका निभा ली, यह हमे और आगे नहीं ले जा सकती इसलिए हमें समाजवादी विचारधारा के द्वारा आगे बढ़ना

264- देखिये - रामगोपाल - हाऊ इण्डिया स्ट्रगल्ड फॉर फ्रीडम: ए पालीटिकल हिस्ट्री, 1967, पृ0 386-87

265- देखिये , वही पृ0 87

266- देखिये, वही, पृ0 409

267- देखिये , प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार ऑन सोशलिज्म इन इण्डिया (1919-1939), भाग 1, 1970, पृ0 81

तथा निर्देशित होना चाहिए ।[268] अतः कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना पटना में मई 1934 ई0 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित हो जाने के बाद हुई । इसके निर्माताओं में मुख्य रूप से जय प्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, एन0 जी0 गोरे, एन0 एम0 जोशी इत्यादि थे ।[269] इस पार्टी के बनने के कारण के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि गान्धी-इरविन समझौता, द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की असफलता तथा असहयोग आन्दोलन का वापस लिया जाना, इन सबने एक निराशाजनक वातावरण तैयार कर दिया था । कांग्रेस के वामपंथी दल के लोगों के हृदय टूट गये तथा उन्होंने गान्धीवादी नेतृत्व को अनुचित तथा अयोग्य समझा ।[270]

मई 1934 ई0 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का प्रथम अखिल भारतीय समाजवादी सम्मेलन आहूत किया गया जिसके अध्यक्ष

268- हरिकिशोर सिंह - ए हिस्ट्री ऑफ दि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, 1934-59, लखनऊ, पृ0 42

269- देखिये लक्ष्मी गुरहा- दि ग्रोथ ऑफ सोशलिज्म इन इण्डिया (1920-1951) शोध प्रबन्ध, पृ0 95 , तथा बी0 आर0 टामलिन्सन - दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस एण्ड दि राज (1929-1942) 1976, पृ0 50

270- देखिये प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार आन सोशलिज्म इन इण्डिया(1919- 1939) भाग 1, 1970, पृ0 377

आचार्य नरेन्द्रदेव थे । अक्टूबर 1934 में इसके एक अन्य सम्मेलन में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के उद्देश्य को स्थापित किया गया । इसके अनुसार " भारत की पूर्ण स्वाधीनता हमारा लक्ष्य है तथा पूर्ण स्वाधीनता से हमारा तात्पर्य ब्रिटिश साम्राज्य से भारत की स्वाधीनता तथा एक समाजवादी समाज की स्थापना से है । "[271] जनवरी 1936ई० में हुए कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के द्वितीय सम्मेलन मे इस बात की घोषणा की गई कि " मार्क्सवाद ही केवल साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों को उनके अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचा सकता है । अत: पार्टी के सदस्यों को पूर्ण रूप से क्रान्ति की तकनीक को, वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त और व्यवहार को, राज्य की प्रकृति तथा समाजवादी समाज के लिए उत्तरदायी प्रक्रियाओं को समझना चाहिए । "[272] इस प्रकार 1936 तक जवाहर लाल जब कांग्रेस के अध्यक्ष बने, यह दल राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण बन गया ।[273] जवाहर लाल नेहरू जो गान्धी जी के व्यक्तित्व

271- देखिये, वही, पृ० 81

272- पी० एल० लखनपाल - हिस्ट्री ऑफ दि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, लाहौर, 1946, पृ० 144

273- बी०आर० टामलिन्सन - दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस एण्ड दि राज 1929-1942 दि मैकमिलन प्रेस लिमिटेड, लन्दन, प्रथम प्रकाशन, 1976, पृ० 50 वैसे तो 1929 ई० की लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में जवाहर लाल नेहरू ने प्रथम बार समाजवाद की ओर संकेत किया था । देखिये वही, पृ० 55

से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे, वामपन्थी विचारों को ग्रहण कर रहे थे। इसका कारण है कि भारतीय समाजवाद स्वयं भारत की परिस्थितियों का परिणाम भी था। सुमित सरकार के मत में जब क्रान्तिकारी, असहयोगी, खिलाफतवादी तथा मजदूर और किसान निराश हो गये तब उन्होंने राजनीतिक और सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नवीन मार्ग ﴾समाजवाद﴿ को चुन लिया।[274] नेहरू जी ने दिसम्बर 1933 ई० में आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में अपने भाषण में मजदूरों को आश्वासन दिलाया था कि यदि वे राष्ट्रीय संघर्ष में पूर्ण रूप से भाग ले तो वे न केवल भारत में राजनीतिक स्वतन्त्रता को लायेंगे वरन् सामाजिक स्वतन्त्रता को भी।[275] 20 जनवरी 1936 ई० को कांग्रेस समाजवादी दल के द्वितीय सम्मेलन में मार्क्सवादी और समाजवादी साधनों को साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए महत्वपूर्ण माना गया।[276]

274- सुमित सरकार-माडर्न इण्डिया ﴾1885-1947﴿ मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, मद्रास, 1985, पृ० 247

275- जे० एल० नेहरू - रीसेन्ट एसेज एण्ड राइटिंग्स, पृ० 131-132

276- प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार ऑन सोशलिज्म इन इण्डिया ﴾1919-1939﴿ ﴾नवम्बर 28-30, 1968 को आयोजित﴿, प्रथम भाग, 1970, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी, तीन मूर्ति हाउस, नई दिल्ली, 1970, पृ० 82 तथा पी०एल० लखनपाल - हिस्ट्री आफ दि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, लाहौर, 1946, पृ० 144

अतः अब स्पष्ट रूप से समाजवादी आन्दोलन भारत में अपने पैर जमा चुका था । इस आन्दोलन के द्वारा साधारण भारतीय जनता को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया । इसके द्वारा गान्धीवादी समझौता-परस्त नीति को स्वीकार नहीं किया गया बल्कि अपने अधिकार को बलपूर्वक लेने के सिद्धान्त का पालन किया गया ।

1935 ई0 का अधिनियम -

1935 ई0 का अधिनियम भारतीय संविधानिक विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण है । 1919 ई0 के बाद पारित होने वाला यह प्रथम महत्वपूर्ण अधिनियम था । इस अधिनियम का प्रारूप बनाने में बड़ी राजनीति से काम लिया गया था, क्योंकि शासक चाहते थे कि ब्रिटिश और भारतीय दल जिनके ध्येय अलग-अलग थे, सन्तुष्ट हो जायें ।[277]

277- इस समय तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन काफी तीव्र हो चुका था । समाजवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ रहा था, आतंकवादी आन्दोलन भी तीव्र हो गया था । भारत में स्वराज्य की मांग की जा रही थी । इसलिए ब्रिटिश शासक चाहते थे कि शक्ति का सारतत्व अंग्रेजों के हाथ में बना रहे और केवल दिखावे के लिए भारत को कुछ दे दिया जाय ।

अतः संघीय शासन तथा प्रान्तीय स्वायत्ता की योजना को प्रमुख रूप में अधिनियम में स्थान दिया गया ।[278] प्रान्तीय स्वायत्ता की योजना को लागू करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने फरवरी 1937 ई० में चुनाव कराये ।[279] चुनाव के परिणाम काफी महत्वपूर्ण निकले । मद्रास, बम्बई, बिहार, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और उड़ीसा में कांग्रेस ने पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लिया ।[280] इसके उपरान्त कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने इस शर्त पर पद ग्रहण किया[281] कि गवर्नर प्रान्तीय शासन में अनावश्यक दखल नहीं करेंगे ।[282]

278- यद्यपि इस अधिनियम की आलोचना भारतीय तथा अंग्रेज दोनो ही पक्षों ने की । देखिये ताराचन्द - भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास भाग 4, प्रकाशन विभाग, 1984, पृ० 202- 206

279- देखिये पी० सीतारमैया-कांग्रेस का इतिहास, 535

280- देखिये वही, पृ० 211, तथा सत्या एम० राय (सम्पा०) भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1985, पृ० 229

281- 7 जुलाई, 1937 ई० को कांग्रेस के मन्त्रियों ने पद ग्रहण किया। देखिये - ताराचन्द -भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड 4, पृ० 219

282- सी०एच० फिलिप्स - दि इवोल्यूशन ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान पृ० 334-335 ।

परन्तु सितम्बर 1939 ई0 में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया । कांग्रेस ने भारत के द्वारा युद्ध में भाग लेने का विरोध किया ।[283] परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा यह घोषित कर दिया गया कि भारत युद्ध में संलग्न है ।[284] कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक 8 से 15 सितम्बर 1939ई0 को वर्धा में हुई । उसमें यह घोषित किया गया कि जब तक भारतीयों को समानता और स्वतन्त्रता नही दी जायेगी, तब तक वे युद्ध में सहयोग करने से इन्कार करेंगे ।[285] परन्तु सरकार ने इस सम्बन्ध में कुछ कहने से इंकार कर दिया । अतः 22 अक्टूबर को कांग्रेस की कार्यसमिति की वर्धा में बैठक हुई जिसमें प्रस्ताव पारित किया कि कांग्रेसी मंन्त्रिमण्डल त्याग पत्र दे दें । इसके एक सप्ताह पश्चात त्याग-पत्र दिये जाने शुरू हो गये और नवम्बर के मध्य में कांग्रेस के सारे मन्त्रिमण्डलों ने पद त्याग दिये ।[286] इसके उपरान्त 11 अक्टूबर 1940 को कांग्रेस कार्यसमिति ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा जारी करने का निश्चय कर लिया । 21 अक्टूबर को विनोवा भावे ने सर्वप्रथम सत्याग्रह किया और उनको पकड़ लिया गया..

283- देखिये - सेलेक्टेड स्पीचेज आफ सुभाष चन्द्र बोस (पब्लिकेशन डिवीजन 1962, पृ0 75, तथा डी0जी0 तेंदुलकर -"महात्मा" खण्ड 5 (1969 संस्करण) पृ0 314

284- ताराचन्द - भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड 4, पृ0 267

285- वही, पृ0 279

286- वही, पृ0 280

उन्होंने भारत को उसकी इच्छा के विरूद्ध युद्ध में घसीटने का विरोध किया था ।[287]

उधर जिन्ना कांग्रेस की चुनावों में सफलता से भयभीत हो चुका था । वह पाश्चात्य लोकतन्त्र की भारत में स्थापना का अर्थ हिन्दुओं का अन्य जातियों पर अधिपत्य से लगा रहा था । अत: उसने दावा किया कि लीग भारतीय मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था है । उसने यहाँ तक कह दिया कि कांग्रेस शुद्ध हिन्दू संगठन है । मार्च 1940 ई0 में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में जिन्ना ने अपने " दो राष्ट्रों " का सिद्वान्त निरूपित किया ।[288] इस प्रकार भारत में सम्प्रदायवाद की जड़ को और मजबूत कर दिया । परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक झगड़े शुरू हो गये ।

23 मार्च 1942 ई0 को क्रिप्स महोदय अपने प्रस्ताव को लेकर भारत आये । इस समय यह घोषणा की गई कि क्रिप्स महोदय इस बात की कोशिश करेंगे कि अल्पसंख्यक भारत की राजनीतिक प्रगति में व्यर्थ बाधाएँ न उपस्थित करें तथा बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के हितों की उपेक्षा न करें । इस प्रस्ताव में इस बाद का भी उल्लेख किया गया कि जब अंग्रेजी सरकार युद्ध से मुक्त हो जायेगी तो वह भारत को स्वतन्त्र

287- वही, पृ0 296

288- वी0 पी0 वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृ0 443

करने का निश्चय करेगी । लेकिन अंग्रेजो की इन दुरंगी चालों से भारतीय अब तक अभ्यस्त हो चुके थे । फलत. किसी भी दल ने क्रिप्स प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया ।

(व) 1942 ई० का भारत छोड़ो आन्दोलन -

अप्रैल 1942 ई० में गान्धी जी ने यह घोषित किया कि भारत और ब्रिटेन की वास्तविक सुरक्षा इसी में है कि अंग्रेज व्यवस्थापूर्वक और समय रहते भारत से चले जायें । जुलाई 1942 ई० में कार्य समिति की बैठक वर्धा में हुई जिसमे उसने एक सामूहिक आन्दोलन के सम्बन्ध में अपनी योजना बनाई । अगस्त 1942 ई० में कांग्रेस महासमिति की सभा हुई और वर्धा की कार्य समिति वाला प्रस्ताव दोहराया गया ।[289]

भारत छोड़ो आन्दोलन अपने पूर्ण वेग से चल पड़ा । 7 और 8 अगस्त को महासमिति की बैठक थी । 9 अगस्त 1942 ई० को गान्धी जी और कुछ अन्य नेता गिरफ्तार कर लिये गये ।[290] गान्धी जी ने अपनी गिरफ्तारी के समय कहा था कि आज से हिन्दुस्तान का हर आदमी राष्ट्रपति है वह जो उचित समझे करे । सार्वजनिक सभाओं, जुलूसों आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा शस्त्रास्त्रों को लेकर चलना निषिद्ध कर दिया गया । सरकार का दमन चलता रहा वहीं जनता की विद्रोहात्मक

289- देखिये - आर०पी० दत्त - आज का भारत, पृ० 57।

290- ताराचन्द - भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड 4, पृ० 362

शक्ति उत्तेजित हो उठी । क्रान्ति की लहर देश के कोने-कोने में व्याप्त हो गई । नरेन्द्रदेव ने इस आन्दोलन को स्वाधीनता का सबसे बड़ा जन-संग्राम बताया है ।[291] गान्धी जी ने भी जो युद्ध के समय ब्रिटेन से सहयोग करने के पक्ष में रहते थे " भारत छोड़ो " का उद्घोष करते हुए कहा कि या तो हम हिन्दुस्तान को आजाद करेंगे या उसी प्रयत्न मे प्राण होम कर देंगे ।[292] 8 अगस्त 1942 ई0 को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के बम्बई अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू ने भी यही कहा था कि " हम आग में कूद चुके हैं और अब हमें उसमें से कामयाबी के साथ निकलना है या उसी में खत्म हो जाना है । "[293]

आजाद हिन्द फौज -

सविनय अवज्ञा आन्दोलन दबा दिया गया था । सभी कांग्रेसी नेता जेलों में ठूंस दिये गये थे । सरकार ने शक्ति और हिंसा का खूब प्रयोग किया । अतः कुछ ऐसे लोग उभर कर सामने आये जिनका विश्वास था कि हिंसा का जवाब हिंसा से ही देना चाहिए ।[294] इस उपाय का प्रतिपादन करने वाले मुख्य नेता सुभाष चन्द्र बोस थे ।[295]

291- आचार्य नरेन्द्रदेव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 189

292- देखिये डी0जी0 तेंदुलकर - "महात्मा" खण्ड 6, पृ0 161

293- बनारसी दास चतुर्वेदी - नेहरू : व्यक्तित्व और विचार, पृ0 494

294- देखिये - ताराचन्द , भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड 4, पृ0 396

295- वही, पृ0 397

उन्होंने युद्ध की सम्भावना पर ही कहा था " भारत को तुरन्त ही आवश्यकता इस बात की है कि ब्रिटिश साम्राज्य से संघर्ष छेड़ दिया जाय और ऐसे उपायों का आश्रय लिया जाए जो महात्मागान्धी के बताए तरीकों से अधिक सफल हो ।[296] उन्होंने मार्च 1939 में कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से प्रस्ताव किया था कि सरकार को यह अन्तिम चेतावनी दे देनी चाहिए कि 6 महीने के अन्दर भारत को स्वतन्त्र कर दिया जाए । परन्तु कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया परिणामस्वरूप उन्होंने अध्यक्षता को त्याग दिया और नया दल 'फारवर्ड ब्लाक' संगठित किया ।[297]

सुभाष चन्द्र बोस ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को युद्ध में कोई सहायता न देने की सलाह दी । 6 अप्रैल 1940 ई0 को उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर दिया । फारवार्ड ब्लाक के नेता गिरफ्तार कर लिये गये । 27 जुलाई 1940 ई0 को सुभाष चन्द्र बोस को बिना मुकदमा चलाये ही जेल में डाल दिया गया । उन्होंने 29 नवम्बर 1940 ई0 को अनिश्चित समय के लिए अनशन शुरू कर दिया । 6 दिन बाद सरकार ने उन्हें मुक्त कर दिया । परन्तु उन पर कड़ी

296- एस0सी0 बोस - दि इण्डियन स्ट्रगल, पृ0 337

297- देखिये - ताराचन्द, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड 3 पृ0 397

सरकारी निगरानी रखी जाने लगी । अत: वेष बदलकर वे काबुल पहुँचे । वहाँ से मास्को और मास्को से बर्लिन पहुँचे । वहाँ से जापान गये । जापान में रास बिहारी बोस ने "इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग" का संगठन किया था । जापान के समक्ष मलाया में अंग्रेजी सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया था जिसके एक अफसर कैप्टन मोहन सिंह थे । जापानियों ने कैप्टन मोहन सिंह के सुपुर्द युद्ध बन्दियों को कर दिया । अत: उन्होंने आजाद हिन्द फौज का संगठन शुरू किया । बाद में राम बिहारी बोस और कैप्टन मोहन सिंह में झगड़ा होने से सुभाषचन्द्र बोस ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का नेतृत्व मंजूर कर लिया । उन्होंने जगह-जगह विदेशों में जाकर भारतीय स्वतन्त्रता को स्थापित करने का प्रयास किया । इसमें आजाद हिन्द फौज के द्वारा उनको पर्याप्त सहायता मिली । बोस ने पहले जर्मनी तथा बाद में जापान से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया । जापान की सहायता से आजाद हिन्द फौज के अफसरों ने ब्रिटेन और अमरीका के विरूद्ध पर्याप्त सफलता भी अर्जित की । परन्तु जापानी सेना की पराजय से उनको भी भागना पड़ा और 1945 ई0 तक आजाद हिन्द फौज टूट सी गई ।

नाविक विद्रोह -

महायुद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न वातावरण का भारतीय

नाविकों पर भी प्रभाव पड़ा । 1946 ई0 के फरवरी माह में नाविक विद्रोह हो गया । यह विद्रोह सम्भवतः आजाद हिन्द फौज की जनता द्वारा अपार प्रशंसा के कारण हुआ ।[298] इस आन्दोलन में बम्बई के मजदूरों ने भी हड़ताली सैनिकों का पूरा साथ दिया ।

यद्यपि यह विद्रोह भी असफल रहा । उसका कठोरता पूर्वक दमन कर दिया गया [299] तथा नाविकों ने आत्म समर्पण कर दिया । लेकिन इसने स्वतन्त्रता प्राप्ति का मार्ग भारतीयों के लिए खोल दिया । अब अंग्रेज समझ गये थे कि सेना में भी उनके विरूद्ध विचार उठ रहे हैं । आर0 पी0 दत्त के अनुसार, "1946 में भारतीय नौ सेना में जो विद्रोह हुआ और उसके समर्थन में जनान्दोलन की जो लहर आई तथा बम्बई के मजदूरों ने जितनी वीरता के साथ हड़ताली नाविकों का समर्थन किया उससे जाहिर हो गया कि भारत में एक नये युग का सूत्रपात हो चुका है।"[300] आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार भी " सन् 42 की क्रान्ति के बाद अंग्रेज समझ गये कि बिना फौज की सहायता के जाग्रत हिन्दुस्तान पर शासन करना कठिन है, पर सन् 46 के नौ सैनिक विद्रोह ने बताया कि फौज और पुलिस भी उनके खिलाफ होती जा रही है । द्वितीय महायुद्ध से ब्रिटेन

298- मन्मथनाथ गुप्त - भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ0 531

299- रजनीपाम दत्त - आज का भारत, पृ0 567

300- वही, पृ0 586

कमजोर होकर निकला । इसलिए उसके सामने हिन्दुस्तान को आजादी देने के सिवा, दूसरा चारा न रहा ।"[301]

कैबिनेट मिशन -

19 फरवरी 1946 ई0 को कैबिनेट मिशन की नियुक्ति की घोषणा हुई । इस मिशन ने 27 जून 1946 ई0 को संविधान सभा तथा अन्तरिम सरकार के संगठन का प्रस्ताव किया ।[302] 1946 ई0 के आरम्भ में केन्द्रीय विधान सभा के चुनाव हुए जिसमें कांग्रेस को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई । मुस्लिम लीग बहुत अधिक सफल नहीं हो पाया । अतः 16 अगस्त 1946 ई0 को पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए "डायरेक्ट एक्शन" का दिन नियत किया गया । इस समय सम्पूर्ण देश में हड़तालें हुईं, भीषण साम्प्रदायिक दंगे हुए, लूटमार हुई । कलकत्ता, नोआखाली, तथा भारत के अन्य स्थानों पर इन दंगों और लूटमार के कारण जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया ।

(ष) भारतीय स्वाधीनता -

अतः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के लक्ष्य की पूर्ति अगस्त 1947 ई0 में होती है जब ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा भारतीय

301- आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 229

302- देखिये - ए0 सी0 बनर्जी - इण्डियन कान्स्टीट्यूशनल डॉक्यूमेन्ट्स, खण्ड 4, पृ0 208

स्वतन्त्रता अधिनियम पास कर दिया गया । लेकिन इस स्वतन्त्रता का एक मात्र श्रेय भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को ही नहीं दिया जा सकता । क्योंकि द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण इंग्लैंड की स्थिति बहुत खराब हो गई थी और उसके लिए यह कठिन प्रतीत हो रहा था कि वह अपने उपनिवेशों पर और अधिक समय तक अपना प्रभुत्व बनाये रखे । इसके साथ ही साथ अंग्रेजों का जो विचार था कि भारत पर बलपूर्वक शासन बनाये रखे, तो इस विचार के ऊपर भी नाविक विद्रोह से पानी फिर गया । इसके अतिरिक्त देशी राजाओं में भी, जो अंग्रेजों के सहायक रहे थे, विद्रोही भावना बलवती हो रही थी । अतः उपर्युक्त सभी कारणों से अन्ततः भारत को स्वतन्त्र कर देना ही अंग्रेजों ने उचित समझा ।

साहित्य और जीवन

प्रेमचन्द के अनुसार साहित्य का आधार जीवन है । इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है ।[1] साहित्य वह माध्यम है जिससे जीवन और उसकी गतिविधियाँ परिलक्षित होती है । अतः श्रेष्ठ साहित्य उसी को माना जा सकता है जिसमे जीवन की गतिविधियों का गहराई से विश्लेषण किया गया हो तथा लोगों की भावना को स्पष्ट रूप मे प्रस्तुत किया गया हो । आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में, "साहित्यिक अपने कर्तव्य का तभी निर्वाह कर सकता है जबकि वह जीवन का अध्ययन गहराई से करे , वह समाज की जीवन सरिता में ऊपरी तल पर संचारित होने वाली प्रवृत्तियों तक ही अपनी दृष्टि को सीमित न रक्खे , अन्त. सलिला सरस्वती की भाँति नीचे रहकर प्रच्छन्न रूप मे कार्य करने वाली शक्तियों का भी अध्ययन करे । यह अध्ययन जन-जीवन से अलग रहकर नहीं किया जा सकता, प्रगतिशील साहित्यिक को जीवन की समस्याओं का अध्ययन करना होगा, अपनी रचनाओं में उसे समाज के वर्तमान रूप का चित्रण करना होगा , जनता की मूल अभिलाषाओं को वाणी देनी होगी, इतिहास का अध्ययन करके उसकी जीवन प्रदायिनी शक्तियों का समर्थन करते हुए जनता का मार्ग प्रदर्शन करना होगा " ।[2] कोई भी साहित्यकार अपनी किसी

1- प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य, प्रथम संस्करण, 1954, पृ0 20

2- आचार्य नरेन्द्रदेव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, प्रथमावृत्ति, पृ0 565-566 ।

भी रचना के पूर्व समाज की ओर देखता है । उस समाज में रहने वालों की आवश्यकता को जानने का प्रयास करता है । उनके अन्दर उठने वाले विचारों तथा भावनाओं का अध्ययन करता है । अतः साहित्यकार की रचना उसके समाज से प्रभावित होती है । डॉ० धर्मपाल सरीन ने इसी मत का अनुसरण करते हुए कहा है, "रचनाकार अपने परिवेश का चित्रण अपने साहित्य में करता हुआ अपने युग की समस्याओं को गम्भीरता से ग्रहण करता है तथा साहित्य के माध्यम से उनका व्याख्यान करता है । साहित्य का विषय ही जीवन होता है और जीवन है भावनाओं और मनोविकारों का संजीव संघात ।"[3]

अतः जो साहित्य वास्तविकता से परे कल्पनालोक की उपज है वह वास्तविक अर्थों में साहित्य नहीं कहा जा सकता । यह सम्भव है कि समाज में ऐसे साहित्य की मांग हो जिससे लोगों का मनोरंजन हो सके । अतः तिलस्मी, ऐयारी, भूत-प्रेतादि की कथाओं तथा प्रेम-वियोग पर आधारित साहित्य समाज के ही एक हिस्से की आवश्यकता का परिणाम है । इस बात में पर्याप्त औचित्य भी दिखाई पड़ता है । परन्तु साहित्यकार का उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही सामाजिक उत्थान भी होता है । उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह समाज के सदस्यों को जीवन के किसी ठोस रचनात्मक कार्यों की प्रेरणा

3- डॉ० धर्मपाल सरीन - हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष, प्रथम संस्करण, 1973, पृ० 17 ।

दे , उन्हें जीवन की वास्तविकताओं से परिचित कराये । अतः आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में " सच्चे साहित्यकार का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह मनुष्य को समाज से पृथक करके, अमूर्त मानवता के प्रतीक के रूप में सीमित न कर उसे सामाजिक प्राणी के रूप में देखे - ऐसे समाज के सदस्य के रूप में जिसमें निरन्तर संघर्ष हो रहा है और इन संघर्षों के कारण जो प्रतिक्षण परिवर्तनशील है ।"[4] इसलिए प्रेमचन्द के अनुसार, " साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों ।"[5]

इस प्रकार साहित्य कोई "वाद" या " सिद्धान्त" नहीं वरन् एक वास्तविकता है । वह वास्तविकता जिसका सम्बन्ध मानव -समाज से या उस समाज की परिस्थितियों से होता है । इस सम्बन्ध में अमृतराय के कथन का उल्लेख कर सकते हैं , " यदि कोरा "वाद" या कोरी सिद्धान्त चर्चा साहित्य में रहेगी तो वह जीवन्त साहित्य न होगा, यानि अगर "वाद" किसी लेखक पर इतना हावी हो गया है कि उसने स्वतन्त्र चिन्तन

4- आचार्य नरेन्द्रदेव -राष्ट्रीयता और समाजवाद, प्रथमावृत्ति, पृ0 559 ।

5- प्रेमचन्द- साहित्य का उद्देश्य, प्रथम संस्करण, 1954, पृ0 2 ।

की सभी राहें रूँध दी हैं या जीवन की विशाल फैली हुई भूमि पर एक स्वतन्त्र, संवेदनशील मनुष्य की तरह घूमने की सारी स्फूर्ति छीन ली है, तो निश्चय ही उसमें जीवन का स्पन्दन न होगा। ऐसे साहित्य को हम वादाक्रान्त साहित्य कह सकते हैं।"[6] ऐसा साहित्य सामाजिक प्रगति के लिए कोई ठोस कार्य नहीं कर सकता। सामाजिक प्रगति के लिए एक ऐसे साहित्य की आवश्यकता होती है जिसमें जीवन हो, लोगों को जागृत करने की क्षमता हो। अतः साहित्यकार समाज का तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों का गूढ़ अध्ययन करने के उपरान्त ही श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण कर सकता है। पारसनाथ मिश्र के अनुसार, " सजग व्यक्ति होने के कारण साहित्यकार युगीन परिस्थितियों से तथा समय-समय पर होने वाले उनमें परिवर्तनों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उसकी साहित्यिक चेतना एवं कलात्मक संवेदना युगीन परिस्थितियों के स्पर्शाघात से आन्दोलित होकर जिस यथार्थ को वहन करती है, वह अनिवार्यतः समाज- सापेक्ष होता है।"[7] अतः प्रेमचन्द के शब्दों में, " हम जीवन में जो कुछ देखते हैं, या जो कुछ हम पर गुजरती है, वही अनुभव और वही चोटें कल्पना में पहुँचकर साहित्य सृजन की प्रेरणा करती है।"[8] डी० डी० तिवारी ने भी लिखा है, "साहित्यकार

6- रामदीन गुप्त - प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ० 44 पर उद्धृत।

7- पारसनाथ मिश्र - मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, प्रथम संस्करण, 1972, पृ० 94।

8- प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य, प्रथम संस्करण, 1954, पृ० 4।

अपने युगीन परिवेश में विचरण करते हुए भाव और विचारों को ग्रहण कर उन्हें साहित्यिक कलेवर प्रदान करना है।"[9] अत: डॉ० धर्मपाल सरीन के शब्दों में, "साहित्य एक दर्पण है जिसमें समसामयिक समाज का स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है।"[10] एक स्वस्थ साहित्य की कसौटी यही है कि उसमें सम्पूर्ण समाज, जिसके परिवेश में उसका निर्माण हुआ है, प्रतिबिम्बित हो, जिसमे उस समाज में उठने वाली समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया हो तथा समाज को प्रगति के पथ पर अवस्थित करने की क्षमता हो। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन, सन् 1936 ई० में अध्यक्ष पद से प्रेमचन्द ने कहा था "हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममे गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नही, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[11] इसीलिए उन्होंने साहित्य की परिभाषा करते हुए उसे "जीवन की आलोचना" बताया है।"[12]

9- डी०डी० तिवारी- भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष और हिन्दी उपन्यास (शोध प्रबन्ध) पृ० 73

10- डॉ० धर्मपाल सरीन-हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष, प्रथम संस्करण, 1973, पृ० 17

11- प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य, प्रथम संस्करण, 1954, पृ० 36

12- वही, पृ० 2

साहित्य तथा भाषा -

साहित्य का महत्व इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी भाषा का समाज में क्या स्थान है । यदि सम्बन्धित समाज में बोली जाने वाली या प्रचलित भाषा साहित्य की भाषा है तो समाज उस साहित्य को अधिक आसानी से ग्रहण कर सकेगा । परन्तु यदि साहित्य की भाषा समाज के लोगों की बहुसंख्या की भाषा न होगी तो उस साहित्य का समाज में अधिक महत्व नहीं होगा । भाषा वह माध्यम है जिससे किसी समाज में लोग परस्पर विचारों का आदान - प्रदान करते हैं । साहित्य का औचित्य समाज द्वारा उसकी ग्राह्यता में होता है । अत: इस औचित्य को सिद्ध करने हेतु साहित्य समाज की प्रचलित भाषा में होना चाहिए जिससे सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति अधिक [illegible] तथा स्पष्ट हो सके । डब्ल्यू0 एच0 हडसन के शब्दों में " साहित्य भाषा के माध्यम से मूलत: जीवन की अभिव्यक्ति है । "[13] साहित्य का स्वरूप अमूर्त होता है उसको मूर्त रूप भाषा के माध्यम से प्रदान किया जाता है ।

साहित्यकार साहित्य का सृजन अपने परिवेश से प्रभावित होकर करता है । इस परिवेश का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव उसके संवेदनशील मस्तिष्क पर पड़ता है । इस प्रभाव के परिणामस्वरूप उसके अन्दर कुछ

13- डी0डी0 तिवारी - भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष और हिन्दी उपन्यास {शोध प्रबन्ध}, पृ0 73 पर उद्धृत

विचारों का जन्म होता है, जो कि वास्तव में उस प्रभाव की प्रतिक्रिया स्वरूप होते हैं । इन विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए उसे जिस माध्यम की आवश्यकता होती है, वह भाषा ही होती है । अतः साहित्यकार का यही प्रयास होता है कि वह अपने साहित्य को एक ऐसी भाषा प्रदान करे जो सरल, सुबोध तथा प्रभावकारी हो ।

साहित्य तथा राष्ट्रीय चेतना -

साहित्य का सम्बन्ध समाज से होता है । अतः समाज में होने वाली प्रत्येक घटना का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है । प्रत्येक समाज के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि पहलू होते हैं । अतः साहित्य का सम्बन्ध इन सभी पहलुओं से होता है और साहित्यकार इन पहलुओं से अपने आपको पृथक नहीं कर सकता । चूँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है ।[14] अतः समाज में होने वाली प्रत्येक घटना मनुष्य से सम्बन्धित होती है । अतः साहित्यकार अपनी रचना में मानव को केन्द्र बनाकर आगे बढ़ता है । आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार, " जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करके चलने वाला साहित्य प्रगतिशील साहित्य है ।"[15]

14- डब्ल्यू ए डनिंग - ए हिस्ट्री ऑफ पालिटिकल थियरीज,पृ0 56

15- आचार्य नरेन्द्रदेव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, प्रथमावृत्ति, पृ0 559

आधुनिक युग राष्ट्रीय जागरण का युग कहा जा सकता है, जबकि विभिन्न देशों में राष्ट्रीय आन्दोलन उठ खड़े हुए। विदेशी आधिपत्य तथा शासकीय अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए मानव आत्मा व्याकुल हो उठी। इस अत्याचार से मुक्ति पाने के लिए यह आवश्यक था कि जनता में उसकी पराधीन तथा दयनीय स्थिति का बोध कराया जाय तथा उसको राष्ट्रीय संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाय। अतः इस समय समाज में एक राजनीतिक चेतना का संचार किया गया।

राजनीति का सम्बन्ध मानव समाज से हमेशा रहा है। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के साथ ही साथ एक राजनीतिक प्राणी भी है।[16] वह समाज में रहता है, उस समाज में उसके अपने कुछ अधिकार ... हैं[16ए] इन अधिकारों से कुछ कर्त्तव्य भी उत्पन्न होते है।[17] अतः इन कर्त्तव्यों के पालन के लिए तथा अधिकारों की सुरक्षा के लिए एक व्यवस्था[18] की आवश्यकता होती है। यह व्यवस्था ही मनुष्य को एक राजनीतिक समाज प्रदान करती है।[19] अतः आरम्भ से ही मनुष्य का सम्बन्ध राजनीति से हो जाता है और राजनीतिक समाज मनुष्य के स्वतन्त्र अस्तित्व[20] की एक आवश्यक कड़ी बन जाती है। जैसा कि गान्धी जी ने एक बार कहा था कि " राजनीति व्यक्ति को सांप की कुण्डली की

16- डब्ल्यू ए0 डनिंग -ए हिस्ट्री ऑफ पालिटिकल थियरोज, पृ0 56

16ए- डॉ0 सुखबीर सिंह-हिस्ट्री ऑफ पालिटिकल थॉट-§वाल्यूम दो§पृ0137

17- ई0 बार्कर -प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशल एण्ड पालिटिकल थियरोज,पृ0136-1+2

18- डब्ल्यू ए0 डनिंग -ए हिस्ट्री ऑफ पालिटिकल थियरोज, पृ0 83

19- एस0 एविनेरो-हि गेल्स थियरी ऑफ मॉडर्न स्टेट, अध्याय 7,8

20- सी0एल0 वेपर- पालिटिकल थॉट- पृ0 113,114

भाँति चारों ओर से घेरे हुए है जिससे निकलना असम्भव है । "[21]
चूँकि साहित्य का सम्बन्ध समाज तथा व्यक्ति से होता है, इसलिए साहित्य और राजनीति को पृथक नहीं किया जा सकता । साहित्यकार जब समाज को देखता है, तो राजनीति को अनदेखा नहीं कर सकता, विशेष रूप से आधुनिक युग में, जिसमें राजनीति सम्पूर्ण मानव जीवन पर आच्छादित हो चुकी है ।[22] इसलिए राजनीतिक समस्याओं को सामाजिक समस्याओं से पृथक नहीं किया जा सकता । अज्ञेय भी यह स्वीकार करते हैं कि " साहित्यिक और राजनीतिक दो पृथक और विरोधी तत्व मान लेना किसी प्राचीन युगमेंभी उचित न होता, आज के से संघर्ष - युग में तो वह मूर्खतापूर्ण सा ही है ।"[23] आगे वे पुनः कहते हैं कि " साहित्य और राजनीति का असर एक दूसरे पर होने से रोका भी नहीं जा सकता, चाहे राजनीति का युग हो, चाहे साहित्य का । नीत्से "साहित्यिक" था, लेकिन आधुनिक राजनीति पर उसके प्रभाव की उपेक्षा नही हो सकती लेनिन को कोई भी साहित्यिक नहीं कहता । फिर भी आधुनिक साहित्य पर उसकी गहरी छाप है ।"[24]

21- देखिये प्रभात कुमार भट्टाचार्य, - गाँधी दर्शन, पृ0 27
22- रजनी कोठारी - भारत में राजनीति, पृ0 178
23- रामदीन गुप्त - प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ0 44 पर उद्धृत
24- वही, पृ0 44 पर उद्धृत

राजनीति और साहित्य दोनों एक दूसरे को समान रूप से प्रभावित करते हैं। अतः राजनीति और साहित्य का क्षेत्र पृथक करना दुष्कर है। जहाँ राजनीति है, वहाँ समाज हैं और जहाँ समाज है वहाँ साहित्य है। अतः जहाँ साहित्य है वहाँ राजनीति है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि राजनीति साहित्य से भिन्न होती है, फिर भी राजनीति वह वास्तविकता है जिससे समाज या साहित्य अछूता नहीं रह सकता। वास्तव में आज के युग की सबसे बड़ी वास्तविकता राजनीति है, इसलिए आज राजनीति से दूर रहकर कोई कलाकार अपनी कृति में वास्तविकता को, सामाजिक यथार्थ को अंकित नहीं कर सकता।[25]

साहित्य ने विश्व में अनेक जनान्दोलनों को खड़ा करने में सहायता की है। इसके माध्यम से जन - चेतना का विकास हुआ है। इसका कारण यही है कि साहित्य मानव-जीवन को अत्यन्त प्रभावित करता है। साहित्य में मानव-जीवन प्रतिबिम्बित होता है। अतः साहित्य के माध्यम से मनुष्य अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करता है तथा इसके साथ ही अपनी समस्याओं से मुक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा ग्रहण करता है। इसीलिए रैल्फ फॉक्स के अनुसार, " क्या कोई उपन्यासकार उस दुनिया की समस्याओं की,जिसमें वह रहता है, उपेक्षा कर सकता है ? क्या वह युद्ध की तैयारियों के कोलाहल से अपने

25- वही, पृ0 56

कान बन्द रख सकता है ? क्या वह अपने देश की परिस्थितियों की ओर से अपनी आँखें मूँद सकता है ? अपने चारों ओर के भयानक वातावरण से क्या वह अपने मुँह में पट्टी बाँध सकता है ? . . . क्योंकि कान, आँख और मुँह (स्वर) वास्तव में साहित्यकार के संवेदनशील अंग हैं । इसीलिए उपन्यास को " व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य " कहा गया है ।"26 अतः समाज में रहते हुए साहित्यकार अपने समाज या देश की परिस्थितियों, सामाजिक समस्याओं तथा कष्टों का मूल्यांकन करता है । उसकी आत्मा मानव कष्टों तथा उत्कण्ठाओं से पीड़ित हो उठती है । इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर जब वह साहित्य का सृजन करता है तो वह साहित्य एक क्रान्तिकारी साहित्य बन जाता है, जिसमें अपनी वर्तमान कष्टमय तथा दयनीय स्थिति को त्याग कर, एक नवीन व्यवस्था का वरण करने का सन्देश होता है । अतः साहित्यकार अपनी रचना के माध्यम से "प्रसुप्त राष्ट्रजनों को जागरित करता है, नवीन जनान्दोलनों को जन्म देता है । "27

इस प्रकार साहित्यकार के साहित्य की कसौटी इस बात पर निर्भर करती है कि वह कहाँ तक जनता की भावनाओं को प्रभावित करता है, उन्हें समाज और राष्ट्र के निर्माण में कहाँ तक प्रेरित करता है ।

26- डी०डी० तिवारी - भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष और हिन्दी उपन्यास (शोध प्रबन्ध) पृ० 78 - 79 पर उद्धृत

27- वही, प्राक्कथन ।

समाप्त करने के लिए युद्ध किया जा सके। संसार के मजदूर आन्दोलन के नेता जार्ज दिमित्रोव ने सोवियत लेखकों की एक सभा में कहा था, "कविता, उपन्यास आदि कलाकृतियों के रूप में तुम हमें एक तेज हथियार दो जो संघर्ष में काम आ सके। अपनी कला से क्रान्तिकारी कर्त्ता बनाने में मदद करो।"[28] ज़्दानोव ने भी राजनीति में साहित्य का महत्व स्पष्ट करते हुए कहा, "साथियों! हमारा साहित्य जनता के लिए, देश के लिए जीता है और उसी के लिए जीना चाहिए। साहित्य का ध्येय जनता का ही ध्येय है। इस तुम्हारी हर सफलता को, हर महत्वपूर्ण रचना को जनता अपनी ही सफलता समझती है। इसलिए हम हर सफल रचना की तुलना युद्ध या आर्थिक मोर्चे की बड़ी जीत से करते हैं। इसके साथ ही सोवियत साहित्य की हर असफलता जनता, पार्टी और राज्य को कड़वी लगती है और बुरी तरह अखरती है।"[29] इस प्रकार सफल साहित्य राष्ट्रीय विकास में योगदान करता है। यह मनुष्य के मस्तिष्क को राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत करने का कार्य करता है। जहाँ राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लेता है, वहीं साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय संघर्ष के लिए योद्धाओं का निर्माण करता है। चण्डी प्रसाद जोशी के अनुसार, "राजनीतिज्ञ और साहित्यकार की संघर्ष प्रक्रिया भिन्न होती है।

28- डॉ० रामविलास शर्मा - भाषा, साहित्य और संस्कृति, पृ० 145 पर उद्धृत।

29- वही, पृ० 94 पर उद्धृत।

...वादी सक्रिय होकर शासन के दमन-चक्र से प्रत्यक्ष संघर्ष करता है लेकिन साहित्यकार विद्रोह के स्वर की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का आश्रय लेता है।"[30]

विश्व की राज्यक्रान्तियों में साहित्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये क्रान्तियाँ राज्य की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक या आर्थिक हीनावस्था के कारण उत्पन्न होती है। इसलिए प्रेमचन्द के अनुसार " जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है और उसकी विशाल आत्मा अपने देश बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है।"[31] इस भावना से प्रेरित होकर वह साहित्य का सृजन करता है जो कि एक क्रान्ति को जन्म देता है। इसी प्रकार रूसो ने फ्रांस की राज्यक्रान्ति, गोर्की ने रूसी समाजवादी क्रान्ति तथा भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेमचन्द तथा अन्य साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से प्रेरित किया। इन्होंने अपने राष्ट्र को ऐसा साहित्य प्रदान किया जिसके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ उनका भी नाम जुड़ गया।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाषा एवं साहित्य के माध्यम से जनजीवन को प्रभावित किया जाता है। राजनीति का जनजीवन

30- डी०डी० तिवारी- भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष और हिन्दी उपन्यास (शोध प्रबन्ध) पृ० 78 पर उद्धृत

31 प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य, प्रथम संस्करण, 195., पृ० 24-25

से घनिष्ट सम्बन्ध होता है । अतः राष्ट्रीय आन्दोलनों में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में भाषा एवं साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है । जहाँ तक भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का सम्बन्ध है । हिन्दी भारत की जनभाषा है । अतः इसे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित किया गया ।[32] हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का क्रमिक विकास गद्य साहित्य के माध्यम से हुआ । अतः हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है ।

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास -

आदिकाल तथा मध्यकाल में यद्यपि राजभक्ति एवं देश भक्ति का अभाव नहीं पाया जाता है । परन्तु इन कालों में पद्य साहित्य की ही प्रधानता रही थी । गद्य का निर्माण छिटपुट रूप में ही होता था । अतः आधुनिक युग में ही हिन्दी गद्य साहित्य के विकास को स्वीकार किया जा सकता है । डॉ० शिवमूर्ति शर्मा के शब्दों में "साहित्यिक चेतना के विस्तार की दृष्टि से इस युग की सबसे महत्वपूर्ण बात है - हिन्दी गद्य का विकास । इसके पहले साहित्य में पद्य का ही बोलबाला था । गद्य का विशेष प्रचार न होने के कारण विविधमुखी समस्याओं की साहित्यिक अभिव्यक्ति भी नहीं हो सकी थी । गद्य का विकास होते ही अंग्रेजी गद्य के

32- देखिये- वी० पी० वर्मा - आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रकाशक, आगरा, 1987-88, पृ० 44

अनुकरण पर उसकी अनेक विधाओं - कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबन्ध, रिपोर्ताज आदि का भी विकास हुआ । इन सभी में नवयुग की सारी समस्याएँ साकार हो उठीं ।"[33]

इस प्रकार हिन्दी गद्य साहित्य आधुनिकता की देन है ।
" यदि आधुनिक शब्द को परिभाषित किया जाय तो आधुनिक शब्द दो अर्थों मध्यकाल से भिन्नता और नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण - की सूचना देता है ।"[34] इस प्रकार "आधुनिक " जडता, रूढ़िवादिता तथा पारलौकिकता के विपरीत, गत्यात्मकता, उदारवादिता तथा इहलौकिकता का प्रतीक होता है । "आधुनिक" नवीनता का सन्देश देता है तथा क्रान्ति का भाव जागृत करता है । इससे वर्तमान का बोध होता है । वर्तमान के प्रति एक वास्तविक दृष्टिकोण का जन्म होता है ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है -[35]

33- डॉ० शिवमूर्ति शर्मा -हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास पृ० 279

34- डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 438

35- परन्तु साहित्य के इतिहास में काल का सीमांकन सबसे अधिक जटिल समस्या है । किसी कालखण्ड का आरम्भ किस समय से होता है, इसे वैज्ञानिक सत्य के रूप में नहीं बताया जा सकता । एक काल खण्ड दूसरे कालखण्ड से अपने बदलाव के कारण अलग होता है। देखिये डा० नगेन्द्र (सम्पादक) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 437

§अ§ भारतेन्दु युग § 1857-1900 ई0§

§ब§ द्विवेदी युग § 1900-1918 ई0§

§स§ प्रेमचन्द युग § 1918-1936 ई0§

§द§ प्रेमचन्दोत्तर युग §1936- आज तक §[36]

§अ§ भारतेन्दु युग § 1857-1900 ई0§

भारतीय इतिहास में यदि आधुनिक युग को निश्चित किया जाय तो 1757 ई0 में इसका आरम्भ मान सकते है, जब अंग्रेजों ने प्लासी के युद्ध में नवाब सिराजुद्दौला को पराजित कर भारत में ईस्ट इंण्डिया कम्पनी के शासन की स्थापना की थी। लेकिन हिन्दी साहित्य के इतिहास

36- डॉ0 नगेन्द्र ने आधुनिक काल के उप विभाजन को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

§अ§ पुनर्जागरण काल§ भारतेन्दु काल§ 1857-1900 ई0
§ब§ जागरण सुधार काल§द्विवेदी काल§ 1900-1918 ई0
§स§ छायावाद काल 1918-1938ई0
§द§ छायावादोत्तर काल §1§ प्रगति प्रयोग काल-1938-1953ई0
§2§ नवलेखन काल - 1953 .....

देखिये वही, पृ0 439

डॉ0 जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल ने निम्नलिखित आधारों पर काल विभाजन किया है -

§अ§ नवजागरण काल § भारतेन्दु युग §सन् 1870 से सन् 1903
§ब§ परिमार्जन काल §द्विवेदी युग § सन् 1903 से सन् 1920
§स§ उत्कर्ष काल § रामचन्द्र शुक्लयुग § सन् 1920 से सन् 1936
§द§ वर्तमान काल सन् 1936 से आज तक

देखिये - डॉ0 जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल -हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ0 628

में आधुनिक युग को भारतेन्दु युग से मान सकते है ।[37] क्योंकि हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के दर्शन, यद्यपि पूर्ण रूप में नहीं, भारतेन्दु युग से ही होते हैं । 1857 ई० के व्यापक आन्दोलन, जिसे कई विद्वानों ने प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का नाम दिया है, ने भारतीय जनजीवन को अत्यधिक प्रभावित किया । इस आन्दोलन के पश्चात् देश में नवीन विचारों का जन्म हुआ । इस समय पहली बार साहित्य का सम्बन्ध मनुष्य के वास्तविक जीवन के साथ हो सका । यह प्रक्रिया भारतेन्दु के समय में ही आरम्भ हुई[38] और वह भी गद्य के माध्यम से ।[39] अंग्रेजों के भारत में आने से भारत में अनेक परिवर्तन हुए । जहाँ अंग्रेजों की नीतियाँ भारतवासियों के लिए अभिशाप सिद्ध हुई, वहीं उनके बहुत से कार्य वरदान के रूप में भी सामने आये । भारतीय अर्थव्यवस्था पर

37- देखिये - डॉ० मोहन अवस्थी - हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1970, पृ० 104, तथा डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल-हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, दसवाँ संस्करण, 1977, पृ० 41।

38- भारतेन्दु युग का साहित्य पूर्णतया जनवादी साहित्य है और भारतेन्दु जन जागृति के अग्रदूत है ।

39- डॉ० नगेन्द्र (सम्पा०)-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 440

अंग्रेजी शासन का अत्यन्त घातक परिणाम हुआ ।[40] पहले भारतीय अर्थ-व्यवस्था मुख्यतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था थी । गाँव के लोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर स्वावलम्बी होने की कोशिश करते थे । जमीन पर गाँव के लोगों का अधिकार होता था । जमींदारों का कोई पृथक वर्ग नहीं था । अंग्रेजों ने भूमि व्यवस्था को लागू करके जमींदारों और जोतदारों के वर्ग को जन्म दिया । जिसके कारण किसान की स्थिति दयनीय होती गई । वह जमींदारों के अत्याचार के कारण मालगुजारी जमा करने के लिए महाजनों से ऋण लेता था । अकाल या अतिवृष्टि के कारण फसल नष्ट हो जाने पर भी मालगुजारी देना पड़ता था । मालगुजारी न दे पाने या ऋण न चुका पाने की स्थिति में उसे अपनी जमीन से भी हाथ धोना पड़ता था ।[41] गरीबी के कारण उसकी स्थिति गिरती ही चली गई । वह महामारी का शिकार भी हो जाता था । कर के बोझ और अकाल, महामारी आदि की भयंकरता का उल्लेख भारतेन्दु तथा उनके समसामयिक लेखकों के साहित्य में मिलता है ।[42] अर्थव्यवस्था में यह

40- देखिये - दादाभाई नौरोजी - पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया पृ० 211 तथा स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ऑफ सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, जी० ए० नटेसन एण्ड कम्पनी, मद्रास, पृ० 297

41- ताराचन्द - हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट इन इंडिया, भाग 2, पृ० 294

42- डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास , पृ० 441

मौलिक परिवर्तन ही ग्रामीण ऋणग्रस्तता का कारण था ।[43] लेकिन फिर भी इस नवीन अर्थ व्यवस्था ने गांवों की सीमाओं को तोड़ कर राष्ट्रीय एकता को सम्भव बनाया । अंग्रेजों ने नई अर्थव्यवस्था, शिक्षा - प्रणाली, औद्योगीकरण, आवागमन के साधनों तथा प्रेस इत्यादि को सम्भव बनाकर सम्पूर्ण भारतवासियों को अत्यन्त समीप ला दिया . स्वयं अंग्रेजों ने भी भारतीय समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने के प्रयास किये । ईसाई मिशनरियों द्वारा अनेक सराहनीय प्रयास किये गये । यद्यपि छुआछूत, जाति-प्रथा जैसी कुरीतियाँ भारतीय समाज में बनी रहीं । यह कहना गलत न होगा कि इन्हीं कुरीतियों के आधार पर अंग्रेजी साम्राज्य आगे बढ़ता रहा । इस वास्तविकता को आगे चलकर महात्मा गान्धी तथा अन्य समाज सुधारकों ने भी स्वीकार किया । फिर भी इस सम्पूर्ण काल में भारतीय राष्ट्रीय भावना का विकास हो रहा था । इस आधार पर कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग राष्ट्रीय चेतना का युग था ।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि साहित्य में युग - जीवन की प्रथम छाप भारतेन्दु युग में मिलती है । यद्यपि इस समय भी लेखकों का अधिक ध्यान जनता के लिए मनोरंजक साहित्य का सृजन करने में ही था । फिर भी देश की सामाजिक , धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक हीनावस्था से साहित्यकार का अछूता रहना सम्भव

43- ताराचन्द -हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ० 295

नहीं । अतः उसकी रचनाओं में युग - जीवन का प्रतिफलन निश्चित रूप में हुआ । शिवनारायण श्रीवास्तव ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "भारतेन्दु युग की सबसे बड़ी विशेषता एवं देन यह भी रही है कि साहित्य के माध्यम से युग-जीवन को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया ।"[44] भारतेन्दु कालीन साहित्य में जहाँ समाज में प्रचलित बुराइयों तथा देश की हीनावस्था का वर्णन मिलता है, वहीं इस युग में राजभक्ति की भावना भी साहित्य में प्राप्त होती है । लेकिन इस सम्बन्धमें डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का मत है कि " उनकी भक्ति के पीछे प्राचीन भारत की राजा - प्रजा वाली भावना कार्य कर रही थी । परन्तु अंग्रेजी शासन के अनेक अन्यायपूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण कार्य उन्हें मानसिक पीड़ा पहुँचाते थे और अवसर मिलने पर वे उनका विरोध किये बिना न रहते थे । उन्हें राष्ट्रीय हित का ध्यान सदैव बना रहता था ।"[45] इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि भारतेन्दु युग में साहित्यकार राष्ट्रीय हित से सर्वथा अनभिज्ञ था या उसमें अंग्रेजों के प्रति अन्धभक्ति की भावना थी ।[46] यह

44- शिवनारायण श्रीवास्तव - हिन्दी उपन्यास (ऐतिहासिक अध्ययन) पृ0 22

45- डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ0 209

46- वास्तविक रूप में भारतेन्दु युग का साहित्य पूर्णतया जनवादी साहित्य है और स्वसंस्कृति का गौरवमान करने वालों में भारतेन्दु जी सर्वप्रथम थे । उन्होंने भारत के अतीत गौरव के गीत गाये और उसकी सामाजिक हीनदशा की ओर भारतवासियों का ध्यान आकर्षित करके उन्हें स्वदेश, स्वजाति और स्वसंस्कृति का पुनरुत्थान करने की प्रेरणा दी ।

देखिये डॉ0 जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल -हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, दसवां संस्करण, 1977, पृ0 41।

सत्य है कि इस युग में राष्ट्रीयता के दर्शन समग्र रूप में नहीं होते हैं तथापि यह तो माना ही जा सकता है कि इस युग में राष्ट्रीय चेतना का जन्म हो चुका था और इस युग का साहित्यकार उससे अनभिज्ञ नहीं था ।

इस युग की प्रमुख रचनाओं में, जिनका सम्बन्ध देश की वास्तविक स्थिति से था, बालकृष्ण भट्ट कृत-भाग्यवती, परीक्षा गुरू, रहस्य कथा §1879§, नूतन ब्रह्मचारी §1886§ तथा सौ अजान एक सुजान §1892§, राधाकृष्ण दास कृत - निस्सहाय हिन्दू §1890§, लज्जाराम शर्मा कृत-धूर्त रसिक लाल §1890§ और स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी § 1899§ तथा किशोरीलाल गोस्वामीकृत त्रिवेणी वा सौभाग्यश्री §1890§ विशेष उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।

नाटकों में भारतेन्दु कृत - भारत-दुर्दशा, बालकृष्ण भट्ट कृत - नई रोशनी का विष § 1884§, खड्गबहादुर मल्ल कृत - भारत आरत §1885§ ,अम्बिकादत्त व्यास कृत - भारत सौभाग्य §1887§, राधाकृष्णदास कृत - दु:खिनी बाला §1880§, गोपाल राम गहमरी कृत - देश - दशा §1892§, काशीनाथ खत्री कृत-विधवा विवाह,देवकी नन्दन त्रिपाठी कृत - भारतहरण §1899§ उल्लेखनीय है ।

इस युग में आधुनिक कलात्मक कहानी का आरम्भ नहीं हुआ था। कहानियों के नाम पर जो प्रकाशित संग्रह प्राप्त हुए हैं - जैसे मुंशी नवल किशोर द्वारा सम्पादित "मनोहर कहानी" (1880) में संकलित एक सौ कहानियाँ, अम्बिकादत्त व्यास कृत "कथा कुसुम कलिका" (1888), राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द कृत "हास्य रतन" (1886) - वे लोक प्रचलित तथा इतिहास पुराण कथित शिक्षा, नीति या हास्य प्रधान कथाएँ हैं। जिन्हें तत्कालीन लेखकों ने स्वयं लिखकर या लिखवाकर सम्पादन करके प्रकाशित करा दिया। कहानी के नाम पर जिन स्वप्न कथाओं का उल्लेख किया गया है, वे वस्तुतः कथात्मक निबन्ध हैं।[47]

कहानी के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी रचनाओं में देश की तत्कालीन दुर्दशा तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख किया गया है तथा उनको दूर करने के उपाय भी सुझाये गये हैं।

(ब) द्विवेदी युग - (1900-1918 ई०)

द्विवेदी युग का काल हिन्दी गद्य साहित्य में राष्ट्रीय भावना के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस काल में ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने अंग्रेजों की कूटनीति और धूर्तता का वास्तविक अनुभव किया। अभी तक वे अंग्रेजों की न्यायप्रियता में

47- डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 484 - 85

विश्वास रखते हुए राजभक्ति का परिचय दे रहे थे । लेकिन 1905 ई0 में लार्ड कर्जन के द्वारा बंग - भंग के कार्य ने उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति का बोध करा दिया । अतः कांग्रेस में तिलक ने "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" का नारा दिया ।[48] फलतः कांग्रेस दो गुटों - गरम दल और नरम दल - में विभक्त हो गई । गरम दल स्वराज्य प्राप्ति के लिए पूर्णरूप से उद्यत था, चाहे उसके लिए उग्रवादी साधनों को ही क्यों न अपनाया जाय । नरम दल यद्यपि अंग्रेजों की न्यायप्रियता में अभी भी विश्वास रखता था । फिर भी उसने भी स्वराज्य की मांग को प्रस्तुत किया लेकिन संवैधानिक साधनों द्वारा । इसी काल में अंग्रेजों द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों को पृथक करने का भी प्रयास किया गया ।

इस काल के साहित्य में भारतेन्दु काल में प्रारम्भ हुई प्रक्रिया को और आगे बढ़ाया गया । " भारतेन्दु कालीन साहित्यकार जहाँ भारत-दुर्दशा पर दुःख प्रकट करके रह गया था, वहाँ द्विवेदी कालीन कवि मनीषियों ने देश की दुर्दशा के चित्रण के साथ - साथ देशवासियों को स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रेरणा भी दी - उन्हें आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान का मार्ग भी दिखाया ।"[49] चूँकि साहित्यकार अपने युग और परिवेश से जुड़ा होता है । इसलिए वह अपने आपको युगजीवन से

48- वी0पी0 वर्मा - आधुनिक भारतीय राज चिन्तन, पृ0 229

49- डॉ0 नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 496

पृथक नहीं कर पाता वरन् अपने चारों ओर के परिवेश को प्रभावित करता है तथा स्वयं प्रभावित होता है । अत: यह स्पष्ट ही था कि इस युग के साहित्य में प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हो ।"[50] साहित्यकारों के मन पर राष्ट्र की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना का प्रभाव पड़ता था और वह उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित होती थी ।"[51] इस काल में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलनों का समावेश हुआ तथा आन्दोलन का स्वरूप उग्रवादी रूप धारण करने लगा । सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध तो राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता प्रयत्नशील थे हीं, इस काल में अंग्रेजो द्वारा बोये हुए "फूट " को भी, जो हिन्दू-मुस्लिम पृथककरण के रूप में था, दूर करने का प्रयास किया गया । इन सभी घटनाओं का प्रतिफलन तत्कालीन साहित्य में दृष्टिगोचर होता है । रामदीन गुप्त के अनुसार" द्विवेदी युग तक आते- आते भारत के राष्ट्रीय स्वाधिनता - संग्राम में काफी गति एवं तीव्रता आ गई थी । स्वभावत: यह सम्भव नहीं था कि इस आन्दोलन के परिपार्श्व और उसकी छाया में रचित साहित्य में देशभक्ति तथा दूसरी सम्बद्ध भावनाओं की प्राणवान अभिव्यक्ति न हो ।"[52]

---

50 - देखिये वही, पृ0 516

51 - वही, पृ0 517

52- रामदीन गुप्त - प्रेमचन्द और गान्धीवाद ,पृ0 39

यद्यपि इस युग में भी साहित्य के प्रति लेखकों और पाठकों की प्रवृत्ति तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी इत्यादि के माध्यम से मनोरंजन करने में अधिक रही है । फिर भी इस युग के साहित्य में जीवन की वास्तविकता के दर्शन होते हैं । सामाजिक उपन्यासों में समाज सुधार को लक्ष्य बनाया गया । इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द के प्रेमा §1907§, रूठी रानी §1907§ और सेवासदन §1918§ विशेष उल्लेखनीय उपन्यास हैं ।

इस युग में नाट्य साहित्य का विशेष महत्व नहीं रहा । फिर भी कुछ नाटक सामाजिक राजनीतिक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । माखनलाल चतुर्वेदी का "कृष्णार्जुन - युद्ध" राष्ट्रीय चेतना से युक्त है । इसके अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र कृत " भारत दुर्दशा "§1902§, भगवती प्रसाद कृत "वृद्ध विवाह" §1905§ , जीवानन्द शर्मा कृत "भारत विजय" §1906§, कृष्णानन्द जोशी कृत " उन्नति कहाँ से होगी "§1915§ और मिश्रबन्धु कृत नेत्रोन्मीलन §1915§ उल्लेखनीय है । जिनमें तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक जीवन की विकृतियों की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

द्विवेदी युग में कहानियों का जन्म हो चुका था इन कहानियों में राष्ट्रीय चेतना से सम्बन्धित विचार भी दिखाई देते है । यहाँ यद्यपि पूर्ण विकास बाद में ही हुआ । इस युग के कहानीकारों

में मुख्य रूप से प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद का उल्लेख किया जा सकता है । प्रेमचन्द ने जीवन की वास्तविक घटनाओं और समस्याओं के आधार पर अपनी कहानियों की रचना की जिनसे पाठक का सीधा सम्पर्क उसकी युगीन परिस्थितियों से हो जाता है । लेकिन प्रसाद ने अतीत से घटनाओं का चयन कर देश के गौरवमयी अतीत के प्रति पराधीन भारत-वासियों का ध्यान आकर्षित कर उनमें राष्ट्रीय आत्मगौरव की भावना को बढ़ाने का प्रयास किया है ।

द्विवेदी युग में यद्यपि भारतेन्दु की परम्परा को अधिक विकसित रूप प्रदान किया गया । फिर भी इस काल में भी साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती मनोरंजन साहित्य परम्परा जिसमें जासूसी, तिलस्मी आदि की प्रधानता थी, से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हो सके थे । वे युगजीवन को अपनी रचनाओं में स्थान तो देते थे, देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हीनता पर खेद व्यक्त करते थे, फिर भी वे इन समस्याओं के निवारण हेतु कोई ठोस साहित्य प्रस्तुत नहीं कर सके । इस सम्बन्ध में ठोस साहित्य के दर्शन प्रेमचन्द युग में होते हैं जिसमें साहित्य और राजनीति के मध्य परस्पर घनिष्ठ सम्बन्धों की स्थापना हो सकी ।

(स) <u>प्रेमचन्द युग {1918- 1936ई0}-</u>

जहाँ भारतेन्दु युग राष्ट्रीय चेतना के जन्म का युग था ,

द्विवेदी युग इस चेतना के विकास का युग था, वहीं प्रेमचन्द युग इस चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति का युग था। इस युग में ही राष्ट्रीय आन्दोलन मध्य वर्ग के हाथ से निकलकर जनता के हाथ में आ गया। गान्धी जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा जनता के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध की स्थापना की। अभी तक कांग्रेस मुख्यतः मध्यवर्ग से सम्बन्धित थी, गान्धी जी के प्रयत्नों के फलस्वरूप यह जनकांग्रेस के रूप में उभर कर सामने आयी। समस्त भारत में चारों ओर जनान्दोलनों का सूत्रपात हुआ। इसी युग में रूसी बोल्शेविक समाजवादी क्रान्ति के फलस्वरूप समस्त विश्व में समाजवाद का प्रभाव दिखाई दिया। भारत भी इससे अछूता नहीं रह सका।[53] क्रान्तिकारी आन्दोलन भी इस युग में अपने पूर्ण वेग से चला। इन आन्दोलनो का मुकाबला करने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य भी अपनी पूर्ण दमन शक्ति के साथ सामने आया। लेकिन भारतीय स्वाधीनता के दीवानों पर इस दमन का कोई प्रभाव नहीं हुआ। वे अपनी मातृभूमि के पैरों की बेड़ियाँ तोड़ने के लिए आत्म-त्याग, बलिदान और आत्मशक्ति के माध्यम से प्रयत्नशील रहे। आर० पी० दत्त के अनुसार, "1914-18 के प्रथम महायुद्ध से और उसके बाद सारी दुनिया पर जो क्रान्ति की लहर छा गई थी, उससे दूसरे सभी उपनिवेशों की तरह हिन्दुस्तान में भी बड़े-बड़े परिवर्तनों का युग आरम्भ हुआ। 1919-22 में बड़े - बड़े

53- पं० जवाहर लाल तथा अन्य नेताओं ने भारत के द्वारा समाजवाद को स्वीकार किये जाने पर बल दिया था।

जनान्दोलनों से भारत हिल उठा और विश्वव्यापी आर्थिक संकट के बाद जिसका हिन्दुस्तान पर बहुत असर पड़ा । 1930-34 में और भी जोरों से जनान्दोलनों की लहर आई । ब्रिटिश हुकूमत इन उठते हुए राष्ट्रीय आन्दोलनों का मुकाबला बारी-बारी से सुधार और दमन के जरिये करती थी ।"[54]

युद्ध के बाद विश्व आर्थिक संकट ने भारतीय जनजीवन को बहुत प्रभावित किया । इसका अत्यन्त घातक प्रभाव भारतीय किसानों पर पड़ा । किसान लगान देने में असमर्थ था, इसके लिए उसे जमींदारों की ज्यादतियों को सहना पड़ता था । जमींदारों के इस कार्य में शासन का पूर्ण सहयोग होता था । अपनी निर्धनता तथा दयनीय स्थिति के कारण किसान विद्रोह करने के लिए उठ खड़ा हुआ । डॉ० धर्मपाल सरीन इस सम्बन्ध में लिखते हैं " निर्धन किसान लगान भी न दे सकता था । लगान की वसूली के लिए जमींदार की नृशंस ज्यादतियाँ, शासन के अनाचार और सरकारी कर्मचारीगण की धाँधली के प्रति किसान विद्रोह के लिए विवश हो उठा ।"[55]

यह युग सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आन्दोलनों का भी युग था । 19वीं शताब्दी में ही अनेक धर्मसुधार आन्दोलन चलाये गये ।

54- आर० पी० दत्त - आज का भारत, पृ० 8
55- धर्मपाल सरीन - हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष, प्रथम संस्करण, 1973, पृ० 73

राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे, श्रीमती एनी बेसेंट जैसे लोग इस दिशा में कार्य कर चुके थे। यद्यपि अंग्रेजों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया था लेकिन उनका यह कार्य भारतीय राष्ट्रीय अपेक्षाओं को पूर्ण सन्तुष्ट नहीं कर सका था। वास्तव में अंग्रेजों की नीति भारतीयों को विभाजित करने की ही रही। इस दृष्टि से उन्होंने सम्प्रदाय पर आधारित निर्वाचन को 1909 ई० के एक्ट द्वारा लागू किया, साथ ही उन्होंने नवीन शिक्षा के माध्यम से भारतवासियों का एक ऐसा वर्ग खड़ा करने का प्रयास किया जो शरीर से तो भारतीय हो लेकिन मन और मस्तिष्क से अंग्रेज। गान्धी जी ने अंग्रेजों की इस कूटनीति को समझ लिया था। उन्होंने साम्प्रदायिक एकता के क्षेत्र में अथक प्रयास किया। उन्होंने उन भारतीय लोगों के हृदय परिवर्तन के लिए भी प्रयास किया जो अंग्रेजों की जी हुजूरी करते तथा अपने भाई-बन्धु भारतवासियों पर अनेक अत्याचार करते थे। गान्धी जी ने अन्य अनेक सामाजिक कुरीतियों, यथा अन्ध-विश्वास, मतमतान्तरों एवं धार्मिक आडम्बरों, छुआछूत, अनमेल विवाह के विरूद्ध तथा नारी उत्थान के लिए अनेक प्रयास किये। प्रेमचन्द गान्धी जी से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। उन्होंने गान्धी जी के कार्यक्रमों तथा आन्दोलनों को अपनी कृतियों में स्थान दिया। डॉ० महेन्द्र भटनागर

के अनुसार " देश में स्वाधीनता के विचारों का प्रचार उन्होंने साहित्य के माध्यम से उतने ही जोरों से किया जितना कि सक्रिय राजनीति में सत्य व अहिंसा के द्वारा गान्धी जी ने । "[56] प्रेमचन्द और गान्धी जी के सिद्धान्त और कार्यप्रणाली एक सी थी । गान्धी जी ने जिस प्रकार अंग्रेजी अत्याचारी शासन और कानून का विरोध किया, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार, कृषकों की दशा में सुधार, सत्य व अहिंसा का प्रयोग करने का प्रयास किया उसी प्रकार प्रेमचन्द ने भी अपने साहित्य में गान्धीवादी कार्यक्रमों एवं आन्दोलनों को सम्मिलित करने का प्रयास किया ।

प्रेमचन्द का युग जनता के राष्ट्रीय संघर्ष का युग था । यह पूरा युग अंग्रेजों के अत्याचारों के विरूद्ध आन्दोलन, सामाजिक सुधार, चरखा प्रचार एवं साम्प्रदायिक सौहार्द का युग था । मजदूरों और किसानों के हितों की ओर राष्ट्रीय नेताओं का अधिकाधिक ध्यान आकृष्ट हुआ । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यह युग स्वाधीनता की भावना के चरमोत्कर्ष का युग था । इस युग में साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में युगीन समस्याओं को अंकित करने का प्रयास किया उनका हल ढूँढने का प्रयास किया । प्रेमचन्द युग मुख्य रूप में गान्धीजी से प्रभावित युग था । स्वाभाविक रूप में प्रेमचन्द

56- डा0 महेन्द्र भटनागर - समस्या-मूलक उपन्यासकार, प्रेमचन्द, पृ0 77

की रचनाओं पर गान्धी जी के विचारों की छाप दिखाई देती है ।
फिर भी इस युग के साहित्यकारों ने, विशेष रूप में प्रेमचन्द ने जो गान्धी जी के परम भक्त थे, गान्धीवादी सिद्धान्तों एवं कार्यक्रमों का अन्धानुकरण नहीं किया । जैसा कि प्रेमचन्द के सम्बन्ध में अमृतराय ने लिखा है " वे गरम दल के पक्षपाती थे । छोटे-छोटे सुधारों से उन्हें सन्तोष न था । क्रान्तिकारियों से उन्हें सहानुभूति थी । खुदीराम बोस का चित्र उनके कमरे में टंगा रहता था ।"[57] यही नहीं उन्होंने गान्धीवादी सिद्धान्तों एवं कार्यक्रमों को अन्तिम सत्य नहीं समझा था । यदि ऐसा होता तो वे मार्क्सवादी विचारधारा के विरोधी होते । यह सत्य है कि गान्धी जी द्वारा चलाये गये प्रत्येक आन्दोलन को उन्होंने अपनी साहित्यिक रचनाओं द्वारा प्रोत्साहित किया । लेकिन साथ ही उनकी कुछ रचनाओं में क्रान्तिकारी तथा समाजवादी विचारों का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है ।

इस युग के अनेक लेखकों ने युगजीवन को अत्यन्त कुशलता के साथ अपनी रचनाओं में प्रदर्शित किया है तथा साथ ही युगीन समस्याओं का हल भी ढूँढने का प्रयास किया है । इस युग के लेखकों ने भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के लेखकों की परम्परा से हटकर एक नवीन परम्परा का शिलान्यास किया । इससे पहले के साहित्य का सृजन मनोरंजन प्रधान

57- अमृतराय - प्रेमचन्दः कलम का सिपाही, 1962, पृ0 97-98

होता था जीवन की वास्तविकता से उसका मुख्यत: सम्बन्ध नहीं होता था। प्रेमचन्द युग में वास्तविक जीवन को साहित्य में स्थान दिया गया। इस युग की भावनाओं की अभिव्यक्ति कई लेखकों की रचनाओं में मिलती है। जिनमें प्रमुख रूप से प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद को लिया जा सकता है।

प्रेमचन्द युग की रचनाएँ :

उपन्यास -

उपन्यास वास्तविक जीवन के आधार पर ही लिखित काल्पनिक कथाएँ होती हैं। अत: उन उपन्यासों को उपन्यास नहीं कहा जा सकता जिसमें वास्तविक से परे किसी घटना को स्थापित किया गया है। अत: वास्तविक अर्थों में उपन्यास का पूर्ण विकास प्रेमचन्द युग से ही होता है। क्योंकि इस युग के उपन्यासों में ही वास्तविक जीवन के दर्शन होते हैं। इस सम्बन्ध में शिवनारायण श्रीवास्तव का कथन है, " सामाजिक यथार्थ की कठोर-भूमि पर खड़े होकर इस युग में हिन्दी उपन्यास ने वास्तविक अर्थों में अपने युग का प्रतिनिधित्व किया।"[58]

58- शिवनारायण श्रीवास्तव - हिन्दी उपन्यास {ऐतिहासिक अध्ययन} पृ० 57

इस युग में जिन उपन्यासों की रचना की गई उनके नाम मुख्यत: है - प्रेमचन्द - सेवासदन (1918), प्रेमाश्रम (1922), रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926), वरदान (1921) कर्मभूमि "(1933), गबन (1931), गोदान (1936), प्रतिज्ञा (1929), मंगलसूत्र (अपूर्ण (चतुरसेन शास्त्री - आत्मदाह (1935) हृदय की परख (1918) , हृदय की प्यास (1932) अमर अभिलाषा (1932) प्रताप नारायण श्रीवास्तव - विदा (1929), बेचनशर्मा " उग्र " - चन्द हसीनों के खतूत (1925), दिल्ली का दलाल (1927), मनुष्यानन्द (बुधुआ की बेटी) (1928), शराबी (1930), ऋषभचरण जैन - सत्याग्रह (1930), वेश्यापुत्र(1929), गदर (1930), जैनेन्द्र - परख (1929) सुनीता (1935), सियाराम शरण गुप्त - गोद (1932), अन्तिम आकांक्षा (1934), वृन्दावन लाल वर्मा - संगम (1928), लगन (1929), प्रत्यागत (1929), कुण्डली - चक्र (1932), अचल मेरा कोई, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, मृगनयनी, राधिकारमण प्रसाद सिंह-राम-रहीम (1936) , दुर्गाप्रसाद खत्री - रक्त-मण्डल (1926), प्रतिशोध (1925), सुफेद शैतान (1934), सुदर्शन -परिवर्तन (1926), अनन्तगोपाल शेवड़े - ज्वालामुखी, धनीराम प्रेम-मेरा देश (1936) इत्यादि ।

नाटक -

प्रेमचन्द युग में नाटकों के माध्यम से राजनीतिक और सामाजिक

चेतना को पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त हुई । यद्यपि भारतेन्दु युग से ही इस चेतना का जागरण हो चुका था । लेकिन इसको व्यक्त करने की वाणी अत्यन्त शिथिल थी । द्विवेदी युग में इस वाणी को बल प्राप्त हुआ लेकिन अभी भी नाटककार अपने पूर्ववर्ती लेखको के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये थे । उन्होंने सीमित रूप में युगीन समस्याओ को अपने नाटकों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया । प्रेमचन्द युग में ही नाटको में युगीन समस्याओ को अधिकाधिक मात्रा में स्थान देने का प्रयास किया गया । इस युग में जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी जैसे नाटककारों ने राष्ट्रीय समस्याओं पर अनेक नाटको की रचना की । जिससे प्रेमचन्द युग राष्ट्रीय नाटकों के धन से परिपूर्ण हो गया ।

प्रेमचन्द युग के नाटकों में निम्नलिखित नाटककारों के नाटक महत्वपूर्ण है :-

जयशंकर प्रसाद - राज्यश्री, विशाख §1921§, अजातशत्रु §1922§, कामना §1927§, जनमेजय का नागयज्ञ §1926§, स्कन्दगुप्त §1928§, एक घूँट §1930§, चन्द्रगुप्त §1931§. ध्रुवस्वामिनी § 1933§, हरिकृष्ण प्रेमी-स्वर्ण विहान §1930§, शपथ, रक्षाबन्धन §1934§, प्रकाश स्तम्भ, पाताल विजय §1936§, मित्र, लक्ष्मीनारायण मिश्र - अशोक §1927§, सन्यासी §1929§ मुक्ति का रहस्य §1932§, राक्षस का

मन्दिर § 1932§, राजयोग § 1934§, सिन्दूर की होली §1934§, आधी रात §1934§, मृत्युंजय, जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द - प्रताप प्रतिज्ञा § 1929§, सुदर्शन- चन्द्रगुप्त §1928§, राजपूत की हार, आनरेरी मेजिस्ट्रेट §1926§, वेन चरित्र, दुर्गावती § 1925§ इन्द्र वेदालंकार - स्वर्ण देश का उद्धार, चन्द्रशेखर पाण्डेय - कराल चक्र, प्रेमचन्द - कर्बला, संग्राम § 1922§, दशरथ ओझा - चित्तौड़ की देवी §1928§, प्रियदर्शी सम्राट अशोक §1935§ चतुरसेन शास्त्री- उत्सर्ग §1929§, अमरसिंह, राजसिंह, हरिहर प्रसाद - भारत-पराजय, पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र"- महात्मा ईसा § 1922§, उदयशंकर भट्ट - दाहर अथवा सिंध पतन §1933§, विक्रमादित्य §1929§, दाऊदयाल गुप्त - भयंकर पतन, ईश्वरी प्रसाद वर्मा - कृषक दुर्दशा §1922§, राधास्वामी सहाय - स्वराज्य, ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान-गुलामी का नशा, कन्हैयालाल मिश्र - देश-दशा वा प्रेमयोगी, सियाराम शरण गुप्त - पुण्य पर्व, सेठ गोविन्ददास - सेवापथ, सिद्धान्त स्वातन्त्र्य §1932§, प्रकाश §1934§, हर्ष §1935§, त्याग या ग्रहण , वृन्दावनलाल वर्मा - विराटा की पद्मिनी § 1936§, लगन §1929 § प्रत्यागत §1929§, कुण्डलीचक्र §1932§ इत्यादि ।

<u>कहानी</u> -

प्रेमचन्द युग में कहानी का भी अभूतपूर्व विकास हुआ । यद्यपि

द्विवेदी युग में कहानी का आरम्भ हो चुका था लेकिन इसका श्रेय प्रेमचन्द युग के दो प्रमुख कहानीकारों - प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद को है। प्रेमचन्द ने द्विवेदी युग में ही वास्तविक जीवन पर आधारित कहानियाँ लिखना आरम्भ कर दिया था। लेकिन प्रेमचन्द की कहानियो का पूर्ण निखार प्रेमचन्द युग में ही दिखाई पड़ता है। क्योंकि प्रेमचन्द युग न केवल भारत में गान्धी के आगमन से वरन् विश्व में समाजवाद के प्रभाव के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण युग था। गान्धीवाद और समाजवाद दोनों ही स्वतन्त्रता और समानता का समर्थन करते है। जीवन में स्वतन्त्रता और समानता का विशेष महत्व होता है। अतः पराधीन देश में रहने वाले व्यक्ति के लिए इन सिद्वान्तों से प्रभावित होना स्वाभाविक ही था। इस युग में जो कहानियाँ लिखी गई उन पर गान्धीवाद और समाजवाद का मुख्य रूप से प्रभाव पड़ा।

इस युग में लिखी गई प्रमुख कहानियाँ निम्नलिखित है -

प्रेमचन्द कहानी संग्रह - समर यात्रा, सप्त सरोज, नवनिधि, प्रेमपच्चीसी, प्रेम पूर्णिमा, प्रेम द्वादशी, प्रेमतीर्थ, सप्त सुमन, प्रेम प्रसून आदि। प्रेमचन्द की लगभग सभी कहानियाँ मानसरोवर। से 8 भाग में संग्रहीत है, जयशंकर प्रसाद - प्रतिध्वनि (1926), आकाशदीप (1929), आँधी (1931), इन्द्रजाल (1936), विश्वम्भर नाथ शर्मा " कौशिक "

गल्पमन्दिर, चित्रमाला § दो भाग §, प्रेम प्रतिमा, मणिमाला, कल्लोल, सुदर्शन - सुदर्शन सुधा, सुदर्शन सुमन, तीर्थयात्रा, पुष्पलता, गल्पमंजरी, सुप्रभात , परिवर्तन, पनघट, पाण्डेय बेचनशर्मा "उग्र"- चिनगारियाँ §1923§, शैतान मण्डली §1924§, इन्द्र धनुष §1937§, बलात्कार § 1927§, चाकलेट §1928§, दोजख की आग §1929§ , भगवतीचरण वर्मा - इन्स्टालमेंट §1936§, राहुल सांस्कृत्यायन -सतमी के बच्चे §1935 §, चतुरसेनशास्त्री - अक्षत, रजकण इत्यादि ।

प्रेमचन्द युगीन साहित्य में मुख्य रूप से गान्धीवाद का प्रभाव देखने को मिलता है । इस युग में गान्धी जी का प्रभाव मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गहराई के साथ पड़ा था । गान्धी जी ने सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बाँधा । उन्होने भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में भारत के हर वर्ग के लोगो की भूमिका का महत्व समझा । अतः इस युग में साहित्यकार भी अपनी रचनाओं में गान्धीवादी आदर्शों एवं प्रेरणाओं से युक्त हो गया तथा उसने भी अपनी कलम रूपी तलवार लेकर भारतीय स्वाधीनता के लिए योगदान करना अपना कर्तव्य समझा ।

(द) प्रेमचन्दोत्तर युग §1936 के पश्चात §-

प्रेमचन्दोत्तर युग भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के लिए एक महत्वपूर्ण युग था । इस युग में 1857 से भारतीय स्वाधीनता के लिए जो

प्रयास किये गये उनका परिणाम भारतीय स्वाधीनता के रूप में प्राप्त हो सका । इसी युग में द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ जिसमें भारतवासियों से बिना राय लिये भारत को अंग्रेजो द्वारा सम्मिलित कर लिया गया । जिससे देश में असन्तोष की लहर फैल गई, कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने इस्तीफा दे दिया तथा जनता ने देश को स्वतन्त्र कराने का प्रण किया । 1942 के अगस्त आन्दोलन द्वारा समस्त भारत की जनता अंग्रेजों के विरूद्ध उठ खड़ी हुई । जिससे अंग्रेजी राज्य की नींव तक हिल गई । 1945 ई0 में नाविक विद्रोह भी हुआ जिससे यह स्पष्ट हो गया कि सेना में भी अंग्रेजी शासन के विरूद्ध असन्तोष की भावना थी । अतः उन्होंने 15 अगस्त 1947 ई0 को भारत को स्वाधीन कर देना ही उचित समझा । लेकिन इसबीच साम्प्रदायिक दंगों का भी तांडव नृत्य चलता रहा । पाकिस्तान की मांग को लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए ।

इस युग में गान्धीवादी सिद्धान्तों का प्रभाव कम होने लगा था । इस समय गान्धीवाद को अव्यवहारिक समझ कर राष्ट्रीय आन्दोलनकारियों ने समाजवाद और क्रान्तिवाद का आश्रय लिया था । सुभाषचन्द्र बोस के व्यक्तित्व का भी राष्ट्रीय आन्दोलन पर अत्यधिक गहरा प्रभाव पड़ा था । सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेसी नीति से असन्तुष्ट थे । अतः उन्होंने फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की थी तथा आज़ाद हिन्द फौज

के माध्यम से विदेशों में जाकर अंग्रेजी साम्राज्यवाद को समाप्त करने का प्रयास किया ।

कांग्रेसी आन्दोलन में हुए इस मोड़ का प्रभाव भारतीय हिन्दी साहित्यकार पर भी पड़ा । इस युग में जो साहित्यिक रचनाएँ की गई, उन पर युगीन परिस्थितियों का अत्यधिक मात्रा में प्रभाव परिलक्षित होता है । इस पूरे समय के आन्दोलन की प्रत्येक घटना तत्कालीन साहित्य में दृष्टिगोचर होती हैं । अनेक साहित्यकार स्वयं भी राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग ले रहे थे । अतः साहित्य और जीवन का पूर्ण समन्वय इस युग में हो गया था । अतः इस युग में लिखे गये उपन्यास, नाटक और कहानी में युगीन परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप में देखी जा सकती हैं ।

<u>उपन्यास</u> -

जैनेन्द्र - त्यागपत्र (1937), कल्याणी (1939), अज्ञेय-शेखर, एक जीवनी (1940 तथा 1944), यशपाल - दादा कामरेड (1941), देशद्रोही (1943), पार्टी कामरेड (1946), दिव्या (1945), रामेश्वर शुक्ल "अंचल" - चढ़ती धूप (1945), नई इमारत (1946), उल्का (1947), भगवतीचरण वर्मा - टेढ़े-मेढ़े रास्ते (1946), मन्मथनाथ गुप्त - जययात्रा (1938), ज़िच (1946), राधिकारमण प्रसाद सिंह -

पुरूष और नारी §1939§, गाँधी टोपी §1938§, संस्कार §1942§, राहुल सांस्कृत्यायन - जीने के लिए §1940§, भागो नहीं बदलो §1944§, इलाचन्द्र जोशी - निर्वासित §1946§, मुक्तिपथ, जहाज का पंछी, सन्यासी §1941§, पाण्डेय बेचनशर्मा "उग्र" - सरकार तुम्हारी आँखो में § 1937§, गुरूदत्त - स्वाधीनता के पथ पर §1942§, विश्वम्भर नाथ शर्मा " "कौशिक" -संघर्ष § 1945§ , भगवती प्रसाद बाजपेयी - निमन्त्रण §1942§, यज्ञदत्त शर्मा - दो पहलू §1940§ इत्यादि ।

नाटक -

उपेन्द्रनाथ अश्क - जय पराजय §1937§, स्वर्ग झलक, छटा बेटा §1940§, कैद §1945§, उड़ान §1946§, सेठ गोविन्ददास - कर्ण §1942§, शशिगुप्त §1942§, हिंसा और अंहिसा §1940§, विकास §1941§, सन्तोष कहाँ §1941§, कर्तव्य, लक्ष्मी नारायण मिश्र - अपराजित, चक्रव्यूह, हरिकृष्ण प्रेमी - आहूति §1940§, स्वप्न-भंग §1940§, प्रतिशोध §1937§, शपथ, शिव साधना §1937§, उद्धार, प्रकाश स्तम्भ, विषपान §1945§, बन्धन §1940§, छाया §1941§ , मातृभूमि का मान, यह मेरी जन्म भूमि है, पश्चाताप, गोविन्द बल्लभ पन्त - सुहाग बिन्दी §1940§, ययाति §1947§, राजमुकुट, वृन्दावनलाल वर्मा,- धीरे - धीरे §1939§, सुदर्शन - सिकन्दर,

डॉ0 सत्येन्द्र - मुक्तियज्ञ, जीवन यज्ञ, लक्ष्मी नारायण मिश्र - गुरूड़ ध्वज, मिश्रबन्धु - शिवाजी, ईशानवर्मन, रूपनारायण पाण्डेय - छत्रपति शिवाजी, व्यथित हृदय - पुण्यफल, "उग्र" - गंगा का बेटा, अन्नदाता, दाऊ दयाल गुप्त - देश के दुर्दिन, उदयशंकर भट्ट - सगर विजय, अन्तहीन अन्त, किशोरी दास बाजपेयी - द्वापर की राज्यक्रान्ति, राजकुमार वर्मा शिवाजी, (1945), रामनरेश त्रिपाठी - वफाती चाचा इत्यादि ।

<u>कहानी</u> -

अज्ञेय - विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदोल, अमरवल्लरी, ये तेरे प्रतिरूप, यशपाल - पिंजड़े की उड़ान, वो दुनिया, ज्ञान दान, अभिशप्त, तर्क का तूफान, भस्मावृत्त चिनगारी, फूलों का कुर्ता, उत्तमी की माँ, सच बोलने की भूल, इलाचन्द जोशी - खण्डहर की आत्माएँ, डायरी के नीरस पृष्ठ, आहुति, दीवाली, विष्णु प्रभाकर - भाई साहब, हरीश पाण्डेय, मुक्ता, दीप जले ये घर-घर, क्रान्तिकारी, पुष्पाभारती - इन्कलाब ( ) रमेश्वर शुक्ल "अंचल" - कहानी - हत्यारा ( ), जैनेन्द्र (कहानी) अपना - अपना भाग्य ( ), फाँसी, स्पर्द्धा, वातायन, पाज़ेब, जयसन्धि आदि ।

प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग के साहित्य को देखते हुए

यह ज्ञात होता है कि इन युगों में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और हिन्दी साहित्य में कितना साम्य स्थापित हो गया था । जहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं से प्रभावित होकर साहित्यकार उन घटनाओं को आधार बनाकर साहित्य-सृजन का कार्य कर रहा था वहीं तदयुगीन साहित्य से प्रभावित होकर जनता राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण प्रस्तुत कर रही थी । इस सम्बन्ध में डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव एवं हरेन्द्र प्रताप सिन्हा के कथन का उल्लेख किया जा सकता है कि इस काल में "एक ओर देश के राजनीतिक नेताओ ने परतन्त्रता से मुक्ति पाने के लिए देशवासियों को जागरण का सन्देश दिया तो दूसरी ओर साहित्यकारो ने भी जनता में नाटक, उपन्यास, कहानी ....आदि विधाओं द्वारा जागरण का मन्त्र फूँका । "59

59- डॉ0 जे0 पी0 श्रीवास्तव एवं हरेन्द्र प्रताप सिन्हा - हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1965, पृ0 58

हिन्दी उपन्यास

साहित्य की विभिन्न विधाओं में उपन्यास का स्थान वर्तमान युग में महत्वपूर्ण बना हुआ है । इसका कारण यह है कि उपन्यास वैज्ञानिक युग की उपज है । वह यथार्थ का वाहक है । आज के जटिल एवं संश्लिष्ट जीवन को सफल अभिव्यक्ति देने के लिए उपन्यास का जन्म हुआ ।"[1] उपन्यास में यथार्थ चित्रण ही उपन्यासकार को युगपरिवेश से पूर्ण रूप में जोड़ देता है । वह अपने युग में घटित होने वाली घटनाओं का बड़ा सूक्ष्म निरीक्षण एवं परीक्षण करता है तथा इन घटनाओं से प्रभावित होकर अपने मस्तिष्क में उठने वाली भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास करता है । इस प्रकार की अभिव्यक्ति उपन्यास के माध्यम से ही सर्वाधिक शक्तिशाली ढंग से हो सकती है । यद्यपि यह सत्य है कि साहित्य का सम्बन्ध जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से होता है और श्रेष्ठ साहित्य वही है जो सफलतापूर्वक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं को अभिव्यक्ति दे सके । तथापि भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से जनता के मनोरंजन का प्रयास किया और इस हेतु तिलस्मी, ऐयारी पर आधारित उपन्यासों की रचना की । इस आधार पर ऐसे उपन्यासों को श्रेष्ठ साहित्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता । क्योंकि उपन्यास का उद्देश्य जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से समाज को अवगत कराना तथा समाज की

1- डा० पारसनाथ मिश्र - मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1972, पृ० 160

उन्नति में सहायता प्रदान करना होता है । " जीवन की समग्रता को लेकर युगीन समस्याओं के विविध पक्षों को स्पष्ट करने का प्रयास सर्वप्रथम प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में ही मिलता है । जो अपने युग के एक प्रकार से दिशा निर्देशक है । "[2] प्रेमचन्द ही प्रथम लेखक थे जिन्होंने राष्ट्रीय समस्याओं के साथ ही साथ तद्युगीन सामाजिक समस्याओं को भी अपने उपन्यासों में एक मौलिक समस्या के रूप में स्वीकार किया । उन्होंने अपने साहित्य की मूल प्रेरणा तत्कालीन युग से ग्रहण की ।"[3] उनका युग गान्धी-युग के नाम से अधिक प्रसिद्ध है । जिस युग में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया मोड़ प्राप्त हुआ । गान्धी जी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय चेतना साक्षात् समक्ष आ खड़ी हुई । यह एक ऐसा युग था । जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन शहरों की परिधि को लाँघ कर गाँवों में जा पहुँचा । प्रेमचन्द जिन्होंने, ग्रामीण जीवन का अनुभव किया था, किस प्रकार इस लहर से अप्रभावित रह पाते । परिणामस्वरूप जन-नेताओं की ही तरह प्रेमचन्द भी लेखनी रूपी तलवार को हाथ में लेकर स्वातन्त्र्य संघर्ष में सम्मिलित हो गये । उन्होंने स्वातन्त्र्य संग्राम का यथार्थ अंकन अपने उपन्यासों में करने का सफल प्रयास किया ।

" प्रेमचन्द राष्ट्रीय आन्दोलन से पूर्णतः प्रभावित उपन्यासकार थे । राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों पर उनकी दृष्टि लगी रहती थी ।"[4]

2- प्रो० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य:नये संदर्भ, इलाहाबाद 1966, पृ० 260-61

3- रामदीन गुप्त : प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ० 73, तथा डॉ० धर्मपाल सरीन हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष पृ० 70

4- अमृतराय- प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, इलाहाबाद , 1962, पृ० 97

उनका युग जहाँ गरम-दल और नरम-दल के मतभेद का युग था । वहीं गान्धी जी के कांग्रेस आन्दोलन का भी युग था । वे गरमदल के पक्षपाती थे । छोटे-छोटे सुधारों से उन्हें सन्तोष न था । क्रान्तिकारियों से उन्हें सहानुभूति थी । खुदीराम बोस का चित्र उनके कमरे में लगा रहता था ।"[5] दूसरी ओर गान्धी जी का अमिट प्रभाव भी उनके जीवन पर पड़ा । उन्होंने स्वयं कहा था कि " दुनिया में मैं महात्मा गान्धी को सबसे बड़ा मानता हूँ उनका भी उद्देश्य यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हों । वह हम लोगों को बढ़ाने के लिए आन्दोलन मचा रहे हैं । मैं लिखकर के उनको उत्साह दे रहा हूँ ।"[6] देश में स्वाधीनता के विचारों का प्रचार उन्होंने साहित्य के माध्यम से उतने ही जोरों से किया जितना कि सक्रिय राजनीति में सत्य व अहिंसा के द्वारा गान्धी जी ने । "[7] प्रेमचन्द और गान्धी जी भारत के समकालीन राष्ट्र योद्धा हैं । इन दोनों का आगमन उस समय होता है जब सोये हुए देश में जागरण की पौ फट चुकी थी, परन्तु देशवासी अन्ध-विश्वासों, रूढ़िग्रस्तताओं, आर्थिक शोषण, शैक्षिक कुप्रवृत्तियों एवं मानसिक दुर्बलताओं के कारण सुप्रभात के साथ कदम मिलाकर चलने में असमर्थता का बोध कर रहे थे ।"[8] यही समय था जब प्रेमचन्द ने वयस्क होकर सामाजिक कुरीतियों,

---

5- वही, पृ0 98 तथा शिवरानी देवी - प्रेमचन्द घर में, आत्माराम एण्ड सन्स, पृ0 47 ।

6- शिवरानी देवी- प्रेमचन्द घर में, पृ0 95 ।

7- डॉ0 महेन्द्र भटनागर - समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ0 77 ।

8- डॉ0 सीताराम झा - स्वातन्त्र्य संग्राम और हिन्दी उपन्यास, हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1972 पृ0 180

आर्थिक अत्याचारों एवं राजनीतिक परतन्त्रता के विरुद्ध कलम उठाई । "[9] इसीलिए एक बार उन्होंने बनारसीदास चतुर्वेदी जी को लिखा था कि " सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों . . . साहित्य और स्वदेश के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहता हूँ ।"[10] प्रेमचन्द राष्ट्र को समर्पित लेखक थे जिन्होंने राष्ट्र के उत्थान एवं उद्धार के लिए अथक प्रयास किया । उन्होंने न केवल अपने युग से ग्रहण ही किया वरन् उन्होंने अपने युग और समाज को अपनी साहित्य रूपी निधि से लाभान्वित भी किया । क्योंकि किसी भी साहित्यकार के साहित्य की कसौटी यह होती है कि वह अपने युग और समाज को क्या देता है । इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने युग तथा आने वाले युग के साहित्यकारों के लिए एक मार्ग प्रशस्त किया कि उनका साहित्य एक सजीव साहित्य बन सके । यही कारण है कि प्रेमचन्द और उनके उपरान्त अधिकांश लेखकों ने अपने वर्तमान समाज तथा परिस्थितियों के अनुरूप अपने साहित्य का सृजन किया । उस युग के, जिसकी सबसे बड़ी वास्तविकता भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन था, जिसका नेतृत्व गान्धी जी कर रहे थे । इस प्रकार गान्धी युगीन हिन्दी गद्य साहित्य राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत माना जा सकता है ।

डॉ० सत्येन्द्र के मत में गान्धीयुगीन उपन्यासों का युग दो भागों में सहज ही बंट सकता है - एक भाग वह जो गान्धीवाद से प्रभावित है दूसरा

9- महेन्द्र चतुर्वेदी - हिन्दी उपन्यास: एक सर्वेक्षण , पृ0 47 ।

10- शची रानी गुर्टू / प्रेमचन्द और गोर्की, पृ0 41 ।

जो समाजवाद से प्रभावित है । "[11] परन्तु सम्भवत: यहाँ पर डा० सत्येन्द्र ने समाजवाद और क्रान्तिकारी एवं आतंकवादी आन्दोलन को एक मान लिया है, जो कि उचित प्रतीत नहीं होता । क्योंकि समाजवाद और क्रान्तिवाद या आतंकवाद में मौलिक भेद होता है। उनकी मान्यताएँ पृथक होती है । अत: गान्धीयुगीन उपन्यासों को तीन श्रेणियों में बाँटा जाना श्रेयस्कर प्रतीत होता है अर्थात् गान्धीवाद , समाजवाद और क्रान्तिकारी आन्दोलन से प्रभावित उपन्यास । यद्यपि उपन्यासों को उपर्युक्त तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है तथापि सबसे अधिक प्रभाव इस युग के उपन्यासों पर गान्धीवादका पड़ा है। गान्धीवाद का प्रभाव तद्‌युगीन साहित्य पर इतना अधिक पड़ा कि उस युग को ही गान्धीयुग की संज्ञा प्रदान कर दी गई । गान्धीयुग की सबसे मुख्य विशेषता यह थी कि गान्धी जी के नेतृत्व में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सर्वप्रथम एक संगठित जन - आन्दोलन का व्यापक स्वर मुखरित हुआ । जो कि वास्तव में एक आधुनिक भारतीय इतिहास का प्रारम्भ था ।[12]

" उपन्यासों में गान्धीवाद दो रूपों में दृष्टिगोचर हुआ है - राष्ट्रीय समस्याओं के रूप में और सामाजिक समस्याओं के रूप में । "[13] गान्धीयुगीन हिन्दी साहित्यकारों ने गान्धी जी के साथ-साथ सर्वप्रथम इस बात का आभास किया कि राष्ट्रीय उन्नति एवं स्वाधीनता के लिए आवश्यक है

11- डॉ० सत्येन्द्र - हिन्दी उपन्यास विवेचन, जयपुर 1968, पृ० 64

12- डी०डी० तिवारी -भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष और हिन्दी उपन्यास {1885-1960}, पृ० 87 ।

13- एम०ए० बुच - राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म, प्रथम संस्करण, 1939, बड़ौदा, पृ० । ।

कि सामाजिक उन्नति हो, सामाजिक कुरीतियों को दूर किया जाये। क्योंकि बिना सामाजिक एकता के राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं हो सकती। इसीलिए प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय समस्याओं के साथ ही साथ तद्युगीन सामाजिक समस्याओं को भी अपने उपन्यासों की एक मूलभूत समस्या के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने देश की सामाजिक समस्याओं को राष्ट्रीय संदर्भ में देखने का प्रयास किया।

हिन्दी उपन्यासों पर गान्धीवाद का प्रभाव :

प्रथम महायुद्धोपरान्त भारतीय राजनीतिक गगन पर एक अत्यन्त सुशोभित चमकीला तारा उदित हुआ। जिसने सम्पूर्ण कांग्रेस आन्दोलन को आत्मसात् कर दिया। वह एक ऐसा व्यक्तित्व था जिससे प्रभावित हुए बिना न केवल भारतवासी वरन् ब्रिटिश प्रशासन के लोग भी न रह सके। ऐसे व्यक्तित्व का नाम था महात्मा गान्धी, महात्मा गान्धी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को जो अभी तक दिशाहीन सा बना हुआ था एक नवीन परन्तु सुनिश्चित दिशा दी। अभी तक केवल राजनीतिक प्रश्नों को ही लेकर मुख्य रूप से आन्दोलन की रूपरेखा तैयार की जा रही थी। परन्तु " प्रथम महायुद्ध के उपरान्त कांग्रेस के नेतृत्व में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई जिसके साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक आन्दोलनों का भी जन्म हुआ।[14]

14- लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - हिन्दी साहित्य का इतिहास, बारहवाँ संस्करण, 1975. पृ0 240 ।

ऐसे समय में जब कि सम्पूर्ण देश इन आन्दोलनों से प्रभावित हो रहा था । हिन्दी साहित्यकारों का इनसे अप्रभावित रहना असम्भव ही था । चूँकि साहित्यकार समाज का पर्यवेक्षक होता है अतः उसने अपने समकालीन समाज का अत्यधिक निकटता से पर्यवेक्षण किया तथा राष्ट्रीय एवं सामाजिक आन्दोलन में अपनी लेखनी से योगदान करने का प्रयास किया ।

गान्धी युग राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक नवीन युग था । एक नया प्रयोग था । इस समय सर्वप्रथम बार विपक्षी के हृदय को परिवर्तित करने का प्रयास हिंसा के माध्यम से नहीं वरन् सत्य और अहिंसा के माध्यम से किया गया । इस प्रकार एक नवीन क्रान्ति लाने वाले व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना कोई भी संवेदनशील व्यक्ति कैसे रह सकता था । यही कारण था कि गान्धी जी के भारतीय मंच पर आते ही, जीवन के प्रत्येक पहलू पर उनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ने लगा । वास्तव में " उनका सन्देश सर्वकालीन विश्व के लिए प्रेरणा तथा शक्ति का स्रोत था ।"[15] यही कारण है कि श्री डी० जवारे गौड़ा ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा था कि "ऐसे व्यक्तित्वों के प्रभाव से साहित्य भी नहीं बच सकता ।[16]

भारतीय राष्ट्रीय मंच पर गान्धी जी का आगमन तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी ।

15- डॉ० एच०एम० नायक {सम्पा०}-गान्धी जी इन इण्डियन लिटरेचर, इन्स्टीट्यूट ऑफ कन्नड़ स्टडीज, यूनिवर्सिटी ऑफ मैसूर, मैसूर पृ० । ।

16- वही, पृ० 14 ।

परन्तु वास्तव में गान्धी युग का प्रारम्भ और अन्त किस प्रकार निश्चित किया जाय। यह स्वयं में एक समस्या है। वैसे तो सर्वप्रथम 1917 ई0 में गान्धी जी चम्पारन के किसानों की समस्या के समाधान हेतु जनता के समक्ष आये थे। इसके उपरान्त उन्होंने 1920 ई0 में कांग्रेस में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। तथापि राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता के रूप में अभी वे प्रतिष्ठित नहीं हो सके थे। " गान्धी जी भारतीय मंच पर अपने पूर्ण तेज के साथ 1920-21 ई0 में सत्याग्रह आन्दोलन के समय आये। गान्धी युग को भारतीय इतिहास में 1921 से 1935 तक या यदि वृहद् दृष्टिकोण लें तो 1947 तक मान सकते हैं। [17] डॉ0 नगेन्द्र द्वारा दिया गया गान्धीयुग अधिक उचित प्रतीत होता है। क्योंकि किसी व्यक्ति विशेष के साथ जब किसी युग को समीकृत किया जाता है तो उसके लिए आवश्यक है कि वह व्यक्ति समाज के बहुसंख्यक भाग द्वारा समर्थित हो।

हिन्दी उपन्यासों पर गान्धीवाद का प्रभाव अत्यधिक मात्रा में पड़ने का कारण यही था कि प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग, जो कि गान्धी युग के अन्तर्गत ही आते हैं, के उपन्यासकार गान्धी जी के व्यक्तित्व एवं कार्यक्रमों से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। वास्तव में गान्धी जी ने जीवन के इन सभी क्षेत्रों में आन्दोलन को ला खड़ा किया था। उन्होंने साहित्यकारों

17- वही, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 79 तथा जवाहरलाल नेहरू -ऑटोबायोग्राफी, पृ0 65 ।

के चिन्तनशील मस्तिष्क को अपने विचारों एवं मान्यताओं से अत्यधिक प्रभावित किया और एक स्वतन्त्र राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रेरणाशील साहित्य के निर्माण के लिए प्रेरित किया । पी0 सीतारमैया का कथन इस सन्दर्भ में उचित प्रतीत होता है कि " राष्ट्रीय उत्थान के प्रत्येक आन्दोलन का प्रारम्भ उस पर्यावरण में होता है जिससे वे घिरे होते हैं तथा उनको प्रत्यक्ष रूप में उनमें ढूढा जा सकता है ।"[18]

गान्धी जी ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर को सम्हालने के समय केवल मात्र राजनीतिक प्रश्न को ही महत्ता नहीं प्रदान की यद्यपि समय की पुकार राजनीतिक स्वतन्त्रता ही थी । परन्तु गान्धी जी ने जब उन कारणों को खोजने का प्रयास किया जो कि भारतीय दासता के लिए उत्तरदायी थे तो उनका निष्कर्ष यही था कि भारतीय दासता का कारण साधारण जनता का राष्ट्रीय आन्दोलन से उदासीन रहना है । इसका कारण भारतीय समाज में फैली कुरीतियाँ है। जिसके कारण भारतीय समाज एक नहीं बन पाता है। हिन्दू-मुसलमान में विद्वेष की भावना है, स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार नहीं प्राप्त हैं, जो पढ़-लिख गये हैं वे पाश्चात्य संस्कृति से बड़ा लगाव रखते हैं वे अंग्रेजों के प्रति जी हुजूरी की भावना रखते हैं । किसानों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी है । जमीन्दार उन पर अत्याचार

18- पी0 सीतारमैया - सोशलिज्म एण्ड गान्धीज़्म हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, आन्ध्रा ,पृ0 96 ।

करते हैं । यही कारण है कि भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा गरीबी और आर्थिक परतन्त्रता के बन्धनों में जकड़ा हुआ है । अतः गान्धी जी ने राजनीतिक प्रश्न के समाधान हेतु आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों का भी समाधान ढूंढने का प्रयास किया । इसके पीछे मुख्य उद्देश्य साधारण जनता को भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में सम्मिलित करने का था । क्योंकि गान्धी जी को भारतीय जनता में अपूर्व विश्वास था । उन्होंने अपनी सम्पूर्ण राजनी को उसकी {जनता} संघर्ष-शीलता तथा आत्म-बलिदान की भावना पर आधारित किया । उनमें राजनीतिक क्रियाकलाप के प्रति जागरूकता उत्पन्न की तथा उन्हें संघर्ष में आगे लाये ।"[19]

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों पर गान्धीवाद के प्रभाव को राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है ।

राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक पराधीनता से मुक्ति पाना था ।[20] दो सौ वर्ष पुरानी पराधीनता ने भारतीय जनता तथा उसके विकास को पूर्ण रूप से अवरुद्ध कर दिया था । अतः यदि भारत को विकास के पथ पर अग्रसर होना था तो इसके लिए पराधीनता की बेड़ियों से छुटकारा पाना अत्यन्त आवश्यक था । यद्यपि अभी तक कांग्रेस आन्दोलन का भी लक्ष्य राजनीतिक पराधीनता से मुक्ति का था । परन्तु अभी तक उदारवादी कांग्रेसी नेताओं को अंग्रेजों की न्यायप्रियता में पूर्ण विश्वास था

19- बिपन चन्द्र - नेशनलिज्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, प्रथम संस्करण, ओरियेन्ट लॉगमैनलिमिटेड 1979, नई दिल्ली, पृ0 127

20- डॉ0 महेन्द्र भटनागर - समस्यामूलक उपन्यासकार : प्रेमचन्द, तृतीय संस्करण, पृ0 16 ।

गान्धी जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर सम्हालते ही कांग्रेस के परम्परावादी सिद्धान्तों एवं मान्यताओं में परिवर्तन किया । उनके द्वारा स्वशासन की आवश्यकता पर बल दिया गया तथा इसे राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया । अंग्रेजी शासन को समाप्त करने के लिए सत्याग्रह, असहयोग एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलनों को चलाया । उनका विश्वास अहिंसा के माध्यम से देश की पराधीनता को दूर नहीं किया जा सकता वरन् विपक्षी के प्रति प्रेम और दया दिखाकर उसका हृदय परिवर्तित किया जा सकता है ।

परन्तु गान्धी जी ने भारतीय परतन्त्रता के मूल कारणों को खोजने का प्रयास किया । उन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण किया जिसके परिणामस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारतीय परतन्त्रता का कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद ही नहीं है वरन् भारतीय समाज की अपनी कमियाँ भी हैं । उनके अनुसार भारतीय समाज में फैली कुरीतियों के कारण भारत की जनता एक जुट होकर अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध खड़ी नही हो पाती । इस एकता के अभाव के कारण ही भारतीय परतन्त्रता बनी हुई है । छुआछूत को तो वो एक पाप मानते थे । उन्होंने इसी लिए शूद्रों को हरिजन के नाम से पुकारा । उनका कहना था कि यदि ईश्वर की किसी कृति को छूना अशुद्धता होती है तो ऐसा सोचना भी उनके लिए पाप है।[21]

21- देखिए, धनन्जय कीर - महात्मा गान्धी : पोलिटिकल सेंट एण्ड अनार्म्ड प्रोफेट, बम्बई पापुलर प्रकाशन, 1973, पृ0 300 ।

गान्धी जी ने छुआछूत को हिन्दू धर्म पर एक कलंक के रूप मे माना जिसको मिटाये बिना स्वराज निरर्थक होगा ।[22] उनका कहना था, " मैं पुनः जन्म नही लेना चाहता, परन्तु यदि मेरा वास्तव में पुनर्जन्म हो , तो मैं अछूतो के मध्य में पैदा होना चाहूँगा ताकि मैं उनके कष्टो को बाँट सकूँ और उनकी स्वतन्त्रता के लिए काम कर सकूँ ।[23] उनका यह मानना था कि भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में केवल मात्र शहरों के सहयोग से ही सफलता नहीं प्राप्त हो सकती वरन्, इसके लिए गाँवो को भी सम्मिलित करना होगा । उन्होंने गाँवों की ओर चलने का आह्वान किया । परन्तु गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी । छुआछूत, जाँत-पाँत की भावना अत्यन्त प्रबल थी । अत: उनके मत में भारतीय समाज राष्ट्रीय आन्दोलन में अपने समस्त सदस्यों की सेवा नहीं प्राप्त कर सकता है । जिस प्रकार से प्लेटो का मानना था कि स्त्रियों को सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार न प्रदान किये जाने के कारण समाज को इसके लगभग आधे सदस्यों की सेवा से वंचित होना पड़ता है ।[24] गान्धी जी का यह मानना उचित भी था क्योंकि भारतीय समाज अनेक प्रकार के भेदभावों से ग्रसित था। जहाँ एक ओर ऊँच-नीच की भावना के रूप मे छुआछूत की भावना थी, वहीं दूसरी ओर हिन्दुओं

22- देखिये - प्राण चोपड़ा- द सेज इन रिवोल्ट, गान्धी पीस फाउन्डेशन प्रथम सस्करण , पृ0 86

23- वही, उद्धृत । तथा एम0के0 गान्धी-इण्डिया ऑफ माई ड्रीम्स - कम्पाइल्ड बाई आर0के प्रभु, पृ0 127
यंग इण्डिया में गान्धी जी ने कहा था" हममे से हरेक में एक आत्मा है, अत: सभी मनुष्य मूलत: समान हैं । .... हिन्दुओं और अहिन्दुओं को इस सम्बन्ध में कोई अन्तर नहीं ।

24- ग्रीक पालिटिकल थियरी- ई0 बार्कर पृ0 217-225

और मुसलमानों की साम्प्रदायिक समस्या थी । परिणामस्वरूप साम्राज्यवादी शक्ति का मुकाबला संगठित रूप में कर पाना दुष्कर था ।

साम्प्रदायिकता :

गान्धी जी के मत में धर्म के नाम पर उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता की भावना रखना उचित नहीं होता क्योंकि सभी धर्म एक अदृश्य ईश्वर तक पहुँचने के पृथक-पृथक साधन होते हैं । अत: धर्म के पीछे अनेकता नहीं वरन् एकता की भावना होनी चाहिए क्योंकि अन्ततोगत्वा प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य ईश्वर के दर्शन करना ही होता है। इस ईश्वर का अलग-अलग नाम ईश्वर, अल्लाह इत्यादि, से अलग-अलग जगहें जैसे चर्च, मन्दिर, मस्जिद इत्यादि में ईश्वर ,अल्लाह इत्यादि में उपासना की जाती है। अत: गान्धी जी कहते हैं कि यदि यह चिन्ह अथवा प्रतीक उत्कृष्ट और निकृष्ट की भावना को प्रोत्साहित करने वाले हों तो उसका त्याग करना उचित होगा ।[25] वास्तव में यह समस्या साम्प्रदायिक नहीं थी । इसको वो साम्प्रदायिकता रूपी चिन्गारी बनाकर आग लगाने हेतु भड़काया गया था। यह समस्या तो राजनीतिक थी जो कि अंग्रेजों की कूटनीति का परिणाम थी ! वे यह देख चुके थे कि 1857 ई0 की क्रान्ति में हिन्दुओं और मुसलमानों का संगठित विद्रोह कितना भयानक होता है जिससे कि अंग्रेजी

25- प्राण चोपड़ा - द सेज इन रिवोल्ट, प्रथम संस्करण, गान्धी पीस फाउन्डेशन, पृ0 86 ।

साम्राज्य की जड़ तक भारतवर्ष में हिल गई थी, इसके उपरान्त जब कांग्रेस रूपी मंच भारतीयों को मिल गया जहाँ से वे अपनी आवाज ऊँची कर सकते थे । इससे अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति का अनुसरण करना भारत में अंग्रेजी शासन की सुरक्षा के लिए उचित समझा । सुन्दरलाल ने इस सम्बन्ध में उचित कहा है कि " आंग्ल उपनिवेशवाद से पूर्व हिन्दू और मुसलमानों में विरोध की भावना बहुत कम देखने को मिलती है। दोनों के आपस में सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध थे ।[26] अतः गान्धी जी मानववादी होते हुए, जिन्हें मानवता का विनाश सहन नहीं था, किस प्रकार से हिन्दू मुसलमानों के मध्य ईर्ष्या, घृणा तथा शत्रुता को स्वीकार कर लेते । परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि गान्धी जी ने मात्र मानवतावादी होने के कारण इस साम्प्रदायिक समस्या को समाप्त करने का प्रयास किया वरन् उनके लिए भारत वर्ष की दासता भी एक जटिल समस्या के रूप में थी जिसका समाधान वे शीघ्रातिशीघ्र ढूँढना चाहते थे । उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में हिन्दू-मुसलमानों के सहयोग को भारतीयों के अधिकारों की रक्षा हेतु आवश्यक समझा । वहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता से प्रभावित होकर उन्होंने सोचा कि भारत में स्वशासन लाने के लिए भारत में भी हिन्दू-मुस्लिम एकता लायी जानी चाहिए ।[27]

26- सुन्दरलाल - इण्डिया इन बॉन्डेज, कलकत्ता, 1929, पृ0 26 ।
27- आर० सुन्धरालींगम - इण्डियन नेशनलिज्म : एन हिस्टॉरिकल एनालिसिस, पृ० 240-41

राष्ट्रभाषा :

गान्धी जीनेएक राष्ट्रभाषा को भी एक संगठित भारत के लिए अनिवार्य समझा । क्योंकि किसी एक राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्रीयता की भावना अधिक अच्छी प्रकार विकसित नहीं हो पाती । यह सत्य है कि अंग्रेजों के प्रयासों से भारत में अंग्रेजी का प्रचलन सम्पूर्ण भारतवर्ष में हो सका जिससे सभी भारतवासी जो अभी तक भाषागत दृष्टिकोण से एक नहीं हो सके थे, एकता के सूत्र में बंध सके, एक दूसरे के विचारों को समझने में सफल हो सके । परन्तु फिर भी विदेशी शासन और उसकी भाषा तो दासता का ही प्रतीक थी । अतः गान्धी जी ने एक ऐसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयास किया जो कि अधिकांश जनता द्वारा स्वीकार की जा सकती हो । इसलिए उन्होंने अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को स्थापित किये जाने की कामना की ।[28] क्योंकि भारतीय भाषाओ, जिनमे हिन्दी को विशेष महत्व प्रदान किया गया है, के द्वारा ही राष्ट्रीय एकता को लाया जा सकता है । उनका यह विचार था कि एक वास्तविक राष्ट्रीय भाषा राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने हेतु अनिवार्य है ।[29] इसी सम्बन्ध में उन्होंने आगे कहा कि मैं भाषा पर इतना अधिक बल इसलिए दे रहा हूँ क्योंकि यह राष्ट्रीय एकता को प्राप्त करने का एक

28- प्राण, चोपड़ा-द सेज इन रिवोल्ट, प्रथम संस्करण, गान्धी पीस फाउन्डेशन, पृ0 86 ।

29- एम0के0 गान्धी -थॉट्स ऑन नेशनल लैंगुएज, अहमदाबाद, 1961, पृ0 39 ।

शक्तिशाली साधन है और इसे जितना मजबूती के साथ स्थापित किया जायेगा हमारी एकता उतनी ही विस्तृत होगी ।[30] भाषा के सम्बन्ध में यद्यपि गान्धी जी हिन्दी के पक्ष में थे परन्तु उन्होंने मुसलमानों की भावना को ठेस न लगे, इसलिए उर्दू को हिन्दी में मिलाने का प्रयास किया । उनके अनुसार हिन्दी और उर्दू में केवल लिखने का अन्तर होता है बोलने में वे लगभग समान होती हैं अत: उन्होंने हिन्दी और उर्दू को मिलाकर हिन्दुस्तानी भाषा का समर्थन किया जिससे जहाँ एक ओर हिन्दू- मुस्लिम सौहार्द की भावना बढ़ेगी वहीं इसको समझने में किसी को कठिनाई भी नहीं पड़ेगी । भड़ौच में द्वितीय गुजरात शैक्षणिक सम्मेलन में उन्होंने हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न भाषाएं मानने से अस्वीकार कर दिया था । उनके अनुसार भेद केवल लिपि का है ।[31] डॉ० नगेन्द्र के अनुसार भी गान्धी जी ने हिन्दी भाषा की अमूल्य सेवा की जबकि उन्होंने इसे भारत की राष्ट्रीय भाषा घोषित किया । राष्ट्रीय भाषा की उनकी परिभाषा स्वभावत: ही उनके भारतीय राष्ट्र की अवधारणा के अनुकूल थी और इस प्रकार हिन्दी एक विस्तृत भाषा थी जिसे हिन्दुस्तानी कहा जाता है जिसे अनेक उचित स्रोतों से लिया गया तथा जिसमें भारत की मिश्रित संस्कृति का प्रतिफलन होता है ।[32] परन्तु

30- वही, पृ० 53

31- एम०बी० राव - द महात्मा : ए मार्किसस्ट सिम्पोजियम, भाषा-द्वारा सुरेन्द्र गोपाल, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, पृ०121 पर उद्धृत ।

32- डॉ० एच०एम० नायक (सम्पा०)- गान्धी इन इण्डियन लिटरेचर, द्वारा डॉ० नगेन्द्र , हिन्दी प्रथम, इन्स्टीट्यूट ऑफ कन्नड़ स्टडीज, यूनिवर्सिटी ऑफ मैसूर, मैसूर, पृ० 82 ।

इससे यह तात्पर्य नहीं कि उन्होंने हिन्दी भाषा के साथ कोई पक्षपात किया इसका कारण तो केवल इतना था कि गान्धी जी ने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया जिससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि देश की प्रचलित भाषाओंमें हिन्दी का स्थान अपेक्षाकृत उच्चतर है । उनका कहना था कि " मैं हमेशा यह मानता रहा हूँ कि हम किसी हालत में भी प्रान्तीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते । हमारा मतलब तो सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रान्तों के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए हम हिन्दी भाषा सीखें । ऐसा कहने से हिन्दी के प्रति हमारा कोई पक्षपात नहीं प्रकट होता । हिन्दी को हम राष्ट्र भाषा मानते हैं । यह राष्ट्रीय होने के लायक है। वही राष्ट्रीय भाषा बन सकती है, जिसे अधिक संख्यक लोग जानते- बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो । ऐसी भाषा हिन्दी हीहै । [33] अत: गान्धी जी ने हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा का स्थान प्रदान करना श्रेयस्कर समझा और उसको स्वाधीनता संग्राम का एक अंग बना दिया ।

स्त्रियों की दशा :

गान्धी जी मानवतावादी थे । उनके समक्ष सभी मानव समान थे । अत: उन्होंने मानवता के विरुद्ध होने वाले प्रत्येक कार्य का विरोध किया। समाज में प्रचलित उन सभी प्रथाओंकाउन्मूलन करने का प्रयास किया जिनसे मानवता का ह्रास हो रहा था । उन्होंने समाज में प्रचलित छुआछूत

33- मो० क० गान्धी - राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी पृ० 43

जैसी घोर अमानवीय प्रथा का विरोध किया और इसके साथ ही साथ उन्होंने नारी उद्धार का भी बीड़ा उठाया । उन्होंने देखा कि भारतीय समाज में नारियों के साथ अनुचित व्यवहार किया जा रहा था । उनकी शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था जिसका समर्थन मदन मोहन मालवीय जैसे कट्टर हिन्दू ने भी दसवें राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन में किया था । [34] बचपन में ही उनका विवाह करा दिया जाता था, यदि पति मर जाता था तो उन्हें सारा जीवन विधवा होकर बिताना पड़ता था अब गान्धी जी ने इसका विरोध किया। उनके अनुसार "स्वैच्छिक वैधव्य प्रशंसनीय हो सकता है, परन्तु वैधव्य यदि धर्म या प्रथा के द्वारा लागू किया जाय तो यह असहनीय है तथा इससे गुप्त बुराईयाँ एवं पतित धर्म से घर नष्ट हो जाता है। "[35] अतः उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति का जिसके पास बाल - विधवा हों, यह कर्तव्य बताया कि वह उसका विवाह कर दे ।[36]

कृषक समस्या :

गान्धी जी प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष के प्रत्येक पहलू को देखने का प्रयास किया । उन्होंने बीमारी को दूर करने के लिए दी जाने वाली दवाओं का परीक्षण किया । उन्होंने देखा था कि कांग्रेस एक ऐसी संस्था है जिसमें साधारण जनता , गरीब किसानों इत्यादि का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है । जो कांग्रेस के नेता थे वे अंग्रेजों के साथ सहयोग

34- रिपोर्ट, दसवां राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन, पृ0 19, सीताराम सिंह- नेशनलिज्म एण्ड सोशल रिफार्म इन इण्डिया, रणजीत प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली पृ0 124 पर उद्धृत ।

35- एम0के0 गान्धी - वोमन एण्ड सोशल इन्जस्टिस, पृ0 108

36- वही, पृ0 107

की भावना से ही प्रेरित थे, उनके लक्ष्य को जो कि औपनिवेशिक स्वराज्य था. प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किन साधनो को अपनाया जाय इस पर वे कोई निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे थे। दूसरे शब्दो में गान्धी जी से पूर्व कांग्रेस आन्दोलन मूलत: मध्यवर्गीय आन्दोलन था। गान्धी जी ने सर्वप्रथम साधारण जनता के महत्त्व को समझा और राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी भूमिका के महत्व को स्पष्ट किया। उन्होंने शहरों की परिधि को लांघकर गांवों में पदार्पण किया जहाँ पर गरीबी थी, किसान दरिद्र जीवन बिता रहा था, जमींदारो काअत्याचार बड़े जोरों के साथ चल रहा था, [37] मशीन युग के आगमन से कुटीर उद्योग धन्धे नष्ट हो गये थे जिससे गरीबी और बढ़ रही थी। गान्धी जी के अनुसार आधे से अधिक भारत आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त कमजोर है, गरीबी ने उसे अपने जीने के लिए थोड़ा सा भोजन प्राप्त करने तक ही सीमित कर दिया था। वह अपनी गरीबी के कारण अपने परिवार से अधिक कुछ सोच भी नही सकता था। परन्तु सम्भवत: वह यह भूल गया था कि उसकी गरीबी का मुख्य कारण अंग्रेजी शासन ही था और इससे छुटकारा पाने के लिए उसे अंग्रेजी शासन से छुटकारा पाना चाहिए। सम्भ-वत: यही कारण था कि चम्पारन, खेड़ा इत्यादि सत्याग्रह आन्दोलनों के माध्यम से उन्होंने किसानों को यह पाठ सिखाने का प्रयास किया कि

37- देखिये - एफ0 बी0 फिशर -इण्डियारज साइलेंट रिवोल्यूशन पृ0 38 ।

उनके कष्टों के निवारण के लिए अंग्रेजी शासन की समाप्ति आवश्यक है । किसानो ने भी गान्धी जी के नेतृत्व में अपनी आस्था व्यक्त की और प्रथम बार अंग्रेजी शासन के विरूद्ध उन्होंने आन्दोलन में भाग लिया ।[38] उन्होंने गान्धी जी द्वारा चलाये गये सत्याग्रह का आश्रय लिया ।[39] यद्यपि इसमें किसानों को सफलता नहीं प्राप्त हुई और आन्दोलन असफल रहा । फिर भी किसानों को प्रथम बार सत्याग्रह रूपी अहिंसक आन्दोलन का अनुभव हुआ जो कि उन्हें बारडोली के सफल आन्दोलन तक पहुँचा सका।

इसके अतिरिक्त स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन को महत्व प्रदान करके जिसका प्रारम्भ पहले ही हो चुका था, गान्धी जी ने जहाँ एक ओर अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं निष्ठा की भावना को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया वही दूसरी ओर विदेशी अधिपत्य से स्वयं को मुक्त करने की भावना को जागृत किया । स्वदेशी आन्दोलन के द्वारा लोगों को स्वदेशी के उपभोग की प्रेरणा दी गई । जिससे भारतीय लोगों में न केवल आत्मनिर्भरता की भावना जागृत हुई वरन् विदेशी माल पर होने वाले अधिक व्यय से राष्ट्र की रक्षा हो सकी जिसका प्रभाव ब्रिटिश शासन पर भी पड़ा । इसके अतिरिक्त स्वदेशी की भावना से लोगों में अपने राष्ट्र के गौरवमयी अतीत के प्रति भक्ति एवं निष्ठा की भावना भी जागृत हुई ।

38- देखिये - बिपन चन्द्र - नेशनलिज्म एण्ड कोलोनियलिज्म इन माडर्न इण्डिया, 1981, ओरिएन्ट लांगमैन लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0 134 ।

39- देखिये एस0 मेहता - दि पीजेन्टरी एण्ड नेशनलिज्म, 1984, पृ0 117 ।

जैसा कि प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द सरस्वती और स्वामी विवेकानन्द ने भी आह्वान किया था । उनके मत में भारत को पश्चिम की चमक से चकाचौंध होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि भारत का अतीत स्वयं अपने आप में इतना गौरवमयी है कि अन्य देश उसकी तुलना में नगण्य है । उन्होंने भारतीय धर्म एवं संस्कृति की अत्यन्त प्रशंसा की । इस प्रकार की भावना ने भारतीय प्रबुद्धवर्ग को, जो कि काफी मात्रा में पश्चिम की ओर भाग रहा था, राष्ट्र के प्रति उनके कर्तव्यों का स्मरण दिलाया ।

गान्धी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को अधिक सशक्त बनाने के लिए जिन आन्दोलनों को चलाया उनका हिन्दी उपन्यासों में अत्यन्त सजीव चित्रण प्राप्त होता है । उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द तो स्वय गान्धी जी से अ यधिक प्रभावित थे कि उन्होंने गान्धी जी के आह्वान पर अपनी 20 वर्ष पुरानी नौकरी छोड़ दी । स्वयं प्रेमचन्द गान्धी जी की भाँति राष्ट्रभाषा के पक्ष में थे जिसके अभाव में स्वराज्य की प्राप्ति नहीं हो सकती थी।[40] गान्धी जी ने सत्य और अहिंसा के आधार पर सत्याग्रह आन्दोलन को स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अनिवार्य समझा । प्रेमचन्द जी ने भी अपनी अधिकांश औपन्यासिक कृतियों में सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह की विजय विरोधी पर दिखाई है। गान्धी जी ने देश की परतन्त्रता का मुख्य कारण आपसी फूट और भेदभाव को माना था ।

40- देखिये - प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य , हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, , प्रथम संस्करण 1954, पृ0 153 तथा 160

प्रेमचन्द ने भी इसको स्वराज्य प्राप्ति में एक बाधा के रूप में स्वीकार किया । उनके अनुसार कभी-कभी देश को देखकर हमें स्वराज से निराशा हो जाती है । जहाँ हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे की गर्दन काटने पर तुले हैं, जहाँ किसान और जमीन्दार में संघर्ष है, अछूतों और वर्णवालों में संघर्ष है, वहाँ स्वराज के विषय में शंकाओं का होना स्वाभाविक है ।"[41] प्रेमचन्द जी गान्धी जी की भाँति ही इस बात में विश्वास करते हुए प्रतीत होते है कि यदि अंग्रेज भारतवासियों को न्याय प्रदान करते, उनकी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यवस्था करते तो भारतवासी अंग्रेजो के विरूद्ध कदापि आन्दोलन न करते ।[42] अत: प्रेमचन्द गान्धी जी के व्यक्तित्व एवं कार्यक्रम से अत्यधिक प्रभावित उपन्यासकार थे और उपन्यासकार चूँकि अपने समकालीन समाज के महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों से प्रभावित होता ही है, अत: प्रेमचन्द और उनके साथ ही साथ अन्य अनेक गान्धीयुगीन उपन्यासकारो ने भी गान्धीवादी कार्यक्रम एवं आन्दोलन को अपने उपन्यासों में चित्रित करने का प्रयास किया है ।

यद्यपि यह सत्य है कि गान्धी युग में हिन्दी गद्य साहित्य में अत्यन्त आधुनिक प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप में दिखाई देने लगी थी जिनमें हिन्दी साहित्य का प्रेमचन्द युग सर्वप्रथम व्यावहारिक जीवन की यथार्थता को स्पष्ट करने वाला था तथापि यह मानना तर्कसंगत नही होगा कि प्रेमचन्द युग के पूर्व इस यथार्थता के दर्शन नहीं होते । वास्तविकता तो यह है कि चूँकि हिन्दी

41- प्रेमचन्द - विविध प्रसंग (2), हंसप्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1962, पृ0 75 ।

42- देखिये, वही पृ0 153 ।

गद्य साहित्य में आधुनिक युग का सूत्रपात भारतेन्दु युग से होता है अत. साहित्य का सम्बन्ध प्रथम बार मनुष्य के वास्तविक जीवन से भारतेन्दु युग से माना जा सकता है ।[43] इस युग की अनेक रचनाएँ जैसे- बालकृष्ण भट्ट का भाग्यवती, परीक्षा गुरू, रहस्य कथा, नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान, राधाकृष्ण दास कृत- निस्सहाय हिन्दू, लज्जाराम शर्मा कृत- धूर्त रसिक लाल, स्वतन्त्र रमा तथा परतन्त्र लक्ष्मी, किशोरीलाल गोस्वामी गोस्वामी कृत त्रिवेणी तथा सौभाग्य श्री इत्यादि युगजीवन की वास्तविकताओं को प्रदर्शित करने वाली थी । भारतेन्दु युग के उपरान्त द्विवेदी युग में हिन्दी साहित्य ने यथार्थ की भूमि पर अपने कदमों को और अधिक बढ़ाया । जहाँ भारतेन्दु युग में देश की दुर्दशा पर असन्तोष एवं क्षोभ ही व्यक्त किया गया था तथा साथ ही साथ राजभक्ति की भावना को भी प्रदर्शित किया गया था वही द्विवेदी युग में इस दुर्दशा से मुक्ति का मार्ग ढूढने का प्रयास किया गया रामदीन गुप्त ने भी इस वास्तविकता को स्वीकार किया है ।[44] इस युग में प्रेमचन्द के प्रेमा, रूठी रानी, सेवासदन जैसे उपन्यास युगजीवन की समस्याओं एवं उनके निराकरण हेतु समाधान प्रस्तुत करने के महत्वपूर्ण एवं सशक्त साधन थे । तथापि प्रेमचन्द युग के सम्बन्ध में इस बात को माना जा सकता है कि इस युग में राष्ट्रीय चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति हो सकी । इसका कारण यह था कि प्रेमचन्द युग जो कि 1918 ई0 से माना जा सकता है एक ऐसा युग था जिसमें भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नवीन मोड़ आया । वास्तव

43- डॉ0 नगेन्द्र -हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 440 ।

44- रामदीन गुप्त - प्रेमचन्द और गान्धीवाद पृ0 39 ।

में इस युग में प्रार्थनाओं और निवेदनों के स्थान पर स्वावलम्बन, उत्तरदायित्व तथा सरकार का सामना करने का भाव प्रधान हो गया था। गान्धी जी के भारतीय राजनीति के मंच पर अवतरण से राष्ट्रीय आन्दोलन एक जनान्दोलन बन गया अर्थात् सम्पूर्ण भारतवर्ष एक जुट होकर अपनी पराधीनता की बेड़ियों को उतार फेंकने के लिए कृत संकल्प हो उठा। ऐसे समय में तद्युगीन साहित्यकार भला पीछे कैसे रह सकता था अतः उसने भी अपनी कलम रूपी तलवार को लेकर स्वाधीनता संघर्ष में अपना योगदान करना परम कर्तव्य समझा। अतः हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द युग एक नवीन युग था जिसमें राष्ट्रीय चेतना पूर्ण रूप से मुखरित हुई।

गान्धी युग, जिसमें हिन्दी साहित्य का प्रेमचन्द युग तथा प्रेमचन्दोत्तर युग दोनों ही आता है, के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द सहित कुछ अन्य प्रतिनिधि उपन्यासकारों का उल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने अपने उपन्यासों में समकालीन समस्याओं एवं परिस्थितियों का सांकेतिक एवं यथार्थ चित्रण करने का प्रयास किया तथा उनका समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया और इस प्रकार अपनी कृतियों से देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया।

<u>प्रेमचन्द युग के उपन्यास -</u>

प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में मुख्य रूप से प्रेमचन्द के उपन्यास उल्लेखनीय हैं। उनके उपन्यासों में मुख्य रूप से सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, वरदान, कर्मभूमि, गबन, गोदान, प्रतिज्ञा तथा मंगलसूत्र, जिसे प्रेमचन्द पूर्ण नहीं कर सके, विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द युग के अनेक अन्य उपन्यासकार हुए जिन्होंने अपनी लेखनी द्वारा अपने उपन्यासों में युगीन समस्या को अंकित करने का प्रयास किया । इन उपन्यासकारों की कृतियों में चतुरसेन शास्त्री का "हृदय की परख", "हृदय की प्यास ", "आत्मदाह"," अमर अभिलाषा", प्रतापनारायण श्रीवास्तव कृत "विदा", बेचनशर्मा उग्र कृत " चन्द हसीनों के खतूत ", "दिल्ली का दलाल ", "मनुष्यानन्द " (बुधुवा की बेटी), "शराबी", ऋषभचरण जैन कृत "सत्याग्रह", "भाई ", "वेश्यापुत्र" ,"गदर", जैनेन्द्र कृत "परख"," सुनीता", सियारामशरण गुप्त कृत "गोद", "अन्तिम आकांक्षा, वृन्दावनलाल वर्मा कृत " संगम", "लगन", "प्रत्यागत", "कुण्डलीचक्र" "अचल मेरा कोई", "झांसी कीरानी लक्ष्मीबाई", मृगनयनी", राधिकारमण प्रसाद सिंह कृत " राम-रहीम", दुर्गा प्रसाद खत्री कृत " रक्तमण्डल"," प्रतिशोध", "सुफेद शैतान ", सुदर्शन कृत " परिवर्तन", अनन्तगोपाल शेवड़े कृत "ज्वालामुखी", धनीराम प्रेम कृत "मेरा देश" इत्यादि प्रमुख हैं ।

सामाजिक :

प्रेमचन्द युगराष्ट्रीय आन्दोलन की तीव्रता का युग था जिसमें देश के प्रत्येक व्यक्ति एवं क्षेत्र को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया जा रहा था जिससे साम्राज्यवादीशासन से मुक्ति प्राप्त की जा सके । इस एकता के लिए भारतीय समाज की अनेक कुरीतियां बाधक सिद्ध हो रहीं थीं । अतः राष्ट्रीय नेताओं के साथ ही हिन्दी उपन्यासकारों ने भी अपनी लेखनी द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया ।

अछूतोद्धार समस्या :

प्रेमचन्द युग में सामाजिक कुरीतियों के रूप में अछूत समस्या विद्यमान थी । अतः एक जागरूक साहित्यकार होने के नाते प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास "कर्मभूमि" में इस समस्या को उठाने का प्रयास किया । वास्तव में "कर्मभूमि" अछूतोद्धार समस्या को लेकर लिखा हुआ एक श्रेष्ठ उपन्यास है । गान्धी जी के

रचनात्मक कार्यक्रमों में अछूतोद्धार का बहुत अधिक महत्व था । उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता का रहस्य काफी मात्रा में इस समस्या के समाधान में माना था । इस उपन्यास का गान्धीवादी पात्र अमर अछूतों की बस्तियों में जाता है और वहाँ के लोगों के बीच में रहता है । वह अछूतों को घृणित नहीं मानता है । प्रेमचन्द उसके मुख से गान्धीवादी घोषणा करवाते हैं । अमरकान्त सलोनी काकी से कहता है, " मैं जात-पांत नहीं मानता, माता जी । जो सच्चा है, वह चमार भी हो, तो आदर के योग्य है, जो दगाबाज, झूठा, लम्पट हो, वो ब्राह्मण भी हो, तो आदर के योग्य नहीं ।"[45]

वह चमारों की बस्ती में जागृति पैदा करना चाहता है । वहाँ के लोगों को शिक्षित बनाना चाहता है । उनकी सामाजिक स्थिति का सुधार करना चाहता है । चमारों की सामाजिक स्थिति अत्यन्त गिरी हुई थी । वे सार्वजनिक स्थानों का उपयोग नहीं कर सकते थे । शिक्षण संस्थाओं में उनके लिए कोई स्थान नहीं था । अमरकान्त जब चमार बच्चों से पूछता है, " कहाँ पढ़ने जाते हो ?" तो एक बालक कहता है, " कहाँ जायें ? हमें कौन पढ़ाये ? मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं । एक दिन दादा हम लोगों को लेकर गये थे । पंडित जी ने नाम लिख लिया, पर हमें सबसे अलग बैठाये थे । सब लड़के हमें चमार -चमार कहकर चिढ़ाते थे । दादा ने नाम कटा दिया ।"[46]

परन्तु गान्धीवादी नीति आत्मबलिदान की नीति है । जहाँ कहीं लक्ष्य की प्राप्ति होने में कठिनाई हो, वहाँ आत्मबलिदान का आश्रय लेना चाहिए । प्रेमचन्द ने भी चमारों की स्थिति में सुधार के लिए उनके समक्ष बलिदान की माँग प्रस्तुत की । उन्होंने सोचा कि चमारों के कुछ संस्कार ऐसे हैं - जैसे मरी गाय का मांस खाना, मद्यपान करना इत्यादि जो उनकी सामाजि

---

45. प्रेमचन्द -- कर्मभूमि , पृ0 148
46. वही, पृ0 152

स्थिति के पतन का कारण है । इसीलिए समाज उन्हें स्वीकार नहीं करता है । यही कारण था कि उन्होंने चमारों के एक मध्यस्थ युवक के द्वारा कहलवाया कि " मरी गाय के मांस में ऐसा कौन सा मज़ा रखा है, जिसके लिए सब जने मरे जा रहे हो । गड्ढा खोदकर मांस गाड़ दो, खाल निकाल लो । .. सारी दुनिया हमें इसीलिए तो अछूत समझती है कि हम दारू-शराब पीते हैं, मुरदा मांस खाते हैं और चमड़े का काम करते हैं । और हममे क्या बुराई है? दारू-शराब हमने छोड़ ही दी, हमने क्या छोड़ दी समय ने छुड़वा दी । फिर मुरदा मांस में क्या रखा है? रहा चमड़े का काम, उसे कोई बुरा नहीं कह सकता, और अगर कहें भी तो हमें उसकी परवाह नहीं । चमड़ा बनाना- बेचना बुरा काम नहीं । "[47]

गाँवों की जो हालत थी उसके अतिरिक्त शहरों में भी अछूतों के साथ सामाजिक अत्याचार किया जा रहा था । इसमें सबसे बड़ी समस्या मन्दिर प्रवेश की समस्या थी । डा० शान्तिकुमार और आत्मानन्द के वाद-विवाद से प्रेमचन्द ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि ईश्वर की उपासना करने तथा उपासनागृहों में जाने का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को है । अत:अछूतों को मन्दिर प्रवेश से रोका नहीं जा सकता । गान्धी जी ने अछूतों को उन्नत सामाजिक स्तर प्रदान करने के लिए "हरिजन" की संज्ञा प्रदान की थी । प्रेमचन्द ने इसीलिए अछूतों को सामाजिक अधिकार दिलाने का प्रयास किया । अछूतों में जागरण पैदा करने का प्रयास किया । उन्होंने डा० शान्ति कुमार के प्रवचन के माध्यम से अछूतों से कहा कि " क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी करने का बीड़ा लेकर आये हो? तुम तन-मन से दूसरों की सेवा करते हो, पर तुम गुलाम हो । तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं । तुम समाज की बुनियाद हो । तुम्हारे ही ऊपर समाज खड़ा है, पर तुम अछूत हो । तुम मन्दिरों में

---

47. वही, पृ० 177

नहीं जा सकते । ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहाँ हो सकती है क्या तुम सदैव इसी भाँति पतित और दलित बने रहना चाहते हो ? .... मन्दिर किसी एक आदमी या समुदाय की चीज़ नहीं है । वह हिन्दू - मात्र की चीज है । यदि तुम्हे कोई रोकता है तो उसकी जबर्दस्ती है । मत टलो उस मन्दिर के द्वार से, चाहे तुम्हारे ऊपर गोलियों की वर्षा ही क्यों न हो ।[48]

इस प्रकार प्रेमचन्द ने दलित- पतित अछूतों में जागृति का संचार करने का प्रयास किया । उनको अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने का नारा दिया । परिणामस्वरूप अछूतों में जागृति आती है, वे अपने सामाजिक अधिकारों के लिए संघर्ष करते हैं । परन्तु यह संघर्ष गान्धीवादी संघर्ष है जिसमें अटूट साहस और सहनशीलता की आवश्यकता है । पंडे- पुजारियों के द्वारा जब उनकी भीड़ पर डण्डे और लाठियाँ बरसाई जाती हैं तो भीड़ में भगदड़ मच जाती है । डॉ० शान्ति कुमार भीड़ को रोकते ही रह जाते हैं और अन्त में घायल होकर गिर जाते हैं । डॉ० शान्तिकुमार जैसे गान्धीवादी नेता के चरित्र का निरूपण करके प्रेमचन्द ने गान्धीवादी नीति को बल प्रदान किया है । तभी तो अगले दिन अछूत संगठित होकर दृढ़ संकल्प के साथ आन्दोलन कर देते हैं । पंडे- पुजारियों का अत्याचार शुरू होता है, पुलिस भी उनकी सहायता में आ जाती है । परन्तु अछूत दृढ़ संकल्प के साथ डटे रहते हैं । समरकान्त परेशान होकर कहता है, "वहाँ का तो रास्ता ही बन्द है । जाने कहाँ के चमार - सियार आकर द्वार पर बैठे हैं । किसी को जाने ही नहीं देते । पुलिस खड़ी उन्हें हटाने का प्रयत्न कर रही है, पर अभागे कुछ सुनते ही नही ।"[49] अछूतों का यह निश्चय गान्धीवादी सत्याग्रह का प्रतीक है । अछूतों में अपने अधिकारों को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प राष्ट्रीय आन्दोलन के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रतीक था । अत्याचार कुछ भी हो, प्राण की बलि हो जाये, लेकिन स्वाधीनता

48- वही, पृ0 211
49- वही, पृ0 215

सबसे अनमोल है । जब अछूतों के आन्दोलन की शक्ति को बढ़ते हुए समरकान्त देखता है तो वह आन्दोलनकारी भीड़ पर गोलियाँ चला देता है । धर्म के रक्षक ईश्वर के जनों को गोलियों से मार देते हैं । इस प्रकार का विरोधाभास प्रेमचन्द ने अनुभव किया था । तभी तो वह नैना के मुख से ऐसे धर्म को धर्म नहीं मानते हुए कहते हैं, " जिस धर्म की रक्षा गोलियों से हो, उस धर्म में सत्य का लोप समझो । "[50] जब गोली चलने से आन्दोलनकारियों का उत्साह कम होने लगता है, आत्मबल घटने लगता है, वे मैदान छोड़कर भागने लगते हैं । तो सुखदा के द्वारा उनको प्रोत्साहित किया जाता है । उसके प्रोत्साहन से जैसे आन्दोलन पुनर्जीवित हो जाता है । धर्म के रक्षकों का अत्याचार बढ़ता जाता है परन्तु आन्दोलनकारी अपने स्थान से नहीं हटे । " बन्दूकों से धाँय ; धाँय की आवाजे निकली । एक गोली सुखदा के कानों के पास से सन से निकल गई । तीन-चार आदमी गिर पड़े, पर दीवार (आन्दोलनकारियों की) ज्यों की त्यों अचल खड़ी थी । "[51] राधिकारमण प्रसाद सिंह के "तरंग" उपन्यास में भी हरिजनों को शिक्षित करने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[52] बेचन शर्मा "उग्र" जी ने अपने उपन्यास "बुधुआ की बेटी" अथवा" मनुष्यानन्द" में गान्धी जी के रचनात्मक कार्यों पर बल दिया है, जिसमें हरिजनोद्धार समस्या प्रमुख है ।

साम्प्रदायिक समस्या :

अंग्रेजों की "फूट डालो और शासन करो" की नीति को हिन्दी उपन्यासकारों ने भली-भाँति पहचान लिया था । प्रेमचन्द ने इस सत्य को स्वीकार करते हुए भी अंग्रेजों के बराबर ही दोष स्वयं भारतीयों पर डाला है जो सम्प्रदायवाद को आधार मानकर चल रहे हैं । उनके उपन्यास "सेवासदन

---

50. वही, पृ0 217
51. वही, पृ0 218
52. राधिकारमण प्रसाद सिंह - तरंग, पृ0 33

मुन्नी के गोरे सिपाहियों द्वारा सतीत्व हरण पर सलीम के विचार न केवल साम्प्रदायिक ऐक्य को बढ़ावा देते हैं वरन् देश भक्ति, राष्ट्रीय चेतना, नारी जागरण, इन सभी पहलुओं की ओर संकेत करते हैं ।[54] प्रेमचन्द के एक अन्य उपन्यास "कायाकल्प" का रचनाकाल वास्तव में साम्प्रदायिक दंगों का काल था । अतः कायाकल्प की मुख्य समस्या साम्प्रदायिक है जिसने राष्ट्रीय स्वाधीनता के मार्ग को अवरुद्ध कर रखा था । प्रेमचन्द की तीव्रबुद्धि ने इस तथ्य को भली-भाँति जान लिया था कि वह साम्प्रदायिक वैमनस्य, जो हिन्दुओं और मुसलमानों में चल रहा है, धार्मिक करणों से नहीं है वरन् यह ब्रिटिश सरकार की एक राजनीतिक कूटनीति है। साम्राज्यवादी युग में जो इतिहास लिखा गया वह इस ढंग से लिखा गया जिससे हिन्दू और मुसलमान परस्पर द्वेष की भावना रखने लगे ।[55] यद्यपि प्रेमचन्द यह जान चुके थे कि यह ब्रिटिश शासन की एक चाल थी फिर भी उन्होंने इस समस्या के लिए हिन्दुओं और मुसल्मानों को समान रूप से दोषी ठहराया ।[56] इन साम्प्रदायिक दंगों का कारण गोवध था । परन्तु प्रेमचन्द के अनुसार इन दंगों का वास्तविक उद्देश्य गोरक्षा नहीं है।[57] वरन् धार्मिक भावनाओं का अनुचित प्रयोग है । उनका तो हिन्दुओं से कहना था कि " गाय तुम्हारे लिए जितनी जरूरी है, मुसलमानों के लिए भी उतनी जरूरी है ।"[58] यह केवल साम्राज्यवादी शासन की कूटनीति है कि हिन्दू और मुसलमान कभी एक न होने पायें और उनका शासन निर्बाध रूप से चलता रहे ।

---

54. वही, - कर्मभूमि, पृ0 30
55. अमृतराय- शान्ति के योद्धा : प्रेमचन्द, पृ0 36-37 पर उद्धृत ।
56. मन्मथनाथ गुप्त - प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार, पृ0 124 पर उद्धृत ।
57. शिवरानी देवी - प्रेमचन्द : घर में, पृ0 96
58. वही, पृ0 45

कायाकल्प में इसी समस्या पर अधिक बल दिया गया है। आगरा में गाय की कुरबानी के प्रश्न पर दंगा हो जाता है। गान्धी जी ने कहा था कि गाय की रक्षा का अर्थ गाय नाम के पशु की रक्षा नहीं, बल्कि प्राणी मात्र की, जीवमात्र की रक्षा है।"[59] उनके मतानुसार गाय की रक्षा के लिए मनुष्य का वध हिन्दू धर्म और अहिंसा दोनों के विरुद्ध है।[60] गान्धी जी के उक्त कथन को प्रेमचन्द ने चक्रधर के मुँह से कहलवाया है। चक्रधर हिन्दुओं को समझाता हुआ कहता है कि "अहिंसा का नियम गौवों ही के लिए नहीं, मनुष्यों के लिए भी तो है।"[61] सम्भवतः एक हिन्दू के द्वारा हिन्दू की ही आलोचना क्रोध को जन्म देती है जैसा गान्धी जी के साथ हुआ। चक्रधर के साथ भी ऐसा ही होता है। उसको पत्थरवाह किया जाता है। परन्तु प्रेमचन्द चक्रधर के चरित्र को एक सच्चे और वीर सत्याग्रही के रूप में चित्रित करते हैं। वह हिन्दुओं और मुसलमानों में साम्प्रदायिक वैमनस्य को समाप्त करने हेतु स्वय अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए तैयार रहता है। वह लोगों से कहता है कि "अगर मेरे रक्त से आपकी क्रोधाग्नि शान्त होती हो, तो यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। अगर मेरा खून और कई जानों की रक्षा कर सके, तो इससे उत्तम कौन सी मृत्यु होगी।"[62] दूसरी ओर वह मुसलमानों को भी गौहत्या करने से रोकने का प्रयास करता है। वह गाय की गर्दन पकड़कर मुसलमानों से कहता है कि यदि वे गाय की कुरबानी करना ही चाहते हैं तो उन्हें गाय के साथ-साथ एक इन्सान की भी कुरबानी करनी पड़ेगी

---

59. रामदीन गुप्त- प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ0 216 पर उद्धृत।

60. वही, पृ0 216-217 पर उद्धृत।

61. प्रेमचन्द- कायाकल्प, पृ

62. वही, पृ0 30

और स्वयं कुरबान होने के लिए प्रस्ताव करता है ।[63]

चक्रधर वह चरित्र है जो हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे की भावनाओं का आदर करने हेतु प्रेरित करना चाहता है । वह प्रेमचन्द के उन विचारों का प्रतिनिधित्व करता है जिसके अनुसार साम्प्रदायिक झगड़े न तो हिन्दुओं को पसन्द हैं और न ही मुसलमानों को ।[64] इन झगड़ों का कारण परस्पर भय है जो कि किसी तीसरी शक्ति द्वारा उत्पन्न करवाया जाता है ।[65] अत: प्रेमचन्द हिन्दुओं और मुसलमानों को परस्पर एकता के बन्धन में बांधने का प्रयास करते हैं और इसके लिए तर्क देते हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानों को अपने संस्कारों को सुधारने का प्रयास करना चाहिए । प्रेमचन्द ख्वाजा महमूद के द्वारा पूछते हैं "क्या हिन्दू शुद्धि आन्दोलन द्वारा मुसलमानों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाते ? जब हिन्दू अपने अधिकारों के सामने मुसलमानों के जज़्बात की परवाह नहीं करते तो कोई कारण नहीं कि मुसलमान अपने हकों के सामने हिन्दुओं की भावनाओं की परवाह करें ।"[66] इसीलिए प्रेमचन्द मानवतावादी दृष्टिकोण, जिसके पीछे राष्ट्रवादी दृष्टिकोण निश्चित रूप में छिपा हुआ है, को अपनाते हुए उसी मनुष्य को श्रेष्ठ मानते हैं जो मानवीय गुणों से युक्त हो । उन्होंने चक्रधर के शब्दों में इस बात को स्वीकार किया कि" बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है, जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू । "[67]

---

63. वही, पृ0 37-40
64. वही, पृ0 46
65. वही, पृ0 427
66. वही, पृ0 28
67. वही, पृ0 237

अत: प्रेमचन्द ने इस साम्प्रदायिक समस्या के कारणों एवं उनका हल ढूँढ़ने का प्रयास किया है । उनके अनुसार इस समस्या के दो कारण प्रतीत होते हैं - एक तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद [68] तथा दूसरा अनुचित धार्मिक शिक्षा ।[69] ये कारण राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए घातक है । अत: प्रेमचन्द ने एक तो साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा लिखे गये इतिहास को स्वस्थ रूप प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया और इसके साथ ही साथ धर्मान्धता को दूर करने हेतु धर्म की सच्ची शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया । उनके मत में छोटी-छोटी बातों को लेकर साम्प्रदायिकता की आग को भड़काया जाता है । ऐसी आग को रोकने के लिए " एक पंचायत बनाई जाय और आपस के झगड़े उसी के द्वारा तय हुआ करें ।"[70] दोनों कौमों को बिना कुछ सोचे-समझे झगड़े को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है । इस प्रकार "कायाकल्प " के माध्यम से प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आन्दोलन की एक बड़ी बाधा को दूर करने का प्रयास किया । उन्होंने उपन्यास में हिन्दुओं और मुसलमानों में सहृदयता और समझबूझ उत्पन्न करने का प्रयास किया है । गान्धी जी की तरह उन्होंने भी हृदय परिवर्तन के लक्ष्य को स्वीकार किया है । उन्होंने चक्रधर नामक पात्र को गान्धीवादी रूप में चित्रित किया है, जो कि न केवल हिन्दुओं में साम्प्रदायिक सहृदयता जागृत करने का प्रयास करता है वरन् मुसलमानों को भी उन कार्यों से रोकने का प्रयास करता है जिनसे हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुँचती है । चक्रधर एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करने का कायल है ।[71] उसके इन विचारों से प्रभावित होकर ख्वाजा महमूद में मानवता जाग उठती है। वह जो पहले मौलवी दीन मुहम्मद के भाषणों से उत्तेजित होकर मारकाट का हिमायती हो गया था, चक्रधर की बातों को सुनकर एकदम बदल जाता है ।

---

68. अमृतराय - शान्ति के योद्धा : प्रेमचन्द, पृ0 33 पर उद्धृत
69. प्रेमचन्द - कायाकल्प, पृ0 227
70. वही, पृ0 44
71. वही, पृ0 37

अब वह स्वयं मौलवी साहब के भाषण पर नाराज होता है । गाय की कुरबानी, मन्दिर के सामने, हिन्दुओं के सामने की जाती थी । महमूद कहता है, " क्या शरीयत का हुक्म है कि कुरबानी यहीं हो? किसी दूसरी जगह नहीं की जा सकती? ...."[72] यहाँ पर प्रेमचन्द ने सच्ची धार्मिक भावना को प्रदर्शित किया है अर्थात् वह भावना जो दूसरे धर्म का भी आदर करे । उन्होंने कहा "मेरा यह कौल है कि हिन्दू रहो, चाहे मुसलमान रहो । खुदा के सच्चे बन्दे रहो । सारी खूबियाँ किसी एक ही कौम के हिस्से में नहीं आई हैं । न सब मुसलमान पाकीज़ा हैं, न सब हिन्दू देवता है, इसी तरह न सब हिन्दू काफिर हैं, न सभी मुसलमान मोमिन । जो आदमी दूसरी कौम से जितनी नफरत करता है, समझ लीजिए कि खुदा से वह उतनी ही दूर है ।"[73]

भाग्यवाद :

प्रेमचन्द के "गोदान" उपन्यास में "होरी" का चरित्र भाग्यवाद को प्रदर्शित करता है । होरी भाग्यवादी है, वह ईश्वर पर भरोसा रखकर सभी यातनाओं को सहना स्वीकार करता है । उसमें निराशावाद बहुत अधिक मात्रा में दिखाई देता है । वह जमींदार और महाजनों के अत्याचार के उपरान्त भी उनसे मेल जोल रखने में ही अपना हित समझता है । उसकी निराशा की सीमा इस बात से स्पष्ट हो जाती है जब वह कहता है" जब दूसरों के पावों तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पावों को सहलाने में ही कुशल है ।"[74] उनका भाग्यवाद और पुनर्जन्म में विश्वास है। वह अपने बेटे गोबर से कहता है " यह बात नहीं है, बेटा, छोटे बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं । सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है । उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये थे, उसका आनन्द

---

72. वही, पृ0 37-38
73. वही, पृ0 322
74. प्रेमचन्द - गोदान, पृ0 5

भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं सँचा तो भोगें क्या? "[75]

इस भाग्यवादिता ने ग्रामीण जनता को अपनी स्थिति से ऊपर नहीं उठने दिया। अतः ऐसी जनता में प्रगतिशील विचारों का संचार कर उन्हें शिक्षित एवं जागृत करने की आवश्यकता थी। अपना भाग्य स्वयं बनाने के लिए उन्हें प्रेरणा देने की आवश्यकता थी। क्योंकि यदि गुलामी को भाग्य की देन मा. लिया गया तो वह सदैव बनी रहेगी। यही कारण है कि प्रेमचन्द ने होरी के बेटे गोबर और धनिया के चरित्रों के माध्यम से प्रगतिशील विचारों का प्रतिपादन किया है।[76]

स्त्रियों की दशा :

सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़ापन भारतीय स्वाधीनता में बाधक हो रहा था। स्त्रियों की सामाजिक स्थिति उनके अधिकार और स्वतन्त्रता को अनुमति प्रदान करने वाली नहीं थी। अतः एक जागरूक उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय समस्याओं के साथ ही साथ विभिन्न सामाजिक समस्याओं को भी उठाने का प्रयास किया। स्त्रियों की दशा के सम्बन्ध में उन्होंने अपने " सेवासदन" उपन्यास में "वेश्या समस्या" को उठाया। इस उपन्यास में उन्होने "सुमन" के यथार्थ जीवन-चित्र को प्रस्तुत किया है। उन्होंने उसके इस प्रकार के जीवन के लिए समाज को दोषी ठहराया है। उनके अनुसार कोई स्त्री वेश्यावृत्ति इसलिए धारण करती है, क्योंकि समाज उसको ऐसा करने के लिए विवश करता है। उपन्यास में उन्होंने एक समाज सुधारक पद्मसिंह नामक पात्र के माध्यम से कहा है कि " हमें उनसे {वेश्याओं से} घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। ये हमारी

---

75. वही, पृ0 22
76. वही, पृ0 3 तथा 19

ही कुवासनाएँ, हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएँ हैं जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया है। यह दालमण्डी हमारे ही कलुषित जीवन का प्रतिबिम्ब, हमारे ही पैशाचिक अधर्म का साक्षात स्वरूप है, हम किस मुँह से उनसे घृणा करें। उनकी अवस्था बहुत शोचनीय है। हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें सन्मार्ग पर लावें, उनके जीवन को सुधारें।"[77] इस समस्या को ही हिन्दू-मुसलमान के विवाद में भी परिवर्तित करने का प्रयास उपन्यास में राष्ट्रीय आन्दोलन को शिथिल बनाने के प्रयास में प्रदर्शित किया गया है। प्रेमचन्द रूस्तमभाई नामक पात्र के द्वारा यह कहते हैं कि "मुझे यह देखकर शोक हो रहा है कि आप लोग एक सामाजिक प्रश्न (वेश्या समस्या) को हिन्दू-मुसलमानों के विवाद का स्वरूप दे रहे हैं .... इससे राष्ट्रीयता को जो चोट लगती है उसका अनुमान करना कठिन है।"[78]

वेश्या समस्या के अतिरिक्त विधवा विवाह पर भी प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में विचार किया गया है। चतुरसेन शास्त्री के "आत्मदाह" उपन्यास में विधवा समस्या एवं विधवा विवाह पर विचार किया गया है।[79]

राधिकारमण प्रसाद सिंह के "तरंग" उपन्यास में स्त्रियों की स्वाधीनता आन्दोलन तथा पर्दा प्रथा समाप्त करने पर विचार प्राप्त होता है।[80]

राजनीतिक :

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का लक्ष्य, ब्रिटिश सरकार से मुक्ति को प्राप्त करना था। जिसमें जहाँ एक ओर गान्धीवादी अहिंसक आन्दोलन का अपना महत्व था। वहीं दूसरी ओर आन्दोलनकारियों का एक समूह ऐसा था जो हिंसक एवं क्रान्तिकारी साधनों के माध्यम से स्वाधीनता की

---

77. प्रेमचन्द - सेवासदन, पृ0 171

78. वही, पृ0 180

79. चतुरसेन शास्त्री,- आत्मदाह, पृ0 138-153

80. राधिकारमण प्रसाद सिंह, तरंग, पृ0 5

प्राप्ति में विश्वास रखता था । हिन्दी उपन्यासों में उपर्युक्त दोनो ही प्रकार के साधनों को स्वीकार किया गया है । उपन्यासों में साम्राज्यवादी अत्याचार एवं उसमें सहयोगी भारतीय रियासतों एवं पुलिस तथा चापलूस वर्ग की भर्त्सना की गई है तथा उनसे मुक्ति के लिए विभिन्न साधनों को अपनाये जाने का समर्थन किया गया है ।

सामाज्यवादी अत्याचार :

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास "गबन" में "स्वराज" के वास्तविक अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । सम्भवत: वे इस सम्बन्ध में गान्धी जी की "रामराज्य" की अवधारणा से प्रभावित थे । वे गांवों के सरल एवं सरस जीवन से भलि भाँति अवगत थे । परन्तु साम्राज्यवादी शासन के कारण गांवों का वह सरल और सन्तोषमय जीवन समाप्त होता जा रहा था । साम्राज्यवादी शासन का अत्याचार एवं अन्याय बढ़ता ही जा रहा था, और इस अत्याचार में अंग्रेजी शासन के पिछलग्गुओं द्वारा सहयोगी की भूमिका निभाई जा रही थी । प्रेमचन्द ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से चेतावनी दी है कि भारतीय जीवन के पतन का कारण अत्याचार और भ्रष्टाचार है जो न केवल अंग्रेज करते हैं वरन् स्वयं भारत के लोग भी ऐसे कार्यों में सम्मिलित होना अपना सौभाग्य समझते हैं ।

प्रेमचन्द ने भारतीयों की दयनीय स्थिति का चित्रण अपने उपन्यास "सेवासदन " में किया है । अंग्रेजी शासनकाल में भारतीयों को निम्न समझा जाता था । उनके प्रति अंग्रेजों में घृणा की भावना थी । प्रेमचन्द ने अपने इस उपन्यास में इस प्रकार के भेद को अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रित किया है। शान्ता मुगलसराय स्टेशन पर देखती है कि " उसके देशवासी सिर पर बड़े-बड़े गट्ठर लादे एक सकरे द्वार पर खड़े हैं और बाहर निकलने के लिए एक दूसरे पर गिरे पड़ते हैं । एक दूसरे तंग द्वार पर बहुत से आदमी खड़े अन्दर आने के लिए

धक्कम- धक्का कर रहे हैं । लेकिन दूसरी ओर एक चौड़े दरवाजे से अंग्रेज लोग छड़ी घुमाते कुत्तो को लिए आते-जाते हैं । कोई उन्हें नहीं रोकता, कोई उनसे नहीं बोलता ।"[81]

प्रेमचन्द अंग्रेजी शासन को किसी भी रूप में अच्छा नहीं मानते हैं । अपने इस उद्‌गार को अपने "रंगभूमि" उपन्यास में वह सोफिया द्वारा क्लार्क से उसके व्यवहार और न्याय के सम्बन्ध में प्रश्न द्वारा प्रगट करते हैं । क्लार्क उत्तर देता है कि "हम तो कल के पुर्जे हैं । .... हम यहाँ शासन करने के लिए आये हैं । मेरा जाति- धर्म मेरा हाथ बान्धे हुए है ।"[82] क्लार्क के उक्त कथन से अंग्रेजी शासन की स्वेच्छाचारिता का पता चलता है । ऐसे ही विचार कुंवर साहब और मिसेज सेवक के वार्तालाप से प्रकट होते हैं । "कुंवर साहब - जिस राष्ट्र ने एक बार अपनी स्वाधीनता खो दी, वह फिर उस पद को नहीं पा सकता । दासता ही उसकी तकदीर हो जाती है । मैं अंग्रेजों की तरफ से निराश हो गया हूँ ....। मिसेज सेवक - (रुखाई से) तो क्या आप यह नहीं मानते कि अंग्रेजों ने भारत के लिए जो कुछ किया है, वह शायद ही किसी जाति ने किसी जाति या देश के साथ किया हो ? कुंवर साहब - नहीं, मैं नहीं मानता । मिसेज सेवक - (आश्चर्य से) शिक्षा का इतना प्रचार और भी किसी काल में हुआ था ? कुंवर साहब- मैं इसे शिक्षा ही नहीं कहता जो मनुष्य को स्वार्थ का पुतला बना दे । मिसेज सेवक - रेल, तार, जहाज, डाक ये सब विभूतियाँ अंग्रेजों के ही साथ आई । कुंवर साहब- अंग्रेजों के बगैर भी आ सकती थी और अगर आई भी हैं तो अधिकतर अंग्रेजों ही के लिए । मिसेज सेवक - ऐसा न्याय विधान पहले कभी न था कुंवर साहब- ठीक है ऐसा न्याय विधान

---

81. प्रेमचन्द - सेवासदन, पृ0 265-266
82. वही, रंगभूमि, पृ0 256-57 तथा 506

कहाँ था, जो अन्याय को न्याय और असत्य को सत्य सिद्ध कर दे । यह न्याय नहीं, न्याय का गोरखधन्धा है ।"[83] साम्राज्यवादी अत्याचार की भर्त्सना करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं कि इस प्रकार के अत्याचार इसलिए होते हैं क्योंकि "भारत पराधीन है । लोग जानते हैं कि यहाँ लोगों पर उनका (अंग्रेजों का) आतंक छाया है । वह जो अनर्थ चाहें, करें । कोई चूं नहीं कर सकता । यह आतंक दूर करना होगा । इस पराधीनता की जंजीर को तोड़ना होगा ।"[84]

भारतीय रियासतें तथा पुलिस एवं चापलूस वर्ग :

भारतीय रियासतें, भारतीय स्वाधीनता के मार्ग में एक बड़ी बाधा के रूप में थी । इसकी आलोचना प्रेमचन्द ने अपने "रंगभूमि" उपन्यास में की है । ब्रिटिश शासकों ने इन रियासतों के राजाओं को अपने हाथ की कठपुतली बना रखा था और ये राजा अपने साम्राज्यवादी शासकों को प्रसन्न रखने हेतु स्वयं अपनी प्रजा पर अत्याचार करते थे । इस समस्या को उपन्यास में उठाने से प्रेमचन्द की युगीन समस्याओं के प्रति जागरूकता का पता चलता है ।[85] उपन्यास में वीरपाल सिंह डाकू उदयपुर के राजा के बारे में कहता है कि वह काठ का उल्लू है । उसे विलायत में जाकर व्याख्यान देने की धुन है, नहीं तो अंग्रेजों की जूतियाँ सीधी करने की ।[86] रेजिडेन्ट साहब की इच्छा के विरुद्ध रियासतों में तिनका भी नहीं हिल सकता । दीवान साहब स्वयं कहते हैं कि सरकार की रक्षा में हम मनमाने कानून बनाते हैं, मनमाने दण्ड लेते हैं, मगर कोई चूं तक नहीं कर सकता । इसी के उपलक्ष्य में हमें बड़ी-बड़ी उपाधियां मिलती हैं । मिस्टर क्लार्क भी कहते हैं कि रेजिडेन्ट को बहुत अधिकार है, यहाँ तक कि

---

83. वही, पृ0 269
84. वही, कर्म भूमि, पृ0 30
85. वही, पृ0 260
86. वही, पृ0 299

वह राजा के खाने-पीने, सोने और आराम करने का समय तक नियत कर सकता है। वह रियासत का खुदा होता है।[87] रामदीन गुप्त ने प्रेमचन्द को एक सजग एवं चैतन्य साहित्यकार के रूप में माना है। उनके अनुसार जवाहरलाल नेहरू का मानना था कि देशी रियासतें ब्रिटिश साम्राज्य की मुख्य रक्षा-स्तम्भ तथा भारत की स्वतन्त्रता और उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ी रूकावट रही हैं, किन्तु फिर भी गान्धी जी जो सम्पूर्ण भारत के दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि कहलाते थे - देशी नरेशों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति पर चलते रहे।[88] परन्तु गान्धीजी तथा कांग्रेस के दूसरे नेताओं द्वारा देशी रियासतों के सम्बन्ध में अपनाई गई इस दुर्भाग्यपूर्ण नीति के बावजूद प्रेमचन्द ने "रंगभूमि" और "कायाकल्प" उपन्यासों में रियासतों की जनता के संघर्ष को वाणी देने का प्रयास किया है, वह इस तथ्य का प्रत्यायक है कि प्रेमचन्द ने कभी गान्धी का अन्धानुगमन नहीं किया।[89] "कायाकल्प" उपन्यास में भारतीयों द्वारा निर्लज्जतापूर्वक अंग्रेजों की चाटुकारिता पर व्यंग्य किया गया है। उपन्यास में मुंशी वज्रधर मिस्टर जिम के पैरों पर पगड़ी रख देते हैं और कहते हैं "हुजूर, यह गुलाम का लड़का है। हुजूर उसकी जाँ बख्शी करें। हुजूर का पुराना गुलाम हूं।[90] इसी उपन्यास में जब चक्रधर का मुकदमा मिस्टर जिम के इजलास में चलता है तो मुंशी जी दिन भर मिस्टर जिम के बंगले पर खड़े रहते हैं और उनके बच्चों को खिलाते हैं। वे तो यहां तक कहते हैं, 'मेरे देवता तो, ईश्वर तो, जो कुछ है, आप ही हैं।'[91] राधिकारमण प्रसाद सिंह जी ने भी अपने उपन्यास "रामरहीम" में भारतीय चापलूस वर्ग पर व्यंग्य किया है। वे कहते हैं कि राय साहब किस प्रकार सदैव अफसरों को डालियां भेजते हैं, किस

---

87. वही, पृ0 409
88. रामदीन गुप्त - प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ0 214 पर उद्धृत
89. वही, पृ0 214
90. प्रेमचन्द - कायाकल्प, पृ0 185
91. वही, पृ0 18

प्रकार खिताब के जलसे में विलायती बोतलों के पर्वत से दरिया बहाते हैं। लेखक के अनुसार राय साहब ने साहबों के सामने सर झुकाने में जो महारत हासिल की हो, पर अपने देशवासियों के सामने तो कभी आपके सर में बल तक न आने पाता था। उधर आजिज़ी, इधर हेकड़ी, यही शान थी।[92]

ब्रिटिश अत्याचार में सहायता पहुँचाने वालों में भारतीय पुलिस भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। "गबन" प्रेमचन्द का पहला उपन्यास था जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य की स्तम्भ भारतीय पुलिस पर इतना तीखा एवं प्रत्यक्ष प्रहार किया गया है।[93] भारतीय पुलिस के अत्याचारों एवं भ्रष्टाचारों के कारण साधारण जनता पीड़ित थी। इसका कारण यह था कि साम्राज्यवादी शासन स्वयं पशुबल पर आधारित था। चूँकि पुलिस इसी शासन के एजेण्ट के रूप में कार्य करती थी। अतः ऐसी पुलिस को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता था। पुलिस के द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन-कर्ताओं को झूठे अपराधों में गिरफ्तार कर दण्ड दिलवाया जाता था, अदालत भी ऐसे अपराधों के लिए साम्राज्यवाद के ही साथ थी। इस प्रकार राजनीतिक कार्यकर्ताओं को झूठे मामलों में फंसाने का क्रम चलता रहता था। अपने "गबन" उपन्यास में प्रेमचन्द कहते हैं कि रमानाथ की झूठी गवाही के आधार पर कलकत्ता पुलिस चौदह व्यक्तियों को डकैती के मामले में फंसाने की चेष्टा करती है। परन्तु इन अभियुक्तों के साथ जनता अपनी सहानुभूति रखती है, उसके द्वारा इन मुकदमों में रूचि ली जाती है। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि वे डकैत नहीं थे और दूसरी ओर जब पुलिस यह सन्देह करती है कि जालपा को स्वराज्य वालों ने मिला लिया है,[94] इस बात को स्पष्ट कर देता है कि वे राजनीतिक

---

92. राधिकारमण प्रसाद सिंह – राम रहीम, पृ0 43
93. रामदीन गुप्त – प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ0 236
94. प्रेमचन्द – गबन, पृ0 364

कार्यकर्ता थे । ऐसे ही अनेक षडयंत्र पुलिस के द्वारा रचे गये थे जिसमें कि अनेक राजनीतिक कार्यकर्ताओं को दण्डित किया गया था । मेरठ षडयंत्र ऐसा ही मामला था । इस प्रकार भारतीय परतन्त्रता के लिए जहाँ एक ओर साम्राज्यवादी शासन उत्तरदायी था वहीं दूसरी ओर स्वयं भारतवासियों का भी एक वर्ग भारतीयों पर अत्याचार करने में अपने गर्व का अनुभव कर रहा था ।

साम्राज्यवाद से मुक्ति के साधन -

अत: ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति पाने के लिए भारतीय मस्तिष्क में राष्ट्रीय स्वाभिमान विचलित हो उठा । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में दो प्रमुख साधनों को पराधीनता से मुक्ति के लिए स्वीकार किया जा रहा था । एक तो गान्धीवादी अहिंसक साधन और दूसरा क्रान्तिकारी हिंसक साधन ।

गांधीवादी अहिंसक साधन -

सत्याग्रह एवं हृदय परिवर्तन :

गान्धी जी साधनों को भी उतना ही पवित्र मानते थे जितना कि साध्य को । अत: उन्होंने एक पवित्र लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पवित्र साधनों को स्वीकार किया । वे शत्रु पर शक्ति की विजय नहीं वरन् आत्मशक्ति की विजय को स्थापित करना चाहते थे । अत: उन्होंने सत्याग्रह एवं हृदय परिवर्तन को अपने आन्दोलन में सम्मिलित किया । हिन्दी उपन्यासकारों ने भी गान्धीवादी आन्दोलन के महत्व को समझा तथा उन्हें अपनी रचनाओं के माध्यम से वाणी प्रदान करने का प्रयास किया ।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में गान्धीवादी आन्दोलन का सजग चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यास "रंगभूमि" का रचनाकाल गान्धीवादी आन्दोलन के चरमोत्कर्ष का काल था । यह वह काल था जब गान्धी जी ने प्रथम बार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को

असहयोग आन्दोलन के माध्यम से एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन बना दिया था जिसमें ग्रामीण जनता की भूमिका को भी महत्व प्रदान किया गया था। यद्यपि यह आन्दोलन विफल हो गया था तथापि इस आन्दोलन ने एक राष्ट्रीय चेतना को जागृत कर दिया। जिसने आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन को सफलता के पथ पर अग्रसर कर दिया। "रंगभूमि" में जॉन सेवक द्वारा सिगरेट का कारखाना पाँडेपुर नामक गाँव में लगाया जाता है, किसानों के घर, जमीन ले ली जाती है। यह सब ब्रिटिश शासन की स्वेच्छाचारिता को प्रदर्शित करता है। परन्तु गान्धीवादी पात्र सूरदास एक सच्चे सत्याग्रही की भाँति जॉन सेवक के इन कार्यों का विरोध करता है। वह कारखाना लगने के दुष्परिणामों को नायकराम को बताता है कि " मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायेगी, रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी, शराब का प्रचार भी तो बढ़ जायेगा, कसबियां तो आकर बस जायेंगी, परदेसी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा, दिहात के किसान अपना-अपना काम छोड़कर मजूरी की लालच से दौड़ेंगे, यहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरण अपने गाँवों में फैलायेंगे। देहातों की लड़कियां, बहुएँ मजूरी करने आयेंगी, और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी; यही रौनक शहरों में है। वही रौनक यहाँ हो जायेगी। भगवान न करे यहाँ वो रौनक हो। सरकार मुझे इस कुकरम और अधरम से बचाएँ।"[95]

जॉन सेवक का कारखाना ब्रिटिश सरकार का प्रतिरूप था जिसका विरोध सूरदास और उसके साथियों ने किया। सूरदास में सत्य और न्याय के प्रति अपार आस्था है, वह अहिंसा में अटूट विश्वास रखता है और उसमें आत्मबल बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है, जो गान्धीवादी नीति का प्रमुख अस्त्र था। अपने इन्हीं चारित्रिक गुणों के आधार पर ही वह क्लार्क के

---

95. वही, रंगभूमि, भाग 1, पृ0 131-132

आतंकवाद को चुनौती देता है । इस सम्बन्ध में वह कहता है कि यदि सरकार के हाथ में मारने का बल है तो हमारे हाथ में और कोई बल चाहे न हो, पर मर जाने का बल तो है ।[96] सूरदास के यह शब्द राष्ट्रीय आन्दोलन के सत्याग्रहियों के आत्मबल को प्रदर्शित करने वाले हैं । इसीलिए क्लार्क कहता है कि " एक सेना का मुकाबला करना इतना कठिन नहीं है, जितना ऐसे गिने-गिनाएं व्रतधारियों का, जिन्हें संसार में कोई भय ही नहीं है ।"[97]

जब कारखाने के लिए जमीन खाली कराई जाती है तो सूरदास अपनी झोपड़ी छोड़ने के लिए तैयार न हुआ । उसके प्रति जनता की सहानुभूति थी जो उसके लिए आत्मबलिदान करने को तैयार थी, सिपाहियों ने भी बगावत कर दी । उन्होंने गोली चलाने से इनकार कर दिया । इस पर गोरखों की फौज बुलाई गई । सूरदास ने सोचा कि कहीं गोली चल गई तो बहुत अधिक नर संहार हो जायेगा, हिंसा भड़क उठेगी । अत: उसने उत्तेजित भीड़ को रोका और कहा "भाईयों आप लोग अपने-अपने घर जायें । आपसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, घर चले जायें । यहां जमा होकर हाकिमों को चिढ़ाने से क्या फायदा ? ...... मैं हाकिमो को दिखा देता कि एक दीन .....तोप का मुंह कैसे बन्द कर देता है ...... मैं धरम के बल पर लड़ना चाहता था ।"[98] यहां पर सूरदास में गान्धीवादी आत्मबल के दर्शन होते हैं । इसी उपन्यास में विजय का चरित्र भी एक सच्चे सत्याग्रही का चरित्र है । वह एक सच्चे सत्याग्रही की भांति जसवन्त नगर के लोगों की सेवा करता है। उसमें स्वयं कष्ट झेलने की क्षमता है । तभी वह वीरपाल और उसके साथियों से कहता है कि " जब तक मेरी हड्डियां तुम्हारे घोड़ों के पैरों तले न रौंदी जायेंगी , मैं साम्हने से न

---

96. वही, पृ0 297

97. वही, पृ0 27

98. वही, पृ0 538

हटूँगा ।"[99] वह यह भी कहता है कि " वर्तमान दशा में प्रजा का यही धर्म है कि उस पर चाहे कितने ही अत्याचार किये जायें, पर वह मुँह न खोले ।"[100]

परन्तु प्रेमचन्द ने मात्र आवेश में आकर गान्धी जी का अनुसरण नहीं किया था वरन् यह इसलिए था क्योंकि गान्धीवादी नीति की आवश्यकता थी जिसके माध्यम से शत्रु का हृदय- परिवर्तन किया जा सकता था । उस समय ब्रिटिश सरकार एक शक्तिशाली सरकार थी जिसको शक्ति के बल से पराजित नहीं किया जा सकता था ।[101] गान्धी जी जनता को सत्याग्रह आन्दोलन के योग्य बनाना चाहते थे इसीलिए जब भी उन्होंने देखा कि जनता सत्याग्रह के मार्ग से विचलित हो सकती है उन्होंने सत्याग्रह स्थगित करना उचित समझा ।[102] सम्भवत: इसी प्रभावदश प्रेमचन्द ने सूरदास के मुख से यह कहलवाया है " फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो, हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी, जरूर होगी ।"[103] सूरदास के शब्दों में गान्धी जी के द्वारा पुन: आन्दोलन चलाने की एक गूंज सुनाई पड़ती है । चण्डीप्रसाद जी के अनुसार सूरदास के ये शब्द" भावी आन्दोलन की सूचना देते हैं ।"[104] अत: यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द एक जागरूक साहित्यकार थे । जिन्होंने अपनी युगीन समस्याओं और युग पुरूषों का निष्पक्ष आंकलन किया । यही कारण था उन्होंने प्रभुसेवक नामक पात्र के मुख से साधारण जनता में आत्म-सम्मान, साहस तथा देशप्रेम के भावों को भरने का प्रयास किया। प्रभुसेवक लोगों को साहस बन्धाते हुए कहता है कि " जब तक हम खून से डरते

---

99. वही, पृ0 68
100. वही भाग 1, पृ0 71
101. वही, पृ0 150-51
102. देखिए, पूर्वोल्लिखित
103. प्रेमचन्द - रंगभूमि , भाग दो, पृ0 406
104. डॉ0 चण्डीप्रसाद- हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, 1962, पृ0 227

रहेंगे, हमारे स्वप्न भी हमारे पास आने से डरते रहेंगे । उनकी रक्षा तो खून से ही होगी । राजनीति का क्षेत्र समरक्षेत्र से कम भयावह नहीं है । उसमें उतरकर रक्तपात से डरना कापुरुषता है ।[105] गान्धी जी ने भी डरपोक को कायर माना है । प्रेमचन्द के "कर्मभूमि" उपन्यास में भी सत्याग्रह को उद्देश्य प्राप्ति में सहायक बताया गया है ।[106] अत्याचार के समक्ष सत्याग्रहियों का आत्मबल इस उपन्यास में चित्रित किया गया है ।[107] जब अमरकान्त की गिरफ्तारी के समय गांव वाले सलीम पर हिंसक आक्रमण करना चाहते हैं तब अमरकान्त उन्हें रोकता है। वह उनसे कहता है कि यह हमारा धर्मयुद्ध है, अतः हमें शान्तिपथ से विचलित नहीं होना चाहिए । उसके अनुसार उनकी विजय उनके त्याग, कष्ट- सहन, बलिदान एवं सत्य बल से होगी ।[108] वह सलीम द्वारा आक्षेप लगाने पर कहता है कि आज़ादी का मूल्य न्याय और सत्य पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रहने की शक्ति में है ।[109] जब सलीम अमरकान्त की गान्धीवादी नीतियों को व्यर्थ बताते हुए कहता है कि "मरने वाला निःसन्देह हृदय में सहानुभूति उत्पन्न कर सकता है, लेकिन मारने वाला भय पैदा करने में समर्थ है, जो सहानुभूति से कहीं अधिक प्रभावकारी है ।[110] परन्तु इसका उत्तर अमरकान्त सलीम को यह देता है कि हिंसा को हिंसा से दबाना स्थाई नहीं होता है । यह उस चिनगारी के समान है जो राख के ढेर में दब तो जाती है लेकिन उसमें छिपी हुई आग भीषण अग्निकाण्ड में परिवर्तित हो सकती है । इसीलिए वह सलीम से कहता है कि कोई भी जाति या राष्ट्र हिंसा के द्वारा वास्तविक या स्थाई मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता ।

---

105. वही, भाग एक, पृ0 422

106, वही, कर्मभूमि, पृ0 215

107. वही, पृ0 218

108. वही, पृ0 326

109. वही, पृ0 376-77

110. वही, पृ0 377-78

क्योंकि यदि मुक्ति हिंसा के द्वारा प्राप्त हो भी जाय तो यह उस भाँति होगा जैसे कि सत्ता का एक निरंकुश के हाथ से निकलकर दूसरे निरंकुश के हाथ में स्थानान्तरण । परिणामस्वरूप शासन निरंकुश होगा । अतः आवश्यक है कि मुक्ति स्थाई हो और स्थाई मुक्ति हृदयपरिवर्तन अथवा मनुष्य के हृदय में मानवता के उदय से ही प्राप्त हो सकती है और किसी प्रकार नहीं ।[111]

प्रेमचन्द ने अमरकान्त के उपरोक्त विचारों को प्रधानता दी है । उन्होंने आतंकवाद और क्रान्तिवाद के ऊपर गान्धीवाद की विजय को स्थापित किया है । जब मैना असहयोगियों का साथ देती है और अपने प्राणों का बलिदान करती है तो न सिर्फ उससे जनसमूह को आत्मशक्ति प्राप्त होती है वरन् सरकार के सहयोगियों के हृदय पर भी इसका प्रभाव होता है। सेठ धनी-राम का हृदय परिवर्तन मैना की मृत्यु का ही प्रतिफल था । जिसके प्रयासों से सरकार किसानों की मांगों पर विचार करने के लिए कमेटी नियुक्त करती है ।[112]

प्रेमचन्द के अतिरिक्त कुछ अन्य उपन्यासकारों ने भी गान्धीवादी आन्दोलन का चित्रण अपने उपन्यासों में करने का प्रयास किया है । गान्धीवादी आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नया प्रयोग था । इसी का उल्लेख करते हुए सेठ गोविन्ददास अपने उपन्यास "इन्दुमती" में लिखते हैं कि " सूत के डोरे द्वारा स्वराज्य इस नई भाषा के नमूने हैं तथा हड़ताल से लेकर असहयोग और सत्याग्रह कृतियों के दृष्टान्त हैं ।"[113] उपन्यास में ललितमोहन, गान्धी जी की भाँति जनजागरण का कार्य करता है। वह जनता को दयनीय स्थिति से ऊपर उठने

---

111. वही, पृ० 378-79

112. वही, पृ० 407-8

113. सेठ गोविन्ददास, इन्दुमती, पृ० 266

का सन्देश देता है । सत्याग्रह आन्दोलन के चित्रण में सत्याग्रहियों की वीरता और साहस अंग्रेजों के अत्याचार के विरुद्ध बड़ी कुशलतापूर्वक दिखाया गया है । जेल में उन पर अनेक अत्याचार किये जाते हैं । परन्तु वे आजादी के आगे इन सबको सहर्ष स्वीकार करते हैं ।[114]

वृन्दावन लाल वर्मा के "अंचल मेरा कोई " नामक उपन्यास में सत्याग्रह आन्दोलन का वर्णन है । इसमें देश सेवा की भावना को दर्शाया गया है। अचल का ध्येय सत्याग्रह आन्दोलन को सफल बनाना है । इसीलिए न तो वह बी0ए0 पास करने के बाद एम0ए0 में प्रवेश लेता है और न ही नौकरी करना चाहता है । उपन्यासकार ने सत्याग्रह आन्दोलन को अंग्रेज शासन के लिए भय उत्पन्न कराने वाले आन्दोलन के रूप में दिखाया है । अचल कुमार सुधा से कहता है" .... उसका डर अवश्य जाहिर होता है। भीड़-भाड़ होगी, राष्ट्रीय नारे लगेंगे, लोगों में उत्साह की उमंग दौड़ेगी - जो बात सरकार नहीं चाहती वह सब अनायास ही हो जायेगा, यह उसको क्यों रूचने लगा?"[115] वर्मा जी ने सत्याग्रह आन्दोलन को ही पराधीनता से मुक्ति का एकमात्र साधन माना है। जिसमें शत्रु का हृदय परिवर्तन निहित होता है । इसीलिए वे अचल के शब्दों में कहते हैं कि "ब्रिटिश साम्राज्य या किसी भी अत्याचार को खत्म करने का एक मात्र उपाय सत्याग्रह ही है । "[116] इसके अतिरिक्त ऋषभचरण जैन के 'सत्याग्रह" उपन्यास तथा जैनेन्द्र के "सुनीता" उपन्यास में सत्याग्रह के द्वारा अहिंसा की विजय को स्थापित किया गया है।

हिन्दी उपन्यासों में उपर्युक्त आधार/ पर गान्धीवादी सत्याग्रह एवं हृदय परिवर्तन के प्रतिफलन को देखा जा सकता है। वास्तव में प्रथम बार भारतीय

---

114. वही, पृ0 31।

115. वृन्दावन लाल वर्मा- अचल मेरा कोई, पृ0 6, 7

116. वही, पृ0 7।

राष्ट्रीय आन्दोलन में एक निश्चित आधार पर भारतीय जनता ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सामना गान्धीवादी सिद्धान्तों के माध्यम से किया था। रामदीन गुप्त ने प्रेमचन्द के "प्रेमाश्रम" उपन्यास की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि " गान्धी जी के असहयोग आन्दोलन की सबसे बड़ी देन यही थी कि इसने भारत की कोटि-कोटि जनता को अपने विदेशी शासकों के सम्मुख कमर सीधी करके खड़े होने का साहस और निर्भयता प्रदान की।"[117] डॉ० गणेशन ने भी प्रेमाश्रम की कथावस्तु को भारतीय राष्ट्रीय जागरण पर एक महत्वपूर्ण लेख के रूप में स्वीकार किया है।[118] प्रेमचन्द के रंगभूमि उपन्यास में भी गान्धीवादी सत्य और अहिंसा की नीति के आधार पर राष्ट्रीय चेतना जागृत करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि मन्मथनाथ गुप्त जी के मत में "रंगभूमि" को लिखे जाने का कोई औचित्य नहीं दिखाई देता क्योंकि उसमें गान्धीवादी नीतियों की जीत नहीं दिखाई देती है, जीत है भी तो नैतिक न कि वास्तविक। नैतिक जीत पर भी उन्हें सन्देह है। क्योंकि उनके अनुसार पाण्डेपुर निवासी राष्ट्रीय चेतना के आधार पर संगठित नहीं हो पाते हैं।[119] यद्यपि इस सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में सत्य के दर्शन भी होते हैं। परन्तु उनका यह मानना कि जीत वास्तविक होनी चाहिए, इस सम्बन्ध में उनके विचार संकीर्ण प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है कि वे "वास्तविक" शब्द का अर्थ नहीं समझ सके। इसका कारण यह हो सकता है कि वे क्रान्तिकारी थे और तुरन्त परिणाम मे विश्वास रखते थे जबकि गान्धीवादी नीति प्रतीक्षा पर आधारित है जिसमें स्वयं कष्ट सहकर अपने आत्मबल के आधार पर शत्रु का हृदय परिवर्तन कराना है। सूरदास की मृत्यु का तात्कालिक परिणाम भले ही न हुआ हो। परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जान सेवक का हृदय परिवर्तन गान्धीवादी नीति

की ही जीत का परिणाम था ।[120]

स्वदेशी तथा बहिष्कार आन्दोलन :

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन का स्पष्ट चित्रण प्राप्त होता है । इस आन्दोलन से न केवल ब्रिटिश व्यापार एवं अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा था वरन् भारतीयों में स्वदेशी के प्रयोग से स्वाभिमान की भावना का भी विकास हुआ था । गान्धी जी "सादा जीवन उच्च विचार" में विश्वास रखते थे ।[121] स्वदेशी इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक था। इससे यह तात्पर्य नहीं है कि गान्धी जी विकास के विरोधी थे । वास्तव में वे भारत के विकास में रूचि रखते थे क्योंकि विदेशी सरकार के द्वारा उठाया गया विकास की दिशा में प्रत्येक कदम भारत को और अधिक परतन्त्र बना रहा था ।[122]

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास "प्रेमाश्रम" में बहिष्कार आन्दोलन का चित्रण किया है । शीलमणि के पति डिप्टी साहब अपने पद से त्याग पत्र दे देते हैं । इस प्रकार के कार्यों में स्त्रियों के योगदान को गान्धी जी की भाँति ही प्रेमचन्द ने भी स्वीकार किया है । शीलमणि विदेशी सरकार की नौकरी के सम्बन्ध में श्रद्धा से कहती है, "इस नौकरी के साथ आत्मरक्षा नहीं हो सकती है। जाति के नेतागण प्रजा के उपकार के लिए जो उपाय करते हैं सरकार उसी में विघ्न डालती है, उसे दबानाचाहती है........ चरखों और करघों..... स्वदेशी कपड़े का प्रचार करने के लिए दूकानदारों और ग्राहकों को समझाना

---

120. देखिये, रंगभूमि पृ0 214

121. जे0सी0 कुमारप्पा- दि गान्धीयन वे आफ लाइफ, पृ0 41-42

122. एम0ए0 बुच- राईज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन नेशनालिज्म, पृ0 203

अपराध ठहरा दिया गया है। नशे की चीजों का प्रचार कम करने के लिए नशेबाजों और ठेकेदारों से कुछ कहना सुनना भी अपराध है।"[123] प्रेमचन्द के एक अन्य उपन्यास "वरदान" में बाबू राधाचरण देश सेवा के लिए सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे देते हैं।[124] वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यास "अचल मेरा कोई" में अचल सरकारी नौकरी नहीं करना चाहता।[125] उदयशंकर भट्ट के उपन्यास "एक नीड़ दो पंछी" में ब्रिटिश न्याय व्यवस्था की आलोचना तथा स्वदेशी न्यायव्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया गया है।[126] इस उपन्यास में गान्धीवादी ग्राम पंचायतों में न्याय का आश्वासन प्राप्त होता है।[127]

भारतीय परतन्त्रता के लिए विदेशी शिक्षा को भी धिक्कारा गया है क्योंकि इस शिक्षा के माध्यम से ब्रिटिश शासक एक ऐसा वर्ग खड़ा करना चाहते थे जो शरीर से तो भारतीय हों परन्तु मस्तिष्क से ब्रिटिश।[128] इस शिक्षा ने शिक्षित वर्ग को विदेशी शासन का चापलूस बना दिया था। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास "सेवासदन" में भाषागत दासता की भर्त्सना की है। उनका यह मत है कि एक राष्ट्रीय भाषा के अभाव में हमें स्वराज्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। उनके अनुसार "हमारी पराधीनता" का सबसे अपमानजनक, सबसे व्यापक, सबसे कठोर अंग अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व है। .... अगर आज इस प्रभुत्व को हम तोड़ सकें, तो पराधीनता का आधा बोझ हमारी गर्दन से उतर जायेगा।"[129] उनके मत में जिस दिन आप अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे, उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन हो जायेंगे।"[130] सेवासदन"

---

123. प्रेमचन्द- प्रेमाश्रम, पृ0 343
124. वही, वरदान, पृ0 149
125. वृन्दावनलाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ0 17
126. उदयशंकर भट्ट - एक नीड़ दो पंछी, पृ0 319
127. वही, पृ0 321
128. देखिये, पूर्वोल्लिखित
129. प्रेमचन्द - साहित्य का उद्देश्य पृ0 150
130. वही, पृ0 153

में प्रेमचन्द ने इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं ।[131] "प्रेमाश्रम" उपन्यास में विदेशी शिक्षा को भारतीय दासता का कारण बताया गया है । इससे व्यक्ति में मानवीयता का लोप हो जाता है, केवल भौतिक लक्ष्य ही सब कुछ बन जाता है । उपन्यास में ज्ञानशंकर की स्वार्थपरता, हृदयहीनता तथा अन्ध- धनोपासना का श्रेय उसकी शिक्षा को दिया गया है । राय साहब ज्ञान शंकर से कहते हैं, " यह तुम्हारा दोष नहीं, तुम्हारी धर्म-विहीन शिक्षा का दोष है ...... अपनी शिक्षा प्रणाली के बनाये हुए हो । "[132] इसी उपन्यास में राय साहब शिक्षा और सुधार से गृह-उद्योगों को विकसित करना चाहते हैं ।[133]

"रंगभूमि" उपन्यास में कुंवर साहब और मिसेज सेवक के वार्तालाप से भी विदेशी शिक्षा की भर्त्सना की गई है। मिसेज सेवक जब कुंवर साहब से कहती हैं कि "शिक्षा का इतना प्रचार और भी किसी काल में हुआ था ? " तो कुंवर साहब कहते हैं कि " मैं इसे शिक्षा ही नहीं कहता जो मनुष्य को स्वार्थ का पुतला बना दे । "[134] यही कारण था कि गान्धी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के अंग के रूप में राष्ट्रभाषा को हिन्दुस्तानी का स्वरूप देने का प्रयास किया था । प्रेमचन्द ने भी हिन्दुस्तानी में लिखकर राष्ट्रीय एकता को साकार करने का प्रयास किया ।[135] प्रेमचन्द ने अपने "कायाकल्प" उपन्यास में शिक्षा के महत्व एवं उद्देश्य को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । प्रेमचन्द के मत में शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के चरित्र को ऊँचा करना है, उसके जीवन को एक आदर्श जीवन बनाना है । परन्तु साम्राज्यवादी शिक्षा उपयोगिता पर आधारित

---

131. वही, सेवासदन, पृ0 144-45
132. वही, प्रेमाश्रम, पृ0 199, 434-35
133. वही, पृ0 87
134. वही, रंगभूमि, भाग 1, पृ0 269
135. मन्मथनाथ गुप्त - प्रेमचन्द:व्यक्ति और साहित्यकार, पृ0 123 पर उद्धृत ।

है । इसी लिए वह लिखते हैं "जैसे और भी चीज़े बनाने के कारखाने खुल गये हैं, उसी तरह विद्वानों के कारखाने हैं और उनकी संख्या हर साल बढ़ती जाती है।[136]

प्रेमचन्द राष्ट्रवादी शिक्षा को महत्व देने के पक्ष में थे । शिक्षित होना मात्र नौकरी प्राप्त करने के लिए ही आवश्यक नहीं है वरन् अपनी स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए है । परतन्त्र भारत की जनता के लिए यह आवश्यक था कि उसको अपनी परतन्त्रता का ज्ञान हो तथा यह भी ज्ञान हो कि वह इससे किस प्रकार मुक्त हो सकता है । चक्रधर के माध्यम से प्रेमचन्द ने अपने इसी विचार को अभिव्यक्त किया है -" चक्रधर - मेरी नौकरी करने की इच्छा नहीं है।

वज्रधर (पिता) - यह खब्त तुम्हें कब से सवार हुआ ?

नौकरी के सिवा और करोगे ही क्या ?

चक्रधर - मैं आज़ाद रहना चाहता हूँ ।

वज्रधर - आजाद रहना था, तो एम०ए० क्यों पास किया ?

चक्रधर - इसलिए कि आजादी का महत्व समझूँ । "[137]

इससे यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास के द्वारा उन लोगों को आजादी के मर्म को समझने की प्रेरणा दी है जो शिक्षा प्राप्त कर रहे थे तथा वे जो शिक्षा प्राप्त नही करना चाहते।यहाँ पर प्रेमचन्द का उद्देश्य पूर्णतया राष्ट्रवादी है। उनका कहना है कि शिक्षित वर्ग जिनसे लड़ना चाहिए उनके तो तलवे चाटता है और जिनसे गले मिलना चाहिए उनकी गर्दन दबाता है । इस शिक्षा ने हमें पशु बना दिया है । जिसे कोई अधिकार मिल गया वह तुरन्त दूसरों को पीस कर पी जाने की फिक्र करने लगता है ।[138] वृन्दावन लाल वर्मा ने अपने उपन्यास "अमल मेरा कोई " में विदेशी शिक्षा एवं नौकरी के प्रति घृणा प्रगट की है ।

---

136. प्रेमचन्द - कायाकल्प, पृ० 7

137. वही, पृ० वही

138. वही, पृ० 180-181

चपल न तो बी०ए० पास करने के बाद एम०ए० में प्रवेश लेता है और न ही नौकरी करना चाहता है ।[139] धनीराम प्रेम के उपन्यास "मेरा देश" में विमल अपनी पढ़ाई छोड़ देता है ।[140] सेठ गोविन्ददास के "इन्दुमती" उपन्यास में इन्दुमती और ललित मोहन कालेज जाना बन्द कर देते हैं । इसी उपन्यास में कौंसिल बहिष्कार का भी चित्रण प्राप्त होता है ।[141] उपर्युक्त आधार पर यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत विदेशी शिक्षा को भारतीय दासता का एक कारण माना जा रहा था ।

घरेलू उद्योग धन्धों का विनाश औद्योगीकरण के कारण हो रहा था । गान्धी जी ने इसका विरोध किया और घरेलू उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देने का प्रयास किया ।[142] प्रेमचन्द ने इस समस्या को भी अपने उपन्यास "प्रेमाश्रम" में उठाने का प्रयास किया है । क्योंकि जब तक लोग स्वावलम्बी नहीं होंगे तब तक रामराज्य की कल्पना व्यर्थ है । प्रेमचन्द ने इस समस्या का समाधान राय साहब और एजेण्ट के मध्य वार्तालाप से निकालने का प्रयास किया है। राय साहब घरेलू उद्योग- धन्धों के औचित्य को बताते हुए कहते हैं कि "उन्हें घर से निर्वासित करके दुर्व्यसन के जाल में न फसायें, उनके आत्माभिमान का सर्वनाश न करें और यह उसी दशा में हो सकता है जब घरेलू शिल्प का प्रचार किया जाय । .... एजेन्ट पूछता है कि आपका अभिप्राय काटेज इण्डस्ट्री से है? समाचार पत्रों में कहीं-कहीं इसकी चर्चा भी हो रही है । किन्तु इसका सबसे बड़ा पक्षपाती भी यह दावा नहीं कर सकता कि इसके द्वारा आप विदेशी का सफलता के साथ अवरोध कर सकते हैं । राय साहब उत्तर देते हैं कि इसके लिए

---

139. वृन्दावन लाल वर्मा - अचल मेरा कोई, पृ० 37

140. धनीराम प्रेम - मेरा देश, पृ०53

141. सेठ गोविन्ददास - इन्दुमती , पृ० 313

142. देखिये, पूर्वोल्लिखित

हमें विदेशी वस्तुओं पर कर लगाना पड़ेगा । योरोप वाले दूसरे देशों से कच्चा माल ले जाते हैं, जहाज का किराया देते हैं, उन्हें मजूरों को कड़ी मजूरी देना पड़ता है उस पर हिस्सेदारों को नफा भी खूब चाहिए । हमारा घरेलू शिल्प इन बाधाओं से मुक्त रहेगा और कोई कारण नहीं कि उचित संगठन के साथ वह विदेशी व्यापार पर विजय न पा सके । वास्तव में हमने कभी इस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया । पूँजीवाले लोग इस समस्या पर विचार करते हुए डरते हैं । वे जानते हैं कि घरेलू शिल्प हमारे प्रभुत्व का अन्त कर देगा । इसीलिए वह इसका विरोध करते हैं । "[143]

चरखा चलाने तथा सूत कातने के दोहरे लाभ को गान्धी जी की भाँति प्रेमचन्द ने भी स्वीकार किया । क्योंकि जहाँ इससे एक ओर आत्म-शुद्धि [144] प्राप्त होती है, वहीं इससे स्वदेशी के लक्ष्य की प्राप्ति भी होती है जो स्वराज्य प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण माना जा रहा था । सेठ गोविन्ददास ने अपने उपन्यास "इन्दुमती" में गान्धीवादी आन्दोलन का चित्रण इसी आधार पर किया है । गान्धीवादी आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नया प्रयोग था । इसी का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि " सूत के डोरे द्वारा स्वराज्य, इस नयी भाषा के नमूने हैं तथा हड़ताल से लेकर असहयोग और सत्याग्रह कृतियों के दृष्टान्त हैं ।"[145] चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास " आत्मदाह" में भी गान्धी-वादी नीतियों एवं सिद्धान्तों को श्रेष्ठ माना गया है । इस उपन्यास में सुधीन्द्र एक गान्धीवादी पात्र है । वह क्रान्तिकारी सन्यासी के मतों से सहमत नहीं होता है। वह स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन में भाग लेता है। वह विदेशी

---

143. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ0 127-128

144. प्रेमचन्द -कर्मभूमि , पृ0 17 ﴾ लाला समरकान्त को अमरकान्त द्वारा चर्खा चलाना पसन्द नहीं आता । वे अमरकान्त से पूछते हैं कि उसने कितने दाम का सूत काता होगा । अमरकान्त उत्तर देता है कि चर्खा रुपये के लिए नहीं काता जाता । यह आत्मशुद्धि का एक साधन है।﴿

145. सेठ गोविन्ददास - इन्दुमती, पृ0 266

देश भक्ति तथा आत्मबलिदान की भावना :

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं ने भारतीय जनता के मस्तिष्क में साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध घृणा की भावना को जागृत किया। उन्होंने अपनी परतन्त्रता के अभिशाप को वास्तव में इस आन्दोलन के माध्यम से ही समझा। अत. ऐसे शासन को जो उन्हें पराधीन बनाये रखने को ही अपना लक्ष्य समझता है, उखाड़ फेंकने के लिए जनता जागृत हो उठी। इस जागृति के कार्य में राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं के साथ ही साथ हिन्दी उपान्यासकारों ने भी खूब बढ़-चढ़ कर भाग लिया। हिन्दी उपान्यासों में भारतीय जनता को देश-भक्ति तथा देश के लिए बलिदानहोने की भावना को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में निखारा गया है। अंग्रेजी शासनकाल में भारतीयों को निम्न समझा जाता था। उनके प्रति अंग्रेजों में घृणा की भावना रहती थी। प्रेमचन्द ने अपने "सेवासदन" उपन्यासमें इस प्रकार के भेद को अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रित किया है।[152] प्रेमचन्द ने वास्तव में इस उपन्यास में भारतवासियों को जागृति का सन्देश दिया है। सम्भवत: इसी आधार पर महेन्द्र भटनागर ने "सेवासदन" के सम्बन्ध में यह कहा है कि "हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्वाधीनता की गूँज प्रथमत: "सेवासदन" में सुनाई पड़ती है।"[153]

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का अन्तिम उद्देश्य शोषण पर आधारित विदेशी सरकार को भारत भूमि पर से उखाड़ फेंकना था। "रंगभूमि" उपन्यास में जॉन सेवक का कारखाना भी ब्रिटिश सरकार का ही दूसरा रूप था जिसका विरोध सूरदास और उसके साथियों ने किया। वह गान्धीवादी नीति के आधार पर क्लार्क के आतंकवाद को चुनौती देता है।[154] गान्धी जी

---

152. प्रेमचन्द - सेवासदन, पृ0 265-266

153. महेन्द्र भटनागर- समस्यामूलक उपन्यासकार: प्रेमचन्द, पृ0 3।

154. प्रेमचन्द - रंगभूमि, भाग 1, पृ0 297

े मत में शत्रु पर हिंसा से नहीं वरन् आत्मबल से विजय प्राप्त की जानी चाहिए ।[155] जिससे शत्रु का हृदय परिवर्तन किया जा सके । प्रेमचन्द ने ऐसी ही भावना "रंगभूमि" के प्रभुसेवक नामक पात्र के मुख से साधारण जनता में भरने का प्रयास किया है । वह लोगों को साहस बन्धाते हुए कहता है कि " जब तक हम खून से डरते रहेंगे , हमारे स्वप्न भी हमारे पास आने से डरते रहेंगे । उनकी रक्षा तो खून से ही होगी । राजनीति का क्षेत्र समरक्षेत्र से कम भयावह नहीं है । उसमें उतरकर रक्तपात से डरना कापुरुषता है । "[156] गान्धी जी डरपोक को कायर मानते थे ।[157]

"गबन" उपन्यास में प्रेमचन्द ने देशभक्ति एवं आत्मबलिदान की राष्ट्रीय चेतना को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए उद्यत था, वहीं भारतीयों में भी स्वदेश-प्रेम एवं आत्मबलिदान की भावना भरी हुई थी । वे राष्ट्र के लिए अपने प्राणों की बलि को तुच्छ समझते थे । देवीदीन में देशभक्ति की भावना को प्रेमचन्द ने बड़े उत्कृष्ट रूप में दर्शाया है। उसके दो जवान बेटों को विदेशी वस्त्रों की दुकान पर धरना देते समय गोली मार दिया जाता है । उस समय देवीदीन में विलाप और दुःख के स्थान पर प्रेमचन्द ने प्रसन्नता और उमंग को प्रदर्शित किया है। वह विजय भरे स्वर में कहता है कि " उस बखत ऐसा जान पड़ता था कि मेरी छाती गज भर की हो गई है, पाँव जमीन पर न पड़ते थे, यही उमंग आती थी कि भगवान ने औरों को पहले न उठा लिया होता तो उन्हें भी भेज देता ।"[158] देवीदीन के उपर्युक्त शब्दों में देश के लिए मर मिटने वाली

---

155. देखिये, पूर्वोल्लिखित

156. प्रेमचन्द - रंगभूमि, भाग 1, पृ0 422

157. देखिये, पूर्वोल्लिखित

158. प्रेमचन्द- गबन पृ0 215

भावना दिखाई देती है । जो राष्ट्रीय आन्दोलन में रत लोगों को देशभक्ति की प्रेरणा देती है तथा साथ ही साथ उन लोगों के समक्ष एक चुनौती है जो कि राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने से उत्पन्न होने वाले कष्टों एवं दु:खों से घबराते हैं । प्रेमचन्द के "वरदान" नामक उपन्यास में भी राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति की भावना को प्रदर्शित किया गया है । जिसमें सुवामा अष्टभुजी देवी से प्रार्थना करती है कि उसके यहाँ ऐसे पुत्र का जन्म हो जो देश का कल्याण करे ।[159]

सेठ गोविन्ददास के "इन्दुमती " उपन्यास में सत्याग्रहियों की वीरता और साहस अंग्रेजों के अत्याचार के विरूद्ध बड़ी कुशलतापूर्वक दिखाया गया है । जेल में उनके ऊपर अनेक अत्याचार किये जाते हैं । परन्तु वे आजादी के आगे इन सब को सहर्ष स्वीकार करते हैं ।[160] धनीराम प्रेम के उपन्यास " मेरा देश" में विमल में राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रभक्ति अत्यन्त उत्कट रूप में दिखाई देती है । वह अदालत में निर्भीकता से कहता है कि " जब तक भारत में एक बच्चा भी जिन्दा रहेगा तब तक ब्रिटिश शासन के विरूद्ध असहयोग का जो झण्डा फहराया गया है, वह नही झुकेगा ।"[161] परन्तु उससे भी अधिक राष्ट्रप्रेम उसकी माँ में दिखाई देता है। क्योंकि जब अपनी माँ की बीमारी की खबर सुनकर वह जेल से भाग आता है तो माँ उसको देश द्रोही कहकर डाँटती है ।[162]

प्रेमचन्द सभी प्रकार के कष्ट एवं दु:खों के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उत्तरदायी मानते थे । अत: उनका मानना था कि जैसे ही साम्राज्यवाद का

---

159. वही, वरदान, पृ0 123

160. सेठ गोविन्ददास -इन्दुमती, पृ0 311

161. धनीराम प्रेम - मेरा देश, पृ0 104

162. वही, पृ0 201

भ-ना हो जायेगा, वैसे ही भारत में सुख-शान्ति एवं समृद्धि स्थापित हो जायेगी । "कर्मभूमि" उपन्यास में इसी प्रकार के विचार प्राप्त होते हैं "भारत पराधीन है । लोग जानते हैं कि यहाँ लोगों पर उनका [अंग्रेजों का] आतंक छाया हुआ है । वह जो अनर्थ चाहे, करें । कोई चूँ नहीं कर सकता । यह आतंक दूर करना होगा । इस पराधीनता की जंजीर को तोड़ना होगा ।"[163] राष्ट्रीय आन्दोलन इसी जंजीर को तोड़ना अपना लक्ष्य मानता था चाहे इसके लिए कितना ही मूल्य क्यों न चुकाना पड़े । इसी उपन्यास में सुखदा स्वाधीनता के लिए हर प्रकार के बलिदान को नगण्य मानती है। वह अमरकान्त और सलीम से कहती है, " हमें जो कुछ बलिदान करना पड़ा वह उस जागृति को देखते हुए कुछ भी नहीं है जो जनता में अंकुरित हो गई है । "[164] सुखदा के यह शब्द न केवल तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना के जागरण के प्रतीक हैं वरन् राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी समाज की सक्रिय भूमिका की स्पष्ट अभिव्यक्ति करते हैं ।

प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आन्दोलन में विदेशियों की भूमिका को भी महत्वपूर्ण माना था । उन्होंने "रंगभूमि" में सोफिया के चरित्र को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में श्रीमती एनी बेसेन्ट के रूप में चित्रित किया है। प्रेमचन्द जी ने सोफिया के हृदय में भारत के लिए अपार प्रेम और श्रद्धा को प्रदर्शित किया है। वह स्वयं कहती है कि "मैं अपने को भारत सेवा के लिए समर्पित करती हूँ ।"[165]

हिंसक साधन :

अनेक हिन्दी साहित्यकार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय थे जिनमें मन्मथनाथ गुप्त, यशपाल, "अज्ञेय" इत्यादि का नामोल्लेख किया जा सकता है। इन क्रान्तिकारियों ने न केवल देश में घटने वाली क्रान्तिकारी घटनाओं

---

163. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ० 30
164. वही, पृ० 403
165. वही, रंगभूमि, पृ० 41

का ही वर्णन किया है वरन् क्रान्तिकारियों के उद्देश्य एवं भविष्य की नीतियों तथा योजनाओं को भी प्रस्तुत किया । ऐसे साहित्य का प्रभाव क्रान्तिकारी आन्दोलन पर भी पड़ा क्योंकि " जन विप्लव में सहयोग देना साहित्य का प्रधान उद्देश्य है ।[166] अतः ऐसे क्रान्तिकारी साहित्यकारों ने क्रान्तिकारियों का मार्ग दर्शन किया जिससे क्रान्तिकारी आन्दोलन लाभान्वित हो सका । ये साहित्यकार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नवीन दिशा प्रदान करना चाहते थे । इनकी आस्था गान्धीवादी आन्दोलन में पूरी तरह नहीं रह गई थी । वे अंग्रेजी शासन का अन्त शीघ्र करना चाहते थे । यशपाल के अनुसार, " हम सुधारों को नही बल्कि व्यवस्था बदल देने की माँग करते है ।"[167] कारण ये था कि वे गान्धीवादी नीति का परिणाम लाला लाजपतराय की मृत्यु में देख चुके थे । अतः अहिंसा का मार्ग त्यागकर हिंसक साधनों से अंग्रेजी साम्राज्य को उखाड़ फेंकना क्रान्तिकारी अपना कर्तव्य समझते थे । इसका उदाहरण साडर्स की हत्या में दिखाई देता है ।[168]

क्रान्तिकारी आन्दोलन का सर्वप्रथम प्रकटीकरण दुर्गाप्रसाद खत्री के "प्रतिशोध" उपन्यास में हुआ है। वैसे तो क्रान्तिवाद का उदय बंग-भंग के पूर्व ही हो चुका था । यही कारण था कि दुर्गाप्रसाद खत्री जी ने क्रान्तिवाद को गाधीयुग में उठने से पूर्व ही अपने उपन्यास में चित्रित किया है।इस उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया हैकि "क्रान्तिकारी जो आत्म-बलिदान करता है वह उन नेताओं से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होता है जो मात्र भाषणों से ही जनता को मूर्ख बनाते रहते हैं । उनके अनुसार "यह कोई नहीं देखता कि लम्बी -चौड़ी वक्तृताएं झाड़ने और मोटरों पर दौरा करने वालो से कितना अधिक त्याग वह क्रान्तिकारी कर रहा है, जिसकी आवाज पिस्तौल की गोली है और जिसकी सवारी अरथी ।

---

166. फास्ट - लिटरेचर एण्ड रियेलिटी, पृ0 15
167. यशपाल - सिंहावलोकन, भाग 2, पृ0 219
168. मन्मथनाथ गुप्त - भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ0 264

यह कोई नहीं कहता कि क्रान्तिकारी तुम्ही देश के बन्धु हो । दस हजार नेता वह नही दे सकते जो तुममें का एक-एक हँसते -हँसते दे डालता है। "[169] खत्री जी ने क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थन करते हुए कहा है कि अत्याचार का दमन शक्ति से किया जाना चाहिए । पराधीनता का अन्त करना चाहिए । पराधीन देश में कभी भी सुख नहीं हो सकता । यही कारण है कि वे पराधीनता से मातृ भूमि को मुक्त कराने के लिए आतंकवाद का समर्थन करते हैं ।[170] इस उपन्यास में क्रान्तिकारियों के संगठन का उल्लेख है ।[171]

दुर्गा प्रसाद खत्री के एक अन्य उपन्यास" रक्तमण्डल" में आततायी के वध की प्रेरणा दी गई है ।[172] इससे स्पष्ट है कि देश को जिस तरह से हो सके स्वतन्त्र करना उसका मुख्य उद्देश्य है ।[173] इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'रक्तमण्डल" में "भयानक चार" का एक संगठन है जो कि गुप्त क्रान्तिकारी समूहों का स्मरण दिलाता है । इस संगठन के द्वारा देश को स्वाधीन कराने का प्रयास किया जाता है । इस संगठन के कार्य ऐसे होते थे कि सरकार भी परेशान हो गई थी ।[174] राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले क्रान्तिकारियों के संगठन की अनुशासनबद्धता बड़ी महत्त्वपूर्ण थी । उन्हें एक बार ऐसे संगठनों की सदस्यता लेने पर गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती थी और देश की बलि वेदी पर आहुति देने के लिए सदैव तैयार रहना पड़ता था। इसी प्रकार की भावना "रक्तमण्डल" में दिखाई गई है ।[175] इस उपन्यास में आतंकवादी आन्दोलन का वर्णन है जिसका उद्देश्य अंग्रेज सरकार को जड़ से उखाड़ फेंकना था।"भयानक चार" के द्वारा

---

169. दुर्गाप्रसाद खत्री- प्रतिशोध, पृ0 52
170. वही, पृ0 14
171. वही, पृ0 19
172. वही, रक्तमण्डल, भाग 1, पृ0 48
173. वही, पृ0 वही
174. वही, पृ0 वही
175. वही, भाग 4, पृ0 134

अपने कार्यक्रम के सम्बन्ध में कहा जाता था कि " अब हम एक आखिरी चोट उस जालिम विदेशी सरकार को पहुँचाना चाहते हैं जिसने अपना कब्जा जबर्दस्ती हमारे देश पर जमा रखा है। तीन रोज बाद इस समस्त प्रान्त के उन भागों पर बम बरसाये जायेंगे जहाँ फौजी छावनियाँ, सरकारी दफ्तर, खजाने, कचहरियाँ या ऐसे ही दूसरे मुकाम हैं ।"[176] इसी प्रकार अमर भी कहता है कि " मेरे मण्डल का हुक्म है कि इस देश में जितनी भी फौजी छावनियाँ हैं सब उड़ा दी जायें । मैं उसी काम के लिए आया हूँ । मेरा पिता मेरे काम में बाधा देता है तो मैं उसे अपने रास्ते से हटा कर अपना काम करूँगा ।"[177]

आतंकवाद एवं हिंसक आन्दोलन के प्रभाव पर टिप्पणी करते हुए गोपाल कहता है," अभी तो आपकी दो ही तीन छावनियाँ उड़ी हैं जिस समय समूचे देश की छावनियाँ इसी तरह उड़ा दी जायेंगी और तब लाटों की कोठियाँ, कमाण्डर-इन-चीफ के बंगलों , छोटे-मोटे अफसरों के मकानों और दफ्तरों तथा कचहरियों का नाम निशान मिट जायेगा ।"[178] सम्भवत. यह आतंकवादी आन्दोलन ब्रिटिश सरकार को कमजोर बनाने के लिए था और लेखक के मत में जब सरकार कमजोर पड़ जायेगी । तब गुप्त रूप से आन्दोलन चलाने के स्थान पर खुला विद्रोह करके विदेशी सत्ता को भारत से निकाला जा सकता है। यह खुला विद्रोह सम्भवत: 1857ई0 के विद्रोह को पूर्णता प्रदान करेगा । उन्होंने लिखा है " देश में गुप्त रीति से जो कुछ आन्दोलन हम लोग कर सके हैं उसका भी प्रभाव आशाजनक हुआ है। अस्तु इस समय हम लोगों की राय में खुला विद्रोह कर देने का बड़ा सुन्दर मौका आ गया है। "[179]

---

176. वही, पृ0 132

177. वही, भाग 2, पृ0 8

178. वही, पृ0 34

क्रान्तिकारियों द्वारा विदेशी सरकार को डराने के प्रयास का उल्लेख "रक्तमण्डल" मे हुआ है ।[180] क्रान्तिकारियों को धन की आवश्यकता पड़ती थी । परन्तु प्रश्न यह था कि कहाँ से धन लाया जाय ? जनता से मांग नही सकते थे, स्वयं वे इतने धनी नहीं थे कि क्रान्ति के लिए आवश्यक धन को पूरा कर सकें । अत: उन्होंने राजनैतिक डकैतियाँ डालने का निश्चय किया।[181] "रक्तमण्डल" में भी इसका वर्णन किया गया है ।[182] काकोरी ट्रेन डकैती का भी उल्लेख आया है ।[183] लार्ड इरविन की गाड़ी के नीचे जो बम फटा था उसका वर्णन भी खत्री जी ने किया है ।[184]

प्रेमचन्द यद्यपि गान्धी जी के कट्टर अनुयायियों में से एक थे और उनकी नीतियों एवं कार्यक्रमों में उनकी पूर्ण आस्था थी । यह भी सत्य है कि जीवन के अन्तिम दिनों में यथार्थवादी होने के कारण उनका झुकाव समाजवाद की ओर हुआ था । परन्तु जहाँ तक उनके उपन्यासों का प्रश्न है, अधिकांश रूप में उन पर गान्धीवादिता की छाप पड़ी है। वे क्रान्तिकारी आन्दोलन के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि वे इसके परिणाम को सन्देह की दृष्टि से देखते थे । डा० इन्द्रनाथ मदान को लिखे गये अपने पत्र में उन्होंने लिखा था कि "क्रान्ति का परिणाम हमारे लिए क्या होगा, यह सन्देहास्पद है। हो सकता है कि वह सब प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता को छीनकर तानाशाही के घृणित रूप मे हमारे सामने आ खड़ा हो ।"[185] परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि क्रान्तिकारी आन्दोलन से वे उदासीन रहे थे । वास्तविकता तो यह है कि

---

180. वही, भाग, 2, पृ0 54
181. यशपाल- सिंहावलोकन, भाग 1, पृ0 128
182. दुर्गाप्रसाद खत्री- रक्तमण्डल, भाग 1, पृ0 37
183. वही, पृ0 178
184. वही, भाग 2, पृ0 54
185. डा0 इन्द्रनाथ मदान- प्रेमचन्द : एक विवेचन , पृ0 137

एक जागरूक साहित्यकार होने के नाते न केवल उन्होंने क्रान्तिकारी आन्दोलन का विश्लेषण किया वरन् कुछ क्रान्तिकारियों के साथ उनकी सहानुभूति भी थी। अमृतराय ने लिखा है कि "प्रेमचन्द अपने घर में तस्वीर- वस्वीर नहीं टांगा करते थे, जाकर खुदीराम की तस्वीर ले आये और बड़े प्रेम से उसे अपने घर में टांग लिया।"[186] उन्होंने अपने उपन्यास "रंगभूमि" में उस घटना को भी चित्रित किया है जिसमें खुदीराम बोस को पकड़वाने वाले दरोगा को क्रान्तिकारियों ने कलकत्ते में मारा था।[187] "रंगभूमि" में सोफिया ने जसवन्त नगर के दरोगा की हत्या की। इसका वर्णन उपन्यास में इस प्रकार दिखाया गया है- "विनय ने पूछा, तो मालूम हुआ कि इसका {बूढ़ा का} पुत्र जसवन्त नगर के जेल का दरोगा था, उसे दिन -दहाड़े किसी ने मार डाला। ..... सोफी ने कोरी धमकी न दी थी। मालूम होता है उसने गुप्त हत्याओं के साधन एकत्र कर लिए हैं।"[188] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द क्रान्तिकारी आन्दोलन के विरोधी नहीं थे, यद्यपि वे इसके प्रशंसक भी नहीं थे।

अपने समय में होने वाली घटनाओं के प्रभावस्वरूप उन्होंने क्रान्तिकारी आतंकवाद को अपने उपन्यासों में यत्र-तत्र वर्णित किया है। क्रान्तिकारी आतंक इसलिए फैलाते थे जिससे जनता पर से नौकरशाही का अत्याचार कम हो सके, इसके लिए वे साधन एकत्रित करते थे जिससे कि अत्याचारी शासन का अन्त किया जा सके।[189] विनय जब वीरपाल सिंह से पूछता है कि राज्य के नौकरों को नेस्तनाबूद क्यों करना चाहते हो? तब वह उसे अपना उद्देश्य बताता है कि वह अत्याचार को समाप्त करना चाहता है।

---

186. अमृतराय- प्रेमचन्द : कलम का सिपाही, पृ0 98
187. मन्मथनाथ गुप्त - भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ0 156
188. प्रेमचन्द - रंगभूमि, पृ0 429
189. देखिये, पूर्वोल्लिखित

... कहता है -" आपको इन लोगों की करतूतें मालूम नहीं है । ये लोग प्रजा को दोनो हाथों से लूट रहे हैं ! इनमे न दया है न धर्म । ..... जिसे घूस न दीजिए वही आपका दुश्मन है .... कोई फरियाद नहीं सुनता । कौन सुने सभी एक ही थैलीके चट्टे-बट्टे हैं ।[190]

जिस समय प्रेमचन्द "रंगभूमि" लिख रहे थे उस समय काकोरी काण्ड हुआ था ।[191] सम्भवत इस घटना का प्रभावांकन प्रेमचन्द ने "रंगभूमि" में किया है। वीरपाल सिंह के बारे में सरकारी अमला छानबीन करने के बाद कहता है कि " यह मालूम था कि वह डाकू है ..... उसने यहाँ से तीन मील पर सरकारी खजाने की गाड़ी लूट ली है और एक सिपाही की हत्या कर डाली है ।[192]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रान्तिकारी पहलूसे भी पर्याप्त प्रभावित हुए थे तथा इस आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग भी लिया था ।[193] साहित्यकार सामाजिक घटनाओं से अपने आप को अलग भी कैसे रख सकता है क्योंकि वह तो स्वयं जन विप्लव में सहयोग देता है । [194] अतः हिन्दी उपन्यासकारों ने राष्ट्रीय आन्दोलन की समग्रता से अपने आपको सम्बन्धित करते हुए आन्दोलन को अपने साहित्य मेंयथोचित स्थान प्रदान करने का प्रयास किया ।

आर्थिक :

हिन्दी उपन्यासकारों ने भारतीय पराधीनता के एक मुख्य कारण

190. वही, पृ0 202
191. आर0 सी0 मजूमदार- स्ट्रगल फॉर फ्रीडम , 546
192. प्रेमचन्द - रंगभूमि, पृ0 206
193. क्रान्तिकारियों में मन्मथनाथ गुप्त, यशपाल, अज्ञेय इत्यादि को देखा जा सकताहै ।
194. देखिए पूर्वोल्लिखित

के रूप में आर्थिक पहलू को भी देखा था। क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भारत पर शासन करने का उद्देश्य मूलतः आर्थिक था ।[195] यही कारण था कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में विभिन्न नेताओं ने आर्थिक स्वाधीनता को भी महत्त्वपूर्ण माना । इसमें जहाँ एक ओर गान्धी जी स्वदेशी एवं कुटीर उद्योगों के माध्यम से आर्थिक स्वावलम्बन को प्रोत्साहित करना चाहते थे [196] वहीं दूसरी ओर कुछ अन्य नेता समाजवाद से प्रभावित हो रहे थे ।[197] हिन्दी उपन्यासों में उपर्युक्त दोनो ही साधनों पर प्रकाश डाला गया है ।

<u>किसान समस्या :</u>

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में किसान समस्या को बड़े स्पष्ट रूप में उठाने का प्रयास किया है । कारण यह है कि वे मुख्य रूप से किसानों के जीवन से जुड़े हुए थे । उन्होंने गाँव के जीवन का वास्तविक अनुभव किया था ।[198] उन्होंने किसानों पर किये जाने वाले अत्याचारों का भी अनुभव किया था । उन्होंने अपने उपन्यास "सेवासदन" में किसानों में जागृति को भी दिखाया है । चेतू किसानों का प्रतिनिधि है। महन्त रामदास का सारा कारोबार श्री बांके बिहारी जी के नाम पर चलता है। "श्री बांके बिहारी जी लेन -देन करते थे और 32/- सैकड़े से कम सूद न लेते थे । वही मालगुजारी वसूल करते थे, वे ही रेहननामे- बैनामे लिखाते थे । श्री बांकेबिहारी जी की रकम दबाने का किसी को साहस न होता था और न अपनी रकम के लिए कोई दूसरा आदमी उनसे कड़ाई कर सकता था । श्री बांके बिहारी जी को रूष्ट करके

---

195. देखिये, पूर्वोल्लिखित

196. देखिये, पूर्वोल्लिखित

197. वही

198. वही

उस इलाके में रहना कठिन था ।"[199] यह चित्रण वास्तव में भारतीय किसान की दशा की ओर संकेत करता है जिसमे किसान को अपनी जमीन रेहन करके कर्ज लेना पड़ता था । लेकिन इस कर्ज का सद भी भरना उसके लिए मुश्किल होता था । परिणामस्वरूप उसको अपनी जमीन से ही हाथ धोना पड़ता था ।[200] परन्तु प्रेमचन्द किसानों में अपनी स्थिति का बोध कराते हैं ।

प्रेमचन्द का एक अन्य उपन्यास "प्रेमाश्रम" शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध एक आन्दोलन की कहानी है । जिसमें जमीन्दारों के विरूद्ध किसान संगठित होते हैं । डॉ० धर्मपाल सरीन के अनुसार, " यह उपन्यास भारतीय कृषक जीवन पर लिखा गया एक वृहद् महाकाव्य है जो किसानों के शोषण तथा उन पर किये जा रहे अत्याचारों का एक लम्बा इतिहास है । "[201] प्रेमचन्द के राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान को स्पष्ट करते हुए शिवरानी देवी जी ने लिखा है कि " गान्धी जी राजनीति के माध्यम से भारत के किसानों व मजदूरों के सुख-चैन के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, प्रेमाश्रम उन्हीं प्रयत्नों का साहित्यिक रूपान्तर है ।"[202]

"प्रेमाश्रम"का वास्तविक संघर्ष जमीन्दारों और किसानों के मध्य संघर्ष है। इस संघर्ष में प्रेमचन्द ने एक नवीन जागृति को चित्रित किया है । यह वह किसान है जो कि अत्याचार सहने को तैयार नहीं है । यदि उस पर अत्याचार किया गया तो वह दबकर बैठने वाला नहीं है । § "प्रेमाश्रम " में लखनपुर गाँव के किसानों पर जमीन्दार वर्ग के प्रतिनिधियों गौसखाँ, फैजुल्ला

---

199. प्रेमचन्द - सेवासदन, पृ0 59

200. वही0 पृ0 56

201. डॉ0 धर्मपाल सरीन- हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष, पृ0 72 तथा डी0 डी0 तिवारी-भारतीय स्वतंन्त्रता संघर्ष और हिन्दी उपन्यास, पृ0 89

202. शिवरानी देवी - प्रेमचन्द : घर में, पृ0 95

खा, इत्यादि के द्वारा तरह-तरह के अत्याचार किये जाते है ।[203] परन्तु "प्रेमाश्रम" का किसान एक विद्रोही किसान बनकर उठ खड़ा होता है । मनोहर इस अत्याचार एवं स्वेच्छाचारिता को सहने के लिए तैयार नहीं है । जब गिरधर उससे कहता है कि "जब जमीन्दार की जमीन जोतते हो तो उसके हुक्म के बाहर नहीं जा सकते । " मनोहर उत्तर में कहता है कि "जमीन कोई खैरात जोतते हैं ? उसका लगान देते हैं । एक किश्त भी बाकी पड़ जाये तो नालिश होती है ।"[204] एक अन्य किसान बलराज भी एक विद्रोही चरित्र के रूप में चित्रित किया गया है । उसके अनुसार" जमीन्दार कोई बादशाह नहीं है कि चाहे जितनी जबर्दस्ती करे और हम मुँह न खोलें । इस जमाने में तो बादशाहों का भी इतना अख्त्यार नहीं, जमीन्दार किस गिनती में हैं । कचहरी दरबार में कहीं सुनाई नहीं है तो (लाठी दिखाकर) यह तो कहीं नहीं गई है । "[205]

भारतीय किसानों की दयनीय स्थिति तथा उनके शोषण का कारण सामन्ती व्यवस्था थी । जमीन्दार किसानों पर मनमाना अत्याचार करते थे । अत: उनकी स्थिति को सुधारने के लिए यह आवश्यक था कि इस जमीन्दारी प्रथा को समाप्त किया जाय । प्रेमचन्द ने स्वयं इस बात की आवश्यकता को स्वीकारा है जबकि वह "प्रेमाश्रम" के नायक प्रेमशंकर के माध्यम से किसानों का प्रतिनिधित्व करवाते हैं । उनका मानना था कि जो संस्था कृषकों के रक्त पर अवलम्बित हो उसे मिटा देना चाहिए । वे किसानों के भूमि पर नियंत्रण के पक्षपाती थे । इसलिए उन्होंने कहा कि भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या

---

203. प्रेमचन्द्र - प्रेमाश्रम , पृ0 6, 21, 23, 50, 195, 255, 307

204. वही, पृ0 5

205. वही, पृ0 67

किसान ही है जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है । राजा देश की रक्षा करता है, इसलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है । अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास, मिल्कियत, जायदाद अधिकार के नाम पर किसानों को अपना भोग्य पदार्थ बनाने की स्वच्छन्दता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज व्यवस्था का कलंक चिन्ह समझना चाहिए।[206] प्रेमचन्द स्वय किसानों के मध्य रहे थे अतः उनको किसानों की दयनीय स्थिति तथा उसके कारणों का अनुभव था । अतः प्रेमशंकर के शब्दों मे वे स्वयं अपने इस अनुभव को प्रकट करते हैं, " ...... मैं किसानों को शायद ही कोई ऐसी बात बता सकता हूँ, जिसका उन्हें ज्ञान न हो । परिश्रमी तो उनसे अधिक दुनिया भर में कोई न होगा । मितव्ययिता में, आत्मसंयम और गृहस्थ के बारे में भी वे सब कुछ जानते हैं । उनकी दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों पर है, जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है, और यह परिस्थितियाँ क्या हैं? आपस की फूट, स्वार्थपरता और एक ऐसी संस्था का विकास जो उनके पाँव की बेड़ी बनी हुई है । .....यह वही संस्था है जिसका अस्तित्व कृषकों के रक्त पर अवलम्बित है । ......इस परस्पर विरोध का सबसे दुःखजनक फल .... भूमि का क्रमशः अत्यन्त अल्पभागों में विभाजित हो जाना और उसके लगान की अपरिमित वृद्धि है ।"[207]

प्रेमचन्द के उपन्यास "कर्मभूमि" का रचनाकाल जहाँ एक ओर बारडोली के सफल लगानबन्दी आन्दोलन का काल था, वहीं दूसरी ओर विश्व आर्थिक संकट का भी काल था जिसका घातक परिणाम किसानों पर पड़ा था। सम्भवतः इससे प्रभावित होकर ही प्रेमचन्द ने लगानबन्दी आन्दोलन का चित्रण

---

206 शिवनारायण श्रीवास्तव - हिन्दी उपन्यास {ऐतिहासिक अध्ययन} पृ0 87 पर उद्धृत तथा प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ0 142

207. प्रेमचन्द / प्रेमाश्रम, पृ0 218

इस उपन्यास में किया है । आर्थिक संकट से अनाज का दाम बहुत घट गया था परिणामस्वरूप किसान लगान देने में असमर्थ था । बारडोली के किसानों ने भी ऐसी परिस्थिति में लगानबन्दी आन्दोलन चलाया था । ऐसी ही भावना "कर्मभूमि" में दिखाई देती है। जब मुन्नी जेल में सुखदा से पूछती है कि क्या किसान अत्याचारों से दब जायेंगे ? तो वह कहती है, " मेरे सामने तो सब यही कहते थे कि चाहे फांसी पर चढ़ जायें, पर आधे से बेसी लगान न देंगे । "[208] ऐसे समय में किसानों की वास्तविक स्थिति क्या थी, उसका अनुमान लगाना कठिन था । सलीम जब सिविल आफिसर बनकर ऐसे इलाकों में गया जहां लगान की अधिक सख्ती हो रही थी । तब उसे इस बात का बोध हुआ कि " पैदावार का मूल्य लागत और लगानसे कहीं कम था । खाने-कपड़े की गुजाइश न थी, दूसरे खर्च का क्या जिक्र । ऐसा कोई बिरला ही किसान था, जिसका सिर ऋण के नीचे न दबा हो । ... जिनके लड़के पांच- छः बरस की उम्र से ही मेहनत, मजदूरी करने लगे, जो ईंधन के लिए घर में गोबर चुनते फिरें, उनसे पूरा लगान वसूल करना, मानो उनके मुँह से रोटी का टुकड़ा छीन लेना है, उनकी रक्तहीन देह से खून चूसना है ।"[209]

किसानों की दयनीय स्थिति तथा उन कारणों के निवारण हेतु किन तकनीकों को अपनाया जाय — गान्धीवादी अथवा क्रान्तिकारी? प्रेमचन्द ने इस सम्बन्ध में दो पात्रों अमरकान्त और सलीम के द्वारा अपने-अपने तर्क प्रस्तुत करवाये हैं । परन्तु अन्तत: विजय गान्धीवाद की ही स्थापित की है ।

---

208. वही, कर्मभूमि, पृ0 333

209. वही, पृ0 366

किसानों की स्थिति पर विचार करने के लिए जब पंचायत की जाती है तो अमरकान्त और आत्मानन्द (सलीम) अपनी-अपनी नीतियों को रखते हैं। परन्तु प्रेमचन्द ने अमरकान्त के चरित्र में कुछ ऐसी बातों का समावेश किया है जो कि गान्धीवादी सिद्धान्तों से मेल नहीं खाती हैं, जैसे वह एक ओर किसानों को अनुनय-विनय, प्रेम और अहिंसा के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है वहीं दूसरी ओर वह अपने साथी और किसानों के उग्र नेता को गिरफ्तार करवाने का भी प्रयास करता है। एक अन्य स्थान पर वह सुखदा की गिरफ्तारी का समाचार मिलते ही आपे से बाहर हो जाता है। वह यह भूल जाता है कि सत्य और अहिंसा के माध्यम से प्राप्त किया लक्ष्य ही श्रेष्ठ होता है। इसके स्थान पर वह आवेश और उग्रता से परिपूर्ण भाषण देता है।[210] परन्तु प्रेमचन्द ने उसमें इस परिवर्तन को स्थाई नहीं होने दिया है वरन् उन्होंने उसके अन्दर एक ऐसे विवेक को दर्शाया है जो सद्-असद का भेद कर सकता है। इसीलिए जब उसकी गिरफ्तारी के समय गाँव वाले सलीम पर हिंसक आक्रमण करना चाहते हैं तब अमरकान्त ही उन्हें रोकता है। वह उनसे कहता है कि यह हमारा धर्मयुद्ध है अतः हमें शान्तिपथ से विचलित नहीं होना चाहिए। उसके अनुसार उनकी विजय उनके त्याग, कष्ट-सहन, बलिदान एवं सत्य बल से होगी।[211] उसने स्वयं जेल के शान्त वातावरण में अपनी गलती को पहचान लिया कि उसने आवेश में आकर अहिंसा के पथ से विचलित होने की बात कही थी।[212] बाद में अमरकान्त और सलीम में पुनः इस विषय पर वाद-विवाद होता है। सलीम संवैधानिक साधनों में विश्वास नहीं करता है। इसलिए जब अमरकान्त हिंसा पर उतारू भीड़ को रोकता है तो सलीम

---

210. वही, पृ0 392-93

211. वही, पृ0 326

212. वही, पृ0 355

अमरकान्त पर आक्षेप लगाता है कि वह आजादी तो चाहता है लेकिन उसका मूल्य चुकाना नहीं चाहता है। परन्तु इस आक्षेप के उत्तर में अमरकान्त सलीम से कहता है कि आजादी का मूल्य न्याय और सत्य पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रहने की शक्ति में है।[213] सलीम अमरकान्त की इस गान्धीवादी नीति को व्यर्थ बताता है। उसके समक्ष वर्तमान समस्या के समाधान का प्रश्न है। जिसके लिए समझाने-बुझाने की नीति व्यावहारिक नहीं मानी जा सकती। वह अमरकान्त से प्रश्न करता है कि इस समय किसानों के पास लगान देने को नहीं हैं किन्तु सरकार उसे वसूल करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है। सरकार के पास बन्दूकें हैं, किन्तु असहाय किसानों के पास सामूहिक जनशक्ति के अलावा कुछ नहीं है। तो क्या किसान बिना कुछ बोले संगीनों और गोलियों के शिकार होते रहें? मरने वाला निःसन्देह हृदयों में सहानुभूति उत्पन्न कर सकता है लेकिन मारने वाला भय पैदा करने में समर्थ है, जो सहानुभूति से कहीं अधिक प्रभावकारी है।[214] परन्तु इस प्रश्न का उत्तर अमरकान्त सलीम को यह देता है कि हिंसा को हिंसा से दबाना स्थाई नहीं होता है। यह उस चिनगारी के समान है जो राख के ढेर में दब तो जाती है लेकिन उसमें छिपी हुई आग भीषण अग्निकाण्ड में परिवर्तित हो सकती है। इसीलिए वह सलीम से कहता है कि कोई भी जाति या राष्ट्र हिंसा के द्वारा वास्तविक या स्थाई मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। क्योंकि यदि मुक्ति हिंसा के द्वारा प्राप्त भी हो जाय तो यह उस भाँति होगा जैसे कि सत्ता का एक निरंकुश के हाथ से निकलकर दूसरे निरंकुश के हाथ में स्थानान्तरण। परिणामस्वरूप शासन निरंकुश होगा। अतः आवश्यक है कि मुक्ति स्थाई हो और स्थाई मुक्ति हृदय-परिवर्तन अथवा मनुष्य के हृदय में मानवता के उदय से ही प्राप्त

---

213. वही, पृ0 376-77

214. वही, पृ0 377-78

हो सकती है और किसी प्रकार नहीं ।[215] अतः स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने किसानों में भी राष्ट्रीय आन्दोलन की दोनों मुख्य धाराओं अर्थात् गान्धीवाद तथा क्रान्तिवाद की उपस्थिति को स्वीकार किया है।

"कर्मभूमि" उपन्यास में ही प्रेमचन्द ने किसानों पर किये जाने वाले जमीन्दारों के अत्याचार का वर्णन किया है । अमरकान्त शान्तिकुमार से कहता है " मुझे तो उस आदमी की सूरत नहीं भूलती, जो छः महीने में बीमार पड़ा था और पैसे की दवा न ली थी । इस दशा में जमीन्दार ने लगान की डिग्री करा ली और जो कुछ घर में था, नीलाम कर लिया । बैल बिकवा लिया ।"[216] सरकार और किसानों के मध्य जमीन्दार मनमाने ढंग से लगान वसूल करते थे तथा किसानों पर अत्याचार करते थे । इसका विरोध प्रेमचन्दके इस उपन्यास में स्पष्ट होता है । सेठ धनीराम के हृदय परिवर्तन के उपरान्त, उनके प्रयास से सरकार किसानों की मांगों पर विचार करने के लिए कमेटी नियुक्त करती है। यद्यपि सलीम इससे सन्तुष्ट नहीं होता है, परन्‍ अमरकान्त इस कमेटी का स्वागत करता है और कहता है "हम इसके सिवा और क्या चाहते हैं कि गरीब किसानों के साथ इन्साफ किया जाय और जब इस उद्देश्य को पूरा करने के इरादे से एक ऐसी कमेटी बनाई जा रही है जिससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह किसानों के साथ अन्याय करें, तो हमारा धर्म है कि उसका स्वागत करें ।"[217]

प्रेमचन्द का एक अन्य उपन्यास "गोदान" कृषक जीवन पर लिखी गई उत्कृष्ट रचना है। रामदीन गुप्त के अनुसार," गोदान तक आते-आते महात्मा गान्धी के कार्यक्रम और जीवन दर्शन के प्रति प्रेमचन्द की श्रद्धा-भक्ति

---

215. वही, पृ0 378-79

216. वही, पृ0 286

217. वही, पृ0 408

की भावना खण्डित हो चली थी, और उनके आदर्शवाद में दरारें पड़ने लगी थीं । "[218] गोदान तक आते-आते प्रेमचन्द ने गान्धीवादी नीति पर टिके रहना राष्ट्रीय मुक्ति के लिए उचित नहीं समझा । इस समय उन्हें विश्वास हो गया था कि ब्रिटिश सरकार का हृदय इतनी आसानी से पिघलने वाला नहीं है ।"[219] अनधिकृत- अधिकारी का, किसान-जमीन्दार का , शोषित-शोषक का सम्बन्ध अगर बदलेगा तो वह प्रथम के जागरण से बदलेगा, दूसरे की कृपा से नहीं । "[220]

भारतीय किसान जो आर्थिक जीवन का मेरूदण्ड है, इस उपन्यास में पीड़ित, अभावग्रस्त एवं उपेक्षित है । वह जमीन्दारों ,अफसरों, पटवारियों पुलिस, गाँव के सेठ- साहूकारों, पंडे -पुरोहितों के कुचक्र में फंसा हुआ है, किसान इनका प्रतिरोध नहीं कर सकता है । डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने इसीलिए यह माना है कि "गोदान" की मुख्य समस्या किसान के दुःखी जीवन की समस्या है ।[221] यह किसान एक व्यक्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इसीलिए रामदीन गुप्त के अनुसार, "गोदानकार की सम्भवतः सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक समस्या से अधिक चरित्र {होरी} पर बल देकर भी वह सामाजिक वैषम्य और वर्ग संघर्ष को अपने पूरे भयावह और नग्न रूप में उभारकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में सफल हो सका है । "[222]

अनेक किसान आन्दोलनों के चलने के उपरान्त भी भारतीय किसान दलित एवं शोषित जीवन व्यतीत कर रहा था । अतः गोदानकार ने भारतीय

---

218. रामदीन गुप्त - प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ० 259
219. मन्मथनाथ गुप्त - प्रेमचन्द: व्यक्ति और साहित्यकार, पृ० 76
220. महेन्द्र चतुर्वेदी- हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृ० 80
221. डॉ० धर्मपाल सरीन - हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष, पृ० 94
222. रामदीन गुप्त - प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ० 260

किसान के समूचे जीवन और उसके दु:खदर्द को ही वाणी प्रदान करने का प्रयास किया है ।[223] किसान लगान चुकाने के लिए विवश होकर महाजनों से कर्ज लेता है ।[224] वास्तव में यह "कर्ज" ही गोदान की प्रमुख समस्या है जिससे सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है । अत: गोदान में प्रेमचन्द ने भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था , किसानों की शोचनीय स्थिति तथा महाजनवादी शोषण का चित्रण किया है । सरकार ने किसानों की स्थिति में सुधार करने के लिए अनेक अधिनियम पारित किये । परन्तु महाजनों के शिकंजे से किसान नहीं छूट पा रहा था । इसी महाजनी समाज को केन्द्र मानकर प्रेमचन्द ने गोदान की रचना की ।

"गोदान" में किसानों के अन्तर्गत प्रगतिशील विचारों को दिखाने का प्रयास किया गया है । रामदीन गुप्त के अनुसार ,गोदान के किसानों में संगठित संघर्ष की भावना चाहे जन्म न ले पाई हो, किन्तु उसका लेखक यह संकेत करना नहीं भूला है कि नई पीढ़ी के युवक किसान धीरे-धीरे इसी ओर बढ़ रहे हैं । "[225] उनमें संघर्ष और विद्रोह की भावना पर्याप्त बढ़ चुकी है। वे अन्याय के प्रति झुकना नहीं जानते, वे कमजोर और डरपोक नहीं है वरन् वे अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने वाले किसान हैं। उनमें क्रान्तिकारी भावना कूट-कूट भरी हुई है। धनिया का यह मत है," हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा । उसकी खुशामद क्यों करें? उसके तलवे क्यों सहलावें ? "[226] गोबर का प्रतिक्रियावादी चरित्र होरी के दब्बूपन और चापलूसी की आदत को स्वीकार नहीं करता है। वह उससे कहता है "यह तुम

---

223. वही पृ0 260

224. देखिये, रजनीपामदत्त- इण्डिया टुडे, पृ0 232 तथा जवाहर लाल नेहरू एन ऑटोबायोग्राफी, पृ0 302

225. रामदीन गुप्त- प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ0 267

226. प्रेमचन्द- गोदान, पृ0 3

लोग रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भरा या जाता है। फिर किसी को क्यों सलामी करो?"[227] इससे स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय अर्थव्यवस्था के कर्णधार किसानों में भी परतन्त्रता एवं उत्पीड़न के विरुद्ध विद्रोही भावना का उदय हो रहा था।

समाजवाद एवं मजदूर समस्या :

1917 ई0 की रूसी क्रान्ति के बाद से ही समाजवादी विचारधारा का प्रसार विश्व के अनेक देशों में, विशेषत: उपनिवेशों में, होने लगा था। 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक के अन्तिम भाग में गान्धीवादी आन्दोलन धीमा पड़ गया था। कांग्रेस के लोगों का विश्वास गान्धीवादी नीतियों से हटने लगा था।[228] परिणामस्वरूप 1934 ई0 में कांग्रेस में एक विरोधी दल का जन्म हुआ जिसने आध्यात्मिक पक्ष पर बल न देकर लोगों के आर्थिक पक्ष को महत्त्व प्रदान किया। यह दल "कांग्रेस समाजवादी दल" था।[229] जिसका संगठन वास्तव में नासिक जेल में जय प्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता आदि द्वारा किया गया।[230] विशेष रूप से 1936 में जब जवाहर लाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष बने। तब यह दल राष्ट्रीय राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण दल बन गया।[231]

---

227. वही, पृ0 19

228. प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार आन सोशलिज्म इन इण्डिया (1919-1939) पृ0 35 पर उद्धृत।

229. बी0आर0 टामलिंसन - दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस एण्ड दि राज 1929-1942, पृ0 50

230. लक्ष्मी गुरहा- दि ग्रोथ ऑफ सोशलिज्म इन इण्डिया (1920-1951), पृ0 95

231. बी0आर0 टामलिंसन-इण्डियन नेशनल कांग्रेस एण्ड दि राज (1929-1942), पृ0 55

यद्यपि 1929 ई0 की लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में जवाहर लाल नेहरू ने प्रथम बार समाजवाद की ओर संकेत किया ।[232] वे यूरोप गये और वहाँ से लौटने पर भारत की मुक्ति का नया सन्देश दिया कि भारत अपने वर्तमान कष्टों से छुटकारा समाजवाद के माध्यम से ही पा सकता है । भारत का वर्तमान लक्ष्य अपने लोगों के शोषण की समाप्ति है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्व0 जवाहरलाल नेहरू जो गान्धी जी के व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित हुए थे, वामपन्थी विचारों का समर्थन कर रहे थे । यही कारण है कि जहाँ रूसी क्रान्ति एवं मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव भारतीय मस्तिष्क पर पड़ा वहीं भारत में समाजवाद यहाँ की परिस्थितियों का भी परिणाम माना जा सकता है। जैसा सुमित सरकार का मत है कि जब क्रान्तिकारी, असहयोगी, खिलाफतवादी तथा मजदूर और किसान निराश हो गये तब उन्होंने राजनीतिक और सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नवीन मार्ग (समाजवाद) को चुन लिया ।[233]

1918 ई0 से ही भारत में संगठित मजदूर आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका था ।[234] 1918 ई0 तथा 1920 ई0 के बीच देश भर में, बम्बई, कानपुर, कलकत्ता, शोलापुर, जमशेदपुर, मद्रास और अहमदाबाद जैसे विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में लगातार कई हड़तालें हुईं । [235] इन आर्थिक हड़तालों के अतिरिक्त बम्बई और कुछ अन्य औद्योगिक शहरों में रौलट एक्ट के विरुद्ध मजदूरों ने राजनीतिक हड़तालें भी की और इस तरह अपनी बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना

---

232. प्रोसीडिंग्स ऑफ दि सेमिनार ऑन सोशलिज्म इन इण्डिया (1919-1939), पृ0 72
233. सुमित सरकार, माडर्न इण्डिया (1885-1947) पृ0 247
234. एन एम0पी0 श्रीवास्तव -ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, पृ0 108-109
235. ए0आर0 देसाई -भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 177

का परिचय किया ।[236] इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय मजदूर वर्ग को चाहे उनकी स्थिति कैसी भी क्यों न रही हो, संगठित होकर आन्दोलन करने की प्रेरणा रूसी क्रान्ति से मिली । जैसा एन०एम० पी० श्रीवास्तव ने लिखा है कि रूसी क्रान्ति ने श्रमिकवर्ग के हृदय में विश्वास और प्रेरणा को भर दिया जो अब राष्ट्रीय संघर्ष के युद्ध-स्थल में आ गया था ।[237] 1928 ई० के आसपास बम्बई में साम्यवादियों द्वारा कल-कारखानों को लुंज-पुंज करने के लिए हड़ताल का आह्वान किया गया जिसका देशव्यापी प्रभाव पड़ा । मजदूर वर्ग की चेतना को देखकर सरकार ने साम्यवादी नेताओं को गिरफ्तार कर मेरठ जेल भेज दिया । जो "मेरठ षडयंत्र" के नाम से प्रसिद्ध है । इस समय बन्दी नेताओं ने अंग्रेजी शासन को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए विदेशी मदद को आवश्यक बताया जो स्पष्ट रूप से साम्यवाद की ओर संकेत करता है ।[238] नेहरू जी ने भी दिसम्बर 1933 ई० में ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में अपने भाषण में मजदूरों को आश्वासन दिया था कि यदि वे राष्ट्रीय संघर्ष में पूर्ण रूप से भाग लें तो वे न केवल भारत में राजनीतिक स्वतन्त्रता को लायेंगे वरन् सामाजिक स्वतन्त्रता को भी ।[239] 20 जनवरी 1936 ई० को कांग्रेस समाजवादी दल के द्वितीय सम्मेलन में मार्क्सवादी और समाजवादी साधनों को साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए महत्वपूर्ण माना गया ।[240] 1938-39 ई० में जब कांग्रेस में गान्धीवादी और वामपन्थी दो दल हो गये । तब वामपन्थी सुभाषचन्द्र बोस ने इंग्लैंड से सत्ता छीनने के लिए शोषित मजदूरों तथा किसानों का समर्थन किया ।[241]

---

236. वही, पृ० वही ।
237. एन०एम०पी० श्रीवास्तव - ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया, पृ० 108
238. एन०एस० देसाई - दि कम्युनिस्ट रिप्लाई, पृ० 23
239. जे०एल० नेहरू- रीसेन्ट एसेज एण्ड राइटिंग्ज, पृ० 131-132
240. पी०एल० लखनपाल- हिस्ट्री ऑफ दि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, पृ० 144
241. वी०पी०एस० रघुवंशी - इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट एण्ड थॉट, पृ० 227

जब भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में इस नवीन विचारधारा का प्रचलन हो चुका था । समाजवाद एक वास्तविकता बनकर देशवासियों के समक्ष उपस्थित हो चुका था। तो ऐसे समय में समकालीन साहित्यकार किस प्रकार इस वास्तविकता से आँख बन्द कर सकता था । वह ऐसा कर भी नहीं सकता था क्योंकि साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है। सामाजिक जीवन का अध्येता होता है । वह युगीन परिस्थितियों का व्याख्याता होता है । अतः सजग व्यक्ति होने के कारण साहित्यकार युगीन परिस्थितियों से तथा समय-समय पर होने वाले उनमें परिवर्तनों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । उसकी साहित्यिक चेतना एवं कलात्मक संवेदना युगीन परिस्थितियों के स्पर्शाघात से आन्दोलित होकर जिस यथार्थ को वहन करती है, वह अनिवार्यतः समाज-सापेक्ष होता है ।[242]

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में समाजवाद के प्रवेश से एक नवीन विचार धारा का प्रवेश हुआ और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इसके प्रभाव ने प्रगतिवाद को जन्म दिया । इस समय गान्धीवादी परम्परावादी एवं आदर्शवादी साहित्य से अनेक साहित्यकारों का ध्यान हटकर प्रगतिवादी साहित्य के निर्माण की ओर उन्मुख हुआ । यद्यपि प्रगतिवादी साहित्य की कोई निश्चित परिभाषा प्राप्त नहीं होती है। फिर भी आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार "जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करके चलने वाला साहित्य प्रगतिशील साहित्य है ।[243] उन्होंने इस परिभाषा की और अधिक व्याख्या करते हुए कहा कि " सच्चे साहित्यकार का कर्तव्य हो जाता है कि वह मनुष्य को समाज से पृथक करके अमूर्त मानवता के प्रतीक के रूप में देखे, ऐसे समाज के सदस्य के रूप में जिसमें निरन्तर संघर्ष हो रहा है और इन संघर्षों के कारण जो

---

242. पारसनाथ मिश्र,- मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, पृ0 94

243. आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ0 559

प्रतिक्षण परिवर्तन शील है ।[244] परन्तु यद्यपि आचार्य नरेन्द्रदेव द्वारा दी गई परिभाषा साहित्य को एक नवीन रूप प्रदान करती है फिर भी उनकी परिभाषा में यह स्पष्ट नहीं होता है कि क्या अभी तक का साहित्य मनुष्य को पृथक रूप से नहीं देखता था ? गान्धीयुगीन साहित्य यद्यपि आदर्शवादी और परम्परावादी था । फिर भी उसमें मनुष्य का स्थान था । इस सम्बन्ध में डा0 शिवमूर्ति शर्मा द्वारा प्रगतिवादी साहित्य की परिभाषा अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होती है । उनके अनुसार ," प्रगतिवादी साहित्य पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक और व्यक्तिगत शोषण का विरोध करने वाला साहित्य है । .... राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद व समाजवाद कहलाने वाली इसी विचारधारा को साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद की संज्ञा से अभिहित किया गया है ।"[245]

प्रेमचन्द भी एक प्रगतिवादी लेखक थे । वे प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष भी थे । यद्यपि यह सत्य है कि उनकी अधिकांश रचनाएँ प्रगतिवादी नहीं है । क्योंकि वे अपने जीवन के अन्तिम दिनों में ही इस ओर उन्मुख हुए थे । प्रेमचन्द पर साम्यवाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था । इसका कारण उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण था। 27 फरवरी 1933 ई0 के जागरण की सम्पादकीय टिप्पणी में उन्होंने लिखा था कि" संसार में जितना अन्याय और अनाचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गाँठ है। जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा । तब तक मानव समाज का उद्धार नहीं हो सकता ।"[246] इसका कारण सोवियत रूस की क्रान्ति को माना जा सकता है। जैसा कि शिवरानी देवी के पूछने पर कि "क्या रूस वाले यहाँ भी आयेंगे ? "उन्होंने उत्तर दिया कि "रूस वाले यहाँ नहीं आवेंगे, बल्कि रूस वालों की शक्ति

---

244. वही, पृ0 वही
245. डॉ0 शिवमूर्ति शर्मा-हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास, पृ0 320-21
246. महेन्द्र भटनागर - समस्या मूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द, पृ0 74 पर उद्धृत ।

हम लोगों में आयेगी ।" शिवरानी देवी ने कहा कि वे लोग अगर यहाँ आते तो शायद हमारा काम जल्दी हो जाता । वे बोले कि वे लोग यहाँ नहीं आवेंगे । हमी लोगों में वह शक्ति आवेगी । वही हमारे सुख का दिन होगा, जब यहाँ काश्तकारों, मजदूरों का राज्य होगा । मेरा ख्याल है कि आदमियों की जिन्दगी औसतन दूनी हो जायेगी ।[247] इस प्रकार प्रेमचन्द ने स्पष्ट रूप में रूसी साम्यवाद का समर्थन किया । जिसे उन्होंने भारतीय समाज के सुख का मूल समझा । उनका कहना था कि " साम्यवाद आजकल विचार का मुख्य विषय है और हमें यह मालूम होने लगा है कि देश का उद्धार किसी न किसी रूप में समाजवाद के हाथों होगा । [248] इसी लिए 28 जनवरी 1934 के जागरण की सम्पादकीय में उन्होंने लिखा कि " साम्यवाद का विरोध वही तो करता है जो दूसरों से ज्यादा सुख भोगना चाहता है, जो दूसरों को अपने अधीन रखना चाहता है । जो अपने को भी दूसरों के बराबर ही समझता, जो अपने में कोई सुर्खाब का पर लगा हुआ नहीं देखता ,जो समदर्शी है उसे साम्यवाद से विरोध क्यों होने लगा ?"[249] अत: प्रेमचन्द ने एक वर्ग विहीन समाज का समर्थन करते हुए पूँजीवाद का विरोध किया ।[250] यही कारण है कि रामदीन गुप्त ने प्रेमचन्द को हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन के जन्मदाता के रूप में स्वीकार किया है ।[251] इसी प्रकार जी0के0 कौल ने भी प्रेमचन्द के सम्बन्ध में कहा है कि " उनके {प्रेमचन्द} की प्रेरणा के स्त्रोत केवल गान्धीवादी राष्ट्रीय आन्दोलन ही नहीं, रूस की क्रान्ति भी थी ।[252] इसी प्रकार हिन्दी के

---

247. मन्मथनाथ गुप्त- प्रेमचन्द: व्यक्ति और साहित्यकार, पृ0 126 पर उद्धृत ।
248. अमृतराय {सम्पा0} - प्रेमचन्द :विविध प्रसंग , भाग3, पृ0 394
249. महेन्द्र भटनागर -समस्यामूलक उपन्यासकार:प्रेमचन्द, पृ0 74-75 पर उद्धृत ।
250. वही, पृ0 75 पर सितम्बर 1936 के "हँस" से उद्धृत ।
251. रामदीन गुप्त- प्रेमचन्द और गान्धीवाद., पृ0 123
252. डॉ0 सीताराम झा- भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम और हिन्दी उपन्यास, पृ0 192 पर उद्धृत ।

अन्य साहित्यकार भी समाजवाद की ओर आकृष्ट हुए तथा उसके अनुरूप उन्होंने अपने साहित्य का सृजन करने का प्रयास किया । रामेश्वर शर्मा के अनुसार "वर्गविहीन समाज की भावना ने साहित्यकार को नई दृष्टि दी ।"[253]

प्रेमचन्द ने अपने अन्तिम उपन्यासों में समाजवादी प्रभाव को स्वीकार किया है । वे एक सजग लेखक थे । समाज में घटित होने वाली प्रत्येक घटना का मूल्यांकन वे बड़ी गम्भीरता से करते थे । उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी लेखनी से बहुत बड़ा योगदान किया था । उनकी एक ही आकांक्षा थी कि स्वातन्त्र्य संग्राम में हम विजयी हों ।[254] अतः उन्होंने गान्धीवादी कार्यक्रम को, जो एक जनचेतना एवं जनजागरण को लेकर आया था, स्वीकार किया । परन्तु जब उसकी व्यावहारिकता पर सन्देह उत्पन्न होने लगा तो उन्होंने उसे त्यागना उचित समझा और एक नवीन आन्दोलन को स्वीकार किया जो कि अपनी व्यावहारिकता को सिद्ध कर चुका था । उन्होंने अपने अन्तिम उपन्यासों में समाजवाद की झलक प्रस्तुत की है जिससे स्पष्ट होता है कि वे किसी व्यक्ति या विचारधारा से प्रभावित मनुष्य नहीं थे । उन्होंने जो भी किया वह राष्ट्रीय दृष्टिकोण से किया । स्वतन्त्रता आन्दोलन को सफल बनाने का निरन्तर प्रयास किया । उनकी औपन्यासिक कृतियों- प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, कायाकल्प तथा गोदान में अत्यधिक स्पष्टता के साथ मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष को चित्रित किया गया है ।

प्रेमाश्रम उपन्यास में एक ओर सरकार और उसके पिट्ठू शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, दूसरी ओर लखनपुर के किसान हैं। इन्हीं शोषित किसानों की स्थिति को सुधारने का प्रयास प्रेमचन्द ने किया है ।

---

253. रामेश्वर शर्मा- राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, पृ056
254. रामदीन गुप्त- प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ० 118 पर उद्धृत ।

उन्होंने एक बार शिवरानी देवी से कहा था कि गान्धी जी राजनीति के माध्यम से भारत के किसानों और मजदूरों के सुख-चैन के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, प्रेमाश्रम उन्हीं प्रयत्नों का साहित्यिक रूपान्तर है।[255]

"प्रेमाश्रम" में बूढ़े कादिर का जमींन्दार ज्ञानशंकर द्वारा इजाफा लगान की नालिशें दायर किए जाने पर वह कहता है " इसी धरती में सब कुछ होता है और सब कुछ इसी में समा जाता है। हम भी इसी धरती से पैदा हुए हैं और एक दिन इसी में समा जायेंगे। फिर यह चोट क्यों सहें? धरती के ही लिए छत्रधारियों के सिर गिर जाते हैं हम भी अपना सिर गिरा देंगे। "[256] कादिर के उक्त कथन में जहाँ मातृभूमि के प्रति प्रेम, अत्याचार का विरोध एवं आत्म बलिदान की भावना दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर शोषण से मुक्ति का प्रयास भी प्रकट होता है, जो समाजवाद की एक अनिवार्य शर्त है। "प्रेमाश्रम" के मनोहर और बलराज का चरित्र ऐसे शोषण से मुक्ति के लिए निर्मित किया गया प्रतीत होता है।[257]

प्रेमचन्द किसानों को जागृत करना चाहते थे। उनका यह प्रयास था कि किसान और मजदूर दूसरे देशों के किसान और मजदूर आन्दोलनों से परिचित हों और उनके आदर्शों को ग्रहण कर स्वयं अपने अधिकारों के लिए संघर्ष के योग्य बन सकें। उन्होंने बलराज के रूप में एक जागरूक किसान का चरित्र चित्रित किया है। बलराज कहता है "मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देश में काश्तकारों का ही राज्य है, वह जो चाहते हैं, करते हैं। उसी के पास कोई और देश बलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है, काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और किसानों और मजदूरों की पंचायत

---

255. शिवरानी देवी - प्रेमचन्द : घर में, पृ0 95

256. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ0 134

257 वही, पृ0 5 तथा 67

मान करती है । "[258] साम्यवाद राज्य को शोषक वर्ग का समर्थक एवं
... मानता है। इसी को प्रेमचन्द ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।
कादिर कहता है" इसमे हाकिमों का कसूर नहीं । यह सब उन्हें लश्कर वालों
की धांधली है। " परन्तु मनोहर तुरन्त उसका विरोध करता है और कहता
है " कैसी बातें करते हो , दादा? यह सब मिली भगत है,हाकिम का इशारा
न हो तो मजाल है कि कोई लश्करी पराई चीज पर हाथ डाल सके । सब
कुछ हाकिमों की मर्जी से होता है और उनकी मर्जी क्यों न होगी ? मेंत का
माल किसको बुरा लगता है ? "[259]

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि "प्रेमाश्रम" की रचना रूसी क्रान्ति के प्रभावस्वरूप ही हुई थी और इससे इनकार भी नहीं किया जा सकता क्योंकि जब कोई घटना आधुनिक विश्व में घटित होती है तो उसका प्रभाव विश्व के अन्य भागों पर भी पड़ता है [260] और चूँकि साहित्यकार अपने युग का एक चेतनशील अध्येता होता है अत: उसके लिए विश्व की किसी घटना से आँख मूद लेना सम्भव नहीं । अत: यदि "प्रेमाश्रम" समाजवादी प्रभाव से ओत-प्रोत उपन्यास कहा जाय तो अत्युक्ति नही होगी । जैसा डा० धर्मपाल सरीन ने भी स्वीकार किया है कि " उनका प्रेमाश्रम तो पूर्णतया किसान आन्दोलन तथा मार्क्सिस्ट विचारधारा से प्रभावित है ।[261] यद्यपि प्रेमचन्द ने "प्रेमाश्रम" में समाजवादी विचारधारा को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है परन्तु फिर भी अभी तक वे गान्धीवादी प्रभाव से पूर्णतया मुक्त नही हो सके थे ।[262]

---

258. वही, पृ0 69
259. वही, पृ0 73
260. देखिये , पूर्वोल्लिखित
261. डा0 धर्मपाल सरीन- हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष, पृ0 72
262. प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृ0 448

प्रेमचन्द के "रंगभूमि" उपन्यास में भी समाजवादी प्रभाव के दर्शन होते हैं। इस उपन्यास में पांडेपुर गांव में सिगरेट के कारखाने के निर्माण को लेकर सरकार एवं उसके एजेन्टों की ज्यादातियों का वर्णन है। जॉन सेवक, महेन्द्र प्रताप से जो नगर बोर्ड के प्रधान है, पांडेपुर गांव के लोगों को मुआवजा देकर गांव खाली कराने की मंजूरी ले लेता है। परन्तु सूरदास इस जबर्दस्ती के सामने झुकने वाला नहीं था। उसने अपनी झोंपड़ी छोड़ने से इनकार कर दिया। सूरदास द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था का यह विरोध है। क्योंकि प्रेमचन्द पूंजीवादी औद्योगीकरण के विरोधी थे, जिसमें मानवीय मूल्यों को कोई स्थान नहीं दिया जाता है।[263] डी०डी० तिवारी के अनुसार भी सूर का संघर्ष पूंजीवाद और उपनिवेशवाद द्वारा कुचली और शोषित भारतीय गरीब जनता का संघर्ष है।[264] जॉन सेवक की बातों में आकर कुंवर साहब जब 500 हिस्से लेने का वचन देते हैं तो प्रेमचन्द ऐसे बनावटी देशभक्तों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं " तुमने देश की उन्नति के लिए नहीं, अपने स्वार्थ के लिए यह प्रयत्न किया है। देश के सेवक बनकर तुम अपनी पांचों उंगलियां घी में रखना चाहते हो। तुम्हारा मनोवांछित उद्देश्य यही है कि नफे का बड़ा भाग किसी हीले से आप अजम करो तुमने इस लोकोक्ति को प्रमाणित कर दिया कि बनिया मारे जान, चोर मारे अन्जान।[265] यहां पर पूंजीपति वर्ग के द्वारा शोषण पर आक्रमण किया गया है। प्रभुसेवक के द्वारा पूंजीपति शोषक वर्ग की भर्त्सना की गई है।[266]

फिर भी यद्यपि इस उपन्यास में समाजवादी विचारधारा को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है, इसमें अनेक ऐसी बातों को सम्मिलित

---

263. महेन्द्र भटनागर - समस्यामूलक उपन्यासकार : प्रेमचन्द, पृ० 123
264. डी०डी० तिवारी- भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष और हिन्दी उपन्यास (1885 ई० से 1960 ई०) पृ० 91
265. प्रेमचन्द - रंगभूमि (भाग 1), पृ० 84
266. वही, भाग 2, पृ० 180

किया गया है जिनमें यह उपन्यास गान्धीवादी अधिक प्रतीत होता है। अतः स्वार्थ सोफिया के द्वारा क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाये जाने पर प्रेमचन्द उसके दल को बोल्शेविक पार्टी की संज्ञा देते हुए लिखते हैं कि "इस बोल्शेविक आन्दोलन को शान्त करने में रियासत की सहायता की जाय। सोफिया जैसी चतुर, कार्यशील, धुन की पक्की युवती के हाथों में यह आन्दोलन कितना भयंकर हो सकता है।[267] राजा साहब भी साम्यवाद से सन्तुष्ट नहीं है।[268]

"कर्मभूमि" उपन्यास का रचनाकाल वास्तव में कांग्रेस के नेतृत्व में परिवर्तन का काल था। पं0 जवाहरलाल नेहरू ने लाहौर कांग्रेस के सभापति पद से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए समाजवाद को अपनाना आवश्यक समझा था।[269] प्रेमचन्द, जिसकी दृष्टि कांग्रेस के द्वारा चलाये जा रहे राष्ट्रीय आन्दोलन पर लगी रहती थी, इस बात से अप्रभावित कैसे रह पाते। इसी प्रभाव को प्रेमचन्द ने "कर्मभूमि" में यद्यपि पूर्णरूप में नहीं तो आंशिक रूप से देखा जा सकता है, जो उनके विचारों में परिवर्तन का प्रतीक था। "कर्मभूमि" में प्रेमचन्द ने किसानों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है जिन पर लगान का बोझ बढ़ता जा रहा था। परन्तु शोषक वर्ग उसका शोषण करता ही जा रहा था। उसका अत्याचार बढ़ रहा था। किसानों के प्रति उसकी कोई सहानुभूति नहीं थी।[270] प्रेमचन्द ने ऐसे किसानों से लगान वसूल करना उनके शरीर के रक्त को चूसने के समान बताया है।[271]

परन्तु प्रेमचन्द के किसान अत्याचार का सामना करने के लिए तैयार थे, वे अत्याचार एवं दमन के आगे सिर झुकाने वाले नहीं थे। उन्होंने इस शोषण के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए लगान देना बन्द कर दिया।[272] "कर्मभूमि"

---

267. वही, पृ0 422

268. वही, भाग 1, पृ0 246

269. देखिये, पूर्वोल्लिखित

270. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ0 377-78

271. वही, पृ0 366

272. वही पृ0 333

का रचनाकाल आर्थिक मन्दी का काल था । जिससे भारतवर्ष का भी सम्पूर्ण आर्थिक ढांचा जीर्ण-क्षीण हो गया था । इस मन्दी के सबसे बुरे शिकार भारतीय किसान थे । इस मन्दी के कारण गरीबी एवं दरिद्रता बहुत बढ़ गई थी । अतः जहां एक ओर भारतवर्ष राजनीतिक दासता की बेड़ियों में बन्धा हुआ था, वहीं आर्थिक रूप से भी वह किसी भी रूप में स्वतन्त्र नहीं था । अतः राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं का विश्वास था कि आर्थिक परतन्त्रता को दूर करने के लिए समाजवाद एक उपयुक्त मार्ग था । उन्होंने रूसी क्रान्ति को आदर्श मानते हुए उसके प्रभाव को स्वीकार किया । अतः कांग्रेस के भीतर रहते हुए कांग्रेस को शक्ति एवं नया रूप तथा दिशा प्रदान करने के लिए उन्होंने एक नये दल का संगठन किया ।[273] जवाहर लाल नेहरू ने भी रूस के प्रभाव को स्वीकार किया।[274]

प्रेमचन्द के एक अन्य उपन्यास "कायाकल्प "में जगदीशपुर की जनता का बेगार के विरूद्ध संघर्ष चित्रित किया गया है। यह संघर्ष सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के विरूद्ध है। उपन्यास का नायक चक्रधर , अपने पिता द्वारा बेगार लिए जाने का विरोध करता है, क्योंकि उसका पिता मुंशी वज्रधर कहारों और चमारों से बेगार लेता है ।[275] इस उपन्यास मे प्रेमचन्द ने इन दलित एवं शोषित वर्ग में भी जागृति को दिखाया है । चमार हंटर और गोलियाँ खाकर भी अपने तथाकथित भाग्यविधाताओं की आज्ञा मानने से इनकार कर देते हैं ।[276] सामन्तों एवं जमीन्दारों ने जनता पर बहुत अत्याचार किये थे । उनके द्वारा जनता के शोषण की कोई सीमा नहीं थी । चक्रधर ऐसे राज्य को पशुबल का प्रत्यक्ष रूप मानता है ।[277]

---

273. जे०पी० नारायण - टुवर्ड्स स्ट्रगल, पृ० 137

274. जे०एल० नेहरू- हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० 36

275. प्रेमचन्द -कायाकल्प, पृ०50

276. वही, पृ० 109

277. वही, पृ० 162

चक्रधर के द्वारा मजदूरों एवं किसानों को संगठित कर आन्दोलन का सूत्रपात किया है। उसके इन प्रयासों से किसानों एवं मजदूरों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता आ जाती है। उनमें डर एवं कायरता समाप्त हो जाती है। उनके विद्रोही साथियों पर गोलियाँ चलती हैं तो वे डरकर पीछे नहीं हटते है वरन् दृढ़ता एवं साहस के साथ आन्दोलन में भाग लेते हुए आगे बढ़ते हैं।[278] इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने किसानों एवं मजदूरों के सशस्त्र आन्दोलन का नेतृत्व[279] करते हुए समाजवाद को स्वीकार किया है। परन्तु साथ ही चक्रधर को उन्होंने एक गान्धीवादी पात्र के रूप में दिखाया है जो आन्दोलनकारियों के हिंसापूर्ण कार्यों का विरोध करता है।[280] परन्तु इससे तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने यहाँ गान्धीवादी नीति को आदर्श माना है। वास्तविकता तो यह है उन्होंने गान्धीवादी कार्यक्रम की ही आलोचना की है। चक्रधर का हिंसा का विरोध करने पर एक मजदूर उससे कहता है कि "जब हम गोलियों से भुन रहे थे। उस समय आप कहाँ थे? अब जबकि हम सफलता के सिंहद्वार पर पहुँच गये हैं, आप हमें शान्ति और अहिंसा का उपदेश देने आ गये हैं।[281] इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द का विश्वास गान्धीवाद से हट रहा था और वे किसानों और मजदूरों के द्वारा शोषकवर्ग के विरुद्ध संघर्ष से समाजवाद की ओर अपने झुकाव का संकेत दे रहे थे। रामदीन गुप्त का कथन है कि –" "कायाकल्प" में प्रेमचन्द ने पहली बार मजदूरों को चमारों और किसानों के साथ मिलकर सामन्तवाद तथा साम्राज्यवाद की ताकतों का सशस्त्र मुकाबला करते दिखाया है।"[282]

---

278. वही, पृ0 147
279. वही, पृ0 114-115
280. वही, पृ0 116
281. वही, पृ 116-117
282. रामदीन गुप्त- प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ0 212

प्रेमचन्द के उपन्यास "गोदान" में किसान को मजदूर बनते दिखाया गया है । इससे स्पष्ट होता है कि "गोदान" तक आते-आते प्रेमचन्द की धारणा पर्याप्त परिवर्तित हो चुकी थी । इस उपन्यास में मार्क्सवादी वर्ग-संघर्ष को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है। अत: रामदीन गुप्त के शब्दों को पुन: दोहराया जा सकता है कि "गोदानकार की सम्भवत: सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक समस्या से अधिक चरित्र (होरी) पर बल देकर भी वह सामाजिक वैषम्य और वर्ग संघर्ष को अपने पूरे भयावह और नग्न रूप में उभारकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में वह सफल हो सका है ।"[283] पुन: उनके अनुसार "किसी विशिष्ट सामाजिक राजनीतिक या आर्थिक आन्दोलन को अपनी रचना का विषय न बनाकर गोदानकार ने भारतीय किसान के समूचे जीवन और उसके दु:ख-दर्द को हीवाणी प्रदान करने का प्रयास किया है ।"[284]

प्रेमचन्द के "गोदान" का समाज एक शुद्ध पूँजीवादी समाज है । जिसमें शोषक वर्ग के प्रतिनिधि राय साहब, खन्ना साहब, मिस मालती इत्यादि है । जब कि शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व होरी, गोबर, धनिया इत्यादि करते है । होरी और गोबर के चरित्रों से प्रेमचन्द परम्परावादी एवं आधुनिक और प्रगतिशील विचारों में संघर्ष दिखाते हैं और यह स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं कि वर्तमान समाज में भाग्यवादिता या समझाने-बुझाने से लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकती है वरन् अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष की आवश्यकता है। क्योंकि होरी को प्रेमचन्द ने एक भाग्यवादी किसान के रूप में चित्रित किया है।[285] परन्तु गोबर और धनिया के चरित्र अन्याय एवं शोषण का विरोध करने वाले हैं ।[286]

---

283. वही, पृ0 260
284. वही, पृ0 वही
285. प्रेमचन्द -गोदान, पृ0 5, 16, 19
286. वही, पृ0 19

यद्यपि गोदान को एक समाजवादी उपन्यास स्वीकार किया जा सकता है फिर भी इसमें मजदूर आन्दोलन का वर्णन नहीं किया गया है जो कि मार्क्सवाद का एक अनिवार्य अंग है। तथापि इस सम्बन्ध में रामदीन गुप्त के विचारों का उल्लेख किया जा सकता है कि " गोदान के किसानों में संगठित संघर्ष की भावना चाहे जन्म न ले पाई हो, किन्तु उसका लेखक यह संकेत करना नहीं भूला है कि नई पीढ़ी के युवक किसान धीरे-धीरे इसी ओर बढ़ रहे हैं।[287] किसानों पर किये जाने वाले अत्याचार एवं शोषण के सम्बन्ध मे" गोदान " का उल्लेख करते हुए मन्मथनाथ गुप्त कहते हैं कि " किसान की एक जान है, किन्तु उसके कितने खून चूसने वाले हैं, इस बात को यदि किसी को जानना हो तो वह इस सम्बन्ध में समाजवादी दलों की पुस्तिकाओं से जितना नही जानेगा, उतना प्रेमचन्द के एक गोदान से जान सकता है ।"[288]

प्रेमचन्द अपने उपन्यास "मंगलसूत्र" को यद्यपि पूर्ण नहीं कर सके फिर भी इस अधूरे उपन्यास से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस उपन्यास के लिखने तक वे एक पक्के समाजवादी बन चुके थे । पूंजीवादी व्यवस्था को ही वे समस्त शोषण का कारण मानने लगे थे । उपन्यास में सन्त कुमार अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध अपना मत प्रकट करते हुए कहता है कि " एक गरीब आदमी किसी खेत से बालें नोच कर खा लेता है , कानून उसे सजा देता है,। दूसरा अमीर आदमी दिन-दहाड़े दूसरों को लूटता है ...... उसे सम्मान मिलता है .....यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार ।"[289] वह यह भी कहता है कि " दरिन्दों के बीच में, उनसे लड़ने के लिए हथियार बान्धना पड़ेगा । उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है ।"[290] सन्त कुमार के उपर्युक्त

---

287. रामदीन गुप्त- प्रेमचन्द और गान्धीवाद, पृ० 267

288. मन्मथनाथ गुप्त - प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार, पृ० 460

289. प्रेमचन्द - मंगलसूत्र (अपूर्ण), पृ० 189

290. वही, पृ० 293

...गान्धीवादी विचारों का विरोध करने वाले हैं तथा अपने अधिकारों को संघर्ष से प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि ... प्रेमचन्द अपना " मंगलसूत्र" उपन्यास पूरा कर पाते तो सम्भवत: वे एक गान्धीवादी नहीं, वरन् पूर्ण समाजवादी लेखक होते।

प्रेमचन्द ने औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप आर्थिक शोषण के भय को स्वीकार किया है। साथ ही साथ उन्होंने समाजवाद और रूढ़िवाद को परस्पर एक साथ देखने का प्रयास किया है, जहाँ वे एक ओर औद्योगीकरण का विरोध इसलिए करते थे, क्योंकि इससे दासता की भावना बलवती होती है।[291] वहीं उन्होंने औद्योगीकरण का विरोध इसलिए भी किया क्योंकि " इससे आर्थिक शोषण, नैतिक अध:पतन तथा सामाजिक दुर्गुणों और व्यसनों का प्रसार होता है। ..... उनके मतानुसार उद्योगवाद के इस अन्धप्रवाह में हमारे गाँव उजड़कर दिन-ब-दिन अधिकाधिक गरीब-आर्थिक ही नहीं सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक दृष्टि से भी गरीब — होते जा रहे हैं। ... वे मानते थे कि आज हमारे जीवन में जो कृत्रिमता, अधार्मिकता तथा अनैतिकता बढ़ रही है, सामूहिक और केन्द्रीकृत उत्पादन ही उसका मुख्य कारण है।"[292] उनका यह विचार था कि जब तक हम जीवन के प्राचीन आदर्श "सादा जीवन उच्च विचार"[293] की ओर प्रत्यावर्तन नहीं करते, तब तक इसी भाँति शान्ति की खोज में भटकते रहेंगे।[294] इसी भावना को प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास "रंगभूमि" में दिखाने का प्रयास किया है। उपन्यास में सूरदास जॉन सेवक द्वारा लगाये जाने वाले कारखाने के दुष्परिणामों को नायकराम को बताता है कि " मुहल्ले की रौनक

---

291. एम०एस० बुच – राइज एण्ड ग्रोथ आफ इण्डियन नेशनलिज्म, पृ० 203
292. जे०सी० कुमारप्पा– दि गान्धीयन वे ऑफ लाइफ, पृ० 28-29
293. देखिये, पूर्वोल्लिखित
294. जे०सी० कुमारप्पा – दि गान्धियन वे ऑफ लाइफ, पृ० 41-42

... बढ़ जायेगी , रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा । लेकिन जहाँ, यहाँ रौनक बढ़ेगी , वहाँ ताड़ी शराब का प्रचार भी तो बढ़ जायेगा। कसबियाँ तो आकर बस जायेंगी, परदेसी आदमी हमारी बहू- बेटियों को घूरेंगे , कितना अधरम होगा , दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी की लालच से दौड़ेंगे , यहाँ बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरण अपने गाँवों में फैलायेंगे । देहातों की लड़कियाँ , बहुएँ मजूरी करने आयेंगी, और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी । यही रौनक शहरों में है । वही रौनक यहाँ हो जायेगी । भगवान न करे, यहाँ वह रौनक हो । "[295] सूरदास के द्वारा प्रेमचन्द ने पश्चिमी जगत स्पष्टत इंग्लैण्ड की सभ्यता में व्याप्त अनैतिकता पर व्यंग्य किया है और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ माना है । इसी दुष्प्रभाव को प्रेमचन्द ने और अधिक स्पष्ट किया है। जॉन सेवक सिगरेट का कारखाना खोलने के लिए भूमिका तैयार करता है कि " मेरा इरादा है म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहब से मिलकर यहाँ एक शराब और ताड़ी की दुकान खुलवा दूं । तब आस-पास के चमार यहाँ रोज आयें।, और आपको उनसे मेल-जोल पैदा करने का अवसर मिलेगा ।"[296]

अंग्रेजों ने अपनी नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए भारतीय समुदाय के लोगों को माध्यम बनाया था जिसमें भारतीय पूंजीपति वर्ग भी था । उन्होंने इस प्रकार अनेक भारतीय लोगों को मूर्ख बनाया था। इसी प्रकार का दृष्टान्त कुँवर साहब और जॉन सेवक के वार्तालाप में दृष्टिगोचर होता है। जॉन सेवक कहता है "हमारी जाति का उद्धार कला-कौशल और उद्योग की उन्नति में है । इस सिगरेट के कारखाने से कम से कम एक हजार आदमियों

---

295. प्रेमचन्द - रंगभूमि , भाग 1, पृ0 131-132

296. वही, पृ0 14

े ि.जन की समस्या हल हो जायेगी और खेती के सिर से उनका बोझ टल
ा े ा । जितना एक आदमी अच्छी तरह जोत बो सकता है,उसमें घर भर
का लगा रहना व्यर्थ है । मेरा कारखाना ऐसे बेकारों को अपनी रोटी
कमाने का अवसर देगा । " कुंवर साहब बोलते है, " लेकिन तम्बाकू कोई
अच्छी चीज तो नहीं । इसकी गणना मादक वस्तुओं में है और स्वा स्थ्य
पर इसका बुरा असर पड़ता है । "जॉन सेवक हँसकर कहता है " ये सब
डाक्टरों की कोरी कल्पनाएँ हैं । जिन पर गम्भीर विचार करना हास्यास्पद
है । डाक्टरों के आदेशानुसार हम जीवन व्यतीत करना चाहें तो जीवन का
अन्त ही हो जाय । ......, व्यवसायी लोग इन गोरखधन्धों में नहीं पड़ते,
उनका लक्ष्य केवल वर्तमान परिस्थितियों पर रहता है । हम देखते हैं कि इस
देश में विदेश से करोड़ों रूपये के सिगरेट और सिगार आते हैं । हमारा कर्तव्य
है कि इस धन प्रवाह को विदेश जाने से रोकें । इसके बगैर हमारा आर्थिक
जीवन कभी पनप नहीं सकता । "[297] परिणाम यह होता है कि कुंवर साहब
जॉन सेवक द्वारा दिये गये तर्कों से प्रभावित होकर 500 हिस्से लेने का वचन
देते हैं ।[298] प्रेमचन्द ने औद्योगीकरण में मनुष्य का शोषण देखा । उनके विचार
में अधिकांश भारतीय पूंजीपतियों ने जमीन पर से जब अपना एकधिकार समाप्त
होते देखा तो उन्होंने कारखाने खोलने प्रारम्भ कर दिये । इसके लिए उनको
दोहरा लाभ दिखाई पड़ा । एक ओर उनकी पूंजी सुरक्षित रह सकेगी , दूसरी
ओर कम मजदूरी देकर अधिक उत्पादन मिल सकेगा । इस प्रकार औद्योगीकरण
मजदूरों के शोषण पर आधारित पूंजीपतियों के लाभ के लिए है। इसलिए प्रभु सेवक

---

297. वही, पृ0 79-80

298. वही, पृ0 84

युग मे प्रेमचन्द आधुनिक व्यावसायिक मनोवृत्तियों की भर्त्सना करते हुए कहते हैं, " व्यवसाय कुछ नहीं है, अगर नर हत्या नहीं है । आदि से अन्त तक मनुष्यों को पशु समझना और उनसे पशुवत व्यवहार करना इसका मूल सिद्धान्त है । जो यह नहीं कर सकता, वह सफल व्यवसायी नहीं हो सकता । "[299] इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप शोषक और शोषित वर्ग के सम्बन्ध से प्रभावित हुए थे तथा उन्होंने शोषण का विरोध करने के लिए समाजवादी विचारधारा का प्रभावांकन अपने साहित्य में किया ।

प्रेमचन्दोत्तर युग :

प्रेमचन्द के उपरान्त भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप में परिवर्तन के कारण हिन्दी साहित्य में भी परिवर्तन के दर्शन होते हैं । इस युग में गान्धीवादी सिद्धान्तों का प्रभाव कम होने लगा था । क्योंकि इस समय गान्धीवादी सिद्धान्तों को समय की आवश्यकता के समक्ष अव्यावहारिक समझा जा रहा था । इस बात को स्वयं गान्धी जी के भारत-छोड़ो आन्दोलन के समय दिये गये आदेशों में देखा जा सकता है । परिणाम स्वरूप इस युग में जिन उपन्यासों की रचना की गई उनमें जहाँ एक ओर गान्धीवादी आन्दोलन का प्रभाव देखा जा सकता है वहीं क्रान्तिकारी एवं समाजवादी आन्दोलन का भी पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है।प्रेमचन्दोत्तर यु

---

299. वही, भाग 2 पृ0 180

के उपन्यास साहित्य में गान्धीवाद, क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा समाजवाद तीनों ही विभिन्न लेखकों की कृतियों में दृष्टिगोचर होते हैं। इस युग के प्रमुख उपन्यासकारों में राधिकारमण प्रसाद सिंह, भगवती प्रसाद बाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, निराला, विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", यशपाल, राहुल सांस्कृत्यायन, रामेश्वर शुक्ल "अंचल," प्रतापनारायण श्रीवास्तव, रांगेय राघव इत्यादि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

सामाजिक -

प्रेमचन्दोत्तर युग में विभिन्न उपन्यासकारों की कृतियों में मुख्य रूप से गान्धीवादी सत्य और अहिंसा पर आधारित विभिन्न आन्दोलन का वर्णन प्राप्त होता है जबकि गान्धी जी के रचनात्मक कार्यक्रम पर अधिक बल नहीं दिया गया है। विभिन्न लेखकों के उपन्यासों में यदाकदा ही सामाजिक दोषों की ओर संकेत किया गया है।[300] इस युग के लगभग सभी उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रत्यक्ष रूप को ही वाणी प्रदान करने के उद्देश्य से लिखे गये हैं। अतः इस युग में सामाजिक दृष्टिकोण से लिखे गये

300- राधिकारमण प्रसाद सिंह के उपन्यास "गान्धी टोपी" में अछूतों के मन्दिर प्रवेश आन्दोलन का वर्णन किया गया है। यशपाल के "देश द्रोही" उपन्यास में बद्री बाब अछूतोद्धार के लिए प्रयत्न करते हैं।

ऐसे उपन्यासों का अभाव पाया जाता है, जो राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्रीय चेतना को बढ़ाने के दृष्टिकोण से उपयोगी माने जा सकते ।

राजनीतिक -

सूर्य कान्त त्रिपाठी" निराला" ने अपने उपन्यास "अप्सरा" में अंग्रेजी स्वेच्छाचार एवं अत्याचार का वर्णन किया है । पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट हैमिल्टन जब कनक के साथ दुर्व्यवहार करना चाहता है,[301] तो कनक की रक्षा राजकुमार,जो एम0 ए0 का विद्यार्थी था, करता है । परन्तु इसके लिए राजकुमार को ही गिरफ्तार करके सजा दी जाती है। इस घटना से सम्भवतः उपन्यासकार ने अंग्रेजी अत्याचार के प्रति जनता में घृणा उत्पन्न कर, साम्राज्यवादी शक्तियों के विरूद्ध जन-चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया है । इलाचन्द्र जोशी ने भी अंग्रेजी अत्याचार के सम्बन्ध में अपने उपन्यास"निर्वासित" में वर्णन किया है ।[302] निरंकुश शासकों के द्वारा लाला लाजपत राय पर लाठी चार्ज के रूप में अत्याचार एवं क्रूरता का वर्णन जोशी जी ने अपने उपन्यास "मुक्तिपथ" में किया है।[303] अज्ञेय के उपन्यास"शेखर: एक जीवनी" में विद्याभूषण देश के नवयुवकों का ध्यान अंग्रेजी अत्याचार की ओर आकृष्ट कर उनमें राष्ट्र प्रेम की भावना

301- सूर्यकान्त त्रिपाठी"निराला" - अप्सरा, पृ0 10

302- इलाचन्द्र जोशी - निर्वासित, पृ0 360

303- इलाचन्द्र जोशी - मुक्तिपथ, पृ0 22

जागृत करने का प्रयास करता है ।[304] रघुवीर शरण मित्र के "बलिदान" उपन्यास में विदेशी शासन को अत्याचार एवं शोषण का प्रतीक बताया गया है ।[305] इसी उपन्यास मे एक पात्र यूसुफ विदेशी सरकार को "हत्यारी सरकार"[306] कहता है । भगवती चरण वर्मा के "टेढ़े-मेढ़े रास्ते" उपन्यास में भी ब्रिटिश अत्याचार का वर्णन प्राप्त होता है।

हिन्दी उपन्यासों में ब्रिटिश अत्याचारों के अतिरिक्त भारतीय अत्याचारियों का भी उल्लेख किया गया है जो अपने हित साधनों एवं अंग्रेजी शासकों को प्रसन्न रखने के दृष्टिकोण से अपने ही देशवासियों के प्रति अनेक प्रकार के अत्याचार करते थे । भारत वर्ष अनेक रियासतों में विभक्त था । इन रियासतों की जनता के ऊपर अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते थे । राजा जनहित को छोड़कर विलासिता में जीवन व्यतीत करते थे तथा अंग्रेज शासकों एवं अधिकारियों की चापलूसी में अपने को धन्य समझते थे । विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" के "संघर्ष" उपन्यास में रियासतों में राजा किस प्रकार विलासिता में डूबे रहते हैं, इसका वर्णन किया गया है । राजा साहब हाकिमों को एक भोज देते हैं, जिसमें तहसीलदार, हाकिम परगना, पुलिस कर्मचारी तथा

304- अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी, पृ0 54

305- रघुवीर शरण मित्र - बलिदान, पृ0 4

306- वही, पृ0 243

जिलाधीश सभी सम्मिलित होते हैं। वे भोज में लखनऊ के एक बढ़िया होटल से अंग्रेजी भोजन तथा मूल्यवान शराब का प्रबन्ध करते हैं। इन राजाओं में खुशामद और चापलूसी की प्रवृत्ति इतनी अधिक है कि जिलाधीश के हँसने मात्र से राजा साहब अपना सारा परिश्रम सफल समझते हैं।[307]

भगवती चरण वर्मा ने अपने उपन्यास "टेढ़े-मेढ़े रास्ते" में भारतीय चापलूस वर्ग की निन्दा की है। इस उपन्यास में देश की पराधीन स्थिति से मुक्ति का आह्वान है। जब दयानाथ जो कि कांग्रेस का नेता है, का पिता रामनाथ, जो जमींदार है, उससे कांग्रेस छोड़ देने की बात करता है। तो वह उत्तर देता है कि " क्या जमींदार, और क्या किसान, हम सब गुलाम है और कांग्रेस हम सब गुलामों की संस्था है, जिसका उद्देश्य देश को विदेशियों के शासन से मुक्त करना है।"[308] रामनाथ दयानाथ से कहते हैं कि " तुम मेरे नाम को, मेरे कुल को कलंकित कर रहे हो।"[309] जब उन्हें कांग्रेस वालों को सजा देने के लिए स्पेशल मजिस्ट्रेट बना दिया जाता है तो वे फूले नहीं समाते।[310] उपन्यास में इस प्रकार के देश द्रोहियो पर व्यंग्य किया गया है। इलाचन्द्र जोशी जी ने अपने

307- विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक" - संघर्ष, पृ0 124
308- भगवती चरण वर्मा - टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ0 11
309- वही, पृ0 10
310- वही, पृ0 197

निर्वासित" उपन्यास में उन भारतीयों की आलोचना की है जो अंग्रेजो की नौकरी और कृपा प्राप्त करने में गर्व समझते हैं और उनको प्रसन्न रखने के लिए भारतीय जनता पर अत्याचार करते हैं ।[311] इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यास "निर्वासित" में भारतीय पुलिस के जनता पर अत्याचार का भी वर्णन किया है ।

साम्राज्यवाद की समाप्ति के लिए अहिंसक साधन -

सत्याग्रह -

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास" पुरूष और नारी" में सत्याग्रह के महत्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उपन्यास में अजीत प्रो0 शिवदयाल से बहुत अधिक प्रभावित है, जिन्होंने उसको बताया था कि भारत की स्वाधीनता के लिए आत्मबल और त्याग की आवश्यकता है । उन्होंने उससे कहा था कि इसके लिए " आज सत्याग्रह ही भारत का जौहरव्रत है और खादी ही इस बीसवीं सदी का केसरिया बाना ।"[312] राधिकारमण प्रसाद सिंह जी ने खादी और अंहिसा की तुलना रणक्षेत्र में काम आने वाले हथियारों एवं अस्त्रों से किया है । ये वह हथियार है जो शत्रु की आत्मा तक को जीत लेते है । इसमें अहिंसा के महत्व को स्पष्ट किया गया है कि "अहिंसा तो वह तलवार है, जिसकी चोट

311- इलाचन्द्र जोशी - निर्वासित, पृ0 387

312- राधिकारमण प्रसाद सिंह - पुरूष और नारी, पृ0 7

बचाने को कोई ढाल ही नही ।"[313] इसके अतिरिक्त उपन्यास में यह भी कहा गया है कि "ब्रिटिश शेर के पंजों से झंझोरी हुई भारत की मर्यादा आज इस अहिंसा की संजीवनी न पाती, तो कहीं भी न रहती ।"[314] भगवती प्रसाद बाजपेयी के "निमन्त्रण" उपन्यास में गिरधारी शर्मा पत्र प्रकाशन द्वारा स्वाधीन विचारों का प्रचार करते हैं जिसके लिए उन्हें जेल में बन्द कर दिया जाता है, परन्तु उनका कार्य मालती और विनायक सम्भाल लेते हैं । उपन्यास का एक अन्य पात्र विश्वनाथ एक कुशल संचालक के रूप में सत्याग्रह आन्दोलन का संचालन करता है । भगवतीचरण वर्मा ने अपने उपन्यास "भूले-बिसरे चित्र" में नमक कानून भंग करने का वर्णन किया है । उपन्यास में नवल नमक कानून भंग करने के अपराध में जब गिरफ्तार होता है तो उसकी बहिन विद्या और माता रूक्मिणी उसकी आरती उतारकर कृष्ण मंदिर अर्थात् जेल भेजती हैं ।[315]

313- वही, पृ0 20

314- वही, पृ0 21

315- भगवती चरण वर्मा- भूले-बिसरे चित्र, पृ0 720। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भगवतीचरण वर्मा गान्धीवादी आन्दोलन को श्रेष्ठ साधन के रूप में नही स्वीकार करते हैं । 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते" में जब रामकिशोर सत्याग्रही स्वयं सेवकों की बात करता है तो मार्कण्डेय राय देता है कि रूपये की लालच से स्वयं-सेवकों को बनाओ और जेल जाने के लिए नौकर रखे जायें - देखिये भगवतीचरण वर्मा- टेढ़े-मेढ़े रास्ते" पृ0 24। यह वर्णन राष्ट्रीय दृष्टिकोण से स्वस्थ नहीं माना जा सकता । राधिकारमण प्रसाद सिंह के उपन्यास "पुरूष और नारी" में भी नमक सत्याग्रह का उल्लेख हुआ है ।

रामेश्वर शुक्ल "अंचल" के उपन्यास "चढ़ती धूप" में मजदूरों के द्वारा सत्याग्रह का वर्णन है।[316]

हृदय परिवर्तन -

प्रेमचन्दोत्तर युग में गान्धीवादी सिद्धान्तों के प्रभाव स्वरूप विरोधी के हृदय परिवर्तन का भी वर्णन उपन्यासों में यदा-कदा प्राप्त होता है। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास "भूले - बिसरे चित्र" में स्वदेशी के प्रचार से गंगा प्रसाद डिप्टी कलक्टर जैसे अंग्रेजों के दीवाने का हृदय परिवर्तित हो जाता है। जब पूँजीपति हैरिसन द्वारा गान्धी जी को गाली दी जाती है तो गंगा प्रसाद भी हैरिसन को नीच और कमीन कहता है। इस पर जब गंगा प्रसाद को पदच्युत किया जाता है तो वह स्वयं त्याग-पत्र दे देता है। गंगा प्रसाद और हैरिसन के इस वाद-विवाद में उपन्यासकार ने भारतीय गौरव की प्रतिष्ठा की है। त्यागपत्र देने के उपरान्त वह अपने आप में गौरव का अनुभव करता है। अब वह यह समझ जाता है कि एक गुलाम की हैसियत से उसका अस्तित्व एक पालतू जानवर की भाँति था, जिसे अपने मालिक के इशारों पर चलना होता है जिसमें न कोई चेतना होती है और न कोई भावना ही।"[317]

316- रामेश्वर शुक्ल "अंचल" - चढ़ती धूप, पृ0 31।
317- भगवतीचरण वर्मा - भूले बिसरे चित्र पृ0 559

स्वदेशी एवं बहिष्कार -

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास "पुरूष और नारी" में स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन का वर्णन किया है । स्वदेशी के सम्बन्ध में उन्होंने खादी और चर्खे के महत्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । उपन्यास में अजीत अपने साथी दलीप को बताता है,"खादी ! यही न अहिंसात्मक संग्राम की मिलिटरी वर्दी है । यह चर्खे का घर्र-घर्र भारत का रणगर्जन समझो ।"[318] इस प्रकार स्वदेशी के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध युद्ध छेड़ने का सन्देश उपन्यास में मिलता है। गान्धी जी ने बहिष्कार का नारा दिया था । इस प्रकार का प्रभाव प्रो0 शिवदयाल पर दिखाई देता है जो प्रोफेसरी से इस्तीफा दे देते हैं । अजीत एम0 ए0 वर्ग से अपना नाम कटवा लेता है। उस पर गान्धीवादी प्रभाव पूर्ण रूप से दिखाई देता है । वह गान्धी आश्रम साबरमती जाता है और वैसा ही एक आश्रम गाँव की नदी के किनारे स्थापित करता है । भगवती प्रसाद बाजपेयी के "निमन्त्रण" उपन्यास में मालती भोग-विलास की वस्तुओं का त्याग कर, विलायती कपड़ों के स्थान पर खादी कपड़े पहनना प्रारम्भ कर देती है ।

318- राधिकारमण प्रसाद सिंह - पुरूष और नारी, पृ0 19

भगवती चरण वर्मा के "टेढ़े-मेढ़े रास्ते " उपन्यास में स्वदेशी आन्दोलन का वर्णन है। दयानाथ की पत्नी में स्वदेशी भावना बहुत अधिक पाई जाती है । उसकी पत्नी राजेश्वरी देवी खादी की साड़ी पहनती और तकली से सूत कातती हैं ।[319] दयानाथ भी स्वदेशी भावना का प्रचारक है । वह कानपुर शहर में स्वदेशी भावना फैलाने के अपराध में गिरफ्तार कर लिया जाता है। इस पर दयानाथ जेल जाने को सहर्ष स्वीकार करता है । उसकी पत्नी उसकी आरती उतारती है जैसे वह किसी युद्ध में जा रहा है । उसके दो छोटे-छोटे बच्चे भी हैं जो ऐसे समय "झण्डा ऊँचा रहे हमारा" और "इन्कलाब जिन्दाबाद ," "महात्मा गान्धी की जय" का नारा लगाते हैं । "भूले-बिसरे चित्र" उपन्यास में कानपुर में विदेशी वस्त्रों की होली जलाये जाने का वर्णन है ।[320] इसमें उपन्यासकार ने भारतीयों के विलायती ठाट-बाट पर व्यंग्य किया है कि इन्हें अपनी पराधीन स्थिति की कोई चिन्ता नही है। एक स्वयं सेवक डिप्टी कलक्टर गंगा प्रसाद से भी विलायती कपड़ों की होली जलाने के लिए विलायती कपड़े मांगने गया तो कहता है "अरे यह तो सिर से पैर तक विलायती कपड़े पहने हुए हैं । तो महाशय जी, एक कपड़ा, चाहे रूमाल हो, चाहे टाई हो, बस एक ही कपड़ा आप दे दीजिए । इस पुण्य काम में हाथ

319- भगवती चरण वर्मा- टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ09

320- वही, भूले-बिसरे चित्र, 490

बँटाना भारतमाता के हरेक सुपुत्र का धर्म है ।"[321] नवल भी विलायती कपड़ों को छोड़कर खादी का धोती-कुर्ता पहनने लगता है ।[322] स्वदेशी आन्दोलन से गंगा प्रसाद का हृदय परिवर्तित हो जाता है ।[323]

गान्धी जी ने धरना देने के लिए स्त्रियों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना था । इसका वर्णन इस उपन्यास में मिलता है । जब दो स्त्रियों को धरना देने के अपराध में गिरफ्तार किया जाता है। तो वे दृढ़तापूर्वक गंगा प्रसाद से कहती है कि " हम सरकार की दया नहीं चाहतीं ।"[324] नारी में राष्ट्रीय चेतना का सुन्दर चित्रण गंगादेवी के माध्यम से वर्मा जी ने किया है जो गंगा प्रसाद से निर्भीकता पूर्वक कहती हैं "मैं कांग्रेस की स्वयं- सेविका हूँ और मैंने विलायती कपड़ों की दुकानों पर धरना दिया है । हम स्वराज्य चाहती हैं और ब्रिटिश हुकूमत को जड़ से उखाड़ देना हमारा धर्म है ।"[325]

बहिष्कार आन्दोलन के प्रभाव में आकर नवल आई0सी0 एस0 आफिसर बनने की जगह कांग्रेस का स्वयं - सेवक बनना पसन्द करता है । वह छात्रों के बीच राष्ट्रीय चेतना का प्रचार करता है। उपन्यास में राजेन्द्र किशोर पर व्यंग्य किया गया है कि वह नवल के आई0सी0 एस0 आफिसर

321- वही, पृ0 461
322- वही, पृ0 658
323- वही, पृ0 593
324- भगवती चरण वर्मा - भूले बिसरे चित्र, पृ0 505
325- वही, पृ0 506

नगा छोड़कर स्वयं-सेवक बनने को अजीब विडम्बना कहता है ।[326]
... की बहन विद्या " नई शिक्षा सदन" को अपनी सेवा अर्पित करती है ।[327]

इलाचन्द्र जोशी के "निर्वासित" उपन्यास में बहिष्कार आन्दोलन का समर्थन प्राप्त होता है । महीप प्रथम वर्ग में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करता है । परन्तु वह आई० सी० एस० नहीं बनना चाहता । क्योंकि उसके मत में आई०सी०एस० बनना देश की जनता के लिए हितकर नहीं होगा । इसीलिए उसका कहना था कि "उससे बढ़कर दुर्भाग्य किसी भारतीय के लिए कोई दूसरा हो नहीं सकता ।"[328] जोशी जी ने प्रतिमा और महीप में स्वदेशी भाषा का भी समर्थन करवाया है। जो कि गान्धी जी के अनुसार राष्ट्रीय एकता एवं उत्थान के लिए अनिवार्य था ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" ने अपने उपन्यास" चोटी की पकड़" में यह दिखाने का प्रयास किया है कि स्वदेशी से ही देश का कल्याण हो सकता है। प्रभाकर स्वदेशी के प्रचार में यही तर्क देता है। उसका कहना है "स्वदेशी का, देश-प्रेम का जितना प्रचार होगा, देशवासियों का कल्याण

326- वही, पृ० 693
327- वही, पृ० 696
328- इलाचन्द्र जोशी-निर्वासित, पृ० 18

होगा ।" विदेशी वस्तुओं के त्याग के लिए उसका तर्क यह है कि " हम उन्हीं के दिये कपड़े से अपनी लाज ढकते हैं, उन्हीं के आईने में मुँह देखते हैं, उन्ही के सेंट, पौडर, लवेण्डर, क्रीम लगाते हैं, उन्ही के जूते पहनते हैं, उन्हीं की दियासलाई से आग जलाते हैं।[329] "निरूपमा" उपन्यास में अंग्रेजी शिक्षा के बहिष्कार पर बल दिया गया है। विदेश जाकर शिक्षा प्राप्त करने वालों पर व्यंग्य करते हुए "निराला" लिखते है कि "यों योरोप विद्यार्थी जाते ही रहते हैं, या तो वहाँ जाकर बिगड़ जाते हैं या मेम लेकर, नही तो पदवी के साथ काले रंग के गोरे होकर आते है अपनी संस्कृति के पक्के दुश्मन बनकर ।"[330]

"अज्ञेय" जी ने अपने उपन्यास"शेखर : एक जीवनी" नामक उपन्यास में शेखर में स्वदेशी भावना को चित्रित किया है । उन्होंने लिखा है कि " उसने विदेशी कपड़े उतारकर रख दिये, जो दो चार मोटे देशी कपड़े उसके पास थे वही पहनने लगा ।"[331] शेखर विदेशी शिक्षा का भी बहिष्कार करता है और उसकी यह कामना है कि एक स्वाधीन भारत की स्थापना हो ।

329- सूर्यकान्त त्रिपाठी" निराला-" चोटी की पकड़,
पृ0 160

330- वही, निरूपमा, पृ0 27

331- अज्ञेय - शेखर'एक जीवनी, प्रथम भाग, पृ0 115

विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" के "संघर्ष" उपन्यास में विदेशीपन की आलोचना की गई है। उपन्यास में डिप्टी साहब के घर का वातावरण अंग्रेजी है। चपरासी उनकी पत्नी को मेम साहब कहते हैं। उनके घर की भाषा तक पर अंग्रेजियत का प्रभाव है। डिप्टी साहब की पत्नी की भाषा का एक उदाहरण इस रूप में देखा जा सकता है। वे कहती है " आइन्दा इस माफिक होगा तो फाइन किया जायेगा। इस बार माफ किया।"[332] इस अंग्रेजियत की आलोचना करते हुए शर्मा जी, जो एक पात्र हैं, कहते हैं कि " इन हिन्दुस्तानियों पर भी क्या फिटकार है। अंग्रेज बनने को मरे जा रहे हैं। अंग्रेज तो बनते नहीं, हिन्दुस्तानी भी नहीं रहते ..... दोनों दीन से जाते हैं। यह दासता का परिणाम है। गुलाम की महत्वाकांक्षा यही रहती है कि वह भी अपने मालिक जैसा बन जाय।"[333]

उपेन्द्रनाथ "अश्क" ने अपने उपन्यास " गर्म राख" में बहिष्कार का समर्थन किया है। उपन्यास में जगमोहन कहता है कि जब तक देश आजाद नहीं हो जाता तब तक नौकरी कर ब्रिटिश शासन को बनाये रखना उचित नहीं। वह एम0ए0 की पढ़ाई छोड़कर अंग्रेजी राज्य की जड़ों में मट्ठा डालना अधिक श्रेयस्कर समझता है।[334]

332- विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक"- संघर्ष, पृ0 252

333- वही, पृ0 वही

334- उपेन्द्रनाथ "अश्क"- गर्मराख, पृ0 465 इस उपन्यास में "अश्क" जी ने गान्धीवादी बहिष्कार को स्वीकार न करके क्रान्तिकारी बहिष्कार को स्वीकार किया है।

देशभक्ति तथा आत्म-बलिदान -

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने अपने उपन्यास "पुरूष और नारी" में पुरूष और नारी के प्रेम को दिखाते हुए राष्ट्रप्रेम से उसका सम्बन्ध स्थापित किया है और निष्कर्ष निकाला है कि राष्ट्रप्रेम का स्थान पहले होता है। प्रो० शिवदयाल के उत्प्रेरक भाषण का प्रभाव अजीत के मस्तिष्क पर पड़ता है। जिनका मानना था कि " आज तो देश त्रिदोष में गिरफ्तारहै - गुलामी, गरीबी और बेकारी ।"[335] अजीत गंगातट पर विश्वनाथ को साक्षी मानकर प्रतिज्ञा करता है कि जब तक देश स्वाधीन नहीं हो जायेगा वह न तो विवाह करेगा और न अन्य रोजगार, सिर्फ देश सेवा में अपने समग्र जीवन को समर्पित कर देगा।[336]

भगवती प्रसाद बाजपेयी के "निमन्त्रण" उपन्यास में पराधीन देश के लोगों का क्या कर्त्तव्य है ? इसको स्पष्ट किया गया है। गिरधारी शर्मा गान्धी जी का अनुकरण करते हुए कहते हैं . ... गुलाम और पतित देश रूढ़ियों और परम्पराओं में बंधा हीन समाज और संघर्ष - जर्जर मनुष्य को क्या इतना अवसर है कि वह मनोरंजन को खोजता फिरे ।"[337] गिरधारी शर्मा के इन विचारों का प्रभाव मालती पर पड़ता है। वह अपने आपको देश-सेवा के लिए

335- राधिकारमण प्रसाद सिंह - पुरूष और नारी, पृ० 9

336- वही, पृ० 3

337- भगवती प्रसाद बाजपेयी-निमन्त्रण, पृ० 15

...पित करती है ।

"भूले-बिसरे चित्र" में भगवती चरण वर्मा ने राष्ट्र-प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और अपनी परतन्त्रता का अनुभव दिखाया है । ज्ञान प्रकाश यूरोप से लौटकर वापस आता है। उसे यूरोप में रहते हुए अपने देश की पराधीनता का वास्तविक ज्ञान होता है । वह गंगा प्रसाद से कहता है कि " हम लोग गुलाम हैं , हम लोग असभ्य हैं, हम लोग अछूत हैं ।" ज्ञान प्रकाश इसीलिए देश को स्वाधीन बनाने का उपाय सोचता है । वह अमृतसर कांग्रेस को इस उद्देश्य प्राप्ति में संस्था मानकर उसमे सम्मिलित होना चाहता है । वह देश भक्त बैरिस्टरों और वकीलों का प्रतिनिधित्व करता है । राष्ट्रीयता की भावना बालक नवल में भी दिखाई गई है । वह ज्ञान प्रकाश से कहता है " बाबा, बड़े होकर हम भी जेल जायेंगे, आप उदास न हों । भारत माता की जय ।"[339]

हिंसक साधन -

साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए हिंसक साधनों पर प्रेमचन्दोत्तर युग के साहित्य में अधिक बल प्राप्त होता है । इसका कारण यह था कि प्रेमचन्द युग गान्धीवादी आन्दोलनों के प्रभाव का युग था और अधिकांश उपन्यासकारों ने गान्धीवाद से प्रभावित होकर अपने उपन्यासों की

338- भगवतीचरण वर्मा - भूले-बिसरे चित्र, पृ0 406

339- वही, पृ0 490

रचना की । परन्तु प्रेमचन्दयुग के अन्तिम भाग तथा प्रेमचन्दोत्तर युग में क्रान्तिवाद और समाजवाद का पर्याप्त प्रभाव हिन्दी साहित्य पर दृष्टि-गोचर होता है । जिसमें क्रान्तिकारी एवं आतंकवादी साधनों को महत्वपूर्ण माना गया है ।

मातृभूमि के प्रति प्रेम एवं आत्म बलिदान की भावना-

हिन्दी साहित्यकार यशपाल स्वयं एक क्रान्तिकारी थे । प्रारम्भ से ही उनमें मातृभूमि के प्रति प्रेम दिखाई देता है ।[340] अतः मातृभूमि के प्रति प्रेम एवं क्रान्तिवाद का प्रतिफलन उनके साहित्य में होना स्वाभाविक था । "पार्टी कामरेड" उपन्यास में कालेज की छात्रा गीता में देश की पराधीन स्थिति पर क्षोभ व्यक्त किया जाता है । वह यह सोचती है कि " भारत वर्ष इतना बड़ा देश है यहाँ की जनसंख्या इतनी अधिक है, फिर वह छोटे से देश इंग्लैंड के अधीन क्यों है ? "[341] गीता द्वारा कहे गये इन शब्दों में स्वयं क्रान्ति की एक गूँज सुनाई देती है । वह देशवासियों की क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत करना चाहती है । गीता के इन प्रयत्नों से भावरिया जैसे चरित्रहीन एवं पूँजीपति व्यक्ति का जीवन भी परिवर्तित हो जाता है और राष्ट्रीय आन्दोलन में वह अपने प्राणों की बलि दे देता है ।[342]

340- देखिये, यशपाल- सिंहावलोकन, प्रथम भाग, विप्लव कार्यालय, लोक भारती प्रकाशन, छठा संस्करण, 1978, पृ0 60

341-यशपाल - पार्टी कामरेड, पृ0 21

342- वही, पृ0 49

जब नाविक विद्रोह के समय आन्दोलन - कारियों के जुलूस पर पुलिस द्वारा गोलियाँ चलाई जाती हैं, जिसमें अनेक व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है । तब पार्टी का सेक्रेटरी गीता से कहता है कि " हमें गर्व होना चाहिए । यह आजादी के मूल्य की किस्त है ... उसके लिए रोना क्या?"[343] पार्टी का एक अन्य सदस्य ऐसे बलिदान पर गर्व अनुभव करते हुए कहता है " .... यह दिन मुबारक है, जब राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए सब भेदभाव भुलाकर हिन्दू- मुसलमान, छूत - अछूत, सरकारी -गैर सरकारी हिन्दुस्तानियों का रक्त एक साथ बहा है। आज हिन्दुस्तानी मात्र के सम्मिलित रक्त की आहुति से हमारी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के संग्राम का नया और अन्तिम अध्याय आरम्भ होता है । .... अपने सम्मिलित रक्त की नदी में विदेशी दमन को डुबो कर स्वतन्त्र हो जायेंगे ।"[344]

ब्रिटिश सरकार ने क्रान्तिकारियों को डाकू बताकर बदनाम करने का प्रयास किया था ।[345] यशपाल ने इसी आक्षेप के प्रत्युत्तर में अपने उपन्यास "दादा कामरेड" में शैल के शब्दों में कहा है, जो अपने पिता से कहती है" पिताजी वे डाकू नहीं है, वे मनुष्य समाज के लिए नये युग का सन्देश लेकर आये हैं । समाज के कल्याण के लिए ही समाज के अत्याचार को सहन कर रहे है । "[346] इसी प्रकार

343- वही, पृ० 138
344- वही, पृ० 139
345- देखिये, पूर्वोल्लिखित
346- यशपाल- दादा कामरेड, पृ० 210

नीश जो बम-कांड मे जेल से फरार होकर यशोदा के घर में जबर्दस्ती रहता है, वह उसे अपने उद्देश्य के बारे में बताता है कि "मैने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं। केवल देश की स्वतन्त्रता के लिए हम लोग यत्न कर रहे थे।"[347]

इलाचन्द्र जोशी ने अपने उपन्यास "निर्वासित" में अत्याचार के समक्ष समर्पण को राष्ट्रोद्वार के लिए हितकर नहीं बताया है। उनके अनुसार इसके लिए क्रान्ति की आवश्यकता है और जो इससे पीछे हट जाय उससे बढ़कर अभागा व्यक्ति और कोई नहीं। प्रतिमा इसी भावना से भारतीय युवकों में क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित करना चाहती है। उसका कहना था कि "जिस राष्ट्र के युवकों में हिंसात्मक अत्याचारों के विरूद्ध प्रतिहिंसा की भावना नहीं जगती, वह नपुंसकों और निकम्मों, शूकरों और श्वानों का राष्ट्र है। ऐसे निकम्मे पुत्रों की माताओं को चाहिए कि छाती फाड़कर मर जायें, ऐसे नपुंसक पतियों की पत्नियों को चाहिए कि वे विष खाकर या पानी में डूबकर अपना खात्मा कर डालें।"[348] उसका यह मत है कि यदि हम अहिंसक आन्दोलन चलाते हैं तो अंग्रेज गोलियों से मार डालते हैं, हमारा शोषण करते हैं, हमें निर्धनता में डुबो देते हैं। इन सभी बातों में हमें मृत्यु ही दिखाई देती है। अतः यह अधिक श्रेयस्कर होगा कि ऐसे कीड़े-मकोड़ों

347- वही, पृ0 11

348- इलाचन्द्र जोशी- निर्वासित, पृ0 360 तथा 383

की मृत्यु मरने से अच्छा हम स्वाभिमानी बन के मरें, स्वयं को भारतमाता की बलिवेदी पर सम्मान के साथ बलिदान करें जिससे भारत माता को अपने स्वाभिमानी पुत्रों पर गर्व करने का अवसर प्राप्त हो सके।[349]

जोशी जी ने "मुक्तिपथ" नामक उपन्यास में क्रान्तिकारियों में क्रान्ति की भावना के उदय को दिखाया है। लाला लाजपतराय की मृत्यु से क्रान्तिकारी युवकों में बदले की भावना प्रबल हो उठी थी। उपन्यास के राजीव नामक पात्र में ऐसी भावना को दिखाया गया है। उसके सम्बन्ध में जोशी जी ने लिखा है कि " जब से उसने सुना कि लाला लाजपतराय की मृत्यु में निरंकुश शासनाधिकारियों का कितना बड़ा हाथ है तब से वह और अधिक विचलित हो उठा।"[350] "जहाज का पंछी" नामक उपन्यास में भी राष्ट्रीय भावना के दर्शन होते हैं। उपन्यास का नायक अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन भारतवासियों की हीन दशा से उद्वेलित हो उठता है। वह एक स्वाभिमानी युवक है। अतः अपने देश के गौरव को पुनः स्थापित करना चाहता है। वह जहाज के एक अंग्रेज कर्मचारी को डांटते हुए कहता है कि तुम लोग हम प्राच्य देशवासियों को तिनकों या कीड़ों की तरह देखने लगे हो, एक दिन तुम्हें पछताना होगा।[351]

349- वही, पृ० 383
350 इलाचन्द्र जोशी, -मुक्तिपथ, इलाहाबाद, 1951, पृ० 22
351- वही, जहाज का पंछी, पृ० 69

"अज्ञेय" भी एक क्रान्तिकारी थे । उन्होंने राष्ट्रोद्धार के लिए क्रान्ति को ही श्रेष्ठ साधन स्वीकार किया है । "शेखर; एक जीवनी" में शेखर प्रारम्भ में गान्धीवादी था। लेकिन गान्धीवादी आन्दोलन को वह स्वाधीनता प्राप्ति के लिए उचित नहीं मानता । परिणामस्वरूप वह क्रान्तिकारी बन जाता है और यह कामना करता है कि उसके देश के युवकों में भी स्वाधीनता की भावना उत्पन्न हो जिससे राष्ट्र का कल्याण हो सके । बीस वर्ष की अवस्था में जब वह जेल जाता है तो सोचता है कि " क्यों नहीं अब से कहीं पहले स्वाधीनता उसके लिए भूख, प्यास और श्वासगति की तरह एक अत्यन्त आवश्यक जीवन-मरण की सी महत्वपूर्ण वस्तु बनी ......।"[352] वह अपने देश की पराधीन स्थिति से व्याकुल है । एक अन्य पात्र विद्याभूषण में भी राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना दिखाई देती है। वह जेल में शेखर से मिलता है । वह शेखर से कहता है कि "वन्देमातरम् का नारा लगाने पर उसे बेंत लगे थे ।"[353]

सरकारी दमन के माध्यम से क्रान्ति एवं राष्ट्रप्रेम की भावना का हर सम्भव प्रयास अंग्रेज अधिकारियों द्वारा किया गया था । लेकिन राष्ट्रप्रेम की ज्वाला इससे शान्त नहीं हो जाती। विद्याभूषण देश के युवकों में राष्ट्रप्रेम को जागृत करना चाहता है । जिससे राष्ट्र के अपमान का बदला लिया जा सके तथा उसे स्वाधीन बनाया जा सके । उसके अनुसार, "अगर अपने राष्ट्र का

352- "अज्ञेय" -शेखर: एक जीवनी, दूसरा भाग, पृ0 50

353- वही, पृ0 52

गया न े ा है तो उस पर शेष राष्ट्र के और समाज के प्रति कर्तव्य होता है ... शेष हमें देश को देना ही है। नही तो हमारे भीतर कहीं प्राणों की जगह कचरा भरा हुआ है।"[354]

राहुल सांस्कृत्यायन के "जीने के लिए" उपन्यास में मोहनलाल कांग्रेसी गान्धीवादी आन्दोलन को निरर्थक बताता हुआ कहता है कि अब भाषण मंच की जगह फांसी के तख्तों ने ले ली है।"[355] इस प्रकार गान्धीवादी आत्म बलिदान की भावना से क्रान्तिकारी आत्म बलिदान की भावना मे अन्तर स्थापित किया गया है। मोहन लाल को खुफिया विभाग के अफसर मि० नेविल्स को मारने के अभियोग में फांसी की सजा हो जाती है। जब उसे अपनी सफाई में कुछ कहने का मौका दिया जाता है तब वह भगतसिंह की तरह बड़े स्वाभिमानपूर्ण ढंग से कहता है कि " हर देश को अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए चाहे जो भी रास्ता स्वीकार करने का अधिकार है। मेरी तरह वे हजारों नवयुवक देश की आजादी के लिए बेकरार हैं। हमारे लिए इससे अच्छी बात नहीं हो सकती कि अपनी मातृभूमि के लिए मरें।[356] रघुवीर शरण मित्र के "बलिदान" उपन्यास के एक पात्र यूसुफ में निर्भीकता एवं मातृभूमि के लिए बलिदान होने की भावना विद्यमान है। जब मजिस्ट्रेट उससे पूछता है कि क्या चाहते थे, वह उत्तर देता है - "हमारी

354- वही, पृ0 54

355- राहुल सास्कृत्यायन- जीने के लिए, पृ0 52

356- वही, पृ0 66

सरकार का नाश। "[357] इस प्रकार का उत्तर खुदीराम बोस ने फांसी के तख्ते पर चढ़कर कहा था।

भगवती चरण वर्मा के "टेढ़े-मेढ़े रास्ते" उपन्यास में प्रभानाथ एक शिक्षित व्यक्ति है जो प्रारम्भ में क्रान्तिकारी नहीं है। लेकिन जब वह कलकत्ते जाता है तो उसकी भेंट वीणा मुकर्जी से होती है जो एक क्रान्तिकारी दल की सदस्या है। प्रभानाथ उसको क्रान्तिकारी समझ कर पुलिस के हवाले करना चाहता है, तो वीणा उसे धिक्कारती है कि वह एक गुलाम देश में रहकर कायरता का जीवन व्यतीत करना चाहता है। उसके अनुसार, "हाँ, हर एक शान्तिप्रिय राजभक्त कायर गुलाम का यह कर्त्तव्य है कि वह विदेशी सरकार की सहायता करे।"[358] वीणा के ये शब्द प्रभानाथ को क्रान्तिकारी बना देते हैं।

अनन्तगोपाल शेवड़े के "ज्वालामुखी" उपन्यास में अभयकुमार से जब जज पूछता है कि "इस आन्दोलन में हिस्सा लेने में तुम्हारा क्या ध्येय था?" "अपने देश की आजादी" "आजादी का मतलब?" विदेशी शासन से पूर्णत: मुक्ति।" "यानि तुम अंग्रेजी शासन हटाना चाहते हो।" "अवश्य" "किसी भी मार्ग से?" "स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए कोई भी मार्ग अख्तियार किया जाय उचित है।" "हिंसा का भी?" "जी हाँ।"[359] और जब उसे प्राण

357- रघुवीरशरण मित्र - बलिदान, पृ0 243
358- भगवतीचरण वर्मा - टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ0 62
359 अनन्त गोपाल शेवड़े - ज्वालामुखी, पृ0 240-41

दण्ड दिया जाता है तो उसके लिए वह वायसराय से दया की भीख मांगने के लिए तैयार नहीं होता है ।[360] ऐसा ही भगतसिंह का भी विचार था । इसीलिए जब उसके पिता ने अपने पुत्र की प्राण भिक्षा के लिए अंग्रेज गवर्नर के पास एक प्रार्थना पत्र भेजा था तो उससे भगतसिंह को बहुत दुख हुआ था । उसने कहा कि " पिता ने ही मेरी पीठ में छुरी भोंक दी है ।"[361] वह खुदीराम बोस की भाँति बड़ी निर्भीकता से जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के द्वारा उसकी अन्तिम इच्छा पूछने पर कहता है " अन्तिम इच्छा ? वह और क्या हो सकती है, सिवा इसके कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अन्त हो और मेरा देश स्वतन्त्र हो ।"[362]

रामेश्वर शुक्ल "अंचल" के "नई इमारत" उपन्यास में क्रान्तिकारी भावना का अंकन हुआ है । वास्तव में ब्रिटिश सरकार का अत्याचार भारतवासियों में आक्रोश एवं विवशता की भावना को जन्म दे रहा था । वे स्वयं को ऐसे अत्याचार से मुक्त करने के अभिलाषी थे । राष्ट्र-प्रेम की भावना बल पकड़ रही थी । एक चरित्र बलराज कहता है कि " मुल्क की आजादी का सवाल है, बाजी ! कब तक हम गुलाम रहेंगे ।"[363] वह इस

360- वही, पृ0 286
361 यशपाल- सिंहावलोकन, लखनऊ, 1955, भाग 3, पृ0 82
362- अनन्त गोपाल शेवड़े - ज्वालामुखी, पृ0 298
363- रामेश्वर शुक्ल "अंचल"- नई इमारत, पृ0 154

गुलामी को तुरन्त दूर करना चाहता है । उपन्यास का एक अन्य पात्र [illegible], क्रान्तिकारियों द्वारा बलिदान किये जाने पर कहता है "आज ये [illegible] दूसरे के लिए नहीं, पराधीन देश के लिए हैं जिसकी खोई स्वतन्त्रता वापस लाने के लिए इन देवताओं ने वीरगति पाई है ।"[364] अतः उसका एक ही नारा था कि " हिन्दुस्तान आजाद हो, इन्कलाब जिन्दाबाद । खून का बदला खून से लेंगे ।"[365]

गुरुदत्त के "पथिक" उपन्यास में सलीमा के अन्दर राष्ट्रप्रेम की भावना को दिखाया गया है। वह एक पराधीन देश में रहना पसन्द नहीं करती है । वह ऐसे व्यक्ति से विवाह भी नहीं करना चाहती जो देश को स्वाधीन बनाने की भावना से युक्त न हो ।[366] सलीमा के इस व्यवहार से उसका बाप प्रसन्न नही है । वह उससे पूछता है कि आखिर उसे किस बात की कमी है जो वह अपनी जान पर खेलकर इधर-उधर भटकती रहती है। सलीमा उत्तर देती है " कमी ? सबसे बड़ी और अव्वल दर्जे की बात मुझे मिल नही रही है । मैं एक आजाद कौम की लड़की नहीं हूँ । मैं उस कौम में पैदा हुई हूं जो दूसरो की गुलाम है । मैं किसी आजाद मुल्क के बाशिन्दे से निधड़क बात नहीं कर सकती मेरा सिर शरम से झुक जाता है। आँखें ऊपर नहीं उठ सकतीं।[367]

364- वही, पृ0 317

365 वही, पृ0 वही ।

366- गुरुदत्त-पथिक, पृ0 242

367- वही, पृ0 259

प्रतिमा की स्वाधीनता की भावना इतनी अधिक बलवती है कि वह हर बात में भारत को स्वाधीन बनाने का ही सपना देखती है। जब पथिक उससे कहता है कि " मैंने एक योजना बनाई है। तो वह तुरन्त पूछ बैठती है - "हिन्दुस्तान को आजाद करने की ? "[368]

उपेन्द्रनाथ "अश्क" के 'गर्मराख" उपन्यास में जगमोहन कहता है कि जब तक देश आजाद नहीं हो जाता तब तक नौकरी कर ब्रिटिश शासन को बनाये रखना उचित नहीं।[369]

खुला विद्रोह एवं क्रान्तिकारी संगठन -

क्रान्तिकारियों का यह मानना था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए गान्धीवादी अहिंसक आन्दोलन सफल नहीं हो सकते हैं, अतः आवश्यकता इस बात की है कि खुला विद्रोह किया जाय जिससे ब्रिटिश साम्राज्य पर सीधी चोट की जा सके। इलाचन्द्र जोशी के "निर्वासित" उपन्यास की स्त्री पात्र क्रान्तिकारिणी प्रतिमा इसी आशय को व्यक्त करती हुई कहती है कि "अभी तक इस गुलाम देश के निहत्थे अहिंसकों को साधारण जुलूस निकालने पर मक्खियों की तरह गोलियों से

368- वही, पृ0 46

369- उपेन्द्रनाथ "अश्क"- गर्मराख, पृ0 465

मारा जा रहा है, अभी तक विदेशी सैनिकों और स्वदेशी पुलिस कर्मचारियों द्वारा उनके घर बार लूटे जा रहे हैं, उनकी स्त्रियों की इज्जत मिट्टी में मिलाई जा रही है और उन्हें कौवों और कुत्तों की मौत मारने के लिए जेलों की कालकोठरियों में ठूँसा जा रहा है। विश्वव्यापी स्वतन्त्रता के नारों के इस युग में यह सब काण्ड हुए और हो रहे हैं, इन सब अमानवीय अत्याचारों का प्रतिकार अहिंसात्मक सत्याग्रह कर पाये हैं? -[370] प्रतिमा का अहिंसात्मक आन्दोलनों पर सन्देह इस बात को स्पष्ट करता है कि वह क्रान्ति के मार्ग को अपनाने के पक्ष में है। क्रान्तिकारी गान्धीवादी आन्दोलनों में विश्वास नहीं करते थे।[371] इसका स्पष्ट रूप तब प्राप्त होता है जबकि महीप के घर में गुप्त दल की सभा होती है। महीप उसमें अहिंसात्मक आन्दोलन पर कुछ कहना चाहता है। परन्तु अन्य लोग उसे "शेम-शेम" कहकर बैठा देने का प्रयास करते है।[372] क्योंकि उनके अनुसार अत्याचार के समक्ष समर्पण करने से श्रेयस्कर मातृभूमि की बलिवेदी पर स्वाभिमानी बनकर मर जायें।[373] रामेश्वर शुक्ल

370- इलाचन्द्र जोशी -निर्वासित, पृ0 360
371- यशपाल-सिंहावलोकन, प्रथम भाग पृ0 14
372- इलाचन्द्र जोशी - निर्वासित, पृ0 358
373- देखिये, पूर्वोल्लिखित

"अंचल" के "नई इमारत" उपन्यास की एक स्त्री पात्र प्रतिमा को भी ब्रिटिश अत्याचार से घृणा है । अपने देशवासियों को ऐसे अत्याचार का शिकार होते देख उसका हृदय दुःखित होता है । वह देशवासियों के ऐसे बलिदानों का बदला लेने का संकल्प करती है । उसके अनुसार, "बहुत दिन हमने आश्वासनो से पेट भरा अब दुश्मन का खून हमें चाहिए ।"[374] जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास "कल्याणी" में उन लोगों के विचारों का खण्डन करने का प्रयास किया है जो क्रान्तिकारी आन्दोलन को राष्ट्रीय मुक्ति के लिए अनावश्यक कहते थे । उनके मत में "क्रान्तिकारी आन्दोलन राष्ट्रीय जागरण में कभी अनावश्यक नहीं है । — - उसकी सतत् आवश्यकता है । असल में वह युद्ध का अग्रिम मोर्चा है ।"[375]

क्रान्ति के लिए साधनों की आवश्यकता थी । इन साधनों पर साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों में प्रकाश डाला है । यशपाल ने अपने "देश द्रोही" उपन्यास में क्रान्तिकारियों की गतिविधियों का वर्णन किया है । क्रान्तिकारियों को ब्रिटिश सरकार का मुकाबला करने के लिए अच्छे अस्त्र-शस्त्र बनाने की आवश्यकता थी । इसके लिए उन्हें गुप्त कारखानो की स्थापना एवं छद्मवेश-भूषा में रहकर अपने कार्यों को करना पड़ता था । शिवनाथ हाँडी में घी के बहाने बम छिपाकर ले जाता है ।[376] परन्तु

374- रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - नई इमारत, पृ0 158
375- जैनेन्द्र - कल्याणी, पृ0 95-96
376- यशपाल - देशद्रोही, पृ0 31

अनुभव की कमी के कारण पकड़ा जाता है ।[377] इलाचन्द्र जोशी के "मुक्तिपथ" उपन्यास में राजीव में क्रान्तिकारी भावना दिखाई गई है । "उसने पिस्तौल चलाना, पुलिस को छलना, देश के लिए बलि होना, कारावास की कठोर परीक्षा में उत्तीर्ण होना, यह सब सीखा था ।[378] राहुल सांस्कृत्यायन के उपन्यास "जीने के लिए" में अस्त्र-शस्त्र के द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति का समर्थन किया गया है ।[379] अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग एवं हिंसा को औचित्य प्रदान करते हुए मोहनलाल अपने दल के सदस्य प्रमोद से कहता है कि "शस्त्र की निर्बलता से जातियाँ परतन्त्र होती हैं और शस्त्र की ही शक्ति से खोई हुई आजादी को फिर से प्राप्त करती है"।[380] भगवतीचरण वर्मा के "टेढ़े-मेढ़े रास्ते" उपन्यास में क्रान्तिकारियों द्वारा अस्त्र-शस्त्र की आवश्यकता को पूरा करने का वर्णन प्राप्त होता है ।[381] इसी उपन्यास में क्रान्तिकारियों द्वारा क्रान्ति का प्रचार करने एवं अपनी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए भेष बदलकर इधर-उधर जाने का वर्णन है । प्रभानाथ भी मनमोहन के रूप में भेष बदलकर देश के अनेक भागों में घूमकर क्रान्ति की आग फैलाना चाहता है । एक बार जब वह डकैती के मामले में डाक्टर के यहाँ गिरफ्तार हो जाता है तब रामनाथ

377- वही, पृ0 32

378- इलाचन्द्र जोशी-मुक्तिपथ, पृ0 53

379- राहुल सांस्कृत्यायन - जीने के लिए, पृ0 62 "अज्ञेय" के "शेखर : एक जीवनी" उपन्यास में भी ऐसा वर्णन प्राप्त होता है ।

380- वही, पृ0 44

381- भगवती चरण वर्मा- टेढ़े -मेढ़े रास्ते, पृ0 210

उसे छुड़ाने के प्रयास में विश्वम्भर दयाल के यहाँ जाता है । परन्तु वह कहता है - " वह जुर्म है, ब्रिटिश सरकार को उलटने की कोशिश करना।[382] बाद में ...नाथ को मुखबिर बनाने का प्रयास किया जाता है । ऐसे ... में वीणा दल के हित में उसे मार देना उचित समझती है, वह उसे पोटैशियम साइनाइड दे देती है और वह उसे खाकर मर जाता है । इसके बाद वह विश्वम्भर दयाल को भी गोली मार देती है क्योंकि उसी ने उसे मुखबिर बनाया था तथा अन्त में पकड़े जाने के भय से स्वयं को गोली मार लेती है ।[383] गुरुदत्त के "पथिक" उपन्यास में महाविद्यालयों के छात्रों में क्रान्ति की आग प्रज्वलित करने, देश भर में प्रचारक दल, क्रान्तिकारी साहित्य इत्यादि के माध्यम से क्रान्ति के प्रचार का प्रयास दिखाई देता है ।

क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध क्रान्ति करने के लिए अनेक क्रान्तिकारी गुप्त संगठनों का निर्माण किया था । इलाचन्द्र जोशी के "निर्वासित" उपन्यास में प्रतिमा गुप्त संगठनों के सम्बन्ध में कहती है " हिंसात्मक क्रान्ति के गुप्त संगठन के सिवा अपमानित राष्ट्र का बदला लेने का और कोई दूसरा रास्ता ही मुझे नहीं सूझने लगा ।"[384] क्रान्तिकारी संगठन का वर्णन "शेष-अशेष" उपन्यास में भी

382- वही, पृ0 404
383- वही, पृ0 489
384- इलाचन्द्र जोशी - निर्वासित, पृ0 385

ज्ञात होता है । शिवानन्द, यशोदा से अरुणानन्द की बहन के बारे में पूछता है कि "क्या वह भी सन्यासिनी है ?" " नहीं, उसका भाई क्रान्तिकारी दल में है ।" " यह क्या चीज है ?" " देशसेवकों का एक दल जो अंग्रेजों को देश से भगाना चाहता है । "[385] "डॉ० शैफाली" उपन्यास में भी ऐसा ही विचार प्राप्त होता है । इसमें एक महिला क्रान्तिकारी दल में अपने सम्मिलित होने का उद्देश्य बताते हुए कहती है, "दीदी मैं तुम से सच कहती हूँ कि मैं जिस दल में शामिल होने जा रही हूँ वह मेरे उद्देश्य के सबसे निकट है । " "क्या" ?" क्रान्तिकारी दल के प्रयत्नों के द्वारा देश को स्वतन्त्र करना । "[386] रघुवीर शरण मित्र के "बलिदान" उपन्यास में शेखर गुप्त क्रान्तिकारी संगठनों के माध्यम से क्रान्ति को आगे बढ़ाना चाहता है। कलकत्ता, कानपुर, मेरठ, दिल्ली, प्रयाग इत्यादि स्थानों में "आजाद सभा" के गुप्त कार्यालय स्थापित किये जाते हैं । [387] शेखर सुखबीर से भी इस सम्बन्ध में पूछता है कि " कहो सुखबीर ..... आजाद सभा का संगठन कैसा है ? अब हमें हर प्रान्त में, हर नगर में सभा के कार्यालय पूरी शक्ति से स्थापित करने हैं । "[388] राहुल सांस्कृत्यायन के उपन्यास "जीने के लिए " में उपन्यास का मोहन लाल खन्ना जहाँ एक ओर सुभाषचन्द्र बोस से सादृश्य रखता है, वहीं उसका-चरित्र

385- उदयशंकर भट्ट- शेष -अशेष, पृ० 356
386- वही, डॉ० शैफाली, {दिल्ली 1960}, पृ० 217
387- रघुवीर शरण मित्र- बलिदान, पृ० 8
388- वही, पृ० 98

क्रान्तिकारी भगतसिंह के भी निकट है। वह कलकत्ते में एक हितैषी पुस्तकालय स्थापित करता है । जो क्रान्तिकारियों के गुप्त संगठन का केन्द्र होता था । क्रान्तिकारी देवराज इसी पुस्तकालय का चपरासी था । रघुवीर शरण मित्र के"बलिदान"उपन्यास में नलिनी का चरित्र भी एक क्रान्तिकारिणी के रूप में दिखाया गया है । वह रागिनी से कहती है "एक ऐसी संस्था की भी जरूरत है जो वैज्ञानिक अविष्कारों द्वारा जबरदस्त क्रान्ति कर सके । अंग्रेजों के पंजे से छूटने के लिए विज्ञान एवं गुरिल्ला युद्ध का सहारा लेना पड़ेगा । "[389] भगवतीचरण वर्मा के "टेढ़े-मेढ़े रास्ते " उपन्यास में प्रभानाथ वीणा की बातों से प्रभावित होकर क्रान्तिकारी बन जाता है। वह जब कलकत्ते से लौटता है तो क्रान्ति की योजना बनाता है । अपनी इस योजना के अन्तर्गत वह"कौशल्या बालिका विद्यालय " के प्रधानाध्यापिका पद पर नियुक्ति के लिए वीणा को बुलाता है ।[390]

क्रान्तिकारियों के द्वारा विदेशों में भी क्रान्तिकारी संगठन बनाये जाते थे । रघुवीर शरण मित्र के"बलिदान"उपन्यास का शेखर भी रूस में जाकर संगठन का निर्माण करता है ।[391] क्रान्तिकारियों के द्वारा विदेशों से अस्त्र-शस्त्र भी मंगाये जाते थे । इसका वर्णन भगवतीचरण वर्मा के "टेढ़े-मेढ़े रास्ते " उपन्यास में प्राप्त होता है ।[392]

389- रघुवीर शरण मित्र- बलिदान, पृ0 24
390- भगवतीचरण वर्मा- टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ0 106
391- रघुवीर शरण मित्र- बलिदान, पृ0 25
392- भगवतीचरण वर्मा- टेढ़े-मेढ़े रास्ते , पृ0 210

क्रान्तिकारियों द्वारा जो संगठन बनाये जाते थे उसमें कठोर अनुशासन का पालन किया जाता है। दल के प्रत्येक सदस्य को दल के प्रति वफादार रहना पड़ता था। दल के प्रति विश्वासघात का तात्पर्य था मृत्यु। यशपाल, जो क्रान्तिकारी थे, के दल की एक महिला थी, प्रकाशवती। यशपाल और "आजाद" में इस महिला को लेकर मतभेद उत्पन्न हो गया। जिसमें "आजाद" द्वारा यशपाल के चरित्र पर सन्देह किया जाने लगा और यह सम्भावना व्यक्त की गई कि यशपाल विलासिता के मोह में मुखबिर बन सकता था। अतः उसे गोली से उड़ा देने का फैसला किया।[393] इसी प्रकार का वर्णन "दादा कामरेड" उपन्यास में मिलता है "लिफाफे के भीतर कागज पर अंग्रेजी के टाइप में एक पंक्ति थी "दादा एण्ड बी० एम० वान्ट टु शूट हरीश। सेव हिम --- ए फ्रेन्ड आफ दि पार्टी।"[394] दल की गुप्त बातों को प्रकट करने वालों के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त दल के सदस्य के पकड़े जाने पर दल का भेद प्रकट होने का भय होने पर वह आत्महत्या कर लेता था अथवा उसे मार दिया जाता था। ऐसा ही वर्णन भगवती चरण वर्मा के "टेढ़े-मेढ़े रास्ते" उपन्यास में प्रभानाथ के पकड़े जाने और मुखबिर बनने के कारण वीणा द्वारा उसे पोटैशियम साइनाइड देने तथा खुद अपने आपको गोली मारने में प्राप्त होता है।[395]

393- देखिये, यशपाल- सिंहावलोकन, भाग 2, पृ० 222
394- यशपाल - दादा कामरेड, पृ० 95
395- भगवतीचरण वर्मा - टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ० 489

क्रान्तिकारियों के द्वारा जनता में ब्रिटिश सरकार के विरोध में भावना जागृत करने के लिए क्रान्तिकारी साहित्य को भी महत्वपूर्ण साधन माना गया था । इसका वर्णन उदयशंकर भट्ट के "शेष -अशेष " उपन्यास में प्राप्त होता है । उपन्यास में हरिशरणानन्द कहते हैं कि " अब हम लोगों का उद्देश्य है कि इस प्रकार का साहित्य तैयार किया जाय कि अंग्रेजों के प्रति इतनी घृणा फैला दी जाय कि सारा देश क्रोध और घृणा से उबल पड़े । "[396] गुरूदत्त के"पथिक"उपन्यास में भी क्रान्तिकारी साहित्य का उल्लेख हुआ है ।

आतंकवाद तथा राजनैतिक डकैतियाँ -

भारतीय क्रान्तिकारियों ने आतंकवादी उपायों से ब्रिटिश अधिकारियों में भय उत्पन्न करने का प्रयास किया था । भगत सिंह, आजाद, अशफाक उल्ला इत्यादि क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश सरकार को आतंकित करने का प्रयास किया था । राहुल सांस्कृत्यायन ने अपने उपन्यास "जीने के लिए " में इस आतंकवाद का वर्णन किया है । मोहन लाल के द्वारा खुफिया विभाग के अफसर मि0 नेविल्स की हत्या कर दी जाती है ।[397] भगवती चरण वर्मा के उपन्यास"टेढ़े-मेढ़े रास्ते " में वीणा के द्वारा विश्वम्भर दयाल को गोली मारा जाना आतंकवाद का ही

396- उदयशंकर भट्ट - शेष- अशेष ,पृ0173

397- राहुल सांस्कृत्यायन - जीने के लिए, पृ0 64

उदाहरण है ।[398] " भूले - बिसरे चित्र" में भी वर्मा जी ने आतंकवादी गतिविधियों का वर्णन किया है । उन्होंने वायसराय की गाड़ी के नीचे बम फटने की घटना का चित्रण किया है । " इलाहाबाद में सनसनी फैल गई .... कि सुबह के समय जब वायसराय दिल्ली वापस आ रहे थे, पुराने किले के पास उनकी स्पेशल ट्रेन के नीचे एक बम फटा । वायसराय बाल-बाल बच गये । लेकिन स्पेशल ट्रेन के खाने वाले हिस्से को नुकसान हुआ और एक नौकर घायल हो गया। "[399] अनन्तगोपाल शेवड़े के "ज्वालामुखी " उपन्यास में अभयकुमार को एक आतंकवादी के रूप में चित्रित किया गया है । रघुवीर शरण मित्र के "बलिदान" उपन्यास में शेखर मुख्य-मुख्य आतंकवादियों की सूची तैयार करता है और कहता है " खुदीराम बोस, वीरसिंह, अशफाक उल्ला खाँ ... को तार देकर हवाई जहाज से बनारस बुलाओ । "[400]

क्रान्तिकारियों को अस्त्र-शस्त्र एवं क्रान्तिकारी गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए धन की आवश्यकता होती थी । वे जनता से माँग नहीं सकते थे । अतः उनके द्वारा राजनैतिक डकैतियाँ डाली जाती थीं, जिनसे धन की पूर्ति हो सके । इलाचन्द्र जोशी के "मुक्तिपथ" उपन्यास में राजीव शस्त्रास्त्रों के संग्रह के लिए डकैतियाँ डालने की योजना

398- भगवतीचरण वर्मा- टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ0 489
399- वही, भूले -बिसरे चित्र, पृ0 800
400- रघुवीर शरण मित्र- बलिदान, पृ0 99

बनाता है।

आजाद हिन्द फौज : सुभाष चन्द्र बोस और विदेशी सहायता -

20वीं शताब्दी के तीसरे दशक के अन्तिम भाग में कांग्रेस दो दलों में विभक्त हो गई थी। एक तो दक्षिण पंथी थे जो गान्धी जी के साथ थे तथा दूसरे वामपंथी जो सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में संगठित हुए थे। सुभाषचन्द्र बोस ने गान्धीवादी नीति को स्वाधीनता के लिए अनावश्यक समझा,[401] परन्तु वे आंतकवादियों की नीति एवं कार्यक्रम में विश्वास नहीं रखते थे। उनका यह मानना था कि छिटपुट क्रान्ति से कोई लाभ मिलने वाला नहीं, आवश्यकता एक संगठित क्रान्ति की है, जो जन-जन में राष्ट्रीय चेतना के विकास से सम्भव हो सकती है। सुभाषचन्द्र बोस के इन्हीं विचारों को राहुल सांस्कृत्यायन ने अपने उपन्यास "जीने के लिए" में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। उपन्यास का मोहन कहता है "देश की आजादी कौन नहीं पसन्द करेगा, लेकिन एक दो पिस्तौल या बम चला, लुक-छिपकर किसी को मार देना.. मेरी दृष्टि में उतना लाभदायक नहीं है।"[402] क्रान्ति के लिए सुभाषचन्द्र बोस की भाँति वह सैनिक विधान की शिक्षा को महत्वपूर्ण मानता है।

401- सुभाष चन्द्र बोस- दि इण्डियन स्ट्रगल 1935-1942, चक्रवर्ती चटर्जी एण्ड कम्पनी, कलकत्ता 1952, पृ0 414, तथा 483

402- राहुल सांस्कृत्यायन - जीने के लिए, पृ0 54

सुभाष चन्द्र बोस ने इसीलिए " फारवर्ड ब्लाक " की स्थापना की थी । वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक सेना का निर्माण करने में लग गये, जो " आजाद हिन्द फौज " के नाम से प्रख्यात हुई । सुभाषचन्द्र बोस का यह मानना था कि स्वतन्त्रता के लिए युद्ध अवश्यंभावी है अत: सैनिक विधान की शिक्षा का बहुत महत्व है । इसी बात को मोहनलाल भी स्वीकार करते हुए कहता है " .... सैनिक विधान की शिक्षा की बड़ी जरूरत है । अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ हमें स्वतन्त्रता के लिए युद्ध छेड़ने का अवसर देंगी । लेकिन उससे तब तक हम फायदा न उठा सकेंगे । जब तक कि हममें सेना संचालन की योग्यता न हो ।[403] देवराज भी फौज में इसीलिए भर्ती होता है ।[404]

सुभाष चन्द्र बोस ने जनता को खुली चुनौती दी थी कि "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा । " जब अंग्रेज सरकार ने भयभीत होकर उनको नजरबन्द कर लिया तो वे जेल से भाग निकले और रूस होते हुए जर्मनी पहुँच गये । इस घटना का चित्रण रघुवीर शरण मित्र जी ने अपने उपन्यास " बलिदान" में किया है । नलिन अखबार में जब शेखर की खबर देखता है तो खुशी से उछलकर रागिनी को बताता है "रागिनी शेखर रूस में है । रागिनी दौड़ी हुई आई और जोर-जोर से

403- वही, पृ0 53

404- देखिये वही, पृ0 147

अखबार को सुर्खी पढ़ने लगी - होनहार क्रान्तिकारी शेखर रूस में ।
सुर्खी के नीचे शेखर की तस्वीर थी , जिसके नीचे लिखा था नेपाल जेल
से गायब होकर शेखर रूस में प्रकट । फौजी दस्तों से भारत को मुक्त कराने
की तैयारी में । "405

आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर दिल्ली में चलाये गये
मुकदमे का भी वर्णन मित्र जी ने किया है । लाल किले के दरवाजे पर
भारी भीड़ को चीरता हुआ नलिन आगे निकल कर खड़ा हो गया । आज
"आजाद हिन्द फौज " का मुकदमा है । बड़े-बड़े वकीलों और नेताओं
की कारें शान से दुर्ग में जा रही हैं । .... मुकदमें की पैरवी करने के
लिए नेहरू और भूलाभाई देसाई भी चोगा पहनकर किले में घुसे । जयघोष
से दुर्ग का दरवाजा गूँजने लगा । " सेनानी सुभाष की जय "पंडित नेहरू
की जय" "आजाद हिन्द फौज के वीरों की जय " .... मुकदमे की बहस
खत्म हुई । भूलाभाई देसाई ने जबर्दस्त दलील रखी कि हर गुलाम को स्वतन्त्रता
के लिए लड़ने का अधिकार है । "406

प्रताप नारायण श्रीवास्तव ने भी उपन्यास "विसर्जन" मे
सुभाष चन्द्र बोस और आजाद हिन्द फौज का चित्रण किया है। कमाण्डर
सैनिकों को प्रेरणा एवं उत्साह प्रदान करते हुए कहता है कि "मेरे बहादुर

405- रघुवीर शरण मित्र- बलिदान, पृ0 22

406- वही, पृ0 61

जवानों । तुम्हारी सेना का नाम है " आजादी सेना " । तुमको झण्डे के नीचे एकत्रित करने वाला तुम्हारा उग्र प्रेम है । तुमको जीवन उत्सर्ग करने की प्रेरणा देने वाला तुम्हारा कर्त्तव्य ज्ञान है ...... तुम इतिहास बनाने जा रहे हो ।"[407]

सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द सेना भारत की ओर बढ़ रही थी । उनका नारा था "दिल्ली चलो"।[408] "विसर्जन" में प्रतापनारायण श्रीवास्तव जी ने इसका भी वर्णन किया है । कमाण्डर कहता है कि तुम्हारा नारा है "दिल्ली चलो " और तुम्हारा ध्येय है भारत को आजाद करो । अत: सैनिक पूरे उत्साह के साथ गगनभेदी स्वर में नारा देते हैं कि दिल्ली चलो, भारत को आजाद करो ।[409]

विदेशी सहायता के सम्बन्ध में भगवतीचरण वर्मा के "टेढ़े-मेढ़े रास्ते " उपन्यास में वर्णन प्राप्त होता है । उपन्यास में क्रान्तिकारी दल का सरदार कहता है कि " हमें जर्मनी और जापान से शस्त्रास्त्र मंगाने हैं ...।"[410] उपरोक्त वर्णन में भी सुभाष चन्द्र बोस द्वारा विदेशी सहायता प्राप्त कर भारत को स्वतन्त्र कराने के प्रयास की झलक मिलती है ।

407- प्रतापनारायण श्रीवास्तव- विसर्जन, पृ0 279

408- ताराचन्द्र -हिस्ट्री ऑफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, खण्ड 4, पृ0 418

409- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विसर्जन, पृ0 281-82

410- भगवतीचरण वर्मा - टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पृ0 210

भारत छोड़ो आन्दोलन -

1942 ई0 का "भारत छोड़ो आन्दोलन वास्तव में स्वतन्त्रता का अन्तिम आन्दोलन था । अभी तक ब्रिटिश सरकार ने अपनी दोहरी नीतियों से भारतवासियों को खूब मूर्ख बनाया था । कांग्रेस का प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों में बहुमत होने पर भी बिना कांग्रेस और अन्य वर्गों से सलाह लिए भारत को युद्ध में सम्मिलित कर लिया गया था ।[411] क्रिप्स योजना की असफलता ने भारतवासियों की आशा पर पानी फेर दिया। राहुल सांस्कृत्यायन ने क्रिप्स योजना की चालाकी को अपने उपन्यास "भागो नहीं बदलो" में अंकित किया है ।[412]

गान्धी जी ने अभी तक निरन्तर बातचीत के माध्यम से स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रयास किया था, "करो या मरो" तथा "अंग्रेजों भारत छोड़ो " के नारे लगाना आरम्भ कर दिया । इसीलिए सुमित सरकार ने लिखा है कि " 1942 के ग्रीष्मकाल ने गान्धी जी को एक विचित्र उग्र रूप में पाया । उन्होंने निरन्तर अंग्रेजों से आग्रह किया कि भारत को या तो ईश्वर के सहारे छोड़ दें या अराजकता के ।"[413] उन्होंने जनता से कहा कि ऐसा भी समय आ सकता है जबकि उनको निर्देश

411- पट्टाभि सीतारमैया - कांग्रेस का इतिहास, भाग 2, भूमिका, पृ0 12

412- राहुल सांस्कृत्यायन,- भागो नहीं बदलो, पृ0 169-70

413- सुमित सरकार - माडर्न इण्डिया [1885-1947] 1985, पृ0 388

देने वाला कोई न हो । अतः उन्होंने कहा कि हर भारतवासी जो स्वतन्त्रता चाहता है और उसके लिए संघर्ष करता है, स्वयं अपना अगुवा बने ।[414]

8 अगस्त 1942 ई0 को बम्बई अधिवेशन में "भारत छोड़ो " प्रस्ताव पारित कर दिया गया और देश में भारत छोड़ो आन्दोलन बड़े वेग से चल पड़ा जिसमें देश के हर व्यवसाय, तबके एवं जाति के लोग सम्मिलित हुए । इस आन्दोलन का कोई सिद्धान्त नहीं था, यद्यपि गान्धी जी ने इस आन्दोलन को अहिंसक बनाने पर बल दिया था । इसका लक्ष्य किसी भी साधन से स्वतन्त्रता की प्राप्ति और अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर बाध्य करना था । अतः हिंसक घटनाओं का भी ताँता बन्ध गया ।[415] इस समय एक और विचित्र बात यह हुई कि सम्पूर्ण भारतवर्ष एक होकर अंग्रेजों को भारत से भगाने में जुट गया था । यह एक ऐसा आन्दोलन था जिसमें गान्धीवादी, क्रान्तिकारी , साम्यवादी सभी हाथ से हाथ मिलकर स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े थे ।[416]

414- वही तथा रामगोपाल-हाऊ इण्डिया स्ट्रगल्ड फॉर फ्रीडम, ए पॉलिटिकल हिस्ट्री, 1967 पृ0 430

415- रामगोपाल - वही पृ0 430

416- मन्मथनाथ गुप्त - "जिव," पृ0 53 इस उपन्यास में मन्मथनाथ गुप्त जी ने साम्यवाद शब्द का प्रयोग किया है जो उचित नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने समाजवाद के पर्यायवाची के रूप में इसका प्रयोग किया है ।

रामेश्वर शुक्ल "अंचल" ने अपने उपन्यास" नई इमारत" में
...त क्रान्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । अगस्त क्रान्ति में गान्धी
जी द्वारा दिया गया "करो या मरो" का नारा जनता को राष्ट्र के
लिए बलिदान होने के लिए प्रेरित कर रहा था । उपन्यास की स्त्री
पात्र आरती कहती है " हम मिट भी गये तो क्या होगा ? लोग आते
हैं .... चले जाते हैं, पैदा होते हैं ....जीते हैं ....मरते हैं,
पर आजादी की लड़ाई जब तक जारी रहती है जब तक मुल्क से जुल्मी
स...र खत्म नहीं हो जाती । "[417] आरती के इन शब्दों में 1942 के
आन्दोलन में लिया गया जनता का दृढ़ संकल्प प्रतिध्वनित होता है ।
गान्धी जी और अन्य नेता गिरफ्तार कर लिए गये थे । [418] समाचार
पत्रों में क्रान्ति के सम्बन्ध में बातें नहीं छापी जा सकती थी । अतः
डॉ० सीतारमैया ने एक गश्ती पत्र भेजा था जिसमें कांग्रेस-जनों से सभी प्रकार
के साधनों के प्रयोग द्वारा क्रान्ति को सफल बनाने का आग्रह किया गया
था । [419] "अंचल " जी ने भी इसका अंकन किया है कि "समाचार पत्रों
में कांग्रेस के प्रस्ताव या परिस्थिति के विषय में नेताओं के सन्देश छप न
सकते हैं । गुप्त रूप से छापे हुए पर्चे जगह-जगह दिखाई देने लगे । इन पर्चों
और लीफलेटों में जनता को विद्रोह और बगावत के लिए उकसाया जाता ।

417- रामेश्वर शुक्ल "अंचल" -- नई इमारत, पृ० 259
418- वही पृ० 69
419- मन्मथनाथ गुप्त -भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास,
पृ० 359

करो या मरो " का नारा हवा मे लहराता रहता । "[420]

'अंचल " जी ने अगस्त क्रान्ति के स्वरूप का भी चित्रण किया है ।

" सारे कांग्रेसी नेता और कार्यकर्ता पकड़-पकड़ कर कोतवाली के "लॉकअप' में पहुँचाये जा रहे थे । कांग्रेस दफ्तरों पर पुलिस का पहरा हो गया था । कागज-पत्र सरकार पहले ही उठा ले गई थी अब पुलिस का ताला पड़ा । लोग धड़ाधड़ गिरफ्तार हो रहे थे । "[421] गजराजसिंह अगस्त क्रान्ति के बारे में जनता को समझाते हुए कहता है कि " आन्दोलन आरम्भ हो जाने से पहले नीति और "स्ट्रेटेजी" की बहुत सी बातों को सर्वसाधारण के सामने प्रकट कर देना उचित नहीं । यही कारण है हमें अभी साफ-साफ यह पता नहीं क्या-क्या करना है । लेकिन वातावरण हमें तैयार कर लेना है । लोगों को यह मालूम हो जाना चाहिए हम एक भारी कदम उठाने जा रहे हैं । उन्हें कांग्रेस के प्रत्येक आदेश को समय आते ही जॉफिशानी और वीरता से पूरा करना है । "[422]

अनन्त गोपाल शेवड़े ने भी अपने ज्वालामुखी उपन्यास में गान्धी जी के "करो या मरो" का विश्लेषण किया है । वास्तव में शेवड़े जी गान्धी-वादी नीति अर्थात् सत्याग्रह को उचित नहीं समझते थे । अतः उन्हों

420- रामेश्वर शुक्ल "अंचल"-नई इमारत, पृ0 109

421- वही, पृ0 108

422- वही, पृ0 67

एक बार भोला के द्वारा अपने विवेक से कार्य करने के आधार पर कहलवाया कि " गान्धी जी ने तो हुक्म दिया करेंगे या मरेंगे , सो आप तो रहे । हम तो करेंगे और करके रहेंगे ।"[423]

इसके अतिरिक्त यशपाल के "देश द्रोही" रघुवीर शरण मित्र के "बलिदान" अनूपलाल मण्डल के "बुझने न पाये " आदि में भी 1942 की अगस्त क्रान्ति का अंकन प्राप्त होता है ।

नाविक विद्रोह -

1942 की क्रान्ति तथा सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज का प्रभाव नाविक विद्रोह पर पड़ा था ।[424] जय प्रकाश नारायण का तो कथन है कि "भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए नाविक विद्रोह का योगदान विशेष महत्वपूर्ण रहा ।"[425] इसका कारण सम्भवतः यह था कि जब जनता का विद्रोह होता था तो पुलिस और सेना के बल पर उसे दबा दिया जाता था । सेना के बल पर ही ब्रिटिश राज स्थिर था । अब जब सेना ने भी विद्रोह कर दिया तब अंग्रेजों के पास भारत को स्वाधीन करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रहा । वैसे तो सैनिक विद्रोह 1857 ई0 में भी हुआ था । परन्तु उस समय यह

विद्रोह जन-विद्रोह नहीं था। इसीलिए वह असफल रहा। इस समय का विद्रोह जन-विद्रोह के साथ-साथ चला।

"नाविक विद्रोह" का चित्रण यशपाल ने अपने उपन्यासों में किया है। "पार्टी कामरेड" में गीता नाविक विद्रोहियों का समर्थन करने के लिए देशवासियों का आह्वान करती है कि " ये हिन्दुस्तानी जहाजी सिपाही आपके ही भाई और बेटे हैं। ..... भूख और अपमान से ऊबकर उन्होंने न्याय की मांग की है। उनका अपमान देश का अपमान है। उनकी भूख देश की भूख है। आज ये गुलामी की जंजीर तोड़कर आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए आपकी ओर मिलाप और सहायता का हाथ बढ़ा रहे है।"[426] यही कारण है कि भावरिया जैसे चरित्रहीन गुण्डे का हृदय परिवर्तित हो जाता है और नाविक विद्रोह के समय वह अपना जीवन बलिदान कर देता है। इस विद्रोह में जनता का भाग लेना तथा सैनिकों की वर्दियाँ, कांग्रेसी झण्डे आदि का भी चित्रण प्राप्त होता है।[427]

आर्थिक -

प्रेमचन्दोत्तर युग में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का आर्थिक पक्ष मुख्यतः समाजवाद पर केन्द्रित था। यह वह समय था जबकि गान्धीवादी

426- यशपाल -पार्टी कामरेड, पृ0 81-82
427- वही, पृ0 79

एवं आतंकवादी नीतियों एवं कार्यक्रमों के औचित्य पर सन्देह किया जाने लगा था। पूरे विश्व में समाजवाद की लहर फैल चुकी थी। पूँजीवाद का विनाश करने हेतु समाजवादी क्रान्ति आवश्यक थी। अतः हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान भी इस ओर गया और उन्होंने अपने साहित्य में समाजवाद को केन्द्रीय स्थान प्रदान करने का प्रयास किया। अतः इस युग में शोषक और शोषित के सम्बन्धों पर अधिक बल दिया गया तथा शोषण को समाप्त करने के लिए एक जनक्रान्ति की आवश्यकता का अनुभव किया गया।

यशपाल यद्यपि स्वयं एक क्रान्तिकारी थे, परन्तु उनका झुकाव क्रान्तिवाद की ओर नहीं वरन् समाजवाद की ओर अधिक था। वैसे तो स्वयं "आजाद" भी क्रान्तिवाद के पक्ष में नहीं थे। जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक "मेरी कहानी" में लिखा है कि जब "आजाद" उनसे मिला तो " उसने कहा कि खुद मेरा तथा दूसरे साथियों का यह विश्वास हो चुका है कि आतंकवादी तरीके बिल्कुल बेकार हैं और उनसे कोई लाभ नहीं है। हाँ, वह यह मानने को तैयार नहीं था कि शान्तिमय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जायेगी। "[428] यशपाल के उपन्यास

428- जवाहर लाल नेहरू - मेरी कहानी, पृ0 369

"दादा कामरेड" का हरीश " गुप्त सभाओं, बम, पिस्तौल और रिवाल्वर [illegible] स्वाधीनता प्राप्ति के मार्ग में बाधक बताता है।"[429] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यशपाल एक जनान्दोलन के माध्यम से विदेशी सत्ता की समाप्ति चाहते थे। एक ऐसा जनान्दोलन, जो गान्धी जी के आन्दोलन से भिन्न हो। यशपाल के अन्य उपन्यास "देश द्रोही" में शिवनाथ जो

आतंकवादी था, जेल से छूटने के बाद आतंकवादी उपायों को छोड़कर एक जनान्दोलन खड़ा करना चाहता है। वह मजदूरों में क्रान्तिकारी भावना का संचार करता है।[430] "दादा कामरेड" में क्रान्तिकारी साधनों की आलोचना की गई है। उसमें कहा गया है कि " पच्चीस बरस में इन क्रान्तिकारियों ने करा ही क्या ? जो जागृति देश में गान्धी जी ने दस वर्ष में फैला दी उसे यह क्रान्तिकारी एक सदी में भी नहीं फैला सकते। सरकार के मुकाबले में इनके दस-पांच बम और पिस्तौल कर ही क्या सकते हैं..... जिस सरकार की शस्त्र-शक्ति का अन्त नहीं, इन फुलझड़ियों से उसका क्या बिगड़ सकता है ? पतंगों की तरह जल मरना हो तो दूसरी बात है।"[431] यद्यपि यहाँ पर गान्धी जी की नीतियों की प्रशंसा प्राप्त होती है, परन्तु यशपाल कभी भी गान्धीवादी आन्दोलन के पक्षपाती नहीं थे। वे तो गान्धीवादी जनान्दोलन

429- यशपाल- दादा कामरेड, पृ0

430- वही, देश द्रोही, पृ0 54

431- यशपाल- दादा कामरेड, पृ0 23

और क्रान्तिवाद का सम्मिश्रण करना चाहते थे जिसके परिणामस्वरूप समाजवादी आन्दोलन उठ सके । इसीलिए डॉ० धर्मपाल सरीन ने कहा है कि यशपाल पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव है ।[432]

मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण उनके उपन्यासों में पूँजीवादी अथवा सामन्ती व्यवस्था के कारण वर्गवाद से उत्पन्न शोषक और शोषित की समस्याओं का वर्णन है । इस प्रकार के वर्णन से यशपाल ने भारतीय सर्वहारा वर्ग को अपने अधिकारों के लिए क्रान्ति की आवश्यकता का सन्देश दिया । उन्होंने अपने उपन्यास "दादा कामरेड" को लिखने का उद्देश्य स्पष्ट किया कि यह संसार में जो आज अनेक वादों- पूँजीवाद, नाजीवाद, गान्धीवाद, समाजवाद का संघर्ष चल रहा है, उस सबकी नींव में परिस्थितियों, व्यवस्था और धारणाओं मे सामन्जस्य ढूँढने का प्रयत्न है ।"[433]

" दादा कामरेड" में हरीश का चरित्र यशपाल ने अपने रूप में चित्रित किया है । जेल से भागने के बाद वह इस बात का अनुभव करता है कि " गुप्त पार्टी बना दस- पाँच में अपनी शक्ति को संकुचित कर देने से कोई लाभ नहीं है । "[434] वह कहता है कि " अब तक हमारी

432- डॉ० धर्मपाल सरीन -हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1973, पृ० 84

433- यशपाल - दादा कामरेड, लखनऊ, 1944, पृ० 6

434- वही, पृ० 106

…पूर्ण शक्ति डकैतियाँ करने में अधिकतर और कुछ राजनीतिक हत्याओं में काम आई है । किन्तु हमारा उद्देश्य तो यह नहीं है । हमारा उद्देश्य तो यह है कि इस देश की जनता का शोषण समाप्त कर उनके लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करना । .... हमें अपनी टेकनीक बदलना चाहिए .... बजाय शहादत के परिणाम की ओर ध्यान देना चाहिए । रूस ने क्या किया ? हम अपने आदमियों के जरिये कांग्रेस में घुसे और दूसरे जनान्दोलन हाथ उठावे ।"[435] डॉ० धर्मपाल सरीन के अनुसार भी "उपन्यास का उद्देश्य आतंकवादी आन्दोलन की असफलता और समाजवादी चेतना के उभार और विकास का चित्रण है ।"[436]

इस उपन्यास में यशपाल समाजवाद की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि " हमारा विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए । एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी से, एक देश द्वारा दूसरे देश से उसके परिश्रम का फल छीन लेना अनुचित है, अन्याय है, अपराध है । यह समाज में निरन्तर होने वाली हिंसा और डकैती है । इस हिंसा और शोषण को समाप्त करना ही हमारे जीवन का उद्देश्य रहा है, उसी के लिए हमने प्रयत्न

435- वही, पृ० 168
436- डॉ० धर्मपाल सरीन- हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष, पृ० 84

किया है ।"[437] हरीश स्वयं क्रान्तिकारी दल को त्यागकर ट्रेड यूनियन में मिलकर मिल के मजदूरों में समाजवादी चेतना को जागृत करने का प्रयास करता है । उसको मजदूरों की शक्ति में पूर्ण विश्वास है । वह इस शक्ति को आन्दोलन का रूप प्रदान करने का प्रयास करता है । लाहौर में मजदूरों की विपन्नता को देखकर वह सोचता है कि "आकाश में गरजने वाली बिजली की तरह मजदूरों की इस शक्ति को क्रान्ति के तार में कैसे पिरोया जा सकता है ।"[438] अन्त में हरीश के प्रयत्नों से "दादा" भी उसके साथ मिल जाता है और मजदूरों की हड़ताल को सफल बनाने का प्रयास करता है ।

"देश द्रोही" उपन्यास में क्रान्तिकारी, गान्धीवादी तथा साम्यवादी तीनों प्रकार के विचारों का वर्णन है । परन्तु "दादा कामरेड" की तरह इसमें भी क्रान्तिवाद और गान्धीवाद को अव्यावहारिक मानकर साम्यवादी विचारों को पुष्टि प्रदान की गई है । इसमें खन्ना और शिवनाथ दो क्रान्तिकारियों का वर्णन है, जो क्रान्तिकारी एवं आतंकवादी उपायों से राष्ट्रोद्धार का प्रयास करते हैं, परन्तु असफल रहते हैं और शिवनाथ गिरफ्तार कर लिया जाता है । जेल से छूटने के बाद वह कांग्रेस के समाजवादी दल का नेता बन जाता है ।[439]

437- यशपाल- दादा कामरेड, पृ0 217

438- वही, पृ0 वही

439- यशपाल - देश द्रोही, पृ0 35

त वह मजदूर आन्दोलन को संगठित करने का प्रयास करता है और मजदूरों को ध्वंसकार्यों के लिए प्रेरित करता है। शिवनाथ के भड़काने से एक मिल में मजदूर आग लगाना चाहते हैं परन्तु खन्ना और उसके साथी इस कार्य का विरोध करने के लिए आ जाते हैं। दोनों दलों में मुठभेड़ होती है जिसमें खन्ना बुरी तरह घायल हो जाते हैं।[440] बद्रीनाथ को गान्धीवादी पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। परन्तु उसके रूप में लेखक कांग्रेस को पूंजीपतियों की संस्था "[441] कहता है।

शिवनाथ मजदूरों को संगठित करने का पूर्ण प्रयास करता है। वह उनको उनकी दयनीय स्थिति से मुक्त कराना चाहता है। वह अपने समाजवादी आदर्शों के साथ 1942 के आन्दोलन में भाग लेता है तो मजदूरों को भी इसके लिए प्रेरित करता है। वह शेरखाँ और मराठे की मदद से मजदूरों में वेतन का प्रश्न उठाकर उनमें एकता की भावना को उत्पन्न करना चाहता है जिससे वे राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग ले सकें। वह कहता है कि " वे जानते थे कि मजदूरों की मांगें सहज में पूरी न होंगी। परिणाम होगा हड़ताल। हड़ताल युद्ध है और वर्ग युद्ध के लिए आरम्भिक शिक्षा है। "[442]

440- वही, पृ0 52
441- वही, पृ0 57
442- वही, पृ0 75

"पार्टी कामरेड" में भी यशपाल ने कांग्रेस को पूंजीपतियों की संस्था के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार पूंजीपतियों के नेतृत्व में राष्ट्रीय समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इसके लिए उन्होंने साम्यवादी कार्यक्रम को स्वीकार किया और कांग्रेस के विरुद्ध भारतीय साम्यवादियों के द्वारा अंग्रेजों की सहायता को दिखाया गया है। यह सहायता वास्तव में पूंजीपतियों के विरुद्ध थी न कि राष्ट्र के विरुद्ध।[443]

"पार्टी कामरेड" के माध्यम से यशपाल ने साम्यवादी दल के अनुशासन, कार्यकलाप इत्यादि का दिग्दर्शन कराया है। लेखक ने उपन्यास में यह दिखाने का प्रयास किया है कि साम्यवादी दल ही राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अंग्रेजों से संघर्ष कर रहा था। दल के सदस्यों द्वारा जनता में साम्यवादी चेतना का प्रस्फुटन कराया जा रहा था। साम्यवादी लड़की गीता के सम्पर्क में आकर पद्मलाल भावरिया जैसे पूँजीपति एवं गुण्डे का जीवन परिवर्तित हो जाता है और वह साम्यवादी चेतना से प्रेरित होकर राष्ट्रीय संघर्ष में अपना बलिदान भी कर देता है।[444]

443- देखिये - डॉ० सत्येन्द्र -हिन्दी उपन्यास विवेचन, जयपुर, 1968, पृ० 154

444- यशपाल - पार्टी कामरेड, पृ० 274

रामेश्वर शुक्ल "अंचल " ने अपने उपन्यास "चढ़ती धूप " में गान्धीवादी कार्यक्रमों की आलोचना की है। क्योंकि इन कार्यक्रमों से देश का उद्धार होने वाला नही था। उपन्यास में वर्मा का कथन है कि "चर्खा कातने से ही स्वराज्य नहीं मिलेगा। ढाका और मुर्शिदाबाद तो इन्हीं चरखों के रूप हैं पर देश पर विदेशियों का आक्रमण कब बन्द हुआ ?"[445] अंचल जी ने अपने उपन्यास में 1932 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा कांग्रेस मंत्रिमण्डलों की स्थापना के बीच के काल को चुना है।[446] यह वह समय था जबकि गान्धीवादी एवं आतंकवादी दोनों ही कार्यक्रम असफल सिद्ध हो रहे थे। परिणामस्वरूप समाजवाद को एक नवीन आशा के रूप में देखा जा रहा था।

मोहन मार्क्सवाद से प्रभावित चरित्र है। वह समाजवादी लक्ष्य को बताते हुए कहता है " हमारा एक ही युद्ध-एक नारा - एक लक्ष्य है जो मेहनत करते हैं उन्हीं का राज्य हो। हम राज्य चाहते हैं - किसानों का जो भूमि के सच्चे स्वामी हैं। हम राज्य चाहते हैं मजदूरों का जो कारखानों और मिलों के सच्चे अधिकारी है। हमें शोषण का अन्त करना है। जब तक उसका अन्त नहीं होता तब तक राजनैतिक शक्ति कोई अर्थ नहीं रखती।"[447] मोहन के अतिरिक्त एक अन्य नारी

445- रामेश्वर शुक्ल "अंचल"- चढ़ती धूप, इलाहाबाद 1955, पृ0 84

446- वही, पृ0 4 (भूमिका)

447- वही, पृ0 151

पात्र शर्मी की भी यही आकांक्षा है कि समाज से भेदभाव दूर हो और एक वर्ग हीन समाज की स्थापना हो जिससे सभी सुखी जीवन व्यतीत कर सकें। वह कहती है कि " बड़े-छोटे का यही भेद मिटाकर हमें वर्गहीन समाज की स्थापना करनी है ..... कैसा मंगलमय होगा वह दिन जब हमारे देश में - इस महान ऐतिहासिक राष्ट्र में वर्गहीन समाज का निर्माण होगा जब सबके बराबर अधिकार- सबकी एक सी मान्यताएँ होंगी। श्रमसत्ता के लाल झण्डे के नीचे मानव का मानव से मिलन होगा।"[448]

इस उपन्यास में "अंचल" जी ने गान्धीवादी अहिंसक नीति को स्वीकार करते हुए समाजवाद का समर्थन किया है। इसमें मिल मजदूरों के द्वारा अपनी मांग पूरी न होने पर हड़ताल की जाती है। परन्तु इसके लिए वे हिंसात्मक साधनों का सहारा नहीं लेते हैं। वरन् लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि जो हिंसा की घटनाएँ हड़ताल के दौरान होती हैं, वे मजदूरों द्वारा नहीं, स्वयं मिल मालिकों द्वारा अपने आदमियों द्वारा करवाई जाती हैं जिससे पुलिस हड़तालियों के विरुद्ध भड़क उठे। लेखक ने यह दिखाने का प्रयास

448- वही, पृ0 246

किया है कि मजदूर स्वयं आत्म-बलिदान के आदर्श को प्रस्तुत कर अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हैं । मोहन के अनुसार उनकी "हिंसा नहीं, अहिंसा हमारी तलवार है .... हम यहाँ हड़ताल में मारने नहीं, मरने आये हैं ।"[449] लेखक का यह मत है कि यदि मजदूरों के द्वारा हिंसा का सहारा लिया जायेगा तो परिणाम दमन ही होगा जिससे उन्हें अपने लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो पायेगी। उनके अनुसार " गुलाम देश में हिंसा करना दमन और सरकारी अत्याचार को निमंत्रण देना है ।"[450] जगनाथ कहता है कि " हम सत्याग्रह करेंगे और विजयी होंगे । तुम लोग उत्तेजित हुए तो बना बनाया खेल बिगड़ जायेगा ।"[451] मोहन भी मजदूरों से बलिदान की बात करता है , वह कहता है कि "सरमायादारी का नाश करो - अपने तबके की आजादी के लिए कुरबानी का समुन्दर खोल दो । हमारे तबके की आजादी किसान मजदूर की आजादी - हिन्दुस्तान की आजादी है ।"[452] परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि गान्धीवादी नीति पर "अचल" जी का कोई ठोस विश्वास नहीं था ।[453] इसीलिए जब मोहन और जगन्नाथ

449- वही, पृ0 310
450- वही, पृ0 वही,
451- वही, पृ0 311
452- वही, पृ0 265
453- देखिये, वही, पृ0 23-

हड़ताल करते हुए शहीद होते हैं तब मजदूरों में लेखक ने क्रान्तिकारी भावना को दिखाया है। मजदूर कहते है कि " हम सरकार का, उस जालिम हुकूमत का नाश हो जाने पर दम लेंगे जो हमारे भाइयों को गोलियों से भूनती जा रही है। "[454] इस प्रकार इस उपन्यास मे क्रान्ति एवं हिंसा को निश्चित रूप से स्वाधीनता की प्राप्ति एवं शोषण के अन्त के लिए स्वीकार किया गया है।[455]

जय प्रकाश नारायण ने कहा था कि कांग्रेस के अन्दर घुसकर उसकी नीतियों को नया रूप प्रदान किया जाना चाहिए।[456] समाजवादियों की इस नीति का संकेत "अंचल" जी ने अपने "नई इमारत" नामक उपन्यास में किया है। इसमें उन्होंने कहा है कि " हम राष्ट्रीय समाजवादी है .... यहाँ हमारा रोल उल्टा है। हम कांग्रेस के राइटविंग को फैसिज़्म की तरफ जाने से रोकेंगे।"[457]

उपेन्द्रनाथ "अश्क" जी ने कांग्रेस की नीति की आलोचना की है। उसके अनुसार कांग्रेस पूँजीपतियों की समर्थक संस्था है। इसीलिए वह पूंजीवादी शासन को समाप्त नहीं करना चाहती है, क्योंकि पूँजीवादी

454- वही, पृ0 318
455- वही, पृ0 125
456- जे0पी0 नारायन- टुवर्ड्स स्ट्रगल, पृ0 137
457- रामेश्वर शुक्ल "अंचल" - नई इमारत, पृ0 144

शासन की समाप्ति के साथ ही साथ भारतीय पूंजीपतियों की भी समाप्ति हो जायेगी, जिनसे कांग्रेस को धन प्राप्त होता है । "गर्मराख" उपन्यास में हरीश इसी प्रकार के विचारों को व्यक्त करते हुए कहता है कि " कांग्रेस क्रान्ति नहीं चाहती, क्रांति में हिंसा निहित है । हिंसा से कांग्रेस डरती है, क्योंकि क्रान्ति होगी तो अंग्रेज ही न जायेंगे, अंग्रेजों को प्रश्रय देने वाले और साथ ही धन से कांग्रेस की सहायता करने वाले सेठ साहूकार भी जायेंगे और जनता का राज्य होगा ।"[458]

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यासकारों ने, जिनका प्रतिनिधित्व मुख्य रूप से प्रेमचन्द कर रहे थे, अपने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया । प्रेमचन्द ने अपनी मृत्यु के समय तक जिन उपन्यासों को प्रस्तुत किया वे राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत कहे जा सकते हैं । प्रेमचन्द के उपरान्त भी अन्य उपन्यासकारों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किया ।

अध्याय -- तीन

नाटक

जिस प्रकार हिन्दी गद्य साहित्य में उपन्यास वैज्ञानिक युग की उपज माना जाता है [1] उसी प्रकार नाटक भी हिन्दी गद्य साहित्य में आधुनिकता का परिणाम है । डॉ० शिवमूर्ति शर्मा हिन्दी नाटकों की विस्तृत परम्परा का विकास सर्वप्रथम भारतेन्दु युग से मानते है ।[2] इस युग में यद्यपि अयोध्या सिंह उपाध्याय के नाटकों 'प्रद्युम्न विजय' {1894} तथा 'रूक्मिणी परिणय' {1894} के कथानकों से उनका भारत की प्राचीन सँस्कृति से प्रेम प्रकट होता है । तथापि इससे यह तात्पर्य नही कि उस युग में राष्ट्रीयता की भावना बहुत अधिक थी । यह सत्य है कि राष्ट्र के प्रति प्रेम राष्ट्रीय चेतना का मूलाधार है । परन्तु मात्र निष्क्रिय प्रेम राष्ट्रोद्धार हेतु व्यर्थ ही है, जो तत्कालीन नाटकों में दिखाई देता है । वास्तव में राष्ट्रप्रेम सक्रिय होना चाहिए । किसी परतन्त्र और दलित देश के लिए यह बड़े अभिमान की बात होती है कि उसका अतीत महान, उसकी संस्कृति श्रेष्ठ हो जो राष्ट्रजनों में एक नवीन राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में सक्षम हो ।

1- देखिए, डॉ० पारस नाथ मिश्र - मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1972, पृ० 160

2- डॉ० शिवमूर्ति शर्मा - हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1982, पृ० 366

चूँकि साहित्य समाज का दर्पण होता है अतः समाज में उठने वाली समस्याओं का प्रतिफलन साहित्य में होना स्वाभाविक है । भारतेन्दु काल से पूर्व समाज में समस्याएँ तो थी परन्तु साहित्य अपरिपक्व था इसीलिए उन समस्याओं का उचित प्रतिफलन साहित्य में नहीं हो सका । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात वास्तव में भारतेन्दु युग से प्रारम्भ होता है । किसी भी देश में राष्ट्रीय जागृति स्वयमेव नही आती है वरन् एक संगठित आन्दोलन एवं उसका उचित नेतृत्व जनता में इस जागृति को प्रवाहित करता है ; यही कारण था कि भारतेन्दु से पूर्व राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में साहित्य सृजन सम्भव नहीं हो सका था ।

यद्यपि हिन्दी साहित्य में नाटकों की रचना की ओर लेखकों का बहुत कम ध्यान गया था और भारतेन्दु से पूर्व तो नाटक साहित्य का विकास नगण्य ही रहा । जो नाटक रचना हुई भी तो वह अनूदित नाटको की अधिक थी । इस समय साहित्यकार ने या तो नाटक को हाथ लगाने की हिम्मत ही कम की है और अगर की भी है तो अपनी कल्पना और शक्ति को आवश्यकता से अधिक दबा रखा है, जिसके परिणामस्वरूप नाटक बहुत निर्जीव एवं यन्त्रवत् हो गया है ।[3]

3- डॉ0 नगेन्द्र- आधुनिक हिन्दी नाटक, साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा, पंचम संस्करण, पृ0 ।

नाटक, हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य साहित्य की देन माना जा सकता है । डा० रा० वार्ष्णेय के अनुसार हिन्दी में पाश्चात्य नाट्य पद्धति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगियो ने ही ग्रहण कर ली थी । धीरे-धीरे हिन्दी के नाटककारो ने पाश्चात्य नाट्य पद्धति पूर्णत: अपना ली ।"[4] फिर भी यह कहना उचित न होगा कि हिन्दी साहित्य मे नाटक साहित्य का प्रारम्भ विदेशी प्रभाव से हुआ । वास्तव मे भारत में संस्कृत नाटकों की रचना की गई थी जिनका अनुवाद हिन्दी में किया गया । फिर भी लिखने की टेकनीक तथा नाटक के विषय का चयन पाश्चात्य आधार पर ही किया गया था । अत: जिस प्रकार पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय जागृति का संचार किया उसी प्रकार पाश्चात्य नाटकों ने भी हिन्दी साहित्य के नाटकों में एक नया मोड़ ला उपस्थित किया । अब नाटकों में राष्ट्रीय समस्या को स्थान प्रदान किया जाने लगा । भारतेन्दु काल के तो सभी नाटककारो का ध्येय समाज को नवचेतना और जागरण प्रदान करना था ।[5] भारतेन्दु हरिश्चन्द तथा उनके युग के नाटककारों ने अपने चारों ओर के जीवन तथा भारतीय पुराणों तथा इतिहास से संवेदना स्वीकार की और जीवन को पुष्ट कर जन-मन की वीणा से नवीन स्वर झंकृत करने

4- डा० रा० वार्ष्णेय -हिन्दी साहित्य का इतिहास,बारहवाँ संस्करण 1975,पृ० 254

5- डॉ० जे० पी० श्रीवास्तव एवं एच०बी० सिन्हा- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पुस्तक मन्दिर इलाहाबाद, 1965, पृ० 131

का सराहनीय प्रयास किया ।"[6]

उनके नाटकों में मातृभूमि के प्रति प्रेम (जमुनादास मेहरा- हिन्द, पृ0 196) भारतीय गौरवपूर्ण अतीत (वही, पृ0 3, 18, 35) स्वाधीनता की प्रेरणा (17, 59) स्वदेशी की भावना (27, 28) इत्यादि का प्रभाव देखा जा सकता है । इस युग में नाटककारों ने देशव्यापी एकीकरण के भाव व्यक्त किये हैं । उन्हें भली-भाँति ज्ञात था कि जातीय एक-सूत्रता के अभाव में राष्ट्रीय स्वाधीनता की आशा करनी व्यर्थ है । तथापि भारतेन्दु युग राष्ट्रीयता की दृष्टि से शैशवकाल था । इस युग में राष्ट्रीयता के समग्र रूप के दर्शन नहीं होते यद्यपि देशानुराग का अत्यन्त उज्जवल रूप प्राप्त होता है परन्तु राजनीतिक और सामाजिक भावनाओं को व्यक्त करने की वाणी दबी सी रही ।

अतः इस बात में शायद सभी नाटक-शास्त्री एक मत हैं कि नाटक के मूल में किसी न किसी प्रकार का द्वन्द्व रहता है ।[7] नाटक सदैव दो बातों के बीच एक द्वन्द्व को लेकर चलता है तथा इसकी परिणति सुखान्त अथवा दुखान्त नाटक में हो सकती है। हिन्दी साहित्य के नाटककारों ने, विशेषतः भारतेन्दु युग से, राष्ट्रीय समस्याओं को कथानक का विषय बनाकर

6- डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का लेख- भारतेन्दु युगीन हिन्दी नाटक, पृ0 293

7- डॉ0 नगेन्द्र- आधुनिक हिन्दी नाटक, साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा, पंचम संस्करण, पृ0 1

इसी द्वन्द्व को दर्शाया है तथा विभिन्न ऐतिहासिक एवं तात्कालिक घटनाओं के आधार पर भारतीय जनता में राष्ट्रीय चेतना को बढ़ाने का प्रयास किया है ।

अध्ययन की सुविधा के लिए हिन्दी नाटकों के विकास को चार कालों में बांट लेना उपयुक्त होगा - §1§ 1858 से 1900 ई0 भारतेन्दु युग §2§ 1900 से 1918 ई0 संक्रान्ति युग §3§ 1918 से 1934 प्रसाद युग §4§ 1934 से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक प्रसादोत्तर युग ।[8] हिन्दी नाट्य साहित्य के इस काल-विभाजन का समीकरण भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के काल विभाजन से किया जा सकता है। भारतेन्दु युग जो 1857 ई0 से 1900 ई0 तक माना जाता है उसे 1857 ई0 से 1885 ई0 तक के राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। संक्रान्ति युग जो कि 1900 ई0 से 1920 ई0 तक माना जाता है भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अपेक्षाकृत शान्त युग के रूप में देखा जा सकता है। प्रसाद-युग 1920 ई0 से 1934 ई0 तक गान्धी युग में राष्ट्रीय आन्दोलन की तीव्रता का युग था। प्रसादोत्तर युग 1934 से राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत 1947 ई0 तक का युग था जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था और इसी काल में भारत को स्वतन्त्रता

8- डा0 शिवमूर्ति शर्मा- हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1982, पृ0 366

प्राप्ति हुई थी ।

भारतेन्दु युग -

वास्तव में भारतेन्दु हरिश्चन्द के पूर्व उपन्यास, कहानी एवं नाटकों में मनोरंजन को प्रधानता दी जाती थी । अपनी साहित्यिक कृतियों को अधिक से अधिक मनोरंजन बनाने के लिए लेखकों के द्वारा तिलस्मी-ऐयारी, सौन्दर्य इत्यादि को प्रधानता दी जाती थी । परन्तु भारतेन्दु के काल से इस क्षेत्र में पर्याप्त परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा था इसका कारण भारत में राष्ट्रीय जागरण को माना जा सकता है । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गान्धी जी के आगमन के पूर्व ही स्वतन्त्रता प्राप्ति को महत्व दिया जाने लगा था । गान्धी जी के आगमन ने तो इस लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग दर्शन किया था । इसके साथ ही साथ इस समय हिन्दी में गद्य नहीं के बराबर था, अतएव नाटक का विकास भी नहीं हुआ।[9] गांधी जी ने देश की जनता को इस आन्दोलन में ला खड़ा किया और वह अपनी पराधीनता की जंजीर से स्वयं को मुक्त कराने के लिए प्रयत्नशील हो उठी ।

9- देखिये- डॉ0 मोहन अवस्थी- हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास ,पृ0 106

हिन्दी गद्य साहित्य में भारतेन्दु युग 1858 से प्रारम्भ माना जाता है । डॉ० नगेन्द्र के मत में आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता का प्रारम्भ सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से होता है ।[10] अत: युगीन साहित्यकारों की रचनाओं में राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति पर्याप्त स्वाभाविक थी । परन्तु इस युग के नाटकों में यद्यपि राजभक्ति का स्वर प्रधान है। वास्तव में ऐसा इसलिए था क्योंकि प्रारम्भ में मुसलमानों के अत्याचार, उनके धार्मिक पक्षपात तथा अराजकतापूर्ण शासन की अपेक्षा अंग्रेजी शासन अधिक श्रेयस्कर समझा गया । परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं है कि नाटककार स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील नहीं थे । वास्तव में इस राजभक्ति को शासकों के प्रति कोरी चाटुकारिता के रूप में नहीं देखना चाहिए । यह राजभक्ति वास्तव में देश-प्रेम से प्रेरित थी । डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार, वास्तव में अनेक रचनाओं में तो ऐसा लगता है कि जनता में नवचेतना फैलाने के लिए ही देशभक्ति की आड़ ली गई थी ।"[11] यही कारण था कि तत्कालीन नाटकों में देश के अतीत का गौरवगान तथा वर्तमान दुर्दशा पर विक्षोभ व्यक्त किया गया था । ऐसे विरोधी तत्वों के सामन्जस्य को तत्कालीन नाटककारों की चतुरता के रूप में लिया जा सकता है ।

10- देखिये, डॉ० नगेन्द्र -आस्था के चरण , पृ० 336

11- डॉ० रामविलास शर्मा - भारतेन्दु युग, पृ० 14

देश प्रेम का सूक्ष्म अर्थ अपनी पुण्य भूमि की विशालता, गरिमा, प्राकृतिक सुषमा आदि के प्रति अटूट आकर्षण का भाव है।[12] डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के मत में " वे गवर्नमेंट के आदमी नहीं थे। उनकी भक्ति के पीछे प्राचीन भारत की राजा-प्रजा वाली भावना कार्य कर रही थी। परन्तु अंग्रेजी शासन के अनेक अन्यायपूर्ण एवं पक्षपात पूर्ण कार्य उन्हें मानसिक पीड़ा पहुँचाते थे और अवसर मिलने पर वे उनका विरोध किये बिना न रहते थे। उन्हें राष्ट्रीय हित का ध्यान सदैव बना रहता था।"[13] यही कारण था कि भारतेन्दु एवं उनके सहयोगियों में देश के प्रति उत्कट अनुराग की भावना परिलक्षित होती है। उन्होंने अपने नाटकों में बार-बार देश की वर्तमान दुर्दशा तथा गौरवपूर्ण अतीत का वर्णन किया है।[14] भारत एक ऐसा देश रहा है जिसका अतीत अत्यन्त गौरवशाली रहा है। अतः साहित्यकार जो अपनी परिस्थितियों से प्रभावित होता है, अपनी लेखनी समकालीन समस्याओं तथा उनके समाधान के लिए चलाता है, वह उन साधनों का अत्यन्त चतुराई से प्रयोग करता है, जो लक्ष्य सिद्धि में सहायक होते हैं। इन्हीं साधनों में अत्यन्त प्रभावशाली साधन भारत का गौरवपूर्ण अतीत रहा है।

12- विश्वराम मिश्र- हिन्दी नाट्य साहित्य में राष्ट्रीय भावना, शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पृ० 96।

13- डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय- आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० 209

14- देखिये- भारतेन्दु हरिश्चन्द - भारत दुर्दशा, पृ० 469, 486, 491, विषस्य विषमौषधम्, पृ० 268, सत्य हरिश्चन्द 318; राधाचरण गोस्वामी-अमरसिंह राठौर, पृ० 1; देवकी नन्दन त्रिपाठी- भारती

किसी भी राष्ट्र का गौरवपूर्ण अतीत उसके नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना जागृत एवं विकसित करने के लिए उत्प्रेरक का कार्य करता है । इसलिए डॉ0 गोपीनाथ तिवारी के शब्दों में कहा जा सकता है कि "जिन नाटककारों ने भी देश-प्रेम पर लेखनी दौड़ाई है उन्होंने प्राचीन भारत का गुण अवश्य गाया है ।"[15] यह मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी उचित प्रतीत होता है । वह स्वर्णिम अतीत जो भारतीय जनता ने खो दिया है उसे पुन: प्राप्त किया जा सकता है । यदि ऐसी आशा का संचार भारतीय जनता के मस्तिष्क में किया जा सके तो परिणाम सकारात्मक निकल सकता है । अत: डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव तथा हरेन्द्र प्रताप सिन्हा के मत में इस युग (भारतेन्दु युग) के सभी नाटककारों का ध्येय समाज को नवचेतना और जागरण प्रदान करना था ।[16] तथापि उनके अनुसार भारतेन्दु युग में अंग्रेजों की शासन नीति को स्पष्ट रूप से न समझ सकने के कारण राष्ट्रीयता और देश-प्रेम के साथ राजभक्ति की भावना मिली हुई थी ।[17]

भारतेन्दु कालीन नाटकों में केवल राजनीतिक विक्षोभ ही नहीं वरन् आर्थिक अवनति पर भी असन्तोष व्यक्त किया गया है । इस युग में भारत की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी । अंग्रेजों का भारत पर आधिपत्य

15- डॉ0 गोपीनाथ तिवारी- भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य, पृ0 364 ।

16- डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव एवं हरेन्द्र प्रताप सिन्हा- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पुस्तक मन्दिर, इलाहाबाद, 1965, पृ0 131

17- वही, पृ0 264

आर्थिक दृष्टिकोण से प्रेरित था न कि राजनीतिक। राजनीतिक आधिपत्य तो केवल एक साधन था आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति हेतु। अतः भारत का आर्थिक शोषण अंग्रेज शासकों द्वारा किया जा रहा था। साहित्यकार ने अपनी रचना द्वारा भारतीय जनता को उसकी हीन अवस्था से परिचित कराने का प्रयास किया। उसने उसे इस आर्थिक परतन्त्रता से मुक्त होने का सन्देश दिया। वास्तव में गान्धीयुग में लेखकों द्वारा इस दिशा में जो प्रयास किया गया था, उसका प्रारम्भ भारतेन्दु युग में ही हो चुका था। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में "वैसे तो विभिन्न आन्दोलनों का जन्म सामान्य राष्ट्रीय जागृति के कारण हुआ था जो अन्त में विशेष परिस्थितिवश राजनीतिक आन्दोलनों में घुल-मिल गये, किन्तु स्वदेशी आन्दोलन का जन्म प्रधानतः अंग्रेजों की आर्थिक नीति के कारण हुआ।"[18] इस युग के आर्थिक पतन का उल्लेख भारतेन्दु युग के अनेक नाटककारों ने किया है।[19]

द्विवेदी युग- भारतेन्दु युग के उपरान्त द्विवेदी युग में राजभक्ति का तत्व विलोप होता हुआ प्रतीत होता है। इस युग में साहित्यकारों ने अंग्रेजी शासकों की नीति के दोहरे रूप को जान लिया। उन्होंने इस नीति के मधु-मिश्रित विष का आभास कर लिया था। अतः शासन की भक्ति को

18- डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-भारतेन्दु की विचारधारा, पृ० 41

19- देखिये- भारतेन्दु हरिश्चन्द -भारत दुर्दशा, पृ० 469, 473, 476, भारत जननी, पृ० 506, 509, प्रेमघन - भारत सौभाग्य-पृ०57।

त्याग कर अपने अधिकारों की माँग को प्रस्तुत किया । अतः इस युग में साहित्यकार ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह की भावना को प्रदर्शित करने वाले तथा स्वतन्त्रता की कामना करने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी लेखनी द्वारा क्रान्ति का भाव भर दिया । उसने "देशवासियों को एक होकर क्रान्ति और परिवर्तन के लिए कटिबद्ध होने तथा मातृभूमि की आजादी के लिए आत्मबलिदान का संदेश दिया । "[20] यद्यपि संक्रान्ति अथवा द्विवेदी युग में राष्ट्रीय भावना पर्याप्त विकसित प्रतीत होती है, परन्तु नाटक रचना एवं विकास के दृष्टिकोण से यह युग पर्याप्त अविकसित था ।

प्रसाद युग - हिन्दी नाटकों में राष्ट्रीय चेतना की स्पष्ट अभिव्यक्ति मुख्य रूप से प्रसाद युग में होती है । नाटक साहित्य में प्रसाद युग का अपना विशेष महत्व है। जिस प्रकार उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द का युग अपना विशेष महत्व रखता है, प्रसाद युग भी उसी युग का प्रतिनिधित्व करता है। क्योंकि भारतीय राजनीति के मंच पर महात्मा गान्धी का पदार्पण, उनके द्वारा कांग्रेसी आन्दोलन का जनान्दोलन में परिवर्तन, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में विचारधारात्मक परिवर्तन इत्यादि मुख्य रूप से इस युग में ही हुए थे । यह युग सामाजिक, राजनीतिक , धार्मिक एवं साहित्यिक दृष्टिकोण से उथल-पुथल का युग रहा है । इस युग में जनता में नवीन चेतना

20- डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव एवं हरेन्द्र प्रताप सिन्हा- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पुस्तक मन्दिर, इलाहाबाद, 1965, पृ० 264

का निर्माण किया जा रहा था । भारतीय संस्कृति को पुनर्स्थापित करने का प्रयास हो रहा था । अनेक चेतनाशील लोगों के द्वारा साहित्य एवं भाषणों के माध्यम से समाज में जागरण लाने का प्रयास किया जा रहा था । यही वह युग था जबकि जयशंकर प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटकों की रचना की ।

इस युग में यद्यपि नाटककारों ने अपने नाटकों का विषय ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित किया था तथापि यह कोरी ऐतिहासिक घटना न थी वरन् इन घटनाओं में वर्णित भावनाओं के माध्यम से भारतीय जनता में नवजागरण लाने का प्रयास था । हिन्दी नाट्य साहित्य में जयशंकर प्रसाद इस युग के नेता माने जाते हैं । उनके नाटकों में राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है । प्रसाद ने अपने नाटकों में विशेष रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुनर्निर्माण पर बल दिया है जिसके माध्यम से भारतीय जनता को उसके गौरवशाली अतीत का आभास दिला कर उसमें राष्ट्रीय चेतना जागृत की जा सके । डॉ० नगेन्द्र के अनुसार "प्रसाद जी की मौलिक प्रतिभा के स्पर्श से हिन्दी का यह उपेक्षित अंग जगमगा उठा । उनके नाटक साहित्य के मूल में सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की उत्कट प्रेरणा है ।"[21] प्रसाद के अतिरिक्त इस युग के अन्य नाटककारों

21- डॉ० नगेन्द्र -आधुनिक हिन्दी नाटक, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, पंचम संस्करण, संवत् 2012, पृ० 4

ने भी इस दिशा में सराहनीय प्रयास किया । वास्तव में भारतेन्दु युगीन नवजागृत चेतना को, इस काल में प्राचीन संस्कृति के पुनरुत्थान तथा नई सामाजिक चेतना के निर्माण के परिप्रेक्ष्य में नियोजित करने का सराहनीय प्रयास किया गया । इस युग के नाटककारों में मुख्य रूप से जयशंकर प्रसाद का नाम आता है । इसके अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी, सियाराम शरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट, पाण्डेय बेचनशर्मा "उग्र", उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, दाउदयाल गुप्त इत्यादि का नामोल्लेख किया जा सकता है ।

प्रसाद कालीन तथा प्रसादोत्तरकालीन नाटकों को मुख्यत: तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है यथा सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक ।

सामाजिक :

यद्यपि हिन्दी नाटककारों ने, मुख्यत: प्रसाद युग में, प्राचीन भारतीय अतीत का गौरवगान किया है तथापि इस युग में साहित्यकार राष्ट्रीय आन्दोलन में उठने वाली समस्याओं से जुड़ा होने के कारण सामाजिक समस्याओं से अलग न हो सका था । वास्तव में इस युग के नाटककारों ने राष्ट्रीय एकता पर बहुत अधिक बल दिया था । अब सामाजिक कुरीतियों को दूर करना उनका लक्ष्य बन गया था । जिससे राष्ट्रीय एकता एवं संगठन को सुदृढ़ बनाया जा सके ।

छुआछूत की समस्या -

प्रसाद ने अपने नाटक " जनमेजय का नागयज्ञ" मे समाज में ऊँच-नीच के भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया है। नाटक में सरमा कहती है कि " वर्ण समानता आर्य जाति की विशेषता और गौरव था।[22] सेठ गोविन्ददास ने भी छुआछूत समस्या को अपने नाटकों में उठाया है। समाज छुआछूत के कारण दो वर्गों में बँट गया था। सवर्ण, शूद्रों से घृणा करते थे, उनसे किसी प्रकार का व्यवहार नहीं रखते थे, वे उन्हें अपने समान नही समझते थे। गोविन्ददास जी ने इस सामाजिक बुराई के निवारण हेतु अपनी लेखनी उठाई। उन्होंने एक अकुलीन को राष्ट्र को स्वाधीन करने हेतु चुना। उन्होंने जन्म के आधार पर कुलीन - अकुलीन के भेद को स्वीकार नहीं किया वरन् मनुष्य की स्थिति को कर्म के आधार पर निश्चित करने का प्रयास किया। "कुलीनता" नामक नाटक अछूतोद्धार तथा दलितवर्ग के उत्थान की कामना से अभिप्रेरित होकर लिखा गया है। प्रस्तुत नाटक का नायक पदुराम कहता है कि " ये हमे पशु से भी निकृष्ट समझते हैं। हममें कितने ही उच्च गुण क्यों न हों, हम उनके राज्यों में किसी भी उत्तरदायी पद पर आसीन नहीं हो सकते। हम कितने ही सुन्दर क्यों न हो, हम उनकी कन्याओं से विवाह नही कर सकते। हम कितने ही स्वच्छ क्यों न हों, हमारा छुआ हुआ भोजन उनके खाने योग्य नही रह जाता। इतना ही

22- जयशंकर प्रसाद- जनमेजय का नागयज्ञ, पृ0 ।

नहीं यदि देश पर विपत्ति आवे तो यद्यपि हम उनकी अपेक्षा इस देश के पुराने निवासी है, हमे अपने देश की रक्षा करने का भी अधिकार नहीं है ।"[23]

रेवासुन्दरी अकुलीन देशभक्त यदुराम को कुलीनों से किसी भी प्रकार निम्न नहीं स्वीकार करती है । उसके अनुसार" देशभक्त मनुष्य प्रकृति देवी की सबसे महान कृति होता है । वह किसी जाति का नहीं, पर स्वयं प्रकृति देवी का सपूत होता है । जिसे तुम अकुलीन कहते हो (यदुराम को) उसने उसी देश को स्वतन्त्र करने का बीड़ा उठाया है जिसे तुमने विदेशियों के हाथ में बेच दिया । "[24]

"कर्तव्य" नाटक में सेठ गोविन्द दासने अछूतोद्धार समस्या को उठाया है । उन्होंने शूद्र वर्ग का समर्थन किया है । शूद्र कुलोत्पन्न शम्बूक का राम वध करना चाहते हैं, क्योंकि वह तपस्या करता है । उस समय शम्बूक राम को चेतावनी देते हुए कहता है कि " ब्राह्मण यह मानते हैं कि हम शूद्रों को तप का अधिकार नहीं है । मैने यह तप इसी मत के खण्डन के लिए किया है । यदि मेरे तप से कोई शूद्र का बालक मरता तो मेरे तप का कुफल हो सकता था, पर ब्राह्मण बालक मरा इससे यह स्पष्ट हो गया कि वे भूल में हैं। भगवान उनको

23- डॉ0 नगेन्द्र- आधुनिक हिन्दी नाटक, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, पंचम संस्करण, संवत् 2012, पृ0 39 पर उद्धृत ।

24- सेठ गोविन्ददास- कुलीनता, पृ093

बता देना चाहते हैं कि उनके द्वारा उत्पन्न किये हुए किसी भी व्यक्ति पर अत्याचार नहीं हो सकता। यदि ब्राह्मण एक जन समुदाय को सदा नीच बनाये रखने का उद्योग करेंगे, तो हम इसी प्रकार सिर उठावेंगे। इससे इन्हीं का संहार होगा।"[25]

अपने "प्रकाश" नाटक में मुख्य रूप से गोविन्द दास जी ने सामाजिक समस्याओं को उठाया है। उन्होंने सामाजिक भेदभाव का उल्लेख करके जनता में जागृति लाने का प्रयास किया है। प्रकाशचन्द्र मनुष्यों के वर्तमान दुखों का मूल कारण सामाजिक भेद को मानता है।[26] वह अपने ही घर में व्याप्त भेदभाव के सम्बन्ध में जो कुछ कहता है वही पूरे भारतीय समाज पर भी लागू होता है। वह कहता है " इस नगर की अनेक बातों में परिवर्तन की आवश्यकता है उनमें से एक है धनियों और निर्धनों, पठितों और अपठितों, समाज में किसी भी कारण से उच्च स्थान रखने वाला और पतित व्यक्तियों का परस्पर भेदभाव।"[27] इस सामाजिक भेदभाव में सुधार लाने हेतु गोविन्द दास जी ने गान्धीवादी हृदय परिवर्तन सिद्धान्त को श्रेष्ठ माना है। उनके अनुसार स्थाई परिवर्तन अन्दर से होना चाहिए। इस सम्बन्ध में सेठ जी स्त्री पात्र मनोरमा के मुख से अपने विचार व्यक्त

25- वही, कर्तव्य, पृ0 73
26- वही, प्रकाश, पृ0 96
27- वही, पृ0 18

करते हैं, जिसके अनुसार, मेरी तो राय है कि कानून द्वारा समाज सुधार करना ही ठीक सिद्धान्त नही है। समाज सुधार राजकीय शक्ति की अपेक्षा आन्तरिक परिवर्तन द्वारा ही करने का प्रयत्न अच्छा है और वही स्थाई भी रह सकता है ।"[28]

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटक "सन्यासी" में कुछ स्वार्थी लोगों पर व्यंग्य किया है जो अपने स्वार्थ के आगे राष्ट्र की प्रगति एवं हित को तुच्छ जानते हैं । इसी प्रकार का एक व्यक्ति गौरीदत्त गान्धी के अछूतोद्वार कार्यक्रम का विरोध करते हुए कहता है कि "आजकल तो मन्दी है । गान्धी जी के मारे किसी की रोजी नहीं चल सकेगी । गाँव के चमार सब सभा कर रहे हैं । हम लोगों का काम हर्ज हो रहा है ।"[29]

उदयशंकर भट्ट अपने नाटक " दाहर अथवा सिन्ध पतन" में सिन्ध प्रदेश के अन्तिम हिन्दू राजा दाहर पर अरब आक्रामक मुहम्मद मीर कासिम के आक्रमण की कथा के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का आदर्श प्रस्तुत करते हैं । उनके अनुसार धर्म, वर्ण, वर्ग और जाति के भेदों को मिटाकर भारतवासी राष्ट्रीय एकता के आदर्श को स्थापित करें । दाहर द्वारा समाज में निम्न मानी जाने वाली जातियों - लोहान, जाठ और गूजर को क्षत्रिय जाति में सम्मिलित कर लेने की घटना राष्ट्रीय एकता का

28- वही, पृ0 12

29- लक्ष्मीनारायण मिश्र, सन्यासी, पृ0 77

आदर्श प्रस्तुत करती है। दाहर कर्म के अनुसार जातियों की व्यवस्था मानता है न कि जन्म के अनुसार। नाटक में कर्मणा जाति की व्यवस्था दिखाई पड़ती है, इसमें दाहर आदेश देता है कि " कर्म की श्रेष्ठता प्रत्येक व्यक्ति में अपने दैनिक व्यवहार पर निर्भर है। लोहान, जाट और गुर्जरों में वैसा ही क्षत्रियत्व है जैसा कि वीरता का कार्य करने वाले अन्य क्षत्रियों में।"[30] प्रस्तुत नाटक में वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास प्रकट किया गया है तथा शूद्र वर्ण को नीच न मानने का उपदेश दिया गया है।

बद्रीनाथ भट्ट भी अपने नाटक " वेन चरित्र" में सामाजिक भेदभाव को अनुचित बताते हुए ऐसे लोगों को उलाहना देते प्रतीत होते हैं जो निम्न वर्ग के सदस्यों को हेय समझते हैं। नाटक में शूद्रों का सरदार जखीना सवर्णों के सम्बन्ध में कहता है कि "बड़प्पन के घमण्ड के नशे में इन लोगों ने सारी दुनिया को अपने से हेय समझा, और जब दुनिया की सीमा खत्म हो गई तब आपस में ही एक दूसरे को नीचा समझने लगे।"[31]

प्रसादकालीन नाटककारों ने सामाजिक भेदभाव को राष्ट्रीय एकता के लिए हानिकारक बताते हुए राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया है।

30- उदयशंकर भट्ट - दाहर अथवा सिन्ध पतन, पृ0 67

31- बद्रीनाथ भट्ट - वेन चरित्र, पृ0 35

भाग्यवाद -

भारतीय समाज की एक त्रुटि रही है कि यहाँ के लोगों में भाग्यवाद एवं रूढ़िवाद को बहुत अधिक प्रश्रय दिया जाता है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन भारतीय समाज की इस कुरीति से पीड़ित हो रहा था। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने "मुक्ति का रहस्य" नाटक में इसी भाग्यवाद एवं रूढ़िवाद का वर्णन किया है। उमाशंकर नियति की दुहाई देते हुए कहता है, " उसके भाग्य में जो होगा .... मनुष्य जो लेकर पैदा होता है .... वही, ... कोई बदल नहीं ..... आदमी का जीवन और यह विराट जगत .....समुद्र के बुलबुले उठे और बैठे ...।"[32]

"राजयोग" नाटक में मिश्र जी ने स्त्री में भी रूढ़िवाद के दर्शन कराये हैं। नाटक में चम्पा कहती है " किसी बड़े सिद्धान्त की रक्षा में यदि सर्वनाश भी क्यों न हो जाय तो कोई बात नहीं। शास्त्रों की मर्यादा और मेरे मन में जहाँ कहीं द्वन्द्व चलता है ....स्त्री के लिए पति ईश्वर है, आप नहीं जानते सदवा स्त्री के लिए तीर्थ और व्रत शास्त्रों में वर्जित है पति ईश्वर है .... पति भगवान है।"[33]

"आधी रात" नाटक में भी मिश्र जी ने आधुनिकता का विरोध प्रदर्शित किया है। उनके अनुसार भारतीय सभ्यता पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से विकृत हो गई है और यदि भारतीय सभ्यता को सुरक्षित रखना है तो उसका पुनर्संस्कार आवश्यक है। प्रस्तुत नाटक में अनेक स्थलों

32- लक्ष्मी नारायण मिश्र - मुक्ति का रहस्य, पृ0 87
33- वही, राजयोग, पृ0 25

पर पाश्चात्य प्रभाव से दूषित हुई भारतीय संस्कृति के पुर्नसंस्कार की आवश्यकता बतायी गई है । मायावती आगाह करती है कि " नये युग के इन नये प्रयोगों का परिणाम अच्छा नहीं होगा ..... मैंने चाहा यहाँ स्त्रियों केलिए आदर्श बनना । अपनी स्वतन्त्रता की धुन में नई सभ्यता और नई रोशनी की चमक-दमक में आज अनुभव हो रहा है कि मैं अन्धी हो गई थी । पुरूष और स्त्री का द्वन्द्व समानता का अधिकार पश्चिम की हवा है । यह हवा यहाँ पहुँचकर हमारे दाम्पत्य, हमारे सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या हो रही है ।"[34] एक अन्य स्थल पर भी वह कहती है कि मनुष्य का संस्कार जब तक नहीं बिगड़ता उससे कोई बुराई नहीं होती । इस स्वतन्त्र युग के वायुमण्डल में मनुष्य के सभी बन्धन टूट गये । बन्धन के टूट जाने पर पशु जैसे मनमानी करने लगता है, मनुष्य भी वही कर रहा है और उसी का नाम है शिक्षा, सभ्यता और स्वतन्त्रता ।"[35]

परन्तु जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक "अजातशत्रु" में व्यक्तिगत इच्छाशक्ति तथा पौरूष को महत्व प्रदान किया है । नाटक में रानी अपने पुत्र विरूद्धक के अन्तर्गत आत्मसम्मान के भाव जागृत करती है " बालक । मात्र अपनी इच्छा शक्ति और पौरूष से ही कुछ होता है । जन्म सिद्ध तो कोई भी अधिकार दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता

34- वही, आधी रात, पृ० 36
35- वही, पृ० 76

है । विश्वभर में छोटे से बड़ा होना यही प्रत्यक्ष नियम है ।"[36]

साम्प्रदायिकता की समस्या -

प्रसाद कालीन युग गान्धीयुगीन रचनात्मक कार्यों का युग था । गान्धी जी ने अपने राष्ट्रीय आन्दोलनों का एक भाग रचनात्मक कार्यों को भी बनाया था । समकालीन नाटककारों ने युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर विभिन्न समस्याओं को अपने नाटकों का विषय बनाया। जिनमे एक समस्या साम्प्रदायिक भी थी ।

प्रसाद के नाटकों में किसी धर्म विशेष के विरूद्ध घृणा की भावना नहीं पाई जाती है । यद्यपि अंग्रेजी राज्य विदेशी था, उसका धर्म अलग था, उसकी संस्कृति अलग थी, फिर भी उनकी रचनाओं में उसके विरूद्ध कोई घृणाभाव नही प्राप्त होता है । गान्धी जी की भाँति ही प्रसाद भी एक सार्वलौकिक धर्म में विश्वास करते हुए प्रतीत होते है । "स्कन्दगुप्त" नाटक में वह(कहते है, "समष्टि में भी व्यष्टि रहती है, व्यक्तियों से ही जाति बनती है। विश्वप्रेम सर्वभूत हित कामना परम धर्म है।"[37] प्रसाद के नाटक " कामना" का रचनाकाल हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य में तीव्रता का काल था । अतः उन्होंने इस वैमनस्य को दूर करने का प्रयास किया । नाटक में विवेक उत्तेजित युवकों से कहता है कि हम लोगों को भाई समझकर मित्रभाव की स्थापना करो और इनके अत्याचारों से रक्षा करो । हम परस्पर दूसरे के सहायक हों ।"[38]

36- जयशंकर प्रसाद - अजातशत्रु, पृ0 56 ।

37- जयशंकर प्रसाद - स्कन्दगुप्त, पृ० ६८

38- जयशंकर प्रसाद- कामना, पृ0 24

'जनमेजय का नागयज्ञ" नाटक में भी हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की ओर संकेत किया गया है। डॉ0 धर्मपाल सरीन के अनुसार, "जनमेजय का नागयज्ञ" भले ही पौराणिक नाटक है परन्तु इसमें आर्यों और अनार्यों का संघर्ष हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष ही है।"[39]

"स्कन्दगुप्त" नाटक के चतुर्थ अंक के पांचवे दृश्य में प्रसाद ने बौद्धों और ब्राह्मणों के झगड़े का उल्लेख किया है, जो वास्तव में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान हिन्दू-मुस्लिम दंगों की ओर संकेत है। इसके माध्यम से साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता पर "चन्द्रगुप्त" नाटक में प्रसाद व्यंग्य करते हैं। चाणक्य की नीति का प्रमुख तत्व एक राष्ट्र की स्थापना है। प्रसाद इसी एक राष्ट्र की भावना को प्रोत्साहन देते हुए लिखते हैं कि मालव और मागध को भूलकर जब आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा।"[40] सिंहरण अलका से कहता है "परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं, गान्धार भी है। यही समग्र आर्यावर्त है।"[41] साम्प्रदायिक एकता को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से प्रसाद ने चन्द्रगुप्त एवं यवन कन्या कार्नेलिया का विवाह सम्बन्ध स्थापित

39- डॉ0 धर्मपाल सरीन- हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता संघर्ष, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1973, पृ0 111।

40- जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ0 59

41- वही, पृ0 60

करवाया है ।

हरिकृष्ण प्रेमी जी के नाटकों में सर्वाधिक प्रचुरता से हिन्दू मुस्लिम समस्या के दर्शन होते हैं । उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए इस साम्प्रदायिक वैमनस्य को बाधक माना था । अतः अपने नाटकों में साम्प्रदायिक समस्या को उठा कर उसका समाधान खोजने का प्रयास किया । विश्व प्रसाद दीक्षित बटुक के अनुसार" साम्प्रदायिक द्वेष ऐसा ज़हर है जो चिरकाल से जातीयता की नाड़ियों में प्रवाहित होकर उसे क्षीणप्राय करता रहा है । ..... विदेशियों के प्रभाव से आज तक इसका प्रभाव बढ़ता ही गया है । इस विष की धारा को समाप्त करने के लिए ही प्रेमी जी ने ऐतिहासिक पन्नों को पलटा ।"[42] स्वयं प्रेमी जी ने अपने नाटक "स्वप्न-भंग" की भूमिका में लिखा है कि " मैने अपने नाटकों के द्वारा राष्ट्रीय एकता का भाव पैदा करने का प्रयत्न किया है । मेरे इन लघु यत्नों को राष्ट्रीय यज्ञ में क्या स्थान मिलेगा, यह मैं नही जानता ।"[43]

यही कारण था कि उन्होंने जयशंकर प्रसाद की परिपाटी का परित्याग कर राजपूतों और मुगलों के इतिहास को अपने नाटकों का आधार बनाया । डॉ० शिवमूर्ति शर्मा के शब्दों में ," प्रेमी" के सभी

42- विश्व प्रसाद दीक्षित 'बटुक'- हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ035 ।

43- हरिकृष्ण प्रेमी - "स्वप्न-भंग," भूमिका ।

नाटक राजपूतों और मुगलों की युग चेतना से आप्लावित है । "[44]
राजपूतों और मुगलों के इतिहास को भारतीय साम्प्रदायिक समस्या के यथार्थ रूप में देखा जा सकता है ।

" रक्षा बन्धन" नाटक में प्रेमी जी जातीय एकता को स्थापित करने का प्रयास करते हैं । विक्रम कहता है, "मजहब मनुष्य के हृदय के प्रकाश का नाम है । जो मज़हब का नाम लेकर तलवार चलाते हैं वे दुनिया को धोखा देते हैं, धर्म का अपमान करते है । सच्चा वीर वही है जो न हिन्दुओं के अन्याय का हिमायती है और न मुसल्मानो को। वह न्याय का साथी है और आजादी का दीवाना है ।[45]

हुमायूँ के माध्यम से भी प्रेमी जी ने साम्प्रदायिक एकता को स्थापित करने का प्रयास किया है । हुमायूँ कुरान शरीफ का प्रमाण देकर यह घोषित करता है कि तुम सब एक ही परवरदिगार की औलाद हो । हिन्दुओं के अवतारों ने और तुम्हारे पैगम्बर ने एक ही रास्ता दिखाया है । कुरान शरीफ में लिखा है हमने हर गिरोह के लिए इबादत का एक खास रास्ता मुकर्रिर कर दिया है जिस पर वह अम्ल करता है । इसलिए उस पर झगड़ा न करो । .... यही बात हिन्दुओं की मजहबी किताबें कहती है फिर मजहब दोनो की दोस्ती के बीच में दीवार कैसे बन सकता है । "[46]

44- डॉ0 शिवमूर्ति शर्मा- हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1982, पृ0 168 ।

45- हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षा बन्धन, पृ0 23 ।

46- वही, पृ0 53-54

हुमायूँ एक अन्य स्थल पर भी हिन्दुओं और मुसलमानो की संकीर्ण धार्मिक एवं जातिगत भावनाओं को दूर करने का प्रयास करता है। जब मेवाड़ की रानी कर्मवती हुमायूँ को भाई कहकर राखी भेजती है तो वह कहता है " हमें अब दुनिया की हर किस्म की तंगदिली के खिलाफ जिहाद करना चाहिए, हमारा काम भाई के गले पर छुरी चलाना नहीं, भाई को गले लगाना है । भाई को ही नहीं दुश्मन को भी गले लगाना है । दुनिया के हर एक इन्सान को अपने दिल की मुहब्बत के दरिया में डुबा लेना है । बहन कर्मवती ने इसी दरिया के दो बड़े हिस्सों हिन्दू और मुसलमानों को जिस मुहब्बत के धागे में बाँध दिया है, वह कभी न टूटे , मैं खुदा से यही चाहता हूँ । "[47] "रक्षा बन्धन" में साम्प्रदायिक सद्भाव की भावना के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं " प्रेमी जी के "रक्षाबन्धन" में मेवाड़ की महारानी कर्मवती का हुमायूँ को भाई कहकर राखी भेजना और हुमायूँ का गुजरात के मुसलमान बादशाह बहादुरशाह के विरुद्ध एक हिन्दू राज्य की रक्षा के लिए पहुँचना यह कथावस्तु ही हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव की शान्ति सूचित करती है । उसके ऊपर कट्टर सरदारों और मुल्लों की बात का विरोध करता हुआ हुमायूँ जिस उदार भाव की सुन्दर व्यंजना करता है वह वर्तमान हिन्दू-मुस्लिम दुर्भाव की शान्ति का मार्ग दिखाता जान पड़ता है ।"[48]

47- वही, पृ0 110

48- रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 508 ।

"प्रेमी" जी हिन्दुओं और मुसलमानों में नैतिकता का समावेश करने का प्रयास करते हैं । वे किसी सम्प्रदाय विशेष को इसके लिए दोषी नहीं ठहराते हैं । वे न तो ऐसे हिन्दू को पसन्द करते हैं जो संकीर्ण जातीयता के आधार पर कार्य करता है तथा न ऐसे मुसल्मान का समर्थन करते हैं जो धार्मिक विद्वेष के आधार पर दूसरे को हानि पहुँ ाता है । उनके अनुसार, " अत्याचारी हिन्दू से ईमानदार मुसलमान ज्यादा प्यारा है । वह अत्याचारी मुसलमान का जितना दुश्मन है, बेईमान और विश्वासघाती हिन्दू का उससे अधिक शत्रु है ।"[49]

"प्रेमी" जी एक संगठित राष्ट्र के समर्थक थे । अंग्रेजों की "फूट डालो और शासन करो " की नीति से वह भलीभाँति अवगत थे । अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों में साम्प्रदायिक भेदभाव उत्पन्न करके भारत को अलग-अलग टुकड़ों में तोड़ने का प्रयास किया । "प्रेमी" जी इसी वास्तविकता से प्रभावित होकर महाराणा और हुमायूँ का वार्तालाप कराते हैं । महाराणा हुमायूँ से कहते है " हिन्दू और मुसल्मान यह दोनो ही नाम धोखा है, हमें अलग-अलग करने की दीवारें हैं । हम सब हिन्दुस्तानी हैं । "[50]

49- हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षाबन्धन , पृ0 21 ।
50- वही, पृ0 210

"शिवसाधना" नाटक में शिवाजी कहते है " मैने कभी किसी मस्जिद की एक ईंट को भी आँच नही आने दी । जहाँ मुझे कुरान मिली मैंने उसे आदर के साथ किसी मौलवी के पास पहुँचा दिया है । सर्वसाधारण की स्वतन्त्रता की साधना करने वाले के हृदय में धार्मिक असहिष्णुता क्यों ? " 51 इसी नाटक में मुगल सेनापति दिलेर खाँ औरंगजेब के हृदय से धर्मान्धता और कट्टरता नष्ट करने के प्रयास में कूटनीतिक सुझाव देता हुआ प्रतीत होता है । वह कहता है" हम मुट्ठीभर मुसलमान करोड़ों हिन्दुओं पर तलवार के जोर से ज्यादा दिनों तक हुकूमत नही कर सकते । उन्हें तो मुहब्बत से ही जीता जा सकता है । वे दरियादिल हैं, वे खुद भूखे रहकर परदेसियों के लिए थाली परोसे खड़े रहते हैं । ऐसी कौम के एहसान को मत भूलो औरंगजेब , उनके भाई बनो बादशाह नहीं । तब तुम देखोगे कि तुम तख्तताऊस पर नहीं उनके दिलों के सिंहासन पर बैठकर हुकूमत कर रहे हो ।"52

सेठ गोविन्ददास स्वयं एक स्वतन्त्रता सेनानी थे । उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलन के हर पहलू को देखा था उन्होंने उन समस्याओं को भी देखा था जिनके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन का मार्ग अवरुद्ध हो रहा था । ऐसे कारणों में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता एक बहुत बड़ा कारण था । अत: गोविन्द दास जी ने हिन्दुओं और

51- वही, शिवासाधना पृ0

52- वही, पृ0 158

मुसलमानो के मध्य सहृदयता एवं सहिष्णुता की भावना को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया । सेठ गोविन्द दास अंग्रेजों द्वारा अपनाई जा रही विभाजनवादी नीति के आलोचक हैं । उन्होंने अंग्रेजो के विरुद्ध भारत-वासियों को एक करने का प्रयास किया । उनका नाटक "सिद्धान्त स्वातन्त्र्य" इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है ।[53] उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा के अन्तर्गत धार्मिक एवं सांस्कृतिक सुरक्षा के दर्शन किये । उनके "कुलीनता" नाटक मे एक देशभक्त मंत्री सुरभि पाठक विजयसिंह से कहता है "श्रीमान् मैं वैसा ब्राह्मण नही हूँ कि कुछ मन्दिरों के मस्जिद बन जाने के भय और कुछ मूर्तियों के टूट जाने के डर से देश की स्वतन्त्रता खो दूं । देश स्वतन्त्र रहा तो अगणित मन्दिरों और मूर्तियों की स्थापना हो जायेगी ।"[54]

"हर्ष" नाटक में गोविन्ददास जी धार्मिक सहिष्णुता को स्थापित करने का प्रयास करते है । उनके अनुसार सारे धर्मो पर समान रूप से श्रद्धा रख और अपने पराये सभी को अपना बन्धु समझ मैंने अपने जीवन का अब तक का समय व्यतीत करने का प्रयत्न किया है ।"[55] जब माधवगुप्त यांग-च्यांग से पूछता है कि क्या संसार में एक धर्म, एक भाषा और एक सामाजिक संगठन की स्थापना हो सकती है । तो यांग-च्यांग उत्तर देता है कि यह चाहे न हो परन्तु उस सहिष्णुता की स्थापना अवश्य

53- सेठ गोविन्ददास -सिद्धान्त स्वातन्त्र्य, पृ0 15 ।
54- सेठ गोविन्द दास -कुलीनता, पृ0 32 ।
55- वही, हर्ष " पृ0 129

हो सकती है जिसमें एक धर्म, एक भाषा और एक प्रकार के सामाजिक संगठन वाले दूसरे धर्म, दूसरी भाषा और दूसरे प्रकार के सामाजिक संगठन वालों को अपना शत्रु न समझकर मित्र समझे। एक दूसरे का रक्तपात करने के इच्छुक न रहकर एक दूसरे को सहायता पहुँचाये।"[56] "विकास" नाटक में भी आकाश कहता है कि " इसलिए तुम्हारे भारत देश में महात्मा गांधी ने जन्म लिया है। यह देखकर कि केवल धर्म प्रचार से मानव समाज अपने ज्ञान के अनुसार कर्म नहीं कर सकता। केवल इतने से ही प्रेम के साम्राज्य और अहिंसा की स्थापना नहीं हो सकती। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र, यहाँ तक कि राजनीति में भी प्रेम और अहिंसा को प्रधान स्थान दिया है।"[57]

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पारस्परिक भेदभाव की भावना से पीड़ित हो रहा था। भारतवासियों में एकता की भावना का अभाव था, वे पारस्परिक भेदभाव की भावना से ग्रसित थे। "शशिगुप्त " नाटक में इसी पारस्परिक भेदभाव को भुलाकर एक होने का सन्देश दिया गया है। चाणक्य समस्त आर्यावर्त की गौरवरक्षा के लिए कटिबद्ध है। वह पर्वतेश्वर को भी यह समझाता है कि यदि हम सब अब एक होकर संगठित शक्ति से यवन आक्रमण का विरोध नहीं करेंगे, तो देश शताब्दियों के लिए दासता की श्रृंखला में जकड़ जायेगा और भारत पर अभूतपूर्व अत्याचार

56- वही, पृ0 109

57- वही, विकास, पृ0 88-89

होगी ।"[58] चाणक्य के द्वारा देश की सुरक्षा के लिए सभी छोटे-छोटे राजाओं को एक होने की परामर्श दी गई है । उसके अनुसार, भारत के भी समस्त नरपतिगण तथा गणतन्त्र यदि एक हो जायँ तो उनके तेज के सम्मुख यवन । ओह । एक यवन ही क्या यदि संसार के समस्त राष्ट्र भी आक्रमण करें तो उनकी दशा होगी जो चमकते हुए दीप पर पंतगों की, जो प्रज्जवलित दव पर रिमझिम बरसने वाली बूँदों की, जो जागृत ज्वालामुखी पर ओलों की ।"[59]

प्रेमचन्द्र, जो राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी लेखनी द्वारा योगदान कर रहे थे, ने अपने नाटक "कर्बला" में साम्प्रदायिक एकता को स्थापित करने का प्रयास किया । वास्तव में प्रेमचन्द गान्धी जी के मध्यम मार्ग को स्वीकार करने वाले थे । जहाँ गान्धी जी ने हिन्दुस्तान की अवधारणा को स्वीकार किया वहीं एक राष्ट्रीय लेखक होने के नाते उन्होंने हिन्दी और उर्दू को मिलाकर हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग किया । उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया और सदा यह सावधानी बरती कि कहीं उनकी रचना से किसी हिन्दू अथवा मुसलमान की धार्मिक भावना को ठेस न लगने पाये । "कर्बला" में इसी उद्देश्य को प्राथमिकता दी गई है। इस नाटक का उद्देश्य स्वयं प्रेमचन्द ने पारस्परिक

58- वही, शशिगुप्त, पृ0 26

59- वही, पृ0 32

साम्प्रदायिक एकता को बढ़ाना स्वीकार किया है । 26 फरवरी 1925 ई0 के अपने पत्र में प्रेमचन्द ने मुंशी दयानारायण निगम को लिखा था कि "आप यकीन रखें । मैंने अहतराम कहीं नज़र-अन्दाज नहीं होने दिया है । एक-एक लफ़्ज पर इस बात का ख्याल रखा है कि मुसलमानों के मजहबी एहसासात को सदमा न पहुँचे । इसका मकसद पोलिटिकल है, वाहमी इत्तहाद को बढ़ाना है और कुछ नहीं ।[60]

"कर्बला" नाटक में साहसराय नामक अरब वासी हिन्दू युद्ध में हुसैन की जान बचाता है। हुसैन साहसराय तथा उसके मजहब की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है । साहसराय एक स्थल पर कहता है कि " मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि जब कभी इस्लाम को हमारे रक्त की आवश्यकता हो, तो हमारी जाति में अपना वध खोल देने वालों की कमी न रहे ।"[61]

हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य साम्प्रदायिक झगड़ों को शान्त करने के उद्देश्य से प्रेमचन्द ने "कर्बला" में दोनों धर्मों के सारतत्व को स्पष्ट करने की चेष्टा की है । मुसलमानों के धर्म के सारतत्व के सम्बन्ध में वे कहते हैं "लेकिन दुनिया में रहकर इन्साफ इज्जत और ईमान के लिए प्राण देना हर एक सच्चे मुसलमान का फर्ज है । खुदा-नबियों के हाथों हिदायत के बीज बोता है और शहीदों के खून से उसे सींचता है। शहादत

60- भगोरानी गुर्टू/प्रेमचन्द और गोर्की, पृ0 23

61- प्रेमचन्द -कर्बला, पृ0 257

वह आला से आला रुतबा है जो खुदा इन्सान को दे सकता है ।"[62]

हिन्दुओं के सम्बन्ध में नाटक में राजसिंह कहता है कि धर्म की रक्षा रक्त से नहीं होती, शील, विनय, सदुपदेश, सहानुभूति, सेवा में सब उसके परीक्षित साधन हैं ।"[63]

रामनरेश त्रिपाठी ने अपने नाटक "वफाती चाचा" में वफाती का चरित्र हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ही जातियों के लिए अनुकरणीय बनाया है । इसके हृदय में हिन्दुओं के प्रति वैसी ही उदार भावनाएँ हैं जैसी कि मुसलमानों के प्रति । मुसलमानों की धर्मान्धता तथा हिन्दू महासभा के नेताओं की करतूतों से वफाती का हृदय वेदना से भर जाता है और वह यथाशक्ति दोनों जातियों को सन्मार्ग पर लाने तथा परस्पर प्रेम बनाये रखने की शिक्षा देते हैं । नाटक की प्रस्तावना में ही हिन्दू और मुसलमान पात्र सम्मिलित रूप से गाते हुए दोनों जातियों को एक होने की प्रार्थना करते हैं ।[64] त्रिपाठी जी ने एक अन्य हिन्दू पात्र रतन पाण्डेय के मुख से हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्थापित करने का प्रयास किया है । वह अपने घर आये हुए हिन्दू और मुसलमान मेहमानों के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहता है कि "मेरे पड़ोसी भाइयों ! आप चाहे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान, पड़ोसी होने के नाते सब मेरे भाई हैं । आज मेरे बच्चे का

62- वही, पृ0 113

63- वही, पृ0 57

64- रामनरेश त्रिपाठी- वफाती चाचा, पृ0 1

मुण्न्न हुआ है उसकी खुशी में मैंने आपको शरीक होने की तकलीफ दी है। आप भाइयों ने उसे मंजूर करके मेरा मान बढ़ाया है।[65] वफाती की स्त्री जैनव भी हिन्दुओं और मुसलमानों के साम्प्रदायिक भेदभाव पर दुःख व्यक्त करते हुए कहती है कि " खुदा ने हिन्दू- मुसलमान को एक ही सा दिल दिया है। पता नहीं उस पर अलग-अलग कलई किसने चढ़ा दी।"[66]

चतुर सेन शास्त्री के नाटक "अमरसिंह" में हिन्दुओं और मुसलमानों में साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने का प्रयास मिलता है। अमरसिंह अपने धर्म को तिलांजलि देकर एक मुसलमान शाहनवाज खाँ की जान बचाता है। मुसलमान शाहनवाज खाँ हिन्दू धर्म की उदारता के सम्मुख सर झुकाता है और धर्मान्ध मुसलमानों को मानवता द्रोही कहकर धिक्कारता है।[67]

ब्रिटिश शासन की "फूट डालो और शासन करो " की नीति को जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" जी ने"प्रताप प्रतिज्ञा "नाटक में अकबर के मुख से कहलवाया है। वह कहता है " जाओ बेवकूफ बहादुरों, जाओ। लड़ो खूब लड़ो, बेइज्जती पाने के लिए लड़ो, गुलामी को गले लगाने के लिए जान लड़ाओ दो घड़ी की सुर्खरू हासिल करने के लिए कौम की जड़

65- वही, पृ06
66- वही, पृ0 18
67- चतुरसेन शास्त्री- अमरसिंह, पृ0 102-103

में आग लगाओ और अकबर, अकबर आराम करेगा। लोहों से लोहों को लड़कार फूलों की खुशबू लेगा।"[68]

साम्प्रदायिक समस्या ने राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधा उपस्थित की थी। अंग्रेजो की "फूट डालो और शासन करो" की नीति सफल हो रहीथी। लेकिन दूसरी ओर गाँधी जी के नेतृत्व में साम्प्रदायिक एकता को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा था। हिन्दी नाटककारों ने इस दिशा में सराहनीय प्रयास किया। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाली इस बाधा को अपने नाटकों में विस्तारपूर्वक चित्रित करने का प्रयास है ताकि भारतीय समाज को साम्प्रदायिकता के विषय में शिक्षित किया जा सके तथा इस संकीर्णता से समाज को मुक्त किया जा सके। उन्होंने विभिन्न प्रकार से अपने नाटकों में साम्प्रदायिकता को हीन एवं तुच्छ सिद्ध करने का प्रयास करते हुए भारतवासियों को एक होने का सन्देश दिया है।

68- जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द"-प्रताप प्रतिज्ञा, पृ० 74

मद्यनिषेध -

गान्धी जी के रचनात्मक कार्यक्रम में मद्यनिषेध भी था। इसके लिए गान्धी जी ने पिकेटिंग को प्राथमिकता दी थी। हिन्दी नाटककारों ने अपने नाटकों में भी गान्धी जी के इस प्रयास को स्थान प्रदान किया है। मद्यनिषेध का दोहरा लाभ था, एक ओर मदिरा के विक्रय से अंग्रेजी शासन को जो लाभ हो रहा था, उसे रोका जा सकता था, वहीं दूसरी ओर जो मानव-शक्ति मद्यपान के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में नहीं लगाई जा सकती थी, उसे प्राप्त किया जा सकता था और साथ ही भारतीय समाज में फैली दरिद्रता का निवारण भी सम्भव किया जा सकता था।

जयशंकर प्रसाद के नाटक "अजातशत्रु" में गौतम बुद्ध मादक द्रव्यों को निषिद्ध बताते हैं। नाटक का पात्र उदयन मदिरा न पीने का व्रत लेता है[69] "कामना" नाटक में स्वर्ण और मदिरा का प्रचार जाति को पतित करने का कारण माना गया है[70]

स्त्री समस्या -

हिन्दी नाटकों में स्त्री समस्या को भी उठाया गया है। भारतीय समाज में स्त्री का स्थान पुरूष से निम्न माना जाता रहा था। अतः गान्धी जी ने स्त्री उद्धार का बीड़ा उठाया तथा उसको समाज में

69- जयशंकर प्रसाद- अजातशत्रु , पृ0 44

70- वही, कामना, पृ0 13

सम्मान का पद प्रदान करने का प्रयास किया। राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियों के द्वारा भाग लेना, पुरूषो के साथ स्त्रियों की समानता के अधिकार की मांग इत्यादि हिन्दी नाटककारों पर प्रभाव डाल रहे थे।

जयशंकर प्रसाद के "अजातशत्रु" नाटक में शक्तिमती विद्रोही विचार व्यक्त करती है कि "हमारी असमर्थता सूचित कराकर हमें और भी निर्मूल आशंकाओं में छोड़ देने की कुटिलता क्यों है ? क्या हम पुरूषों के समान नहीं हो सकतीं ? क्या चेष्टा करके हमारी स्वतन्त्रता नहीं पददलित की गई है ? "[71] "ध्रुवस्वामिनी" नाटक में स्त्री स्वातन्त्र्य की भावना को स्थापित किया गया है। प्रसाद के अनुसार स्त्रियों को पुरूषों की सम्पत्ति अथवा उपभोग की वस्तु नहीं समझा जाना चाहिए। इसके लिए इन्होंने स्वयं नारी में जागरण एवं आत्माभिमान के भाव को जाग्रत करने का प्रयास किया है। जाग्रत नारी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रसाद वर्णन करते है, "पुरूषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बनालिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो। "[72]

71- जयशंकर प्रसाद- अजातशत्रु, पृ० 121

72- वही, ध्रुवस्वामिनी, पृ० 26-27

सेठ गोविन्द दास स्त्री-पुरुष के भेदभाव को समाप्त कर उन्हें समानता के धरातल पर लाने के पक्षपाती थे। वे स्त्री की दयनीय स्थिति से उसको उबारने के समर्थक थे। "प्रकाश" नाटक में स्त्री पात्र रूक्मिणी कहती है, "स्त्रियों का प्रश्न क्या साधारण प्रश्न है ? उनमें शिक्षा नहीं, सामाजिक जीवन नहीं, कुछ भी नहीं है। वे जन्म भर पर्दे में सड़ाई जाती हैं। पुरूष जिस रास्ते से ले जाय वही उनका मार्ग है। क्या उन्हें कोई भी स्वतन्त्रता है ? माँ-बाप जिस उम्र में, जिसके साथ चाहे विवाह कर दें। यदि दुर्भाग्य से बाल्यावस्था में वैधव्य आ गया तो जन्म भर दुख ही दुख। अगर कोई विधवा न हुई और कहीं उसको बुरा पति मिल गया तो भी क्लेश ही क्लेश। डाइवोर्स तक नहीं हो सकता।"[73] "हर्ष" नाटक में हर्ष कहता है कि "यदि कोई बात आज पर्यन्त नहीं हुई है और वह उचित है भी तो अवश्य होनी चाहिए। पुरूषों का स्थान समाज में ऊँचा और स्त्रियों का निम्न माना गया है। भगवान् बुद्ध ने स्त्रियों को पुरूषों की अनुगामिनी न मानकर संगिनी मान, उन्हें धार्मिक कार्यों में पुरूषों के समान ही अधिकार दे दिये है। सद् धर्म में यदि पुरूष भिक्षु हो सकते है तो स्त्रियाँ भी भिखारी, मैं राजकाल में भी स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार देने की परिपाटी चलाना चाहता हूँ। यदि पुरूष सिंहासनासीन हो सकते हैं, तो स्त्रियाँ भी, विधवाएँ भी।"[74]

73- सेठ गोविन्ददास, प्रकाश, पृ० 11

74- वही, हर्ष, पृ० 47-48

प्रेमचन्द स्त्रियों की स्वतन्त्रता एवं पुरुषों के साथ उनके समान अधिकार के समर्थक हैं । वे भारतीय स्त्रियों की परतन्त्रता से विदेशों में स्त्रियों की स्वतन्त्रता की तुलना करते हैं । "संग्राम" नाटक में सबलसिंह अपनी पत्नी ज्ञानी से प्रगतिवादी विचार व्यक्त करता है कि " देश-देशान्तर की पत्र-पत्रिकाओं को देखता हूं तो वहाँ की स्त्रियों की स्वाधिनता के सामने यहाँ का कठोर शासन कुछ अच्छा नहीं लगता । अब स्त्रियाँ कौंसिलों में जा सकती हैं, वकालत कर सकती हैं, यहाँ तक भारत में भी स्त्रियों को अन्याय के बन्धन से मुक्त किया जा रहा है, तो क्या मैं ही सबसे गया बीता हूं कि पुरानी लकीरें पीटे जाऊँ ।"[75]

75- प्रेमचन्द - संग्राम , पृ0 131

सुदर्शन के "अन्जना" नाटक में नारी स्वतन्त्रता एवं जागरण को प्रदर्शित किया गया है । सुदर्शन के मत में नारी का स्थान पुरुषों की अधीनता में नही होना चाहिए वरन् उन्हें पुरुषों के समान समाज में स्थान प्राप्त होना चाहिए । -- -

राजनीतिक :

हिन्दी नाट्य साहित्य में नाटककारों ने राजनीति को स्पष्ट किया है । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत राजनीति का क्या स्वरूप था इसको स्पष्ट करते हुए वे प्रतीत होते है । हरिकृष्ण प्रेमी जी ने अपने नाटक "रक्षाबन्धन" में "राजनीति" शब्द की सामयिक व्याख्या करवाई है । नाटक में सेठ धनदास के अनुसार "नग्न शब्दों में राजनीति का अर्थ है बहरूपियापन । सफल राजनीतिज्ञ वही है जो समय देखकर नीति, राष्ट्रीयता, जाति, धर्म सब कुछ बदल सके, जिसका अपना कोई सिद्धान्त न हो, जो समय की गति के विरूद्ध सूखे सिद्धान्तों से चिपके रहने की कट्टरता-संकीर्णता प्रकट न करे । "[77] सेठ धनदास के उपर्युक्त कथन का आशय दोहरा माना जा सकता है । एक ओर तो ब्रिटिश शासन की कूटनीति जिसके अन्तर्गत वे किसी सिद्धान्त को न अपनाते हुए शासन कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गान्धीवादी नीति एवं सिद्धान्तों को त्यागकर समयानुकूल हर साधन को अपनाने की प्रेरणा प्रेमी जी ने जनता को दी थी ।

77- हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षाबन्धन, पृ0 6

राजनीति का सर्वप्रमुख अंग कूटनीति होती है। ब्रिटिश शासन ने अपनी कूटनीति को भारत में सफलतापूर्वक लागू किया था। उन्होंने कौटिल्य की कूटनीति साम, दाम, दण्ड तथा भेद [78] का अनुसरण किया था और इसी के आधार पर भारतीय जनता पर अपने आधिपत्य को बनाये रखा था। ब्रिटिश शासन भारतीय जनता के लिए एक अत्याचारी शासन था। यह अत्याचार ब्रिटिश कूटनीति पर आधारित था। इसी को समझाते हुए उदयशंकर भट्ट जी के नाटक "विक्रमादित्य" में कूटनीति के सम्बन्ध में सोमेश्वर कहता है कि " संसार में कूटनीति ही सबसे बड़ी नीति है। जहाँ कोई अस्त्र काम नही देता, जहाँ बल- विक्रम की पहुँच नहीं, जहाँ साम, दाम, दण्ड नीतियों की समाप्ति है, वहाँ भेद और कूटनीति ही फल देती है।" [79] ब्रिटिश शासन वास्तव में इसी कूटनीति के कारण एक लम्बे समय तक भारत में स्थापित रहा। यहाँ के जीवन के प्रत्येक पहलू पर उसने दासता की छाप लगा दी। भारत, जो प्राचीन काल से ही राजा-प्रजा के सम्बन्ध को मैत्रीपूर्ण तथा पुत्र एवं पिता का सम्बन्ध मानता आया था, अत्याचारी शासन की अधीनता में हो गया।

साम्राज्यवादी अत्याचार -

लगभग सभी नाटककारों ने साम्राज्यवादी अत्याचार की निन्दा की है तथा ऐसे शासन से मुक्ति की प्रेरणा दी है। जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक 'विशाख' में अंग्रेजी शासन पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि यह एक ऐसा

78- आर0पी0 कांगले - दि कौटिल्यीय अर्थशास्त्र, अध्याय - ।।

79- उदयशंकर भट्ट - विक्रमादित्य, पृ0 6

शासन है जिसमें न्याय की सम्भावना नही हो सकती । नाटक में विशाख बन्दी के रूप में नरदेव के न्यायालय में उपस्थित किये जाने पर न्यायिक विडम्बना पर व्यंग्य करते हुए कहता है, "मैं नहीं जानता कि उस समय क्या उत्तर दिया जाता है जबकि अभियोग ही उल्टा हो और जो अभियुक्त हो, वही न्यायाधीश हो ।"[80]

प्रसाद ने अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता पर किये जा रहे अत्याचार का सांकेतिक रूप से वर्णन अपने नाटक "स्कन्दगुप्त" में दिया है । नाटक में हूणों द्वारा आर्यों पर किये गये अत्याचार को प्रसाद ने वास्तव में अंग्रेजों द्वारा भारतीय जनता पर अत्याचार माना है । मातृगुप्त हूणों के अत्याचार का वर्णन करते हुए दुखित स्वर में कहता है, निरीह प्रजा का नाश देखा नहीं जाता । क्या उनकी उत्पत्ति का यही उद्देश्य था ? केवल इनका जीवन चींटियों के समान किसी की प्रतिहिंसा पूर्ण करने का है ? देखो ! वह दूर पर बन्धे हुए नागरिक और उन पर हूणों की नृशंसता ।"[81]

हरिकृष्ण प्रेमी जी ने अंग्रेजी अत्याचार एवं अन्यायपूर्ण शासन पर व्यंग्य किया है । "रक्षाबन्धन " नाटक में मल्लूखाँ कहता है " जिसके हाथ में तलवार हो उससे दोस्ती करने में विशेष खतरा नही है पर जिसके हाथ में तलवार और तराजू दोनो हो उससे दोस्ती करना गले में फांसी लगाना है ।"[82] प्रेमचन्द ने भी अंग्रेजी अदालतों में अन्याय पर व्यंग्य करते हुए

80- जयशंकर प्रसाद- विशाख ,पृ0 73

81- वही, स्कन्दगुप्त , पृ0 39

लिखा है कि " अदालतें सबलों के अन्याय की पोषक है । जहाँ रुपयों द्वारा फरियाद की जाती हो, जहाँ वकीलों, बैरिस्टरो के मुख से बात की जाती हो, वहाँ गरीबों की कहाँ पैठ ? यह अदालत ही न्याय की बलिवेदी है ।"[83]

अंग्रेजी साम्राज्यवादी शासन के द्वारा अत्याचार का माध्यम कुछ भारतीय लोगों को ही बनाया गया था । इन देशद्रोहियों ने अंग्रेज शासकों को प्रसन्न करने हेतु अपने देश बन्धुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये थे । हिन्दी नाटककारो ने इस प्रकार के देश द्रोहियों पर व्यंग्य किया है । उदयशंकर भट्ट जी अपने नाटक " दाहर अथवा सिंध पतन" में ऐसे देश-द्रोहियों का वर्णन किया है। खलीफा ज्ञानबुद्ध जैसे देशद्रोही और विश्वास-घाती व्यक्ति के सम्बन्ध में कहता है कि " ऐसे ही बागियों के जरिये हम लोग हिन्दुस्तान फतह करेगें । जिस देश में बागी हैं वह कभी आजाद नहीं रह सकता । वह बड़ा ही बदकिस्मत मुल्क है जहाँ ऐसे लोग पैदा होते हैं ।"[84]

भारतीय पुलिस के सम्बन्ध में उदयशंकर भट्ट अपने नाटक "अन्तहीन अन्त " में व्यंग्य करते हैं । नाटक में एक सिपाही सूर्यकुमार नामक व्यक्ति से कहता है " यह पुलिस है, मज़ाक नहीं । एक बार हमारे पंजे में फंसने पर आसानी से छुटकारा नहीं हो सकता, समझे ? यहाँ पुलिस

83- प्रेमचन्द - संग्राम, पृ0 13

84- उदयशंकर भट्ट - दाहर अथवा सिन्ध पतन, पृ0 144 ।

का राज है । बड़े-बड़े आदमी जरा देर में चुटकी बजाते ठीक किये जा सकते है । तुम तो हो ही किस खेत की मूली और थानेदार बड़ा जालिम है, बीसों आदमियों को इसने ठीक कर दिया है । हाँ, अगर कुछ दे सको तो शायद काम हो जाय ।[85]

अंग्रेजों ने रियासतों को अपने शासन को स्थिर रखने हेतु एक प्रबल माध्यम बनाया था । प्रेमचन्द ने इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अंग्रेज सुपरिन्टेन्डेन्ट और सबल के मध्य महत्वपूर्ण वार्तालाप दिखाया है -

सुपरिन्टेन्डेन्ट सबल से कहता है -" हम तुम्हारा रियासत छीन लेगा । हम तुमको रियासत दिया है, तब तुम इतना बड़ा आदमी बना है और मोटर में बैठा घूमता है। तुम हमारा बनाया हुआ है । हम तुमको अपने काम के लिए रियासत दिया है और तुम सरकार से दुश्मनी करता है। रियासत तुमको किसने दिया ? "

सबल (सरोश होकर) कहता है -" मुगल बादशाहों ने । हमारे खानदान में पच्चीस पुश्तों से यह रियासत चली आती है ।"

सुपरिन्टेन्डेन्ट क्रोधित होकर कहता है -"झूठ बोलता है । मुगल लोग जिसको चाहता था जागीर देता था । जिससे नाराज हो जाता था, उससे जागीर छीन लेता था । जागीरदार मौरूसी नहीं होता था ।.. ..... हम तुमको आदमियों से लगान वसूल करने के लिए कमीशन देता है

85- उदयशंकर भट्ट - अन्तहीन अन्त, पृ0 85 ।

और तुम हमारा जड़ खोदना चाहता है । गांव में पंचायत बनाता है, लोगो को ताड़ी , शराब पीने से रोकता है, हमारा रसद-बेगार बन्द करता है ।"

× × ×

सबल कहता है " जमींदारों की बदौलत सरकार का राज्य कायम है । जब-जब सरकार पर कोई संकट पड़ा है । जमीदारों ने उसकी मदद की है। अगर आपका ख्याल है कि जमींदारों को मिटाकर आप राज्य कर सकते हैं तो भूल है। आपकी हस्ती जमींदारों पर निर्भर है । "

सुपरिन्टेन्डेन्ट-हमने अभी किसानों के हमले से तुमको बचाया, नही तो तुम्हारा निशान भी न रहता । ... हम तुमसे चाहता है कि जब रैयत के दिल में बदख्वाही पैदा हो तो तुम हमारा मदद करे । सरकार से पहले वही तो बदख्वाही करेगा जिसके पास कुछ जायदाद नही है, जिसका सरकार से कोई कनेक्शन नही है। हम ऐसे आदमियों का तोड़ करने के लिए ऐसे लोगों को मजबूत करना चाहता है जो जायदाद वाला है और जिसका हस्ती सरकार पर है । हम तुमसे रैयत को दबाने का काम लेना चाहता है ।"[86]
देश द्रोही आम्भि के रूप में ब्रिटिश शासन की चाटुकारिता करने वालों तथा देश को दासता के जाल में फंसाने वाले लोगों की आलोचना सुदर्शन जी ने स्पष्ट रूप में की है । सिकन्दर अपने सरदारों से आम्भि जैसे लोगों के सम्बन्ध

86- प्रेमचन्द - संग्राम, पृ० 145-147

में कहता है कि " न वे इतनी बात समझते हैं कि उनकी जीत का मतलब उनके वतन की हार है । न वे यह जानते है कि अपनी रूह बेचकर अपने जिस्म का आराम खरीद रहे हैं । मगर जो अपनी रूह बेचता है, उसके जिस्म को हमेशा का आराम कभी नहीं मिलता । बिकी हुई रूह जिस्म को भी बेच देती है और जो अपने जिस्म और रूह का मालिक नहीं, आस्मान के देवता उसकी किस्मत में गुलामी लिख देते हैं और वह गैर के पाँव तले की मिट्टी चाटता है । ..... और गुलाम के लिए न दुनिया में आराम है, न इज्जत है । वह सिर्फ दूसरों की खिदमत करता है और दूसरों की मर्जी देखकर अपना सिर झुकाता है ।"[87]

निरंकुश शासन का विरोध तथा लोकतंत्र का समर्थन -

अत्याचारी शासन लोकप्रिय शासन की भाँति स्थाई नहीं हो पाता । जब तक शासन का आधार इच्छा नहीं होगी तब तक उसमें स्थायित्व के दर्शन नहीं किये जा सकते ।[88] हिन्दी नाटककारों ने इस तथ्य को अपने नाटकों में स्थापित करने का प्रयास किया है । जयशंकर प्रसाद के नाटक "विशाख" में नरदेव की रानी उसके कुशासन से दुखी है । वह इस बात से भली-भाँति अवगत है कि शक्ति के बल पर शासन को स्थाई नहीं बनाया जा सकता । एक न एक दिन ऐसे शासन का विनाश

87- सुदर्शन - सिकन्दर, पृ0 66
88- देखिये -, पूर्वोल्लिखित

अवश्यभावी है । उसके शब्दों में तो जैसे प्रसाद ने अंग्रेजी शासन के विनाश की भविष्यवाणी ही कर दी है । रानी कहती है " आपने कुपथ पर पैर रखा है और मैं आपको बचा न सकी । परिणाम बड़ा ही भयंकर होने वाला है । वह मैं नहीं देखना चाहती हूँ किन्तु मैं कहे जाती हूँ कि अन्याय का राज्य बालू की गति है । "[89] उदयशंकर भट्ट ने अपने नाटक "सगर विजय" में निरंकुश शासक की निन्दा की है । उनके अनुसार "सदा से यही होता आया है, खूब सदा से निरीह प्रजा का वध करना राजा का धर्म रहा है । दूसरे के राज्य को हड़प लेना सदा से होता चला आया है । यही राजा का धर्म है ।"[90] इस नाटक में जनता में राष्ट्रीय चेतना एवं जागरण का भाव दर्शाया गया है । जनता राजा को चेतावनी देते हुए कहती है कि " हम लोगों पर अत्याचार करने का तुमको कोई अधिकार नहीं है । तुम बलवान हो, इतने से ही क्या तुम्हारी आकाश को फोड़कर ब्रह्मा के सिर से टकराने वाली इच्छाओं को ठीक कहा जा सकता है । याद रखो अभिमान पतन का सबसे ऊँचा शिखर और पाताल की उल्टी पीठ है । यह प्रश्न है समझे राजा ? "[91] ब्रिटिश शासन के विरूद्ध जनता की विरोध की लहर को चन्द्रावत के माध्यम से जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" ने अपने नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" में दिखाया है। वह कहता है "मैं आज जन्म

89- जयशंकर प्रसाद- विशाख, पृ0 64

90- उदयशंकर भट्ट - सगर विजय, पृ0 20 ।

91- वही, पृ0 63

के प्रतिनिधि की हैसियत से तुम्हारे सम्मुख आया हूँ । मुझे अधिकार दिया गया है कि मेवाड़ के राजमुकुट को अयोग्य के सिर से उतार कर योग्य के मस्तक पर रख दूँ ।"[92] यहाँ पर "मिलिन्द" जी प्रतिनिध्यात्मक .कार का समर्थन करते हुए प्रतीत होते हैं । जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन व्यवस्था में परिवर्तन की इच्छुक है ।

राजा-प्रजा सम्बन्ध -

लोकतान्त्रिक शासन में शासक स्वयं जनता होती है । यह सामान्य हित में शासन होता है । इसमें उत्पीड़न एवं अत्याचार का कोई स्थान नही होता । प्रसाद ने एक लोक कल्याणकारी राज्य का समर्थन करते हुए राजा और प्रजा का सम्बन्ध स्पष्ट करने का प्रयास किया है । "विशाख," नाटक में प्रेमानन्द अत्याचारी शासक नरदेव को प्रजा के प्रति पिता समान व्यवहार करने की शिक्षा देता है । वह राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता और सन्तान का सम्बन्ध मानता है। उसके अनुसार राजा को प्रजा पर अत्याचार नही करना चाहिए वरन् प्रेमवत् व्यवहार करना चाहिए । वह नरदेव को सावधान करते हुए कहता है कि " राजन्" सावधान । यह क्या? बच्चे जब हठ करें, तो क्या पिता भी रोष से उन्हीं का अनुकरण करे ? क्या राजा प्रजा का पिता नहीं, जो एक बार उसका चलना नहीं सम्भाल सकता ?"[93]

92- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द" - प्रताप प्रतिज्ञा, पृ09

93- जयशंकर प्रसाद- विशाख, पृ0 75

एक अन्य स्थल पर प्रेमानन्द नरदेव से कहता है, "देश की शान्ति भंग करना और निरपराधी को दण्ड देना, इससे तुम्हें क्या मिलेगा ? "[94] अजातशत्रु" नाटक में अजात, जो अंग्रेजी सरकार का प्रतिरूप है, की बहन पद्मावती उसे अहिंसा , दया और करूणा का पाठ पढ़ाना चाहती है । उसके अनुसार- "मानवी सृष्टि करूणा के लिए है, यों तो क्रूरता के निदर्शन हिंस्रपशु जगत में क्या कम है ? "[95]

"कामना" नाटक में नाटककार ने कामना के मुख से अत्याचार की निन्दा की है । कामना राजनीतिक अत्याचारों से दुखी होकर कहती है, " यदि राजकीय शासन का अर्थ हत्या और अत्याचार है, तो मैं स्वयं रानी नहीं बनना चाहती । मेरी प्रजा इस बर्बरता से जितना शीघ्र छुट्टी पावे, उतना ही अच्छा ।"[96]

सेठ गोविन्ददास ने अपने "कर्तव्य" नाटक में राजा के कर्तव्य को स्पष्ट किया है । उनके मत में अत्याचारी शासन स्थाई नही रह सकता । प्रजा पर प्रेमपूर्वक शासन करने के द्वारा ही प्रजा का हृदय जीता जा सकता है । इसी उद्देश्य हेतु गोविन्ददास जी स्वर्णिम अतीत की ओर संकेत करते हुए सीता से कहे गये राम के वचन का उल्लेख करते हैं - " पर मैथिली आदर्श बहुत ऊँचा है। प्रजा में कोई भी मनुष्य आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक दृष्टि से दुखी न रहे, अपने कर्तव्य-पूर्ति के लिए राजा को

94- वही, पृ0 67 ।

95- वही, "अजातशत्रु "पृ0 24

96- वही, "कामना, पृ0 97

अपने सर्वस्व की आहुति देनी पड़े तो भी वह पीछे न हटे । "[97] "हर्ष" नाटक में प्रजातांत्रिक शासन पद्धति का पक्ष लिया गया है। नाटक में " वह (हर्ष) अपने को राज्य का संरक्षक मात्र मानता है तथा राज्य को अपने पास प्रजा की धरोहर । वह अपने को राज्य का स्वामी तथा राज्य को अपनी सम्पत्ति नहीं मानता है । "[98]

लक्ष्मी नारायण मिश्र जी ने भी अंग्रेजी साम्राज्यवाद के कारण भारतीय प्रजा की दुर्दशा पर खेद व्यक्त किया है । वे प्रजा की इस दुर्दशा के लिए शासकवर्ग को उत्तरदायी मानते हैं, क्योंकि वे प्रजा की देखभाल करने के स्थान पर अपने स्वार्थ सिद्धि मे लगे रहते है । नाटक में प्रजा की दुर्दशा की ओर संकेत करते हुए "राजयोग" नाटक में नरेन्द्र कहता है कि " शासन आफिस के भरोसे चल रहा है । तुम्हारा हाथ तब माना जाता कि तुम प्रजा की जिन्दगी के उत्तरदायी रहते, कम से कम तुम्हें इस बात का पता होता कि बाढ़ और दुर्भिक्ष से तुम्हारी कितनी प्रजा मरी और कितनी हत्याएँ हुईं । "[99]

उदयशंकर भट्ट के "सगर विजय" नाटक में जनशक्ति और अत्याचारी शासन के मध्य संघर्ष तथा जनशक्ति की विजय को दिखाया गया है ।

97- सेठ गोविन्ददास -कर्तव्य, पृ0 7

98- डॉ0 सावित्री स्वरूप- नव्य हिन्दी नाटक, पृ0 146 ।

99- लक्ष्मीनारायण मिश्र - राजयोग, पृ0 77

नाटक का सगर जनता का और दुर्दम अत्याचारी शासन का प्रतिनिधित्व करता है । अयोध्या के सूर्यवंशी राजा बाहु को दुर्दम पराजित कर स्वयं राजा बन जाता है और प्रजा पर अनेक प्रकार के अत्याचार करता है । जब यह अत्याचार असह्य हो जाता है तो जनता दुर्दम के विरुद्ध विद्रोह कर देती है । बाहु का पुत्र सगर जनता का प्रतिनिधित्व करता है और दुर्दम को पराजित कर लोकप्रिय शासन की स्थापना करता है । इस नाटक में लोकतान्त्रिक शासन का समर्थन किया गया है । राजा के अधिकार प्रजा की धरोहर के रूप में होते हैं ।[100] अतः राजा का कर्तव्य होता है कि वह उन अधिकारों का प्रयोग समाज के हित में करे । नाटक में एक नागरिक ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए कहता है कि " राजा के अधिकार भी तो हम ही ने बनाये हैं, व्यक्ति, समाज के हित के लिए राजा की सत्ता है, राजा के लिए समाज की नहीं, यही प्रश्न है ।"[101]

जगन्नाथ प्रसाद"मिलिन्द" ने अपने नाटक" प्रताप प्रतिज्ञा" में जनतांत्रिक शासन की महत्ता को प्रदर्शित किया है । उनका यह मत है कि शक्ति का अन्तिम स्त्रोत जनता होती है । राजा केवलमात्र उसके प्रतिनिधि होते हैं । अतः राजा को जनता के हित में शासन करने हेतु तत्पर रहना चाहिए । चन्द्रावत कहता है कि " राजा प्रजा का सेवक है, दास है ।

100- पूर्वोल्लिखित

101- उदयशंकर भट्ट - सगर विजय, पृ0 56

प्रजा उसकी अन्नदाता है। वह उसे गद्दी पर चढ़ा भी सकतीहै, उतार भी सकती है। जनता की आँखों के इशारे पर बड़े-बड़े साम्राज्य उठते और मिट जाते हैं ।"[102] नाटक में राजा राजमुकुट धारण करते समय प्रतिज्ञा करते है कि " भवानी ! तू साक्षी है । जनता जनार्दन ने आज मुझे अपना सेवक चुना है । मैं आज तुझे छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जन्म भर मातृभूमि मेवाड़ के हित में तन, मन, धन सर्वस्व अर्पण करने से मुँह न मोड़ूँगा ।"[103]

उपर्युक्त नाटकों में लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास दिखाई देता है । ब्रिटिश अत्याचार की समाप्ति के प्रति उत्कट इच्छा दिखाई देती है । एक ऐसे शासन की कामना प्रकट होती है जिसमें व्यक्ति अपने अधिकारों एवं स्वतन्त्रता का पूर्णतया उपभोग कर सके ।

व्यक्ति स्वातन्त्र्य -

हिन्दी नाटकों में व्यक्ति को स्वतन्त्रता देने का आह्वान प्राप्तहोता है । व्यक्ति स्वतन्त्रता के अभाव में अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता । ऐसी स्थिति में वह समाज को अपना पूर्ण योगदान नहीं कर पाता । जय शंकर प्रसाद"स्कन्द गुप्त" नाटक में स्वतन्त्रता एवं स्वाधिकारों की रक्षा का प्रयास करते हैं ।[104] "मुक्ति का रहस्य" नाटक में लक्ष्मी नारायण मिश्र ने व्यक्तिवाद का समर्थन किया है। वह व्यक्ति स्वातन्त्र्य के पक्षपाती हैं ।

102- जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" -प्रताप प्रतिज्ञा, पृ० 34

103- वही, पृ0 12

104- जयशंकर प्रसाद- स्कन्दगुप्त, पृ0 52 ।

व्यक्ति स्वातन्त्र्य के पक्ष में बोलते हुए उमाशंकर शर्मा कहते है कि "मेरा विश्वास तो ऐसा है .... मनुष्य का विकास उसके निजि अनुभवों पर ही होता है। यह बात भी मानी हुई है कि सबके विकास का रास्ता एक ही नही है, सबका रास्ता अलग-अलग है । सब किसी को उस पर चलना पड़ता है । ठोकर खाना और गिरना ये भी स्वाभाविक है । यही होता रहा है, हो रहा है और होगा । "[105] उमाशंकर शर्मा अपने को व्यक्तिवादी घोषित करते हुए कहते हैं कि " मैं हरेक बात को व्यक्ति की आंख से देखता हूँ, दुनिया या समाज की आंख से नही । व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व जहाँ कहीं हुआ, जब कभी हुआ, यह सच है कि व्यक्ति को बराबर दुख उठाना पड़ता है किन्तु यह भी सच है कि नैतिक विजय बराबर व्यक्ति की हुई है । तुम्हारी दुनिया या तुम्हारे समाज में ईसा, कन्फ्यूशियस, सुकरात या मंसूर के साथ यही किया गया था । "[106]

साम्राज्यवादी अत्याचार एवं विदेशी दासता से मुक्ति की भावना -

हिन्दी नाटकों में साम्राज्यवादी अत्याचार एवं विदेशी दासता से मुक्ति की भावना प्राप्त होती है । यद्यपि यह सत्य है कि अधिकांश नाटकों में किसी न किसी ऐतिहासिक घटना को प्रतीक रूप में स्वीकार किया

105- लक्ष्मी नारायण मिश्र - मुक्ति का रहस्य, पृ0 67

106- वही, पृ0 68

गया है, परन्तु अन्ततः राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना प्रबल है ।

[illegible] जयशंकर प्रसाद के नाटकों में परतन्त्रता से मुक्ति की प्रेरणा दी गई है, परन्तु किसी विशेष देश अथवा जाति के शासन से मुक्ति नहीं वरन् हर प्रकार की परतन्त्रता से मुक्ति है। परतन्त्रता से मुक्ति की भावना स्वाधीनता की उत्कट इच्छा को उत्पन्न करती है । सम्भवतः हिन्दी नाटककार भारतवासियों में अपने नाटकों के माध्यम से इसी स्वाधीनता की भावना को जागृत करने का प्रयास कर रहे थे । इस स्वाधीनता को जागृत करने के लिए उन्होंने प्राचीन भारतीय गौरवमयी अतीत की जहाँ एक ओर प्रशंसा की वहीं वर्तमान के प्रति विक्षोभ व्यक्त करते हुए भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया तथा इसके साथ ही साथ राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने हेतु एक राष्ट्र की अवधारणा को महत्व प्रदान किया ।

(अ) प्राचीन भारतीय गौरवमयी अतीत की प्रशंसा एवं वर्तमान के प्रति विक्षोभ की भावना से उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना –

प्रसाद युग में प्राचीन भारतीय गौरव के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान की भावना तथा वर्तमान अवनति पर विक्षोभ की भावना स्पष्ट दिखाई देती है । उस युग के नाटककारों ने गान्धीवादी विचारधारा के महत्व को देखते हुए उसका उल्लेख यथोचित रूप में किया है, परन्तु जनता में राष्ट्रीय चेतना के भाव को जागृत करने के साधन रूप में उन्होंने प्राचीन

भारतीय गौरव को स्वीकार किया । डॉ0 नगेन्द्र के मत में, " भारत के प्राचीन वीरों के शौर्य, देशभक्ति, स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य प्रेम का गौरव-गान करते हुए एवं उनकी संकीर्णता, पारस्परिक कलह आदि का दुष्परिणाम दिखाते हुए देशवासियों में उदात्त भावनाएँ जागृत करना ही इन लेखकों की मूल धारणा है ।"[107]

प्रसाद युग के नाटकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाटक स्वयं जयशंकर प्रसाद के माने जाते हैं । जिस प्रकार प्रेमचन्द उपन्यास साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं । उसी प्रकार जयशंकर प्रसाद भी नाट्य साहित्य में सर्वोच्च स्थान रखते हैं ।प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रप्रेम की भावना अत्यन्त उत्कट रूप में दिखाई देती है । उन्होंने जहाँ अपने नाटकों में वर्तमान अवनति पर विक्षोभ प्रकट किया है वहीं उन्होंने भारतीय जनता को उसके प्राचीन गौरव का स्मरण भारत की प्राचीन संस्कृति एवं मर्यादा की ओर संकेत करके कराया है। क्योंकि नगेन्द्र जी के मत में " प्रसाद जी प्राचीन भारतीय संस्कृति के सौन्दर्य पर मुग्ध थे । ..... वे विदेशी छाया से आच्छादित भारतीय जीवन को फिर से उसी स्वर्ग की ओर प्रेरित करने की बात सोचा करते थे । "[108] प्रसाद के नाटकों में कहीं न कहीं स्वदेश प्रेम की झलक प्राप्त हो जाती है और स्वदेश प्रेम राष्ट्रीयता का अनिवार्य तत्व होता है । ब्रजरत्नदास के अनुसार, "उत्कट देशप्रेम के कारण ही उन्होंने स्वदेश

107- डॉ0 नगेन्द्र- आधुनिक हिन्दी नाटक, साहित्य रत्नभण्डार, आगरा, पंचम संस्करण, संवत 2012, पृ0 29 ।

108- वही, पृ0 7, 8

के गौरवपूर्ण प्राचीन इतिहास का उद्घाटन करना अपना लक्ष्य बना लिया था।" [109] "जनमेजय का नागयज्ञ" नाटक में नागजाति की आत्मोत्सर्ग की भावना को प्रदर्शित किया है। एक नागबन्दी आर्य सेनापति से कहता है, " होगा रणचण्डी का विकट ताण्डव, आर्यों का स्वाहागान और हमारे जीवन की आहुति। नाग मरना जानते हैं। अभी वे पौरुषहीन नहीं हुए हैं। जिस दिन वे मरने से डरने लगेंगे, उसी दिन उनका नाश होगा। जो जाति मरना जानती रहेगी उसी को इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार होगा।" [110] "स्कन्दगुप्त" नाटक में आर्यजाति की श्रेष्ठता को व्यक्त किया गया है। उनके अनुसार "आर्य जाति का प्रत्येक बच्चा सैनिक है, सैनिक छोड़कर और कुछ नहीं।" [111]

उदयशंकर भट्ट ने अपने नाटक "दाहर अथवा सिन्ध पतन" में आर्यजाति की श्रेष्ठता एवं साहस का वर्णन किया है कि " हम लोग आर्य हैं। हममे क्षत्रियत्व है। एक बगदादी राजा की तो बात ही क्या, यदि समस्त संसार भी दाहर पर अनुचित दबाव डालकर उसके देश को हस्तगत करने की चेष्टा करेगा तो दाहर उसके दाँत खट्टे कर देगा। वीरत्व की विभूति, क्षत्रियत्व की गरिमा, शौर्य के अवतार,

---

109- ब्रजरत्न दास - हिन्दी नाट्य साहित्य, पृ0 183

110- देखिये, जयशंकर प्रसाद - जनमेजय का नागयज्ञ, पृ0 69, 70 ।

111- देखिये वही, स्कन्दगुप्त, पृ0 76

आर्य लोग व्यर्थ ही किसी से छेड़छाड़ नहीं करते, यदि हस्तक्षेप द्वारा उन्हें कोई पददलित करना चाहे तो एक बगदादी राजा क्या ऐसे सैकड़ो राजे भी दाहर का कुछ नहीं बिगाड़ सकते । -112

सुदर्शन के "सिकन्दर" नाटक में पुरू अपनी सेना को उसके विगत गौरव का स्मरण कराते हुए अपने शीश देकर भी आत्मसम्मान सुरक्षित रखने के लिए प्रेरित करता है ; अपने सैनिको में उत्साह बढ़ाने हेतु वह कहता है कि " आग और आन्धी से बने हुए वीरों । तुम उन वीरों की सन्तान हो जो मैदान में मरना जानते थे, मैदान से भागना नही जानते थे । तुम उस देश के निवासी हो जिसने अपने लाखों पुत्र कटवाए हैं मगर अपनी शान और अपने आदर का झण्डा कभी नीचे नही झुकने दिया । तुम उस धरती से उत्पन्न हुए हो जिसके ऊपर किसी विदेशी के पाँव नहीं पड़े, ... अगर तुम अपनी और अपने देश की मर्यादा बचाना चाहते हो, अगर तुम अपने पूर्वजों के सिर स्वर्ग में भी ऊँचा रखना चाहते हो तो अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ लेकर आगे बढ़ो । आप मरकर भी शत्रु का मुख मोड़ दो और संसार को दिखा दो कि तुम अपनी जाति के लिए जीना ही नहीं, मरना भी जानते हो । -113

112- उदयशंकर भट्ट - दाहर अथवा सिंध पतन, पृ0 36

113- सुदर्शन - सिकन्दर, पृ0 83 ।

प्राचीन भारतीय आदर्श एवं इतिहास को आधार बनाकर हिन्दी नाटककारों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय योद्धाओं के उस कार्य में सहायता पहुँचाई जो भारतीय अतीत को महान बताते हुए स्वयं अपने राष्ट्र और उसके इतिहास से प्रेरणा ग्रहण कर उसके लिए क्रियाशील होने का भाव जागृत करने का प्रयास कर रहे थे। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में इस भाव को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है। डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा इस सम्बन्ध में कहते हैं कि "यदि सम्पूर्ण नाटकों में वर्णित राजनीतिक स्थिति को एक क्रम में रख दें तो स्पष्ट ज्ञान हो जायेगा कि किस प्रकार आर्य जाति अपने राजनीतिक अभ्युत्थान के लिए निरन्तर उद्योगशील रही है।"[114]

॥ब॥ राष्ट्रप्रेम एवं आत्मबलिदान की भावना -

हिन्दी नाटकों में राष्ट्रप्रेम की भावना अत्यन्त उत्कट प्रतीत होती है। नाटककारों ने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के लिए राष्ट्र की महानता एवं महत्ता को स्पष्ट करने का प्रयास किया। नाटककारों में इस दृष्टि से सबसे बड़ा श्रेय जयशंकर प्रसाद को दिया जाता है। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय प्रेम की भावना अत्यधिक मात्रा में दिखाई देती है। रामरतन भटनागर ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि प्रसाद के लिए देश उससे कहीं

114- डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा - प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० 265 ।

अधिक सत्य है जिस देश की पूजा हमारे राजनीतिक नेता करते है । भारत की सारी प्रकृति, भारत की सारी आध्यात्मिक निष्ठा, भारत के नगर, ग्राम, भारत के नर-नारी, भारत के कला विज्ञान के सपने, सब उनके स्वप्न में कुछ ऐसी सतरंगी रंगों में मिल जाते हैं कि उनकी देश की कल्पना अपार्थिव बन जाती है ।[115]

"अजातशत्रु" नाटक में राष्ट्रप्रेम की भावना पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है । नाटक में राज्यपरिषद के सदस्य राष्ट्र के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार है । उनके अनुसार "राष्ट्र के कल्याण के लिए प्राण विसर्जन तक किया जा सकता है, और हम सब ऐसी प्रतिज्ञा करते है ।"[116] "जनमेजय का नागयज्ञ" नाटक में नागजाति अपनी स्वाधीनता की रक्षा अपने प्राणों के मूल्य पर भी करने को तत्पर दिखाई देती है ।[117]

"स्कन्दगुप्त " नाटक में प्रसाद ने राष्ट्रप्रेम की भावना का सुन्दर चित्रण किया है । नाटक में देश की सुन्दरता का वर्णन करने के माध्यम से देश के प्रति प्रेम की भावना को जागृत करने का प्रयास किया गया है । नाटक में धातुसेन भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करता है कि "वसुन्धरा का हृदय भारत-किस मूर्ख को प्यारा नहीं ? तुम देखते नही कि

115- रामरतन भटनागर- प्रसाद के नाटक, पृ0 339 ।

116- जयशंकर प्रसाद - अजातशत्रु ,पृ0 66 ।

117- वही, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ0 69,70 ।

विश्व का सबसे ऊँचा श्रृंग इसके सिरहाने और सबसे गम्भीर तथा विशाल समुद्र इसके चरणों के नीचे है? एक-एक से सुन्दर दृश्य प्रकृति ने अपने इस सुन्दर घर में चित्रित कर रक्खा है। भारत के कल्याण के लिए मेरा सर्वस्व अर्पित है।"[118] भारतवर्ष का इतिहास यहाँ के लोगों की वीरता एवं शौर्य का परिचायक है। अतः प्रसाद नाटक में इसी इतिहास का बोध कराते हुए कहते है कि "आर्य जाति का प्रत्येक बच्चा सैनिक है। सैनिक छोड़कर और कुछ नहीं। आर्य कन्याएं अपहरण की जाती है, हूणों के विकट ताण्डव से पवित्र भूमि पदाक्रान्त है, कही देवता की पूजा नही होती, सीमा पर बर्बर जातियों की राक्षसी वृत्तियों का प्रचण्ड पाखण्ड फैला है। इसी समय जाति तुम्हे पुकारती है, सम्राट होने के लिए नहीं, उद्धार युद्ध में सेनानी बनने के लिए - सम्राट।"[119] इसी नाटक में भटार्क की क्षत्राणी माँ कमला का उल्लेख किया गया है। जो न केवल भारतीय स्त्रियों में राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक है वरन् सामान्य रूप में भारतीय जनता में राष्ट्रीयता की चेतना को प्रतिफलित करने वाला है। वह म्लेच्छो द्वारा पददलित भारत भूमि का उद्धार करने की अभिलाषा प्रकट करती है।[120]

इसी नाटक में बन्धुवर्मा देश तथा जाति पर उत्सर्ग होने की अभिलाषा प्रकट करता है। वह कहता है" आपके चरणों में बैठकर यह बालक

118- वही, स्कन्दगुप्त, पृ0 119

119- वही, पृ0 76

120- वही, पृ0 74

स्वदेश सेवा की शिक्षा ग्रहण करेगा । मालव का राजकुटुम्ब, एक-एक बच्चा आर्य जाति के कल्याण के लिए जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत है। [121] उसका यह कथन उसके आत्मोत्सर्ग के समय पूर्ण होता है । वह रणक्षेत्र में दम तोड़ते हुए कहता है -" बन्धुगण । यह रोने का नहीं, आनन्द का समय है ।कौन वीर इस तरह जन्मभूमि की रक्षा में प्राण देता है, यही मैं ऊपर से देखने जाता हूँ ।[122] एक अन्य स्थल पर भी देशहित के लिए बन्धुवर्मा स्कन्दगुप्त को अपना मालव राज्य देने को उद्यत हो जाता है। उसका कथन है कि क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि वे विपन्नों के लिए, अपने देश के लिए, धर्म के लिए प्राण दे दें । बन्धुवर्मा का छोटा भाई भीम भी आत्मोत्सर्ग द्वारा राष्ट्र की सेवा करने का विचार व्यक्त करता है । उसका कहना है "देखो । हमारा आर्यावर्त विपन्न है, यदि हम मर मिट कर भी इसकी कुछ सेवा कर सकें ....। [123]

इसी प्रकार चौथे अंक के छठे दृश्य में विजया मातृगुप्त से कहती है कि मिलन, संगीत और प्रेम के गान बहुत गा चुके, अब ऐसा उद्बोधन का गीत गा दो जिससे भारतीय अपनी नश्वरता पर विश्वास करके अमर भारत की सेवा के लिए सन्नद्ध हो जायँ ।

121- वही, पृ0 80 ।

122- वही, पृ0 103 ।

123- वही, पृ0 89 ।

जन्म भूमि के प्रति आदर एवं सम्मान की भावना स्कन्दगुप्त के शब्दों में और अधिक स्पष्ट हो जाती है ; वह भटार्क से कहता है कि 'रणभूमि में प्राण देकर जननी जन्मभूमि का उपकार करो । भटार्क ! यदि कोई साथी न मिला तो साम्राज्य के लिए नही, जन्मभूमि के उद्वार के लिए मैं अकेला युद्ध करूँगा ।'[124] "स्कन्दगुप्त" में स्वतन्त्रता , तथा स्वाधिकारों की सुरक्षा का प्रयास दिखाई देता है ।[125] मालवराज बन्धुवर्मा के अपनी स्त्री जयमाला से कहे गये कथनों में समस्त आर्यावर्त की मंगल कामना की भावना दिखाई देती है - "देवी, तुम नही देखती हो कि आर्यावर्त पर मेघमाला घिर रही है, आर्य, साम्राज्य के अन्तर्विरोध और दुर्बलता को आक्रमणकारी भलीभाँति जान गये हैं । शीघ्र ही देशव्यापी युद्ध की सम्भावना है, इसीलिए यह मेरी ही सम्मति है कि साम्राज्य की सुव्यवस्था के लिए, आर्य राष्ट्र के त्राण के लिए युवराज उज्जयिनी में रहे, इसी में सबका कल्याण है । आर्यावर्त का जीवन केवल स्कन्दगुप्त के कल्याण से है ।"[126] बन्धुवर्मा के उपर्युक्त कथन में प्रसाद ने भारतवासियों को विदेशियों से त्राण पाने के लिए एक होने का सन्देश दिया है ।

"चन्द्रगुप्त" नाटक में प्रसाद की राष्ट्रीय भावना अत्यन्त उत्कट रूप में दिखाई देती है । चन्द्रगुप्त के शासन काल से ली गई घटनाओं

124- वही, पृ0 45

125- वही, पृ0 52

126- वही, पृ0 70

के आधार पर प्रसाद ने तत्कालीन समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया। नाटक में भारत देश के सौन्दर्य एवं गौरव का गान प्राप्त होता है। प्रसाद ने विदेशियों के मुख से भी भारत का गौरवगान करवाया है। जिससे राष्ट्रीय चेतना को और भी अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हो। एक विदेशी कन्या कार्नेलिया भारत का यशोगान करती है -

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।
सरस तामरस-गर्भ-विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।।"[127]

एक अन्य स्थल पर कार्नेलिया कहती है "मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल कुंज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुए शैल श्रेणी, हरी-भरी वर्षा, गर्मी की चांदनी शीतकाल की धूप और भोले कृषक तथा सरला कृषक बालिकाएं, बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की जीवित प्रतिमाएं, यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि - भारत भूमि, क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।"[128]

127- वही, चन्द्रगुप्त, पृ0 100

128- वही, पृ0 145 ।

विश्व विजयी सिकन्दर भी भारत-भूमि की प्रशंसा करता हुआ कहता है, " मैंने भारत में हरक्यूलिस, एचिलिस की आत्माओं को भी देखा और देखा डिमास्थनीज को। सम्भवत: प्लेटो और अरस्तू भी होंगे। मैं भारत का अभिनन्दन करता हूँ।"[129] अलका भी देश से अपना अटूट सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहती है कि " मेरे देश हैं, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ हैं और मेरे जगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं के बने हैं।"[130] इसीलिए अलका मातृभूमि के लिए आत्मबलिदान को महत्वपूर्ण समझती है। वह अपने बन्दी बनाये जाने पर कहती है, "महाराज! मुझे दण्ड दीजिए, कारागार में भेजिए नहीं तो मैं मुक्त होने पर भी यहीं करूँगी। कुल पुत्रों के रक्त से आर्यावर्त की भूमि सिंचेगी। दानवी बनकर जननी जन्मभूमि अपनी सन्तान को खायेगी। महाराज! आर्यावर्त के सब बच्चे आम्भीक जैसे नहीं होंगे। वे इसकी मान प्रतिष्ठा और रक्षा के लिए तिल-तिल कट जायेंगे।"[131]

चन्द्रगुप्त नाटक में राष्ट्रीय एकता को महत्व प्रदान किया गया है। राष्ट्र के लिए मर मिटने को ही जीवन का लक्ष्य बताया गया है। पराधीनता को हर प्रकार से अनुचित बताया गया है। अत: देश को स्वाधीन करने के लिए आत्मबलिदान को प्रोत्साहन दिया गया है। सिंहरण

129- वही, पृ0 149

130- वही, पृ0 92

131- वही, पृ0 95

अलका से कहता है कि जन्मभूमि के लिए ही जीवन है ।[132] चन्द्रगुप्त संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ यही समझता है कि "आत्मसम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है ।"[133] अलका द्वारा गाये हुए अभियान गीत में स्वतन्त्रता के पथ पर अग्रसर होते रहने का ओजपूर्ण सन्देश प्राप्त होता है -

"हिमाद्रि तुंग शृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती ।"[134]

हरिकृष्ण प्रेमी के "रक्षा बन्धन" नाटक में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया गया है। नाटक में श्य ा, माया तथा चारिणी स्त्री पात्र कांग्रेसी सदस्याओं की भाँति ही गाँव-गाँव में घूमकर देशभक्ति की भावना जगाती है । वे अपनी जन्मभूमि की जय-जयकार का उद्घोष करती हुई मेवाड़ के सब वीरों को समर भूमि में जाने की प्रेरणा देती हैं ।"[135]

"शिवासाधना" नाटक में जीजाबाई में देश के लिए त्याग और बलिदान की भावना स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है । उनके मत में देश का

132- वही, पृ0 80
133- वही, पृ0 58
134- वही, पृ0 194
135- हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षाबंधन पृ0 76 ।

प्रत्येक नागरिक राजा-प्रजा, सभी देश की सम्पत्ति होते हैं, देश के हित से हटकर उनका अपना कोई हित नहीं होता है। वह अपने पुत्र शिवाजी को देशानुराग तथा कर्त्तव्य पालन का उपदेश देते हुए कहती है कि " बेटा यह ठीक है कि हिन्दू स्त्री के लिए पति ही लोक है और पति ही परलोक पर मनुष्य का सबसे उच्च कर्तव्य स्वदेश धर्म का पालन है । मैं अपनी हानि सह सकती हूँ, स्वदेश की नहीं । तुम स्वदेश की सम्पत्ति हो, जनता के धन हो ......, तुम्हारा जीवन व्यक्ति के सुख के लिए अर्पित नहीं हो सकता । "[136]

सई बाई भी अपने सुहाग को देश-प्रेम की वेदी पर न्योछावर कर देती है । उसके अनुसार, "देश को तुम्हारी आठों पहर आवश्यकता है, तुम्हारा एक क्षण भी सई बाई की चिन्ता में क्यों नष्ट हो ? मैं देश के प्रति बेईमानी नहीं कर सकती, राष्ट्र के धन को अपने मोह की सीमा में बांध कर नहीं रख सकती ।"[137] आका बाई भी "मांग रही माँ बलिदान" गीत गाकर जनता में देश-प्रेम की भावना को उत्पन्न करती है ।[138]

सेठ गोविन्द दास जी ने अपने नाटक "शशिगुप्त" में

136- वही, शिवासाधना ,पृ0 21 ।

137- वही, पृ0 50-51 ।

138- वही, पृ045 ।

स्वाधीनता के लिए सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा दी है । उन्होंने चन्द्रगुप्त के शब्दों में देशभक्ति की भावना को, क्षण मात्र के लिए भी मन्द न पड़ने वाला अविरल प्रवाहमान स्त्रोत बताया है ।[139] वे मातृभूमि को स्वाधीन करने के लिए वीरों को अपने प्राण न्यौछावर करने का सन्देश देते हैं :-

" यही धर्म है यह संयम

जन्म भूमि पर तन-मन वीरे, वीरों का यह एक नियम ।

स्वतन्त्रता पर प्रियतम जीवन, नहीं मान प्राणों से कम ।"[140]

'हर्ष' नाटक में राष्ट्रीय चेतना की भावना अत्यन्त बलवती है । भारत के भौगोलिक सौन्दर्य के सम्बन्ध में चीनी यात्री यांगच्यांग कहता है प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों ही दृष्टियों से आपके देश का अद्भुत सौन्दर्य है ।[141]

लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अपने नाटक "अशोक" में ग्रीक पात्र एण्टिपेटर के द्वारा भारत भूमि की प्रशंसा करवाई है । भारतवर्ष के सम्बन्ध में एण्टिपेटर सोचता है कि " कितना सुन्दर यह देश है। मानो एक खिला हुआ सौन्दर्य "एक गूँजता हुआ संगीत- एक जागता हुआ प्रकाश है। मानव-गौरव की कहानी है, जिसका कोई अन्त नहीं, आनन्द की एक पहेली है, जिसका कोई अर्थ नहीं ।"[142] "गुरुड़ध्वज" नाटक में मिश्र जी ने भारतीयता और भारतभूमि

139- सेठ गोविन्ददास- शशि गुप्त ,पृ0 107 ।
140- वही, पृ0 68 ।
141- वही, -हर्ष ,पृ0 126
142- लक्ष्मी नारायण मिश्र - अशोक, पृ0 39 ।

की प्रशंसा की है । वे अन्य धर्मों के स्थान पर मातृभूमि के धर्म का समर्थन करते हुए प्रतीत होते है । नाटक में हलोदर के शब्द अपने देश और अपनी धरती के साथ पूर्ण तादात्म्य और सहज अनुराग स्थापित करने की प्रेरणा देते हैं, जिस धरती के अन्न-जल से पला व्यक्ति, उसी धरती के धर्म में जब तक अपने आप को ढाल नहीं लेता तब तक तो वह अत्याचारी है, उसे अधिकार नहीं है उस धरती पर रहने का । "[143]

उदयशंकर भट्ट ने अपने नाटक" सगर विजय" में राष्ट्र को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया है । राष्ट्र से बढ़कर न तो साधारण नागरिक और न ही राजा हो सकता है । अतः सभी को राष्ट्र के प्रति समर्पित होना चाहिए और अपनी भक्ति प्रदर्शित करना चाहिए । नाटक में त्रिपुर देशभक्ति की व्याख्या करते हुए कहता है कि " व्यक्ति से समाज, समाज से राष्ट्र ऊँचा है। उस राष्ट्र के आगे व्यक्ति का, जाति का, नगर का और प्रान्त का कोई मूल्य नहीं है युवराज । राजा का व्यक्तित्व कुछ भी नहीं है, वह प्रजा की इच्छा और राष्ट्र की थाथी है । राष्ट्र ही उसकी माता, उसका पिता, उसका गुरू और उसका सर्वस्व है ।"[144] "दाहर अथवा सिन्ध पतन" नाटक में भट्ट जी ने रण में प्राण त्यागने का उपदेश दिया है ।[145]

प्रेमचन्द के नाटक "कर्बला" में भारत देश की एक वन्दना प्राप्त होती है -

---

143- वही, गुरूड़ध्वज, पृ0 86 ।
144- उदय शंकर भट्ट - सगर विजय, पृ0 110 ।
145- वही, दाहर अथवा सिन्ध पतन, पृ0 86 ।

"जय-भारत, जय-भारत. जय मम प्राण पते ।

भाल विशाल चमत्कृत, सित हिम गिरि राजे,

परसत बाल प्रभाकर हेम प्रजा व्राजे ।"[146]

बदरीनाथ भट्ट के नाटक " वेन चरित्र" में भारत वर्ष की महिमा का गान किया गया है -

" धन्य-धन्य यह भारत देश ।

लेते जहाँ सदा अवतार स्वयं अखिलेश ।

पहले-पहले उदय हुआ जिसमें वह ज्ञान दिनेश ।

जिससे अन्धकार का जग में रहा न लेश ।"[147]

दुर्गावती" नाटक में भट्ट जी ने राष्ट्रप्रेम की भावना को प्रोत्साहन देने का प्रयास किया है । नाटक मे अनेक स्थलों पर राष्ट्र के लिए उत्सर्ग एवं आत्मबलिदान का सन्देश प्राप्त होता है ।[148] नाटक में एकस्त्री पात्र के माध्यम से मातृभूमि के प्रति कृतज्ञता, आत्म-समर्पण तथा आत्मोत्सर्ग के भाव व्यक्त किये गये हैं ।[149] सुमति को अपनी जन्मभूमि इतनी प्यारी है कि वह अपने देशद्रोही पति को मारने में ही पुण्य समझती है। वह कहती है कि "तुम अपने देश की प्यारी स्वाधीनता के रक्त से अपने हाथ रंग चुके थे ।

146- प्रेमचन्द -कर्बला, पृ0 257

147- बदरीनाथ भट्ट - वेन चरित्र, पृ0 176

148- वही, दुर्गावती, पृ0 80, 86, 109, 113 ।

149- वही, पृ0 66

तुम केवल अधर्मी ही नहीं, देश-द्रोही भी हो । तुम्हारे मारने में पाप कैसा ।"[150]

"... जी के "चन्द्रगुप्त" नाटक में स्वदेश प्रेम की भावना के दर्शन होते है । नाटक में देश के गौरव एवं महिमा पर गीत प्राप्त होता है -

"भारतवर्ष हमारा प्यारा भारतवर्ष हमारा है,
दुनियाभर में प्रकृत देव की आँखों का यह तारा है,
इसका मुकुट किरीट हिमाचल ,है यज्ञोपवीत गंगाजल ।
फलकर इसमें विविध फूलफल, सुरभि सुयश विस्तारा है ।"[151]

चतुरसेन शास्त्री के "उत्सर्ग" नाटक में देश के लिए बलिदान होने की भावना प्राप्त होती है ।[152] नाटक में जीवन मृत्यु, लहू तथा शव को अपने लिए नही, वरन् देश के लिए अखण्ड मंगलमय माना गया है । इसमें प्रत्येक वीर के लिए अपने मंगल को देश और आन के नाम पर विसर्जित करने का आह्वान किया गया है।[153]

"राजसिंह" नाटक में बोधसिंह रत्नसिंह के बलिदान पर कहते हैं कि "वीर का पुरस्कार उसकी यशस्विनी मृत्यु ही है । कर्तव्य और बलिदान नश्वर शरीर की मूल्य वृद्धि करता है ।"[154] महाराणा रत्न सिंह की रानी में आत्मोत्सर्ग की भावना अत्यन्त प्रबल रूप में दिखाई पड़ती है । वह अपने पति को कर्तव्य से विमुख होते देख दासी के हाथ अपना कटा हुआ

150- वही, पृ0 73 ।
151- वही ,चन्द्रगुप्त ,पृ0 31 ।
152- चतुरसेन शास्त्री -उत्सर्ग ,पृ0 16
153- वही, पृ0 5
154- वही, राजसिंह ,पृ0 129 ।

सिर भेजती है और सन्देश देती है कि "क्षत्रिय बाला जब चाहे आत्मोत्सर्ग कर सकती है। उनसे कहो वे निश्चिन्त हो शत्रु से लोहा लें और अपना कर्तव्य पालन करें। मैं अपना कर्तव्य पालन करूँगी।"[155]

सुदर्शन ने अपने नाटक "सिकन्दर" में भारतभूमि की प्रशंसा सिकन्दर से करवाई है। सिकन्दर सिल्यूकस से कहता है कि "हिन्दुस्तान खूबसूरत मुल्क है। इसकी जमीन, इसके पहाड़ इसके बाग- बगीचे, इसके नदी-नाले खूबसूरत हैं। यहाँ कुदरत ने अपनी बरकतें और बहारें कदम-कदम पर खड़ी कर दी है। यहाँ के खेत सोना उगलते हैं, यहाँ के बादल मोती बरसाते है, यहाँ की हवाएँ गीत सुनाती हैं। ऐसा मालूम होता है जैसे देवताओं ने यह मुल्क बनाते वक्त अपना सारा कमाल और सारी कारीगरी खत्म कर दी है और स्वर्ग की खुशियाँ जमीन पर बिछा दी हैं।"[156] नाटक में राष्ट्र के प्रति प्राण न्योछावर करने का सन्देश प्राप्त होता है। पुरू अपनी सेना को उसके विगत गौरव का स्मरण कराते हुए अपने शीश देकर भी आत्म-सम्मान सुरक्षित रखने के लिए प्रेरित करता है। अपने सैनिकों में उत्साह बढ़ाने हेतु वह कहता है " आग और आन्धी से बने हुए वीरों। तुम उन वीरों की सन्तान हो जो मैदान में मरना जानते थे, मैदान से भागना नहीं जानते थे। तुम उस देश के निवासी हो जिसने अपने लाखों पुत्र कटवाये हैं मगर अपनी शान और अपने आदर का झण्डा कभी नीचे नहीं झुकने दिया। तुम उस धरती

155- वही, पृ0 120

156- सुदर्शन -सिकन्दर, पृ0 33।

से उत्पन्न हुए हो जिसके ऊपर किसी विदेशी के पांव नही पड़े ..... अगर तुम अपनी और अपने देश की मर्यादा बचाना चाहते हो, अगर तुम अपने पूर्वजों को सार स्वर्ग में भी ऊंचा रखना चाहते हो तो अपने शरीर और आत्मा की समग्र शक्तियाँ लेकर आगे बढ़ो। आप मरकर भी शत्रु का मुख मोड़ दो और संसार को दिखा दो कि तुम अपनी जाति के लिए जीना ही नहीं, मरना भी जानते हो।[157]

जगन्नाथ प्रसाद"मिलिन्द" के "प्रताप प्रतिज्ञा" नाटक में वीर चन्द्रावत में देश-प्रेम की भावना दिखाई देती है। वह कहता है "जिस देश में हमने जन्म लिया है, वही हमारी माँ है -ईश्वर से भी पूज्य और प्राणों से भी प्यारी।"[158]

पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" ने अपने नाटक "महात्मा ईसा" में भारत वर्ष का यशोगान किया है। उनके अनुसार, "हमें दधीचि के टक्कर के दानवीर, हरिश्चन्द्र के टक्कर के सत्यवीर, रामचन्द्र के टक्कर के आदर्श पुरूष तथा युद्धवीर और भगवान कृष्ण के टक्कर के कर्मवीर कहीं भी नही मिले। हनुमान और अर्जुन की चरणधूलि भी कहीं नही मिली। .... ऐसा देश भारत वर्ष ही है जिसके पर्वत से सती पार्वती प्रकट होती है, जिसकी पितृवास से जगत जननी जन ग्रहण करती है और यहाँ की धूलि पर सती शिरो

157- वही, पृ0 83 ।

158- जगन्नाथ, प्रसाद"मिलिन्द" - प्रताप प्रतिज्ञा, पृ0 41 ।

सावित्री , दमयन्ती और द्रौपदी अपनी बाल-लीला समाप्त करती है ।[159]

स्वाधीनता की भावना -

ब्रिटिश साम्राज्यवाद अत्याचार का प्रतीक था । भारतवासियों पर अपनी कूटनीतिक चालों के आधार पर ब्रिटिश शासकों ने निरन्तर अत्याचार किया था । अत्याचार के कारण भारतीय जनता पीड़ित थी । अत: जनता में ऐसे अत्याचारी शासन से मुक्ति की भावना निरन्तर उठ रही थी । हिन्दी नाटककारों ने इसी मुक्ति की भावना को और अधिक प्रोत्साहित करने का प्रयास किया है ।

भारत की पराधीनता को जयशंकर प्रसाद के "चन्द्रगुप्त" नाटक में विदेशियों की कूटनीति के परिणाम के रूप में देखा गया है । अलका इसी सम्बन्ध में कहती है कि "पराधीनता से बढ़कर विडम्बना और क्या है ? अब समझ गये होगे कि वह सन्धि नहीं पराधीनता की स्वीकृति थी ।[160] नाटक में राष्ट्र के लिए मर मिटने को ही जीवन का लक्ष्य बताया गया है । पराधीनता को हर प्रकार से अनुचित माना गया है। सिंहरण अलका से कहता है कि जन्मभूमि के लिए ही जीवन है ।[161] चन्द्रगुप्त संसार भर की नीति और शिक्षा का अर्थ यही समझता है कि आत्मसम्मान के लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।[162]

159- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" - महात्मा ईसा, पृ0 54-55 ।
160- जयशंकर प्रसाद - चन्द्रगुप्त, पृ0 116 ।
161- वही, पृ0 80 ।
162- वही, पृ0 58 ।

हरिकृष्ण प्रेमी के "शिवासाधना" नाटक में पराधीनता के अभिशाप से मुक्ति दिलाने हेतु शिवाजी जैसे शासक को नायक के रूप में चुना गया है। इस नाटक में शिवाजी को एक राजा के रूप में ही नहीं वरन् देश की स्वतन्त्रता के लिए संग्राम करने वाले नेता के रूप में चित्रित किया गया है। शिवाजी कहते है कि "यदि स्वराज्य केवल हिन्दुओं तक ही सीमित रह गया तो मेरी साधना अधूरी रह जायेगी। मैं तो बीजापुर बादशाहत की जड़ उखाड़ना चाहता हूँ, वह इसलिए नही कि वे मुस्लिम राज्य है, बल्कि इसलिए कि वे आततायी है, स्वतन्त्र हैं, लोकमत को कुचल कर चलने के आदि है।"[163] शिवाजी की माता जीजाबाई में भी परतन्त्रता को दूर करने की उत्कट अभिलाषा पाई जाती है। वह शिवाजी को शीघ्रातिशीघ्र देश को स्वाधीन करने की बात कहती है। उनके अनुसार, मैं पिता, पति, बन्धु-बान्धव, सुख-स्वार्थ कुछ नहीं जानती और तुम्हे आदेश करती हूँ कि देश की स्वाधीनता ही तुम्हारे जीवन की परम साधना हो।"[164] नाटक में शिवाजी अपने जीवन की साधना को स्पष्ट करते हुए बताते है कि " मेरे जीवन की एकमात्र साधना होगी भारतवर्ष को स्वतन्त्र करना, दरिद्रता की जड़ खोदना, ऊँच-नीच की भावना और धार्मिक तथा सामाजिक दोनो प्रकार की क्रान्ति करना।"[165]

163- हरिकृष्ण प्रेमी- शिवासाधना, पृ0 25

164- वही, पृ0 37

165- वही, पृ0 58

इसी नाटक में गुरु रामदास पराधीनता को सर्वाधिक निकृष्ट अवस्था स्वीकार करते है। उनके मत में पराधीनता लोगों में निकृष्ट भावना को बढ़ाती है। पराधीन व्यक्ति स्वतन्त्र व्यक्तियों के समक्ष खड़ा नहीं रह सकता। अतः यदि पराधीनता से मुक्ति पाई जा सके तो सब प्रकार के दुखों एवं ग्लानि का अन्त हो जायेगा। रामदास करूणापूर्ण शब्दो में दासता को विडम्बना बताते हुए कहते हैं कि "स्वतन्त्रता ही राष्ट्र की सब व्याधियों की एकमात्र औषध है। स्वराज्य में भूखे मरे, दाने-दाने को मोहताज रहे, हमे पेड़ो की छाया में ही घर बसाने पड़े, फिर भी हमें सन्तोष रहेगा कि हम स्वतन्त्र जातियों के सम्मुख गर्दन ऊँची कर खड़े हो सकते हैं। सोचो तो भैया स्वराज्य न होने से हमारा पद- पद पर अपमान हो रहा है, हम मनुष्य नहीं समझे जाते।"[166] ऐसी ही स्वतन्त्रता की कामना लेकर शिवाजी त्याग और बलिदान की भावना से परिपूर्ण होकर कुल देवी भवानी से मातृवेदी पर सर्वस्व बलिदान कर सकने की शक्ति और वरदान मांगते है "माँ भवानी! मुझे बल दो, साहस दो और वह अदम्य पागलपन दो जिससे मैं स्वतन्त्रता की साधना में केवल सांसारिक सुखों को ही नही बल्कि प्राणों की आहुति भी दे सकूँ। निःस्पृह, निर्विकार, निर्लिप्त और निरहंकार होकर कार्य कर सकूँ।[167]

166- वही, पृ0 43 ।

167- वही, पृ0 2

लक्ष्मी नारायण मिश्र के "सन्यासी" नाटक में मुरलीधर [illegible] रकान्त को उत्तेजित करता है कि वह अपने हृदय को सबल बनाये और दासता की बेड़ी में जकड़े हुए देश को स्वाधीन कर अपने एक मात्र कर्तव्य का पालन करे।[168]

उदयशंकर भट्ट के "विक्रमादित्य" नामक नाटक में राष्ट्र-प्रेम एवं स्वाधीनता की भावना परिलक्षित होती है। इसमें विदेशी शासन से मुक्ति पाने तथा स्वराज्य प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट हुई है।[169] "सगर-विजय" नाटक में स्वाधीनता के लिए आत्म-बलिदान की भावना दिखाई देती है। स्वाधीनता के दीवाने नागरिक कहते है कि " हम मरेंगे किन्तु इस राजा की अधीनता स्वीकार न करेंगे। चलो अयोध्या में वीरता, त्याग, आत्म-समर्पण के भाव जाग्रत कर दें। अयोध्या की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपनी बलि दे दे।"[170] नाटक में स्त्री पात्र वर्हि भी देश की स्वतन्त्रता के लिए प्राण त्यागने को श्रेष्ठ बताती है। उसके अनुसार "स्वतन्त्रता के लिए मरना जीने से हजार गुना अच्छा है। तुम आज स्वतन्त्र जीवन के आनन्द की पगडण्डियों पर चलो। तुम देखोगे कि इस मरण में कितना सौन्दर्य है, कितना जीवन है। तुम्हारा एक-एक स्वांस स्वतन्त्रता के पथ को प्रकाशित कर रहा है। .... तुम मनुष्य हो, मनुष्य स्वतन्त्र होकर जीवित रहने

168- लक्ष्मी नारायण मिश्र-सन्यासी, पृ0 24

169- उदयशंकर भट्ट - विक्रमादित्य, पृ0 35 ।

170- उदयशंकर भट्ट - सगर-विजय, पृ0 103

के लिए ही पैदा हुआ है। यदि वह दूसरे के अत्याचार को सहता है तो वह मनुष्य नहीं पशु है।"[171]

बदरीनाथ भट्ट ने अपने नाटक" वेन चरित्र" में दासता को निष्क्रियता से समीकृत किया है। उनके अनुसार भारतवासियों में दासता के कारण सोचने समझने तथा कार्य करने की शक्ति का लोप हो गया है। वे कहते है, "मन की गुलामी से ही तन की गुलामी है। बहुत दिनों से सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक कारणों से मानसिक गुलामी की जंजीरो में जकड़े रहने के कारण हम लोग बेहद कमजोर, निकम्मे और पोच हो गये है और यह भी नहीं जानते कि किसी पर आजादी के साथ विचार भी कैसे किया जाता है, काम करना तो दूर रहा।"[172] भट्ट जी भारतीय परतन्त्रता को शीघ्रातिशीघ्र दूर करने के पक्ष में थे। स्वतन्त्रता प्राकृतिक होती है जो व्यक्ति के जन्म के साथ उपलब्ध होती है। अतः उस पर किसी वाह्य शक्ति अथवा सत्ता द्वारा बन्धन नहीं लगाया जा सकता। यदि लगाया जाता भी है, तो एक न एक दिन व्यक्ति उस बन्धन को तोड़ने के लिए विद्रोह कर बैठेगा। ठीक ऐसे ही उद्‌गार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में बाल गंगाधर तिलक के इस कथन में प्राप्त होते है कि "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।"[173] "वेनचरित्र" में भट्ट जी ने तिलक के इसी कथन को

171- वही, पृ० 86-87 ।
172- बदरीनाथ भट्ट - वेनचरित्र, पृ० 6
173- देखिये - पूर्वोल्लिखित

लगभग दुहराया है। उनके अनुसार ,"स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। जैसे किसी का माया बुद्धि नही छीनी जा सकती , वैसे ही किसी की स्व तन्त्रता भी नही छीनी जा सकती ।"[174] नाटक में भारतीय स्वाधीनता के स्वप्न को साकार होते दिखाया गया है ।[175]

" दुर्गावती" नाटक में दुर्गावती की अपने सरदारों को शिक्षा तथा उनको प्रोत्साहन देश-प्रेम की भावना से ओतप्रोत है -

"हमारा काम है स्वाधीनता के लिए ही मरना ।
रहे स्वाधीन जब तक , बस तभी तक देह को धरना ।।
तनिक से स्वार्थ के कारण जो बनकर दास रहते हैं ।
वे जीते ही मरे हैं, दासता के दुख सहते हैं ।।[176]

× ×

इसी नाटक मे सुमति अपने देशद्रोही पति को मारने में पाप नहीं समझती है। इस नाटक में अकबर की कूटनीति को दिखाते हुए भट्ट जी अंग्रेजों के भारतवासियों पर भेदभाव की ओर संकेत करते है। अकबर का दरबारी पृथ्वीसिंह अपना शोक प्रकट करते हुए कहता है कि "क्या हम सच्चे राजपूत है ? हमारे राज्य में घोड़ागाड़ी पर कोई नही चढ़ सकता और न कोई छतरी लगा सकता है।तो क्या इतने से ही हम क्षात्रिय कहलाने के योग्य है ?"[177]

174- बदरीनाथ भट्ट - वेन चरित्र, पृ0 47 ।
175- वही, पृ0 173 ।
176- वही,, दुर्गावती ,पृ0 105
177- वही,पृ0 23

'चन्द्रगुप्त" नाटक में जनता को यह शिक्षा देने का प्रयास किया गया है कि यदि हमें राज्य में किसी प्रकार का दुख हो तो सभी लोग मिलकर खूब आन्दोलन करें और अगर उनके स्वत्व छीने गये हों तो प्रयत्न कर उन्हें वापस लें। इस प्रकार की शिक्षा वास्तव में भारतवासियों को अपनी स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए उत्प्रेरित करने के लिए ही दी गई है। इस नाटक में एक राक्षस राजनीतिक दासता की विभीषिका से दुखी दिखाई देता है -

"दासता से अधमतर संसार में कुछ भी नहीं।
पर देश का दासत्व भी, स्वर्ग से बढ़कर कहीं।"[178]

राक्षस का उपर्युक्त कथन दासता से मुक्ति की प्रेरणा देने वाला है।

चतुरसेन शास्त्री ने अपने नाटक "राजसिंह" में पराधीनता के अभिशाप को प्रदर्शित करते हुए स्वाधीनता की भावना को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया है। नाटक में राजसिंह कहते है कि "मेवाड़ की चौवा-चौवा जमीन वीरों के रक्त से रंगी पड़ी है और मेवाड़ को कभी सुख की नींद नसीब नहीं हुई। मेवाड़ की न जाने कितनी कुलांगनाएँ अपने उन्ते अरमान हृदय में लिए जलकर राख हो चुकी हैं।"[179] वीर दुर्गादास राठौर मुगलों का तख्त जलाकर भस्म करने तथा देश को स्वाधीन करने का प्रयास जीवन पर्यन्त करते हैं।

178- वही- चन्द्रगुप्त, पृ० 27 ।
179- चतुरसेन शास्त्री, राजसिंह, पृ० 184

जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द" अपने नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा" में स्वाधीनता के लिए चिंतित दिखाई देते है। राणा प्रताप के द्वारा वे कहलवा है कि "भवानी। तू साक्षी है। जनता जनार्दन ने आज मुझे अपना सेवक चुना है। मैं आज तुझे छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जन्म भर मातृभूमि मेवाड़ के हित में तन, मन, धन अर्पण करने से मुँह न मोड़ूँगा। जब तक चित्तौड़ का उद्धार न कर लूँगा। सत्य कहता हूँ - कुटी में रहूँगा, पत्तल में खाऊँगा और तृणों पर सोऊँगा।"[180] राणा के हृदय में राष्ट्र की दयनीय स्थिति के सम्बन्ध में अत्यन्त चिन्ता दिखाई देती है और वे मातृभूमि को इस दयनीय स्थिति से मुक्त कराने की बात सोचते हैं। उनके अनुसार "माँ का स्वर्ग-संसार आज श्मशान हो रहा है, हमारे चित्तौड़ में एक भी दीपक नहीं, उसका सम्मान आज विदेशियों के अत्याचारों की पदरज बना हुआ है। क्या अब भी हम सुख की नींद सो सकेंगे ?"[181] प्रताप सिंहासनारूढ़ होने पर मेवाड़ और चित्तौड़ के वीरों के हृदय में स्वराज्य की अदम्य आकांक्षा उत्पन्न करने का यत्न करते हैं। वे कहते हैं कि "आओ, आज से हमारे हृदय में खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, लड़ते-भिड़ते, आठों पहर स्वाधीनता की प्रबल आकांक्षा, प्रलयाग्नि बनकर भड़का करे। उसकी एक-एक चिनगारी गुलामी के विकट वन को भस्म करती रहे।"[182] देश के लिए आत्मोत्सर्ग

180- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द" - प्रताप प्रतिज्ञा" पृ0 12

181- वही, पृ0 12

182- वही, पृ0 13

ने के लिए महाराणा प्रताप मृत्यु शय्या पर पड़े हुए अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट करते है कि "मैं चाहता हूँ कि इस पीड़ित भारत वसुन्धरा पर कभी ऐसा कोई माई का लाल पैदा हो, जिसके हृदय-रक्त की अन्तिम बूंदे इसकी स्वाधीनता यज्ञ में पूर्णाहुति दे । इसे सदा के लिए स्वाधीन कर दे ।"[183]

ए७ राष्ट्र की भावना -

अंग्रेज शासकों ने भारतीय समाज एवं राष्ट्र में व्याप्त फूट की भावना का भरपूर लाभ उठाया था । जहाँ एक ओर सामाजिक दृष्टिकोण से भारतीय समाज विभाजित हो रहा था[184] वहीं राजनीतिक दृष्टिकोण से भी राष्ट्र अनेक टुकडों में विभक्त था। भारतीय राजाओं की फूट ने विदेशी जातियों को भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करने तथा आर्थिक शोषण करने के लिए आमन्त्रित किया । इस फूट ने वास्तव में भारतीय स्वाधीनता को प्राप्ति में भी बाधा उपस्थित की थी । अतः हिन्दी नाटककारो ने भारतीय समाज एवं राष्ट्र की इस त्रुटि का समाधान ढूँढने के प्रयास में अपने नाटको में भारतीय पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया । उन्होंने लोगो को इस दिशा में विचार करने एवं राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहित करने हेतु उद्वेलित करना चाहा ।

183- वही, पृ0 94

184- देखिये- पूर्वोल्लिखित

जयशंकर प्रसाद के नाटक "चन्द्रगुप्त" में सम्पूर्ण आर्यावर्त को एक देश मानने का सन्देश प्राप्त होता है । आर्यावर्त के सम्बन्ध में नाटक के प्रारम्भ में ही सिंहरण चिंतित प्रतीत होता है ।[185] प्रसाद उपर्युक्त भावनाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन में भी प्रवाहित करने का प्रयास कर रहे थे । प्रान्तीयता एवं साम्प्रदायिकता पर "चन्द्रगुप्त" नाटक में, प्रसाद व्यंग्य करते हैं । चाणक्य की नीति का प्रमुख तत्व एक राष्ट्र की स्थापना है। प्रसाद इसी एक राष्ट्र की भावना को प्रोत्साहित करते हुए लिखते है कि - मालव और मागध को भूलकर जब आर्यावर्त का नाम लोगे तभी वह मिलेगा ।[186] इसी नाटक में सिंहरण अलका से कहता है, परन्तु मेरा देश मालव ही नहीं, गान्धार भी है । यही क्या समग्र आर्यावर्त है । "[187] अलका भी अपने देशद्रोही भाई आम्भीक के सम्मुख आर्यावर्त का आदर्श प्रस्तुत करती है, वह कहती है, "भाई, तक्षशिला मेरी नहीं और तुम्हारी भी नहीं, तक्षशिला आर्यावर्त का एक भूभाग है, वह आर्यावर्त को होकर ही रहे, इसके लिए मर मिटो । "[188]

हरिकृष्ण प्रेमी के "रक्षाबन्धन" नाटक में कर्मवती कहती है कि जब तक हम अपने व्यक्तित्व को सुख-दुख और मानापमान से निमग्न न कर देंगे तबतक उसके गौरव की रक्षा असम्भव है, तब तक हम मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं हो सकते । जिस समय देश पर विपत्ति के बादल घिरे हुए है,

---

185- जयशंकर प्रसाद - चन्द्रगुप्त ,पृ0 55

186- वही पृ0 59

187- वही, पृ0 60

188- वही, पृ0 195-196

बिजली कड़क रही है, शत्रु पैशाचिक अट्टहास कर रहे है, उस समय पृथक-पृथक व्यक्तियों, जातियों और वंशो के मानापमान और अधिकारो की चर्चा कैसी।"[189]

प्रेमी जी एक राष्ट्र को स्थापित करना चाहते थे क्योंकि एक संगठित आन्दोलन का सूत्रपात तभी हो सकता था जबकि देशवासी क्षेत्रीयता एवं जातीयता के घेरे से निकलकर एक व्यापक राजनीतिक दृष्टिकोण को अपनाएँ। अतः प्रेमी जी ने यद्यपि कथानक को एक क्षेत्र विशेष से ग्रहण किया हैफिर भी उसमें क्षेत्रीयता का विलोप कर दिया गया है। "रक्षाबन्धन" नाटक में विजय मेवाड़ को पूरे देश के समान महत्त्व देते हुए कहता है" मेवाड़ क्या केवल महाराजाओं का है, क्या वह केवल क्षत्रियों का है? नहीं, हम सबका है, हममे से प्रत्येक का है। वह अपना हृदय दे रकर सबको समान रूप से जीवन देता है, राजा महाराजाओं को और हमको भी। जब उस पर संकट आया है तो उसकी याद में हम सबको जलना पड़ेगा। उस पर प्राण न्योछावर करने का सबको अधिकार है।[190]

सेठ गोविन्ददास के नाटक"हर्ष" में भारतवर्ष को एक राष्ट्र बनाने की लालसा दिखाई देती है। भारत को एक राष्ट्र बनाने के सम्बन्ध में सेनापति मण्ड कहता है " जब तक सारा भारतवर्ष एक साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं आता तब तक एक राष्ट्र निर्माण का कार्य हो ही कैसे सकता है।"[191]

---

189 हरिकृष्ण प्रेमी - रक्षाबन्धन पृ0 12
190- वही, पृ0 57 ।
191- सेठ गोविन्ददास -हर्ष, पृ0 106

"शशिगुप्त " नाटक में भी पारस्परिक भेदभाव को भुलाकर एक होने का सन्देश दिया गया है । चाणक्य समस्त आर्यावर्त की गौरव-रक्षा के लिए कटिबद्ध है। वह पर्वतेश्वर को भी यह समझाता है कि यदि हम सब आज एक होकर संगठित शक्ति से यवन आक्रमण का विरोध नहीं करेंगे, तो देश शताब्दियों के लिए दासता की शृंखला में जकड़ जायेगा और भारत पर अभूतपूर्व अत्याचार होंगे ।"[192] चाणक्य के द्वारा देश की सुरक्षा के लिए सभी छोटे-छोटे राजाओं को एक होने की परामर्श दी गई है । उसके अनुसार, "भारत के भी समस्त नरपतिगण तथा गणतन्त्र यदि एक हो जायें तो उनके तेज के सम्मुख यवन ! ओह ! एक यवन ही क्या यदि संसार के समस्त राष्ट्र भी आक्रमण करें तो उनकी दशा होगी जो चमकते हुए दीप पर पतंगों की, जो प्रज्वलित दव पर रिमझिम बरसने वाली बूँदों की, जो जागृत ज्वालामुखी पर ओलों की ।"[193]

लक्ष्मीनारायण मिश्र देश की एकता को स्थापित करने हेतु प्रयत्नशील प्रतीत होते है । वे देश की विघटनकारी प्रवृत्तियों से देशवासियों को सचेत करते हैं तथा उन्हें एक राष्ट्र के निर्माण का सन्देश देते हैं । उनके अनुसार "यदि आज भारत टुकड़ों में विभक्त हो जाय, तो कल उसकी जागती हुई सभ्यता सो जायेगी और फिर कभी जागेगी या नहीं, इसमें सन्देह है । आप लोगों के स्वार्थ से ... आप लोगों के सुख से, इस आर्य जाति का स्वार्थ और सुख कहीं गुरुतर है ।"[194]

192- वही, शशिगुप्त , पृ0 44 ।

193- वही, पृ0 32 ।

194- लक्ष्मीनारायण मिश्र - अशोक, पृ0 17 ।

"सन्यासी" नाटक में मिश्र जी ने केवल राष्ट्रीय एकता को ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने का प्रयास किया है। नाटक में विश्वकान्त एक एशियाई संघ की स्थापना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहता है कि "योरोप को जो करना था कर दिया। योरोप ने इन्सानियत की छाती में जितने घाव किये हैं उन सबके लिए एशिया को मरहम बनाना पड़ेगा।"[195] योरोप का सामना एशियाई संघ द्वारा करने का सुझाव मिश्र जी के सम्भवतः दो दृष्टिकोणों को स्पष्ट करता है। एक ओर तो साम्राज्यवाद के शिकार एशिया के अनेक राष्ट्र थे, अतः उन्हें पराधीनता से मुक्ति हेतु अन्य एशियाई राष्ट्रों से मिलकर प्रयास करना चाहिए। यदि मिश्र जी का तात्पर्य यह है तो वास्तव में वे अन्तर्राष्ट्रीय स्वाधीनता के पक्षपाती बन जाते हैं। दूसरी ओर एशियाई संघ से यह भी तात्पर्य लगाया जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भारत में अनेक विघटनकारी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही थीं, जहाँ एक ओर भारतीय राजाओ द्वारा अंग्रेजो के प्रति भक्ति दिखाई जा रही थी, भारतीय वर्ग भी अंग्रेजों की चाटुकारिता मे लगा हुआ था, वही अंग्रेजो ने हिन्दुओं और मुसलमानो में साम्प्रदायिकता को तथा शूद्रों के सम्बन्ध में अलगवाद की नीति को बढ़ावा दिया था।

195- वही - सन्यासी, पृ0 115 ।

एशियाई संघ की स्थापना का उद्देश्य कुछ भी क्यों न हो, एक बात निश्चित रूप में कही जा सकती है कि मिश्र जी ने साम्राज्यवाद के विरूद्ध संगठित आन्दोलन पर बल दिया था ।

चतुरसेन शास्त्री के नाटक "अजितसिंह " में एक राष्ट्र और राष्ट्रभक्ति की भावना प्राप्त होती है। अजित सिंह अनेक प्रदेशो के अधिपतियों की उपस्थिति में कहता है कि " समस्त राजपूताने का हित हमारा हित होना चाहिए, अपितु सारे भारत का हित हमे अपना लक्ष्य समझना चाहिए ।"[196]

इस प्रकार प्रसाद युग में नाटककारों ने एक राष्ट्र की भावना को अपने नाटकों में चित्रित करके भारतीय राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया है । क्योंकि भारतीय राष्ट्र के अस्तित्व की एक बड़ी दुर्बलता समाज का अनेक भागों में विभाजित होना था जिसके कारण अंग्रेजी शासन के विरूद्ध भारतवासी एक-जुट कर खड़े नहीं हो पा रहे थे । अतः हिन्दी नाटककारों का इस दिशा में प्रयास सराहनीय था ।

196- चतुरसेन शास्त्री - अजितसिंह, पृ0 136

साम्राज्यवाद से मुक्ति के साधन -

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में साम्राज्यवाद से मुक्ति की भावना का सर्वप्रथम प्रकटीकरण सन् 1857 ई0 के विद्रोह के रूप में हुआ । इस आन्दोलन ने वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भारत में जड़ो को हिला दिया था और परिणामस्वरूप भारत में कम्पनी के शासन का अन्त हो गया । फिर भी यह आन्दोलन एक असफल आन्दोलन रहा था जिसके सम्बन्ध में विद्वानो में मतभेद पाया जाता है ।[197] भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एक संगठित आन्दोलन के रूप में गान्धी जी के नेतृत्व में स्थापित हो सका । इसी गांधी-वादी आन्दोलन की प्रतिक्रिया स्वरूप क्रान्तिकारी एवं आतंकवादी आन्दोलनों को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ ।[198] यद्यपि गान्धीवादी और क्रान्तिकारी आन्दोलनो में साधनो के दृष्टिकोण से अन्तर पाया जाता है फिर भी दोनों का सर्वप्रथम उद्देश्य विदेशी शासन को भारतभूमि पर से उखाड़ फेंकना था । चूँकि गान्धीयुग के अन्तर्गत ही क्रान्तिकारी आन्दोलन भी चल रहा था, अत गान्धीयुग में विदेशी शासन से मुक्ति के लिए अहिंसक तथा हिंसक दोनो ही साधन अपनाये जा रहे थे जिनको पृथक रूप में निम्नवत् देखा जा सकता है।

197- पूर्वोल्लिखित

198- यद्यपि क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही हो चुका था । देखिये पूर्वोल्लिखित , पृ0

अहिंसक साधन -

गान्धीयुग का नामकरण ही गान्धीवादी नीतियों एवं कार्यक्रमों के कारण हुआ था। इस युग में गान्धीवादी आन्दोलनों को बहुत महत्व प्राप्त हो रहा था।गान्धी जी के व्यक्तित्व से जनता प्रभावित हो रही थी। यही कारण था कि हिन्दी नाटककारों ने भी गान्धी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अपने नाटकों की रचना की जिसमें गान्धीवादी नीतियों एवं कार्यक्रमों को प्रश्रय देने का प्रयास किया।

सत्य और अहिंसा-

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक "विशाख" में गान्धीवादी नीतियों के महत्व पर बल दिया है। नाटक का पात्र प्रेमानन्द गान्धी जी का ही प्रतिरूप है जो सत्य और अहिंसा का पुजारी है। उसके चरित्र में प्रेम, दया, सत्य, अहिंसा और शान्ति का सन्देश प्राप्त होता है। प्रसाद ने स्वयं प्रेमानन्द के मुख से गान्धीवादी विचारधारा का उल्लेख किया है कि "मैं शाश्वत संघ का अनुयायी हूँ और प्रेम की सत्ता का विश्वभर में प्रचार करना मेरा लक्ष्य है।"[199] राष्ट्रीय आन्दोलन में गान्धी जी की शिक्षा सत्याग्रह की शिक्षा थी। जिसमें उन्होंने शारीरिक बल को नहीं वरन् आत्मबल को महत्व प्रदान किया था। गान्धी जी का विश्वास था कि यदि लक्ष्य की पूर्ति करनी हो तो

199- जयशंकर प्रसाद - विशाख, पृ0 30

पद अहिंसात्मक साधन को अपनाकर करनी चाहिए। प्रेमानन्द गान्धी जी के इन्हीं सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहता है "सत्य को सामने रखो, आत्मबल पर भरोसा रखो, न्याय की मांग करो।"[200] प्रेमानन्द हिंसा को हिंसा से दूर करने का पक्षपाती नहीं है वरन् गान्धी जी कि भाँति उसका भी यह विश्वास है कि यदि हिंसा का प्रत्युत्तर अहिंसा और प्रेम से दिया जाय तो कट्टर से कट्टर शत्रु को भी जीता जा सकता है। "अजात शत्रु" नाटक में अजात की बहन पद्मावती उसे अहिंसा, दया और करूणा का पाठ पढ़ाना चाहती है।[201]

"चन्द्रगुप्त" नाटक में जब सिकन्दर युद्ध में आहत होकर गिर जाता है और मालव सैनिक प्रतिशोध की भावना से परिपूर्ण होकर उसका वध करना चाहते हैं तो उस समय प्रसाद ने सिंहरण के रूप में उपस्थित होकर अहिंसावादी नीति को प्रश्रय प्रदान किया है। इसके सम्बन्ध में डॉ नगेन्द्र का यह मत है कि "यह प्रसंग इतिहास के अनुकूल हो अथवा नहीं, परन्तु इसमें बोलती हुई देशभक्ति की भावना एकान्त दिव्य है। देशभक्ति का इतना शुद्ध और पवित्र रूप मैंने हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं देखा।"[202]

हरिकृष्ण प्रेमी अपने नाटक "स्वर्ण विहान" में हिंसा का विरोध करते हुए लिखते हैं -

---

200- वही, पृ0 68
201- वही, अजातशत्रु, पृ0 64।
202- डा0 नगेन्द्र-आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ0 9

"नहीं-नहीं ऐ पगले यौवन,जीत प्रेम से पापाचार,

अरे पाप से पाप मिटाना, यहाँ भूल है व्यर्थ विचार,

कहीं आग से आग बुझाना,है असम्भव ऐ युवक विचार,

धर्म-सत्य जिस ओर रहेंगे, उसी ओर होंगे करतार ।"[203]

गान्धी जी ईसा मसीह की अहिंसा से प्रभावित थे । गान्धी जी के इस विश्वास से पूर्ण सहमत होते हुए सेठ गोविन्ददास जी अपने "विकास" नाटक में ऐसे ही विचार प्रकट करते हैं । वह लिखते है, "अब तक तुमने सुना है कि हिंसा न करो, पर मैं तो कहता हूँ कि क्रोध ही न करो, क्योंकि क्रोध ही हिंसा का पिता है । तुमने आँख के बदले आँख, दांत के बदले दांत का उपदेश सुना है, किन्तु मैं तो कहता हूँ कि प्रतिकार लेने की दृष्टि ही मत रखो । यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर चपत मारे, तो तुम दूसरा गाल उसके सम्मुख कर दो । तुमने अपने पड़ोसी से प्रेम और बैरी से बैर करने की बात सुनी है, किन्तु मैं तो तुम्हें अपने बैरियों से भी प्रेम करने के लिए कहता हूँ ।"[204] इसी नाटक में एक अन्य स्थल पर आकाश कहता है कि "इस लिए तुम्हारे भारत देश में महात्मा गान्धी ने जन्म लिया है । यह देखकर कि केवल धर्म-प्रचार से मानव समाज अपने ज्ञान के अनुसार कर्म नहीं कर सकता । केवल इतने से ही प्रेम के साम्राज्य और अहिंसा की स्थापना नहीं हो सकती ।उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र, यहाँ तक कि राजनीति में भी प्रेम

203- हरिकृष्ण प्रेमी - स्वर्ण विहान, पृ0 38

204- सेठ गोविन्ददास- विकास, पृ0 69 -70 ।

और अहिंसा को प्रधान स्थान दिया है। "[205]

बदरीनाथ भट्ट जी ने गान्धी जी के सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों की महत्ता को अपने नाटक "वेन चरित्र" में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। नाटक में महर्षि अत्रि कहते है " जहाँ राजा और प्रजा में अनबन होती है वहाँ गहरी उथल -पुथल होती है, नाश होता है और पुनर्जन्म होता है। इस उथल-पुथल में जीत उसी की होती है, जिसकी तरफ सत्य हो।"[206]

बेचन शर्मा "उग्र" भी अपने नाटक "महात्मा ईसा" में ईसा के द्वारा कहलवाते है कि " यह तुम्हारी मिथ्या धारणा है, पशुबल को यदि पशुबल दबायेगा तो महापशुबल हो जायेगा जिससे किसी को भी सुख न मिल सकेगा। अत्याचार के प्रतिकार के लिए धर्य, आत्मदमन और अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। अस्तु यदि कोई तुम्हारे एक कपोल पर प्रहार करे तो उसके सम्मुख हंसकर दूसरा कपोल भी कर देना, तुम देखोगें तुम्हारी विजय होगी। फिर वह तुम्हें मारने के लिए हाथ न उठा सकेगा।[207]

असहयोग तथा सत्याग्रह -

हिन्दी नाटककारों ने गांधीवादी असहयोग एवं सत्याग्रह आन्दोलनों को अपने नाटकों में अभिव्यक्ति दी है। गान्धी जी के असहयोग

205- वही, पृ0 88-89

206- बद्रीनाथ भट्ट - वेन चरित्र, पृ0 133।

207- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" -महात्मा ईसा, पृ0 97-98

आन्दोलन के औचित्य को सिद्ध करते हुए पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र जी अपने नाटक "महात्मा ईसा" में ईसा के द्वारा कहलवाते है कि "इसका अर्थ है आत्म-स्वातन्त्र्य । यदि पिता की आज्ञा पुत्र की आत्मा के विरुद्ध है तो उसे चाहिए कि वह अपने पिता से अत्यन्त नम्र शब्दों में असहयोग कर दे । यही नियम सम्पूर्ण संसार के लिए है और मैं इसी का प्रचारक हूं ।[208] इसी नाटक में हेरोद की निरंकुशता और अत्याचार भारतीय शासकों तथा ब्रिटिश शासन की निरंकुशता और अत्याचार के प्रतीक है। एलाजर और शाबिल भी अंग्रेज अफसरों के प्रतिरूप है । नाटक में देशभक्तों पर अनेक आरोप लगाकर उन्हें दण्डित किये जाने का भी वर्णन है तथा ईसा महात्मा गान्धी के समान असहयोग और आत्म स्वातन्त्र्य का उद्घोष करते हैं ।[209]

लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक "मुक्ति का रहस्य" में असहयोग आन्दोलन का वर्णन किया है । उमाशंकर अपने मित्र बेनी माधव से असहयोग आंदोलन की चर्चा करते हुए कहता है कि "तुम जानते हो असहयोग की लहर में ... इस्तीफा देने के बाद .... मैं दो वर्ष के लिए जेल गया था ।"[210] जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने अपने नाटक "प्रताप प्रतिज्ञा " में राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता-विफलता का प्रभावांकन किया है। उन्होंने नाटक में गान्धीवादी असहयोग आन्दोलन की विफलता के परिणामस्वरूप देश में व्याप्त निराशा की भावना को राजा के शब्दों में अभिव्यक्त किया है ।

---

208 वही, पृ0 80

209- वही, पृ0 80

210- लक्ष्मी नारायण मिश्र- मुक्ति का रहस्य, पृ0 62 ।

रा ा कहते हैं कि " इस जीवन की अब कोई सार्थकता नहीं । केवल एक लम्बा-चौड़ा, सूखाऔर सूना बालू का प्रदेश हृदय में ज्वालामुखी हिलोरे लेता प्रतीत होता है । कोई आशा नहीं । कोई भरोसा नहीं । "211 राष्ट्रीय आन्दोलन में गान्धी जी के पदार्पण से एक नवीन क्रान्ति आ गई थी । ऐसा प्रतीत होता था कि गान्धी की लहर में सभी कोई बहे जा रहे हो । गान्धी के प्रभाव के सम्बन्ध में ही, उमा शंकर के मित्र बेनी माधव वकील और चाचा काशीनाथ जो राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थक नही है, गान्धी जी के सम्बन्ध में बहस होती है । बेनी माधव कहता है " मैंने कहा.. ..... लेकिन सुनता कौन है ? गान्धी का जादू ऐसा चल रहा है कि जिसने गान्धी टोपी लगाई .... बस वह गान्धी बना । "काशीनाथ कहता है कि "कलेक्टर साहब भी कह रहे थे कि गान्धी बड़ा अच्छा आदमी है ।" बेनी माधव कहता है " लेकिन उमाशंकर तो उन्हें देवता समझते है.. कहते है कि वह भगवान के अवतार है। " काशीनाथ व्यंग्य करता है कि भगवान का अवतार, बनिया ? "212

असहयोग आन्दोलन सत्याग्रह आन्दोलन से सम्बन्धित था । जहाँ असहयोग में आत्म-स्वातन्त्र्य का भाव प्रधान था, वहीं सत्याग्रह में आत्मशक्ति को महत्व प्राप्त था । गान्धी जी ने वस्तुतः अपने सभी आन्दोलन का आधार सत्य एवं अहिंसा को बनाया था । इसी सत्य का आग्रह अहिंसात्मक रूप में

211- लक्ष्मी नारायण मिश्र - मुक्ति का रहस्य, पृ0 62 ।

212- लक्ष्मी नारायण मिश्र - मुक्ति का रहस्य, पृ0 111

सत्याग्रह को प्रदर्शित करता है । हिन्दी नाटकों में सत्याग्रह आन्दोलन के भी दर्शन प्राप्त होते हैं ।

जय शंकर प्रसाद के नाटक"जनमेजय का नागयज्ञ" में सत्याग्रह का प्रभाव दिखाई देता है ।[213] "स्कन्दगुप्त" नाटक में एक वृद्ध सेनापति सैन्यबल तथा सशस्त्र रूप से विदेशियों को निकालने में असमर्थता प्रकट करता है । वह जनता से कहता है " मुझे जय नही चाहिए, जो दे सकता हो प्राण, जो जन्म-भूमि के लिए उत्सर्ग करसकता हो जीवन , वैसे वीर चाहिए कोई देगा भीख में । "[214]

हरिकृष्ण प्रेमी के "शिवासाधना" नाटक में राष्ट्र को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया गया है । राष्ट्र के लिए सब कुछ बलिदान करने की प्रेरणा नाटक में प्राप्त होती है । यह त्याग एवं बलिदान महात्मा गान्धी के सत्याग्रह के सिद्धान्त के अधिक निकट प्रतीत होता है । गुरू रामदास महात्मा गान्धी की वाणी में कहते हैं " बेटा, यह स्वयं साधना का कार्य, युग-युग की बेड़ियों को काटने का काम, एक दो दिन में नहीं होता । यह कांटों और बाधाओं से भरा हुआ पथ है। इस पथ पर चलने की दीक्षा लेने वालों को माँ-बाप, भाई, बहिन, धन, सम्पत्ति, लोक-परलोक सभी से आँखे फेरनी होती हैं । स्वतन्त्रता से अमूल्य वस्तु कोई नहीं, धर्म भी

213- जयशंकर प्रसाद-"जनमेजय का नागयज्ञ" पृ0 80

214- वही, स्कन्दगुप्त, पृ0 71 ।

नहीं है । इसके साधक को इस पर सब कुछ बलिदान कर देना पड़ता है । अपना सुख-दुख अपना अच्छा-बुरा लगना भी न्योछावर कर देना पड़ता है।[215]

सेठ गोविन्ददास के "विकास" नाटक में गान्धीवादी सत्याग्रह के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है । नाटक में आकाश कहता है कि " न्याय को अन्याय ने पाशविक बल के उपयोग से ही जीता है । गान्धी ने अन्याय पर विजय प्राप्त करने के लिए एक नवीन मार्ग सत्याग्रह का अनुसंधान किया है । इसमें पाशविक बल नहीं, किन्तु आत्मिक बल की आवश्यकता है । संसार के अब तक के इतिहास से यही सिद्ध होता है कि जो आप अपने को न्यायशाली कहते हैं वे ही पाशविक बल का उपयोग कर अन्यायी हो जाते हैं गान्धी के मार्ग में यह बात हो ही नहीं सकती।[216] सेठ गोविन्ददास जी गान्धी जी के व्यक्तित्व और विचारधारा के अनन्य उपासक थे । उनके स्वय के जीवन और साहित्य पर गान्धीवाद का अमिट प्रभाव देखा जा सकता है । उन्होंने गान्धीवादी सत्याग्रही नीति का समर्थन करते हुए अपने नाटकों में सत्याग्रह की श्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयास किया है । "सिद्धान्त स्वातन्त्र्य" नाटक में सरस्वती शारीरिक शक्ति को प्रेम की शक्ति की तुलना में हेय और त्याज्य मानती है और भारतीयो पर अंग्रेजो द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों की भर्त्सना करती है । [217]

215- हरिकृष्ण प्रेमी- शिवासाधना, पृ0 23 ।

216- सेठ गोविन्ददास -विकास, पृ0 69 ।

217- वही, सिद्धान्त स्वातन्त्र्य पृ0 53 ।

पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" "महात्मा ईसा" नाटक में पशुबल को पशुबल से नहीं वरन् प्रेम से विजय करने के समर्थक हैं ।[218]

हृदय परिवर्तन -

सत्याग्रह का अस्त्र शत्रु के हृदय पर विजय प्राप्त करने का अस्त्र है । इसके माध्यम से कठोर-हृदय शत्रु को भी अपने वश में किया जा सकता है । गान्धी जी का मानना था कि सत्याग्रह के माध्यम से शत्रु का हृदय परिवर्तित किया जा सकता है । अत राष्ट्रीय आन्दोलन में सत्याग्रह आन्दोलन को स्वीकार करना चाहिए ।

सेठ गोविन्ददास के नाटक "सिद्धान्त स्वातन्त्र्य " में मनोहर गान्धीवादी राजनीति से प्रभावित है। वह देश को पराधीनता की जंजीरों से मुक्त कराना चाहता है । अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सन् 1930 के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेता है और अन्त में पुलिस की गोली का शिकार हो जाता है। उसकी मृत्यु से जिलाधीश विश्वेश्वर दयाल इतना मर्माहत होता है कि सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे देता है। पौत्र के प्राणों के उत्सर्ग से प्रभावित हो चतुर्भुज दास भी राजा की पदवी का त्याग कर गान्धी जी का अनुयायी बन जाता है ।[219]

218- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" - महात्मा ईसा, पृ0 97-98
219- डॉ0 सावित्री स्वरूप - नव्य हिन्दी नाटक, पृ0 215 पर उद्धृत ।

समाज सुधार के सम्बन्ध में से० गोविन्ददास जी ने गान्धीवादी हृदय परिवर्तन की नीति को स्वीकार किया है। क्योंकि स्थाई परिवर्तन अन्दर से होता है। इस सम्बन्ध में सेठ जी स्त्री पात्र मनोरमा के मुख से अपने विचार व्यक्त करते हैं, जिसके अनुसार, " मेरी तो राय है कि कानून द्वारा समाज सुधार करना ही ठीक सिद्धान्त नहीं है। समाज सुधार राजकीय शक्ति की अपेक्षा आन्तरिक परिवर्तन द्वारा ही करने का प्रयत्न अच्छा है और वही स्थाई भी रह सकता है।"[220]

स्वदेशी एवं बहिष्कार -

गान्धी जी ने स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन को राष्ट्रीय आत्म निर्भरता एवं विदेशी प्रभाव से मुक्ति हेतु स्वीकार किया था। इस आन्दोलन से जहाँ एक ओर भारत की गरीबी को दूर करना सम्भव था, वहीं भारतीय राष्ट्रीय जागरण का पूर्ण अवसर प्राप्त हो सकता था। हिन्दी नाटकों में भी इन आन्दोलनों को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने खादी की उपयोगिता को महत्व प्रदान किया है। "सन्यासी" नाटक में खादी धर्म के प्रति आग्रह किया गया है कि " इस जमाने में कोई भी भला मनुष्य चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष खादी धर्म से घृणा नहीं कर सकता। संसार इसकी उपयोगिता समझ रहा है।

220- सेठ गोविन्ददास - प्रकाश प० 12 ।

करोड़ो गरीबों की भूख इससे मिट सकती है। तुम्हारा मुल्क स्वाधीन हो सकता है।[221] "उग्र" जी के नाटक "महात्मा ईसा" में ईसा और उनके शिष्यों को मोटे वस्त्रों में दिखाया गया है।

"सिद्धान्त स्वातन्त्र्य" नाटक में गोविन्ददास जी ने गान्धीवादी राजनीति का प्रभाव सामान्य जनता पर ही नहीं वरन् बड़े-बड़े राजाओं और सेठों के परिवारों पर भी दिखाया गया है। नाटक का चतुर्भुज दास एक धनाढ्य राजभक्त व्यक्ति है। उसका पुत्र त्रिभुवन कांग्रेस की राजनीति से प्रभावित होकर विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार का आन्दोलन चलाता है। परन्तु उसका यह कार्य एवं उत्साह कुछ समय का ही था और अन्तत: वह अंग्रेज परस्त हो जाता है। वह कालान्तर मे 'सर' की उपाधि भी प्राप्त करता और युक्त प्रान्त केगृहमंत्री के पद पर नियुक्त किया जाता है। परन्तु उसका इकलौता पुत्र मनोहर गान्धीवादी राजनीति से प्रभावित है। वह देश को पराधीनता की जंजीरों से मुक्त कराना चाहता है। वह सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेता है और गोली का शिकार हो जाता है। उसकी मृत्यु से जिलाधीश विश्वेश्वर दयाल इतना मर्माहत हो जाता है कि सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे देता है। पौत्र के प्राणों के उत्सर्ग से प्रभावित हो चतुर्भुजदास भी राजा की पदवी का त्याग कर गान्धी जी का अनुयायी बन जाता है। "मुक्ति का रहस्य" नाटक में लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने बहिष्कार का वर्णन किया है।[222]

221- लक्ष्मी नारायण मिश्र - सन्यासी, पृ0 92

222- लक्ष्मी नारायण मिश्र- मुक्ति का रहस्य" पृ0 62 ।

रामनरेश त्रिपाठी जी ने अपने नाटक "वफाती चाचा" में गान्धी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को अभिव्यक्ति देने का बड़े व्यंग्यपूर्ण ढंग से प्रयास किया है। नाटक में कवि जी केवल कविता करने में ही सारा समय नष्ट करते है। ऐसी कविता रचना को उनकी पत्नी दिमागी ऐयाशी के नाम से सम्बोधित करती है। कवि जी जनजीवन से अपने आपको बिलकुल अलग रखना पसन्द करते हैं। एक दिन उनकी पत्नी उनको फटकारते हुए कहती है कि " काम की कमी है ? जाओ जनता को निरक्षरता दूर करो, उत्साह रहितो में आशा भरो, पीड़ितो का कष्ट दूर करो, दलितो को ऊपर उठाओ, पतितो कोगले लगाओ, युवकों में स्वदेश प्रेम जागृत करो। काम की कमी है ? करना चाहो तो बेतुकी कविता से कहीं ज्यादा अच्छे काम आंखो के सामने हैं। जीवन का सच्चा आनन्द परहित चिन्तन में है, दिमागी ऐयाशी में नही।"[223]

प्रसाद युगीन हिन्दी नाटकों में गान्धीवादी आन्दोलन पर ही हिन्दी नाटककारों का मुख्यबल था। वास्तव में यह वह युग था जिस समय गान्धीवादी सिद्धान्तों एवं कार्यक्रमोंकोसमाज का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ था/अतः क्रान्तिकारी एवं हिंसक सधानों एवं समाजवादी साधनों पर विशेष ध्यान नही दिया गया। अतः इस युग में गान्धीवादी सिद्धान्तों एवं नीतियों की अभिव्यक्ति हिन्दी नाटकों में हुई। तथापि इस युग के नाटककारों ने यथा हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र इत्यादि ने

223- रामनरेश त्रिपाठी- वफाती चाचा, पृ0 60

ा न्त का संकेत अपने नाटकों में यत्रतत्र किया है ।[224]

आर्थिक -

हिन्दी नाटककारों ने गान्धीयुगीन भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक समस्याओं का भी उल्लेख अपने नाटकों में किया है। वस्तुत: अंग्रेजी शासकों की मूल नीति भारतवर्ष पर शासन करने की न होकर आर्थिक थी । अत: जब भारतवर्ष में उनके पैर जम गये तब उन्होंने भारत का पूर्णरूपेण शोषण करना आरम्भ कर दिया जिसका परिणाम अन्तिम रूप में भारतीय जनता को भुगतना पड़ा । भारत में अंग्रेजी आर्थिक नीति के अनेक परिणाम हुए । जिनको निम्नवत रूप में देखा जा सकता है -

गरीबी -

भारत में अंग्रेजी शासन सभी समस्याओं का मूल था । इन समस्याओं में सबसे गम्भीर समस्या गरीबी थी । गांवों में रहने वाला किसान तथा साधारण आदमी अंग्रेजी शोषण के कारण और अधिक गरीब होता जा रहा था । जवाहर लाल नेहरू के अनुसार "दीर्घकाल से परतन्त्र भारतीय समाज में आर्थिक समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया था । ब्रिटिश साम्राज्य की शोषणकारी आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप देश का जीवन-रक्त विदेश चला जा रहा था । उत्पादन और उद्योग के प्राचीन आधार मिट गये और अंग्रेजों द्वारा चलाई गई आर्थिक व्यवस्था विषमता की जनक बन

224- हरिकृष्ण प्रेमी - शिवासाधना, पृ0 5-6, लक्ष्मीनारायण मिश्र- सगर विजय, पृ0 103

गई थी ।"[225]

इस प्रकार समाज की गरीबी बढ़ती ही जा रही थी । इन गरीबी के कारण ही समाज में भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता बढ़ रही थी । अतः प्रसाद ने इस समस्या का भी समाधान करने का प्रयास किया । "कामना" नाटक में सन्तोष कहता है कि "दरिद्रता सब पापों की जननी है और लोभ उसकी सबसे बड़ी सन्तान है ।"[226] प्रसाद ने अंग्रेजी शासन की धूर्तता की ओर संकेत करते हुए करुणा के मुख से कहलवाया है कि "मैं निस्सहाय हो गई । लालसा ने सब धन अपना लिया और घर में भी मुझे न रहने दिया । वह कहती है कि इस घर और सम्पत्ति पर केवल मेरा अधिकार है और रहेगा । मैं इस स्थान पर कुटीर बनाकर रहती हूं ।"[227]

लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने स्वतन्त्र भारत के स्वप्न को पूर्ण करने के लिए देश के बड़े भाग की, जो गरीबी में जीवन व्यतीत कर रहा है, आर्थिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता पर बल दिया है। क्योंकि उनके अनुसार जब तक गरीबी की हालत में सुधार नहीं होगा तब तक भारत की स्वाधीनता की कल्पना व्यर्थ होगी । उमाशंकर कहता है कि "अमीरों के लिए बहुत हो चुका.... अब कुछ गरीबों के लिए होना चाहिए.... उनकी हालत जब तक नहीं सुधारी जा सकती... स्वतन्त्र भारत अभी स्वप्न है ।"[228]

225- जवाहर लाल नेहरू - डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृ0 335
226- प्रसाद - कामना, पृ0 56
227- वही, पृ0 57 ।
228- लक्ष्मीनारायण मिश्र - मुक्ति का रहस्य, पृ0 123

रामनरेश त्रिपाठी जी ने अपने नाटक "जयन्त" में भारत मे व्याप्त दरिद्रता का वर्णन किया है । कुसुम कहती है," माँ कहीं कुछ पैसे रखे हो तो बता मैं उन्हें लेकर बाजार से चने खरीद लाऊँ । मैं भी बहुत भूखी हूँ माँ! और तूने तो पाँच-छः दिनों से अन्न का एक तिनका भी मुँह के अन्दर जाने नही दिया ।"[229]

सुदर्शन के नाटक" अंजना" में भारत में व्याप्त दरिद्रता पर दुःख प्रकट करते हुए अंजना ललिता से कहती है कि "भारतवर्ष की भूमि में यह सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। जहाँ घर-घर दूध की नदियां बह रही हैं, अन्न के अम्बार लगे हुए हैं, चान्दी-सोने की कमी नहीं है । वहाँ भी क्या कोई पुरूष दरिद्र हो सकता है ? और उसकी दरिद्रता इस सीमा तक पहुँच सकती है कि उसके पास कुछ खाने के लिए ही न रहे ।"[230]

जमींदारों का अत्याचार -

जमींदारी प्रथा के कारण साधारण जनता एवं किसानों पर जमींदारों का बहुत अत्याचार होता था । जमींदार मनमाने ढंग से लगान वसूली का काम करते थे, लोगों से बेगार लिया करते थे । हिन्दी नाटककारों ने भारतीय समाज में व्याप्त ऐसी समस्या को भी अपने नाटकों में अभिव्यक्त किया है ।

229- रामनरेश त्रिपाठी- जयन्त, पृ0 2
230- सुदर्शन - अंजना, पृ0 84 ।

प्रेमचन्द अंग्रेजी शासन के प्रति भक्तिभावना नहीं प्रदर्शित करते थे अपितु वे ऐसे अत्याचारी शासन की आलोचना करते थे, जिसमें सबलों के द्वारा निर्बलों पर निरन्तर अत्याचार किया जाता है। "संग्राम" नाटक में प्रेमचन्द ने जमींदारों द्वारा जनता पर अत्याचार का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में हलधर की पत्नी राजेश्वरी कहती है कि " एक हमारे गाँव का जमींदार है कि प्रजा को चैन नहीं लेने देता। नित्य एक न एक बेगार, कभी बेदखली, कभी जाफा, कभी कुड़की, उसके सिपाहियों के मारे छप्पर पर कुम्हड़े, कद्दू तक नहीं बचने पाते।"[231]

समाजवाद

प्रेमचन्द ने "संग्राम" नाटक में अंग्रेजी सरकार की अत्यन्त कलुषित और स्वार्थपूर्ण आर्थिक नीति की भर्त्सना की है।[232] ऐसी दोषपूर्ण नीति की आलोचना करते हुए सबल समस्त बुराइयों की जड़ सम्पत्ति को बताता है। वह कहता है कि "किसके सुख भोग के लिए गरीबों को आये दिन बेगारें भरनी पड़ती हैं? यह वही लोग हैं जिनके पास ऐश्वर्य है, सम्पत्ति है, प्रभुता है, बल है, उन्हीं के भार से पृथ्वी दबी हुई है, उन्हीं के नखों से संसार पीड़ित हो रहा है। सम्पत्ति ही पाप का मूल है, इसी से कुवासनाएँ जाग्रत होती हैं। इसी से दुर्व्यसनों की सृष्टि होती है। गरीब आदमी अगर पाप करता है तो क्षुधा की तृप्ति के लिए, धनी व्यक्ति पाप करता है

231- प्रेमचन्द - संग्राम, पृ0 12
232- वही, पृ0 44।

अपनी कुवृत्तियों और कुवासनाओं की पूर्ति के लिए । "[233] लक्ष्मीनारायण मिश्र अपने नाटक "मुक्ति का रहस्य" में पूँजीवाद और पूँजीपतियों की आलोचना करते हैं । उनके अनुसार श्रमिक आन्दोलन का कारण स्वयं पूँजीपति वर्ग है । यहाँ पर मिश्र जी मार्क्स के अनुरूप पूंजीवाद की तबाही का सन्देश देते हैं । उमाशंकर समाजवादी विचारधारा को व्यक्त करते हुए कहता है कि "इसीलिए साम्यवाद का तूफान उमड़ा चला आ रहा है । आप लोगों को अभी नही समझ में आता किसी दिन रूस की हालत होगी ....तब कहा जायेगा ... गरीबो ने जुल्म किया ..... लूट लिया .... फूंक दिया ... मार डाला । वह नौबत क्यों आने पावे आप लोग पहले से ही समझ जाइये । "[234] उदयशंकर भट्ट जी ने अपने नाटक "अन्तहीन अन्त" में पूँजीवाद और पूँजीपतियों की आलोचना प्रस्तुत की है । सूर्य कुमार अपने डाकू मित्र राजाराम से पूंजीपतियों के विरूद्ध घृणापूर्ण एवं क्रान्तिकारी विचार व्यक्त करता है कि " न जाने क्यों मुझे समाज के इन प्रभुओं से बड़ी घृणा होती जा रही है। गरीबों की न जाने कितनी आशाओं को कुचलकर ये लोग उन पर अपना महल खड़ा करते हैं । इन्हें क्या अधिकार है, सारे संसार का सुख ये ही लोग भोगें । [235] मार्क्स की ही भाँति भट्ट जी का भी विश्वास है कि पूँजीवादी व्यवस्था की समाप्ति क्रान्ति द्वारा ही सम्भव है । उन्होंने इसके लिए श्रमिक वर्ग को

233- वही, पृ0 188- 189 ।

234- लक्ष्मी नारायण मिश्र - मुक्ति का रहस्य" पृ0 122

235- उदयशंकर भट्ट - अन्तहीन अन्त, पृ0 80

जागृत तथा संगठित होने का आह्वान किया है। सूर्य कुमार से डाकू राजाराम के कहे गये शब्द श्रमिक वर्ग में विद्रोहात्मक भावों का सृजन करते है। राजाराम के अनुसार, "क्या श्रमिकों को थोड़ी मजदूरी देकर और अपने आप अधिक से अधिक लाभ उठाकर रुपया कमाना न्याय है ? कभी नही । फिर भी धनी सदा से वैसा करता आया है, उस पर न न्याय के यन्त्र का अंकुश रहता है न अत्याचार का दायित्व। जिस राजा की आज पूजा होती है वह कभी डाकू से किसी प्रकार भी कम न था। शक्ति ही न्याय है। "236

प्रसादोत्तर युग -

जिस प्रकार से हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द युग भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनमेंएक परिवर्तन का द्योतक था उसी प्रकार प्रसादोत्तर युग हिन्दी नाट्य साहित्य में राष्ट्रीय दृष्टिकोण से परिवर्तन का प्रतीक था। प्रसाद युग में जहाँ गांधीवादी आन्दोलन का बोलबाला रहा वहीं इस युग का अन्त होते-होते भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रान्तिकारी आन्दोलन का तीव्र होना तथा समाजवादी प्रवृत्तियों का राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित होना महत्वपूर्ण घटनाएं थीं।

प्रसाद के बाद का काल भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का अन्तिम चरण माना जा सकता है। इस युग में ही भारतवासियों ने भारत छोड़ो आन्दोलन के माध्यम से भारतीय स्वाधीनता को प्राप्त करने का

236- वही, पृ0 41

सफल प्रयास किया था। इस युग में साम्प्रदायिक दंगों का भी काफी जोर रहा था। अतः इस युग के साहित्यकारों पर इन सभी घटनाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। हिन्दी नाटककारों ने इन घटनाओं को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूपों में अपने नाटकों में परिलक्षित करने का प्रयास किया है। लगभग सभी नाटककारों ने अपने नाटकों में युगीन परिस्थितियों को प्रतिफलित करने का प्रयास किया है। पुनः राष्ट्रीय आन्दोलन की घटनाओं को सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है -

सामाजिक -

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में बहुत अधिक मात्रा में सामाजिक समस्याओं एवं घटनाओं का अंकन प्राप्त नही होता है। केवल कुछ नाटककारों ने ही, वह भी प्रासंगिक रूप में, कुछ सामाजिक विषयों को अपने नाटकों में स्थान दिया है जिनका अध्ययन निम्नवत् किया जा सकता है -

सामाजिक भेदभाव -

हरिकृष्ण प्रेमी जी ने सामाजिक भेदभाव को भारतीय समाज की एक त्रुटि के रूप में अपने नाटक "स्वप्न भंग" में चित्रित किया है। सामाजिक भेदभाव के सम्बन्ध में दारा शिकोह बूढ़े मजदूर प्रकाश के सम्मुख तत्कालीन भारतीय समाज का अत्यन्त धूमिल एवं करूणापूर्ण चित्र खींचता है। वह प्रकाश से कहता है कि " तुम सच कहते हो, बाबा ! आज सामाजिक व्यवस्था बड़ी त्रुटिपूर्ण हो गई है। मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव की

दीवारें खड़ी हो गई हैं । हम एक दूसरे के दुख में भाग लेने के मानव धर्म को भूल गये हैं । स्नेह और सहानुभूति के उच्चतम मानवीय गुण आज मूर्खता के लक्षण समझे जाते हैं । जिसके पास शक्ति और धन है उसके पास से मानो मनुष्यता नष्ट हो गई है । वे अपनी वासना के बन्दी बन गये हैं ।-237

"मित्र" नाटक में सामाजिक भेदभाव के प्रति अपना दुख व्यक्त करते हुए अलाउद्दीन महबूब खाँ से कहता है कि " आज न यह हिन्दुस्तान पुराना हिन्दुस्तान रहा जबकि प्रेम ही इसका मूल मंत्र था, न इसके निवासी आज स्वयं ही एक है । ब्राह्मण शूद्र को छूना भी पाप समझता है, ऐसी ही इस देश की स्थिति है। ये आज अपने अंगों से भी प्रेम नहीं रखते, ये हम परायों से प्रेम क्या रखेंगे ? -238

दाउदयाल गुप्त जी ने देश में फैले सामाजिक एवं साम्प्रदायिक भेदभाव की आलोचना की है। उन्होंने धर्म और वर्ण के आधार पर भेदभाव एवं घृणा करने वालों को "देश के दुर्दिन" नाटक में धिक्कारा है। नाटक में सूत्रधार ग्लानियुक्त होकर कहता है कि वर्तमान दुर्दशा का कारण है, हमारी मूर्खता, द्वेष, और गुलामी का यह बन्धन । कहीं हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो रहा है तो कहीं हरिजनों पर अत्याचार हो रहा है। कहीं किसानों पर मुसीबतें पड़ रही हैं, तो कहीं अनाथ अबलाओं केसाथ दुर्व्यवहार हो रहा है। एक ओर बेचारे गरीब पेट भर अन्न न मिल पाने के कारण

237- हरिकृष्ण प्रेमी - स्वप्न भंग ,पृ0 33 ।

238- वही, -मित्र , पृ0 6 ।

पाके कर रहे हैं और दूसरी ओर इन्हीं गरीबों का खून चूसने वाले, इन्हीं के पैसों से रासरंग में मतवाले हो रहे हैं ।-239 देवर्षि नारद सवर्णों को लक्ष्य करके कहते हैं कि "मैं पूछता हूँ उन धर्म के ढोंगियों से कि इन बेचारों को प्रातःकाल देख लेने से पाप क्यों लगता है ? क्या ये परमात्मा के बनाये हुए नहीं हैं ? क्या जो भगवान तुम्हारा है वह उनका नहीं हैं ? फिर इनमें क्या कमी है ? यही न कि यह अछूत हैं, किन्तु अछूत के घर जन्म लेना किस शास्त्र में पाप लिखा है ।-240

मिश्र बन्धु के नाटक"ईशान वर्मन" में जाति की कल्पित छोटाई-बड़ाई का विरोध किया गया है। इसमें ब्राह्मण और शूद्र का भेद उचित नहीं माना गया है। इसमें इस बात का समर्थन किया गया है कि यदि शूद्र भी भारत के उद्धार में संलग्न होता है तो अभिनन्दनीय है ।241 देश को स्वतन्त्र कराने हेतु सत्येन्द्र जी एकता को अनिवार्य मानते हुए लिखते है कि यदि इस देश के सभी जन भेदभाव, छुआछूत, जाति-पाति का विचार छोड़कर देश के निर्माण कार्य में संलग्न हो सकें तो यह देश विश्व में शिरोमणि हो जाय और विश्व में अशान्ति का भय न रहे ।-242

<u>साम्प्रदायिक समस्या</u>-

20 वीं शताब्दी के दूसरे दशक से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक

239- राजेन्द्रपाल, गुप्त- देश के दुर्दिन , पृ0 15

240- वही, पृ0 24 ।

241- मिश्र बन्धु-ईशानवर्मन, पृ0 58 ।

242- सत्येन्द्र - जीवन यज्ञ, पृ0 73 ।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन साम्प्रदायिकता के अभिशाप से संतप्त रहा था जिसका परिणाम भारत विभाजन में देखा जा सकता है। अत हिन्दी साहित्यकार भी, जो राष्ट्रीय समस्याओं को अपनी लेखनी से अभिव्यक्ति प्रदान करता है कैसे इस समस्या से मुख फेर सकता था। प्रसादोत्तर काल में इस समस्या का स्वरूप अत्यन्त भीषण हो गया था अत: इस काल के लेखकों की रचनाओं में इसकी अभिव्यक्ति प्राप्त होती है।

हरिकृष्ण प्रेमी जी भारत में साम्प्रदायिक एकता के पक्षपाती थे। उन्होंने इसी एकता को अपने "आहुति" नाटक में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। नाटक में हम्मीर सिंह मीर महिमा नामक शरणागत मुसलमान की रक्षा के लिए अलाउद्दीन से लोहा लेता है और अपने पूरे परिवार समेत युद्ध की ज्वाला को समर्पित हो जाता है।[243] राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में प्रेमी जी साम्प्रदायिक एवं सामाजिक भेदभाव को समाप्त करने के पक्ष में थे जिससे भारतवासी संगठित होकर विदेशी सरकार का सामना कर सकें। "प्रतिशोध" नाटक में भीमसिंह पहाड़सिंह को पारस्परिक एकता का महत्त्व बताते है कि "बुन्देले अगर एक होना जान ले तो संसार में कौन सी शक्ति है जो उनकी स्वाधीनता का अपहरण कर सके, दिल्ली और आगरा की नाक के पास रहकर भी बुन्देलों का देश विदेशियों के अनेक आक्रमणों के होते हुए भी किसी प्रकार अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने का यत्न

243- हरिकृष्ण प्रेमी - आहुति, पृ0 45

करता रहा है। यद्यपि हम आपस में लड़ते रहे है, फिर भी विभिन्न शक्तियाँ ही विदेशियों से लोहा लेती रही हैं। यदि वे एक होकर मुठभेड़ कर सकें तो बुन्देलखण्ड का ही नहीं भारत का इतिहास दूसरी ही रेखाओं में लिखा जाय।"[244] छत्रसाल के शब्द भी भारतीय एकता को प्रोत्साहित करने वाले हैं। वह अपने चचेरे भाई बलदीवान से कहता है, "हम भारतवासी बल और साहस में किससे कम हैं। हममे केवल संगठन की कमी है। हमने सम्पूर्ण देश को एक राष्ट्र के रूप में देखना नहीं जाना।[245] प्रेमी जी साम्प्रदायिक वैमनस्य को पराधीनता का एक मुख्य कारण मानते थे। अतः उन्होंने औरंगजेब द्वारा सरदारों की आपसी फूट और वैमनस्य की ओर संकेत कराया है। वह कहता है कि "ये लोग दूसरों के लिए जान दे सकते हैं, अपनों के लिए नहीं। दूसरों की अधीनता स्वीकार कर सकते हैं, अपनो की नहीं। इनका आत्माभिमान ही इनके गले की फांसी है।"[246] "स्वप्न भंग" की तो भूमिका में ही प्रेमी जी ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि वे राष्ट्रीय एकता के भाव को अपने नाटकों में व्यक्त करने का प्रयत्न करते हैं।[247] इसी नाटक में दाराशिकोह जातीय एकता का आदर्श है। वह धार्मिक सहिष्णुता और मानवीय एकता की भावना से परिपूर्ण है। वह औरंगजेब का भारतीय सम्राट होना हिन्दुओं के अहित में मानता है। अतः वह प्राण-प्रण

244- वही, प्रतिशोध, पृ0 22

245- वही, पृ0 110

246- वही,

247- वही, स्वप्न भंग, भूमिका।

। औरंगजेब का विरोध करता है। परन्तु उसे सफलता न मिली और उसका जातीय एकता सम्बन्धी स्वप्न भंग हो जाता है। नाटक में प्रेमी जी ने स्थान-स्थान पर अनेक पात्रों के माध्यम से धार्मिक विद्वेष का विरोध किया है। बादशाह शाहजहाँ दारा से अपने मन की बात कहता है कि " मैं मुसलमानों के दिलों से धार्मिक कट्टरता का अन्त करना चाहता हूं। मैं चाहता हूँ कि मुसलमान देखें कि जो हिदायतें कुरान शरीफ में दी गई हैं वे ही हिन्दुओं के वेद और उपनिषद में हैं। इनमें और उनमें फर्क ही क्या है, और यदि हो भी तो धर्म के नाम पर जन्मभूमि के टुकड़े तो हम न करें। "[248] इसी नाटक में प्रकाश नामक एक गरीब मजदूर जहाँनारा से कहता है कि " यहां न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान केवल उस "एक" उस खुदा - उस ब्रह्म का अलग-अलग घर में प्रतिबिम्ब है। हम छाया के लिए लड़ रहे हैं और वास्तव को भूल रहे हैं।[249]

सत्येन्द्र के नाटक "मुक्तियज्ञ" में छत्रसाल बदरुन्निसा से कहता है कि " मैं किसी की स्वतन्त्रता का ग्राहक नहीं हूँ, मैं तो ऐसी स्वतन्त्रता का समर्थक हूँ जहाँ सभी मनुष्यों में समानता, प्रेम, सहयोग और सहिष्णुता जैसे दैवी गुणों का प्रचार हो, जहाँ शासन सत्ता का आधार दमन और अत्याचार नहीं प्रत्युत शान्ति और सुव्यवस्था हो।"[250] छत्रसाल के उक्त

248- वही, पृ0 126

249- वही, पृ0 158 ।

250- सत्येन्द्र- मुक्तियज्ञ, पृ0 47

कथा में साम्प्रदायिक सहिष्णुता एवं सामंजस्य के दर्शन होते हैं । लक्ष्मण सिंह चौहान के "उत्सर्ग" नाटक में शिवाजी के जीवन चरित्र के माध्यम से वर्तमान हिन्दू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने का प्रयास किया गया है ।

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में सामाजिक समस्याओं में मुख्यतः उपर्युक्त दो समस्याओं को ही उठाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि ये समस्याएं ज्वलंत समस्याएं थीं तथापि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन राष्ट्रीयता की भावना को बहुत अधिक महत्व दे रहा था । यही कारण है कि इस काल के नाटकों में राष्ट्रीय महिमा एवं प्रेम को अभिव्यक्ति दी गई है ।

राजनीतिक –

प्रसादोत्तरकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य में मुख्य बल भारतीय स्वाधीनता पर प्राप्त होता है । इस काल में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जवाहरलाल नेहरू द्वारा घोषित पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील हो रहा था । इस युग में ही सन् 42 का महत्वपूर्ण "भारत छोड़ो" आन्दोलन हुआ था, जिसमें सम्पूर्ण भारतवर्ष एक रूप में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध उपस्थित हुआ था । अतः हिन्दी नाटककारों ने अपने नाटकों में इस युग के अन्तर्गत राष्ट्र-प्रेम एवं राष्ट्रमहिमा को प्रोत्साहन

देने का प्रयास किया उन्होंने ब्रिटिश अत्याचार का विरोध करते हुए भारतभूमि को स्वतन्त्र करने की जिज्ञासा प्रकट की ।

साम्राज्यवादी अत्याचार -

वृन्दावन लाल वर्मा ने अपने नाटक "धीरे-धीरे" में राजा और राज्य के आतंककारी रूप की निन्दा की है तथा अन्धराजभक्तों को धिक्कारा है ।[251] मिश्रबन्धु के नाटक "ईशानवर्मन " में विदेशियों द्वारा किये गये अत्याचारों का हृदय विदारक वर्णन प्राप्त होता है ।[252]

ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी भक्ति रखने वाले भारतीय चापलूसों के सम्बन्ध में हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक "प्रकाश स्तम्भ" में हारीत कहता है कि "अपनी दुर्बलता को भली-भाँति समझने के लिए हमें विचारना होगा कि हमारे देश में आम्भि, कलकाचार्य, वासुदेव आदि देशद्रोही क्यों जन्म लेते हैं ? अपने देश को पदमर्दित कराने के लिए विदेशियों की सहायता करने में ये गर्व का अनुभव क्यों करते हैं । " ज्वाला उत्तर देता है "इसलिए कि हमने स्वदेश के महत्व को नहीं समझा ।"हारीत कहता है "यही बात है ज्वाला । हमने देश के वास्तविक स्वरूप को नही जाना । हम अनुभव नहीं करते कि देश हमारी माँ है, हम उसकी गोद में खेले हैं, उसके अन्न-जल से हमारा शरीर बना है । जिस प्रकार हमारी जननी के शरीर का

251- वृन्दावनलाल वर्मा- धीरे-धीरे, पृ0 52 ।

252- मिश्रबन्धु - ईशानवर्मन, पृ0 36 ।

प्रत्येक अंग अविभाज्य है, उसी प्रकार हमारे देश का भी ।"[253]

लोकतान्त्रिक शासन का समर्थन -

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ब्रिटिश अत्याचार का अन्त करने के लिए एक प्रयत्न था । हिन्दी नाटककारों ने इस भाव को अपने नाटकों मे भी अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । उन्होंने अपने नाटकों में लोकतन्त्र की महत्ता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक "उद्धार" में लोकतान्त्रिक शासन का प्रभाव दिखाई पड़ता है । नाटक का नायक हम्मीर एक राजा न होकर जननायक बनना उचित समझता है। उसका केवल मात्र ध्येय देश को पराधीनता के पाश से मुक्त कराना है। वह देश स्वातन्त्र्य के लिए मन-मन-धन न्योछावार करने को उद्यत है।[254] वृन्दावन लाल वर्मा ने भी अपने नाटक "धीरे-धीरे" में लोकतंत्र का समर्थन किया है।[255] अपने नाटक "द्वापर की राज्यक्रान्ति" में किशोरीदास बाजपेयी जी ने जनसंगठन और शासन की एक सूत्रता पर बल दिया है। श्रीकृष्ण शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात सुदामा आदि मित्रो से अपने जीवन का लक्ष्य बताते हैं कि " भाई, हम लोग चाहते हैं कि देश का शासन सूत्र एक जगह रहे । शक्ति बिखरी, बेकाम ! प्रजापीड़क लोगों का कठोर दमन किया जाय, और प्रजारंजन नरेशों का संगठन करके एक भारतीय

253- हरिकृष्ण प्रेमी - प्रकाश स्तम्भ, पृ0 42-43 ।

254- हरिकृष्ण प्रेमी - उद्धार, पृ0 6 ।

255- वृन्दावनलाल वर्मा -धीरे-धीरे, पृ0 89 ।

साम्राज्य कायम किया जाय । "[256] इस प्रकार श्रीकृष्ण उत्पीड़क शासकों का दमन कर जनतन्त्रात्मक व्यवस्था का देशव्यापी संगठन करना चाहते हैं । सुदामा विजय नगर प्रदेश का शासन ग्रहण कर अपने राज्याधिकारियों से देश में प्रजा शासन स्थापित करने की हार्दिक अभिलाषा व्यक्त करते हैं । सुदामा यह कामना करते हैं कि " मानव समाज में कभी न कभी इस प्रकार की शासन व्यवस्था जारी होगी और इस प्रकार प्रजातन्त्र शासन ही सब सुखों की खान होगा ।"[257]

साम्राज्यवादी अत्याचार एवं विदेशी दासता से मुक्ति की भावना-

हिन्दी नाट्य साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के दर्शन मूलतः स्वर्णिम अतीत अथवा इतिहास के आधार पर होते हैं। विभिन्न नाटककारों ने प्रसाद पूर्व युग की भाँति ही प्रसादोत्तर युग में भी अपने नाटकों के कथानक का आधार किसी न किसी ऐतिहासिक घटना को ही बनाना उचित समझा था ।

प्राचीन भारतीय गौरवमयी अतीत की प्रशंसा एवं वर्तमान के प्रति विक्षोभ की भावना से उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना -

प्रसादोत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में यद्यपि नाटकों का कथानक मूल रूप में ऐतिहासिक ही प्राप्त होता है, फिर भी इस युग के नाटकों में बहुत अधिक स्पष्ट रूप में प्राचीन भारतीय गौरवमयी अतीत

256- किशोरीदास बाजपेयी- द्वापर की राज्यक्रान्ति, पृ0 4

257- वही, पृ0 85

की प्रशंसा एवं वर्तमान के प्रति विक्षोभ की भावना नहीं प्राप्त होती है ।

हरिहर प्रसाद के नाटक "भारत पराजय" में आर्य जाति की श्रेष्ठता को अभिव्यक्त किया गया है ।[258] दशरथ ओझा के नाटक "चित्तौड़ की देवी" में राजपूत जाति की वीरता और बलिदान की भावना का वर्णन किया गया है ।[259] इसके अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी, सत्येन्द्र, व्यथित हृदय, दाउदयाल गुप्त इत्यादि के नाटकों के कथानक भारतीय अतीत का गुणगान करने वाले हैं । लेखकों ने भारतीय अतीत का गुणगान करने के साथ ही साथ वर्तमान भारतीय अवनति पर विक्षोभ भी व्यक्त किया है। मिश्र बंधु के नाटक "शिवाजी" में कृष्णा जी शिवाजी से कहते हैं कि "भाई, भारत की दशा तो खराब है ही, पूछने की क्या बात है। मनुष्यत्व मटियामेट हो रहा है, आर्य सभ्यता मिट्टी में मिल रही है, आततायियों का बल है।"[260] रूपनारायण पाण्डेय के नाटक "छत्रपति शिवाजी" में देश की पतितावस्था का वर्णन मिलता है "जन्मभूमि आज शत्रुओं द्वारा पददलित है, लुप्तप्राय वर्णाश्रम धर्म विशृंखलित है, गोब्राह्मण मण्डली अत्याचार से पीड़ित है, देवमन्दिर निपतित और देवमूर्ति खण्डित है ।"[261] इस दुर्दशा का कारण दाउदयाल गुप्त के नाटक "देश के दुर्दिन" में बताया गया है कि "वर्तमान दुर्दशा का

258- हरिहर प्रसाद -भारत पराजय, पृ0 57 ।
259- दशरथ ओझा- चित्तौड़ की देवी, पृ0 37, तथा 58 ।
260- मिश्रबन्धु - शिवाजी, पृ0 56 ।
261- रूपनारायण पाण्डेय- छत्रपति शिवाजी, पृ0 18

कारण है, हमारी मूर्खता, द्वेष, और गुलामी का यह बन्धन। कहीं हिन्दू - मुस्लिम दंगा हो रहा है तो कहीं हरिजनों पर अत्याचार हो रहा है। कहीं किसानों पर मुसीबतें पड़ रही हैं तो कहीं अनाथ अबलाओं के साथ दुर्व्यवहार हो रहा है। एक ओर बेचारे गरीब पेटभर अन्न न मिल पाने के कारण फाके कर रहे हैं और दूसरी ओर इन्हीं गरीबो का खून चूसने वाले इन्हीं के पैसों से रासरंग में मतवाले हो रहे हैं।" [262]

एक राष्ट्र की भावना -

प्रसादोत्तर हिन्दी नाटकों में राष्ट्रीय एकता पर बहुत अधिक बल मिलता है। वास्तव में यह वह काल था जिस समय साम्प्रदायिक दंगों के कारण जहाँ देश विखण्डित हो रहा था वही इसका लाभ उठा कर विदेशी शासक अपने शासन को भारत में बनाये रखने में सफल हो रहे थे। इसके अतिरिक्त भारतीय रियासतों ने भी भारतीय एकता को कमजोर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अतः हिन्दी नाटककारों ने इस युग की समस्याओं को अपने नाटकों में उतारने एवं उनसे निवारण का प्रयास किया।

"प्रेमी" जी के नाटक "आहुति" में साम्प्रदायिक समस्या को उठाया गया है। [263] "प्रतिशोध" नाटक में भी इसी समस्या को उठाया गया है और राष्ट्रीय एकता का भाव जागृत करने का प्रयास किया गया है। छत्रसाल

262- दाउदयाल गुप्त - देश के दुर्दिन, पृ० 15

263- देखिये, पूर्वोल्लिखित

के शब्द भी भारतीय एकता को प्रोत्साहित करने वाले हैं। वह अपने भाई बलदीवान से कहता है, "हम भारतवासी बल और साहस में किससे कम है। हममें केवल संगठन की कमी है। हमने सम्पूर्ण देश को एक राष्ट्र के रूप में देखना नहीं जाना। हम दीवाने हैं, अपने-अपने वंशों की मर्यादा और अपने छोटे-छोटे राज्यों की रक्षा के प्रयत्न में हम सम्पूर्ण देश की स्वतन्त्रता को खो बैठे है।"[264] "स्वप्न-भंग" नाटक में औरंगजेब द्वारा सरदारों की आपसी फूट और वैमनस्य की ओर संकेत कराया गया है। वह कहता है कि "ये लोग दूसरों के लिए जान दे सकते हैं, अपनों के लिए नहीं, दूसरों की अधीनता स्वीकार कर सकते हैं, अपनों की नहीं। इनका आत्माभिमान ही इनके गले की फांसी है।"[265] वास्तव में प्रेमी जी ने इस नाटक की भूमिका में ही इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि वे राष्ट्रीय एकता के भाव को अपने नाटकों में व्यक्त करने का प्रयत्न करते है।[266] इस नाटक में प्रेमी जी ने धर्म के नाम पर जन्म भूमि के टुकड़े न करने का आह्वान किया है।[267]

"प्रेमी" जी के "उद्धार" नाटक में कमला में राष्ट्रीय चेतना वास्तव में भारतीय नारी की राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहित करना ही है।

264- हरिकृष्ण प्रेमी- प्रतिशोध, पृ० 110

265- वही, स्वप्न-भंग, पृ० 55

266- वही, भूमिका

267- वही, पृ० 126

यह देश को पराधीनता के पाश से मुक्त कराने के लिए सबको संगठित होने का आह्वान करती है। वह अपने पिता से कहती है कि यह भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि यहाँ का प्रत्येक राजवंश अपनी पृथक ध्वजा फहराने के लिए लालायित है। उसके अनुसार, "पिता जी ! सिसोदिया, चौहान, राठौर आदि सभी राजपूत, बल्कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति जन्मभूमि का पुत्र है। उसकी कोई व्यक्तिगत सत्ता या स्वार्थ नहीं है। भारत की स्वाधीनता सबका ही लक्ष्य है।"[268] "प्रकाश स्तम्भ" नाटक में हारीत का कथन है कि " हमने देश के वास्तविक स्वरूप को नहीं जाना। हम अनुभव नही करते कि देश हमारी माँ है, हम उसकी गोद में खेले है, उसके अन्न-जल से हमारा शरीर बना है। जिस प्रकार हमारी जननी के शरीर का प्रत्येक अंग अविभाज्य है, उसी प्रकार हमारे देश का भी।"[269]

दशरथ ओझा के नाटक "प्रियदर्शी सम्राट अशोक" में सामाजिक विद्वेष एवं अत्याचार के विरूद्ध संघ मित्रा अपने विचार प्रकट करती है कि " जिस जाति में आपस में इतना भेद है, ऊँच-नीच का इतना पाखण्ड है, अज्ञान का इतना अन्धकार है, उसका भविष्य कैसे उज्जवल होगा भगवन् ! जिस जाति में शक्तिशाली निर्बल को सताने में ही अपनी शक्ति का अपव्यय करता है, द्वेष और वैमनस्य जिसके पथ प्रदर्शक है, जिसके जीवन की साधना

268- वही, उद्धार, पृ0 62

269- वही, प्रकाश स्तम्भ, पृ0 43

दूसरों की साधना में ही सिद्ध होती है , उस जाति की उन्नति कैसे सम्भव है नाथ !"[270]

देश को स्वतन्त्र कराने हेतु सत्येन्द्र जी एकता को अनिवार्य मानते हुए लिखते हैं कि "यदि इस देश के सभी जन भेदभाव, छुआछूत, जाति-पाँति का विचार छोड़कर देश के निर्माण कार्य में संलग्न हो सके तो यह देश विश्व में शिरोमणि हो जाय और विश्व में अशान्ति का भय न रहे ।"[271]

"द्वापर की राज्य क्रान्ति" नाटक में किशोरीदास बाजपेयी जी ने शासन की एकसत्रता पर बल दिया है । श्रीकृष्ण शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात सुदामा आदि मित्रों से अपने जीवन का लक्ष्य बताते है कि "भाई हम लोग चाहते हैं कि देश का शासनसूत्र एक जगह रहे । शक्ति बिखरी, बेकाम ।"[272]

देश प्रेम एवं आत्म-बलिदान की भावना -

प्रसादोत्तर युग में हिन्दी नाटककारों ने राष्ट्रप्रेम एवं आत्म-बलिदान की भावना को भी अपने नाटको में चित्रित किया है। हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने "आहुति" नाटक में राष्ट्रप्रेम एवं देशभक्ति की भावना का अंकन किया है । "आहुति" नाटक में चपला कहती है कि " अपनी

270- दशरथ ओझा - प्रियदर्शी सम्राट अशोक पृ0 91 ।

271- डॉ0 सत्येन्द्र- जीवन यज्ञ, पृ0 73

272- किशोरीदास बाजपेयी-द्वापर की राज्यक्रान्ति, पृ0 4

मातृभूमि पर शत्रु को ताण्डव करने को छोड़कर तुम भागे जाते हो ? अपनी मातृभूमि को छोड़ते हुए तुमको दुःख नहीं होता ? जिसके प्राणों का रस पीकर और जिसका अन्न खाकर तुम इतने बड़े हुए, पुष्ट बने, विपत्ति के समय तुम उसे छोड़ जाओगे ? जहाँ जाओगे वहाँ तुम्हे जन्मभूमि की याद नहीं आवेगी ? क्या तुम्हारी आत्मा तुम्हे धिक्कारेगी नहीं ? "[273] नाटक में चपला का उक्त कथन नारी में राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक माना जा सकता है । जय भी अपनी मातृभूमि और देश के लिए आत्मोत्सर्ग हेतु युवकों का आह्वान करता है। वह कहता है कि " जब मातृभूमि के मान का प्रश्न उपस्थित है उस समय प्रत्येक युवक का कर्त्तव्य है, कि वह अपना बलिदान चढ़ाने को प्रस्तुत हो जाय ।"[274] "प्रतिशोध" नाटक में जब छत्रसाल माता-पिता की मृत्यु से दुःखी होकर आत्महत्या करना चाहता है तो गुरू प्राणनाथ माता की माता- जन्मभूमि - के प्रति उसके कर्तव्य की याद दिलाते हैं तथा उसके अन्तर्गत मातृभूमि के प्रति अटूट भक्ति भावना का संचार करते हैं ।[275] इसी नाटक में वीरवर हरदौल का बलिदान देश की बलिवेदी पर बलिदान होने की प्रेरणा देता है। चम्पतराय और लाल-कुँवरि के बलिदान पर स्वामी प्राणनाथ कहते है कि यह पति और पत्नी

273- हरिकृष्ण प्रेमी - आहुति, पृ0 59

274- वही, पृ0 64

275- वही, प्रतिशोध, पृ0 56

वीर जोड़ी एक साथ स्वर्ग की यात्रा को प्रस्थान कर गई। ऐसी जोड़ी विश्व के किस कोने में पैदा हुई ? वीर चम्पतराय, वीरांगना लाल कुँवर जो काम तुम जीते जी न कर सके, वह तुम्हारा बलिदान करेगा।"[276]
प्रेमी जी के "उद्धार" नाटक में मालदेव की पुत्री कमला में देश-प्रेम की भावना उत्कट रूप में दिखाई देती है। इस सम्बन्ध में वह अपने पिता का विरोध करने से भी नहीं हिचकिचाती। वह प्रभुता और लालसा के वशीभूत हो विदेशियों के साथ मिलने के पक्ष मे नहीं है।[277]

दशरथ ओझा जी ने अपने दो नाटकों "प्रियदर्शी सम्राट अशोक" तथा "चित्तौड़ की देवी" में राष्ट्रीय चेतना की भावना को अंकित करने का प्रयास किया है। सम्राट अशोक के भीतर आत्मबलिदान की भावना देखी जा सकती है। उसका कहना है कि " स्वदेश और स्वधर्म गौरव के लिए मैं आत्म समर्पण कर सकूँ, यही मेरी बाल्यकाल से आन्तरिक अभिलाषा है। मैं तो पितृव्य का आज्ञाकारी अनुगामी हूँ।"[278] कलिंग का युवराज देवपाल अशोक का वीरतापूर्वक सामना करता है। वह केवल मात्र कलिंग ही नहीं प्रत्युत समस्त राष्ट्र की सुरक्षा तथा एकता की भावना से अभिप्रेरित है। वह समस्त महाद्वीपों में भारतीयता के प्रचार का स्वप्न देखता है।[279]

276- वही, पृ० 53
277- वही, उद्धार, पृ०10
278- दशरथ ओझा -प्रियदर्शी सम्राट अशोक, पृ0 29
279- वही, पृ0 102

"चितौड़ की देवी " नाटक में राणा प्रताप की पुत्री चम्पा महाराणा से कहती है " अन्नदाता मैं चाहती हूँ अकबर को बताना कि राजपूत स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर बलिदान होना जानते हैं ।"[280] नाटक की एक अन्य पात्र चम्पा छद्म वेश में आये अकबर का सन्धि प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है और कहती है "भगवन् राजपूतों ने रक्तमय पत्रों पर खड्ग से हस्ताक्षर करना सीखा है ।"[281]

डॉ० सत्येन्द्र ने अपने नाटक "जीवन यज्ञ " में मातृभूमि का यशोगान किया है -

"धन्य -धन्य यह जननी पावन भूमि ।
उच्च उदार भाव परिपूरित
मानवता के रक्त कणों से जगमग ज्योतित भूमि ।

× ×

स्वर्गिक श्रीछवि से अभिमण्डित,
हृदयराग रंजित पावनतम्, ज्ञानमयी प्रियभूमि ।"[282]

राष्ट्रप्रेम की भावना को अभिव्यक्त करते हुए सत्येन्द्र जी देश निर्माण के लिए देशवासियों का आह्वान करते हुए कहते है कि " तुम जैसे मानवों की धरा पर आवश्यकता है जाओ । पल-पल देश के निर्माण

280- वही, चितौड़, की देवी, पृ० 37

281- वही, पृ० 58

202- डॉ० सत्येन्द्र - जीवनयज्ञ, पृ० 48

में लगो । मानवमात्र के कल्याणार्थ मानव प्रेम से प्रेरित होकर देश के निर्माण

में लगो । तुम महान बनो । देश को महान बनाओ । [283]

व्यथितहृदय ने अपने नाटक "पुण्यफल" में स्त्री में

राष्ट्रीय चेतना एवं स्वदेश प्रेम की भावना को प्रकट किया है । मारवाड़

के महाराणा रणमल की तेजस्विनी पुत्री सुकेशी, चारिणी को चितौड़ की महीमाता की महत्ता बताती है। वह कहती है, " तभी तो चित्तौड़ की

महीमाता के वक्षस्थल पर त्याग, उत्सर्ग और बलिदान का एक विस्तृत

संसार सा बस गया है चारिणी । जो इस ससार की मर्यादा को समझते

है, उन्हें चितौड़ की महीमाता से भी अनुपम प्यारी ज्ञात होती है ।[284]

चारिणी कहती है " हाँ राजकुमारी । चितौड़ की धूल के एक-एक कण में

त्याग, उत्सर्ग और बलिदान के असख्य संगीत भरे हुए हैं । ऐसे संगीत

भरे हुए है जो मनुष्य की मानवता को अधिक उज्ज्वल और उसके अस्तित्व

को अधिक सुदृढ़ बना देते हैं ।[285] चारिणी के सम्बन्ध में लक्षसिंह के

उद्गार अत्यन्त भावपूर्ण एवं राष्ट्रीय भावनाओं को उदीप्त करने वाले हैं ।

वह कहता है "सचमुच, महीमाता की भक्ति में विक्षिप्तता बन गयी है ।

मातृभूमि के प्रेम में उन्मादिनी हो गई है। उसका वह उन्मादी जीवन

अधिक धन्य है। अधिक पूज्य है, उसकी पवित्र साधना ।।[286] मिश्रबन्धु

283- वही पृ0 124

284- व्यथितहृदय- पुण्यफल, पृ0 25

285- वही, पृ0 25

286- वही, पृ0 12

के शिवाजी नाटक में जन्म-भूमि से प्रेम न रखने वाले मनुष्यों को धिक्कारा गया है।"[287] लक्ष्मणसिंह चौहानके "उत्सर्ग" नाटक में राष्ट्रप्रेम एवं आत्म-उत्सर्ग की भावना प्राप्त होती है। स्त्री पात्र कमला कहती हैं कि अपनी जन्मभूमि का उद्धार मैं अपने उत्सर्ग के द्वारा करूंगी।"[288]

हरिहरप्रसाद जी भी अपने नाटक "भारतपराजय" में विदेशियों से देश की सुरक्षा करने का अटूट संकल्प अभिव्यक्त करते है, "महाराज हम लोगों के शरीर में आर्य का रूधिर है, हमारे तन में क्षत्रीय का वीर्य हैं। अपने वंश के तेज प्रताप से एक-एक यवन के सौ-सौ टुकड़े करके अपने देश की रक्षा करेंगे।"[289]

विजय सिंह के अनुसार" बाहू में बल रहते कोई क्षत्रीय धर्म-युद्ध से पीछे नहीं हट सकता। धर्म के आगे राजपूत की जान तुच्छ है। ये याद रखियेगा कि भारतवासी रण में प्राण त्यागेंगे परन्तु यवन के दास कहलाने के कदापि जीवन नहीं रखेंगे।"[290] रूप नारायण पाण्डेय ने भी अपने नाटक छत्रपति शिवाजी में देशप्रेम एवं आत्म-उत्सर्ग की भावना को व्यक्त किया है। नाटक में समर्थगुरू रामदास शिवाजी को देशभक्ति की शिक्षा देते

287- मिश्रबन्धु - शिवाजी पृ0 133

288- लक्ष्मणसिंह चौहान- उत्सर्ग, पृ0 87

289- हरिहरप्रसाद-भारत पराजय, पृ0 57

290- वही, पृ0 26

हुये कहते है कि " मैने तुमको यही मंत्र दिया है " जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि । बस यही मंत्र सदा जपना । "[291] इस नाटक में देश की पतितावस्था का वर्णन करते हुये देशप्रेम की भावना को स्थापित करने का प्रयास किया गया है ।[292]

स्वाधीनता की भावना -

हरिकृष्ण प्रेमी के "आहुति" नामक नाटक में दासता के प्रति आक्रोश और पराधीनता के पाप से मुक्ति पाने की उत्तेजना विद्यमान है । हम्मीर सिंह के शब्दों में इन भावों का प्रस्फुटन दृष्टव्य है, "उस वीरता के गौरवपूर्ण अतीत से हृदय पुलकित हो उठता है। मेरा जी कहता है, पूर्वजों के रक्त से सींची हुयी हमारी जन्म-भूमि पर चैन की बंशी बजाने वाले से लोहा लूं । मेरे प्राणों में जोश का तूफान लहराता है, वही मुझे इन जंगली घाटियों मे लिए फिरता है ।"[293] प्रेमीजी के एक अन्य नाटक "प्रतिशोध" मे स्वाधीनता की भावना को निरन्तर प्रोत्साहित करने का प्रयास किया गया है। वीर छत्रसाल अपने मित्रों को पराधीनता का बंधन तोड़ फेंकने के लिये उत्तेजित करता है। वह कहता है" आओ प्यारो, वीरो, आज हम सब एक महान प्रतिज्ञा के बंधन में बन्ध जावे । देवि विंध्यवासिनी के आगे हम विशुद्ध हृदय से शपथ लें कि हम सांसारिक माया-मोह को

291- रूपनरायण पाण्डेय - छत्रपति शिवाजी, पृ0 18

292- वही पृ0 55

293- हरिकृष्ण प्रेमी- आहुति, पृ0 10

छोड़कर प्राणो का भय त्याग कर, जन्मभूमि की स्वाधीनता के लिये उद्योग करेंगे। या तो हम सफलता प्राप्त करेंगे या लक्ष्य की साधना में प्राणों का उत्सर्ग कर देंगे। "[294] प्रेमी जी के "उद्धार" नाटक मे कमला देश को पराधीनता के पाश से मुक्त कराने के लिये सबको संगठित होने का आह्वान करती है उसके अनुसार" भारत की स्वाधीनता सबका ही लक्ष्य है।"[295]

डॉ० सत्येन्द्र के "मुक्तियज्ञ" नाटक में दलपति स्वाधीनता के भाव को व्यक्त करते हुये कहता है " ऐ मातृभूमि! ये उदय होता हुआ सूर्य साक्षी है, तेरी स्वतन्त्रता ही मेरा ध्येय है। मुझे कोई सहायक मिले या न मिले, मुझे अपने प्राणो की आहुति ही क्यों न देनी पड़े, परन्तु मैं अपने ध्येय से नहीं हटूँगा। यदि काल का भी सामना करना पड़े तब भी करूँगा।"[296] इसी नाटक में शुभकरण मातृभूमि को स्वतत्र कराने के लिये प्रतिज्ञा करते हुये कहता है कि "मैं तब तक सुख की नींद नही सोऊँगा! जब तक देश स्वतंत्र नही कर लूँगा।"[297] देश को स्वतत्र कराने हेतु सत्येन्द्र [illegible] एकता को अनिवार्य माना है।[298]

व्यथित हृदय के "पुण्यफल" नाटक में आजादी का दिवाना लक्ष्यसिंह देश को दासता से मुक्त कराने के लिये दृढ़ संकल्प है। वह कहता

294- हरिकृष्ण प्रेमी - प्रतिशोध, पृ० 94

295- वही, उद्धार, पृ० 62

296- डॉ० सत्येन्द्र -मुक्तियज्ञ, पृ० 27

297- वही, पृ० 102

298- वही, पृ० 73

है वृद्ध हो या युवक, राष्ट्र और मातृभूमि के प्रति सबका समान धर्म होता है प्रिय। जब मातृभूमि संकट में आग्रस्त हो तब वृद्ध या युवक सबको समान रूप से उसके उद्धार का प्रयत्न करना चाहिये। और फिर मैं तो मेवाड़ का महाराणा हूं। मेवाड़ के महाराणा का पुकृत धर्म है, धर्म, स्वदेश और मातृभूमि की रक्षा के लिये जीवन पर्यन्त रणतीर्थ मे वास करना[299]

वृंदावन लाल वर्मा ने अपने नाटक "धीरे-धीरे" में राष्ट्रप्रेम की भावना को जागृत करने का प्रयास किया है। वे पराधीनता की पीड़ा से व्याकुल प्रतीत होते हैं। अतः उन्होंने स्वाधीनता के मार्ग की अनेक बाधाओं की ओर जनसाधारण का ध्यान आकर्षित करते हुये उनसे मुक्ति पाने का आग्रह किया है।[300] दाऊदयाल गुप्त ने अपने नाटक "देश के दुर्दिन" में पराधीनता को ही देश की दुर्दशा का कारण माना है उनके मत में "स्वाधीनता का दूसरा अर्थ सभी कष्टों का निवारण है।"[301]

उपर्युक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय पराधीनता से उत्पन्न कष्ट एवं पीड़ा को हिन्दी नाटककार भी अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति देकर वे राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रति भारतीय जनता में चेतना उत्पन्न करना चाहते थे।

299- व्यथित हृदय -पुण्यफल, 39

300- वृंदावन लालवर्मा- धीरे-धीरे, पृ0 17

301- दाऊदयाल गुप्त - देश के दुर्दिन, पृ0 15

अन्दर प्रेम की भावना को जागृत करने का प्रयास किया जाता है। हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने नाटक "स्वप्न भंग "में प्रेम की शक्ति को तोप और तलवार की शक्ति से भी अधिक ताकतवर बताया है। नाटक में शाहजहाँ अपने सेनापति खलीलउल्ला खाँ से कहता है कि " प्रेम से मनुष्य को जीत लेना क्या पराधीनता है ? तलवार से साम्राज्य जीते जाते है लेकिन प्रेम से स्थिर रखे जाते हैं।"[302]

प्रेम की महत्ता को स्पष्ट करते हुये प्रेमी जी अपने "मित्र" नाटक में सम्राट अलाउद्‌दीन के सेनापति महबूब खाँ के द्वारा कहलवाते है कि " मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि यदि सारे हिन्दुस्तान की बिखरी हुयी शक्तियाँ तलवार से नहीं प्रेम के धागे से एक की जा सकें तो क्या वो सारे संसार पर अपना साम्राज्य और प्रभुत्व नहीं स्थापित कर सकता।"[303] डाक्टर सत्येन्द्र भी अपने नाटक "मुक्तियज्ञ" में गांधीवादी विचारों को प्रश्रय देते हुये मानवीय गुणों को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। नाटक में छत्रसाल बदरून्निसा से कहता है कि " मैं किसी की स्वतन्त्रता का ग्राहक नही हूँ, मैं तो ऐसी स्वतन्त्रता का समर्थक हूँ जहाँ सभी मनुष्यों में समानता, प्रेम, सहयोग और सहिष्णुता जैसे दैवीय गुणों का प्रचार हो, जहाँ शासन सत्ता का आधार दमन और अत्याचार नही प्रत्युत शांति और सुव्यवस्था हो।"[304] इन्द्रवेदालंकार ने अपने नाटक "स्वर्णदेश का उद्धार" में गांधीवादी नीति का समर्थन किया है। नाटक में एक ब्रम्हचारी

302- हरिकृष्ण प्रेमी - "स्वप्न भंग" पृ० 45

303-वही, "मित्र" पृ० 45

304 डॉ० सत्येन्द्र-"मुक्तियज्ञ" पृ० 47

महात्मा गांधी का सन्देश दोहराता है कि " मैं हिंसा को हर दशा में पाप समझता हूँ। हथियार बन्द क्रान्ति अधर्म है, राज्य के अन्याय को हिंसा से मिटाने का यत्न करना पाप से पाप को, मैले से मैले को धोने का प्रयत्न है। "305

असहयोग तथा सत्याग्रह -

लक्ष्मण सिंह चौहान के "गुलामी का नशा" नाटक मे गाँधीवादी आन्दोलन का अंकन किया गया है चौहान जी ने इस नाटक की भूमिका में ही लिखा है कि " यह नाटक असहयोग आन्दोलन का एक जीता-जागता चित्र है जिसने देश के राजनैतिक जीवन में एक-दम युगयुगान्तर उपस्थित कर दिया। नौकरशाही के खुशामदी लोगों से मिलकर क्रिमिनल लॉ आदि दमनकारी कानूनो ने कैसे-कैसे जाल रचे थे। वीर और साहसी देश-भक्तों द्वारा यह जाल किस निर्भीकता के साथ तोड़े गये थे, बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के हृदय में महात्मा गांधी की कैसी विलक्षण धाक जम रही थी, इन सब बातों का वर्णन नाटक में विशद और मार्मिक भाषा में किया गया है। 306 नाटक में असहयोग आन्दोलन की कार्य प्रणाली एवं लोकप्रियता का बारीकी से चित्रण किया गया है। जलूस, सभा, जेलयात्रा, पुलिस के दमन आदि सभी बातों का समावेश नाटक में किया गया है।

305- इन्द्रवेदा - लंकार - स्वदेश का उद्धार, पृ0 47
306- लक्ष्मण सिंह चौहान, "गुलामी का नशा" भूमिका

मुसलमान असहयोगी अहमद के जेल से छूट के आने पर उसके साथी उसे कन्धों पर उठा लेते हैं और भव्य जलूस निकालकर उसका सम्मान करते है।[307] इसी नाटक में कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में घुसकर पुलिस असहयोगियों को गिरफ्तार करती है। उस समय सभी लोग मिलकर देश भक्ति और उत्तेजनापूर्ण गीत गाते हैं।[308] हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने नाटक "प्रकाश स्तम्भ" में गाँधीवादी सत्याग्रह के महत्त्व को स्वीकार किया है। नाटक में स्वातन्त्र्य संघर्ष में अहिंसा और सत्याग्रह का योगदान तथा अन्यायी-अत्याचारी की सत्ता को स्वीकार न कर प्राणोत्सर्ग को प्राप्त रहने का वर्णन प्राप्त होता है।[309]

दाऊदयाल गुप्त के नाटक "देश के दुर्दिन" में गांधीवादी स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन का वर्णन प्राप्त होता है। नाटक में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और विदेशी के बहिष्कार की राय दी गयी है।[310]

इस प्रकार गान्धीवादी असहयोग एवं सत्याग्रह आन्दोलनों को हिन्दी नाटककारों ने अपने नाटकों में अभिव्यक्ति देकर राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया।

307- वही, पृ0 34
308 वही, पृ0 79
309- हरिकृष्ण प्रेमी - प्रकाश स्तम्भ, पृ0 87
310- दाऊदयाल गुप्त - देश के दुर्दिन, पृ0 48

हिंसक साधन - गांधीवादी नीति की आलोचना तथा क्रान्ति का समर्थन -

वृंदावन लाल वर्मा जी ने अपने नाटक "धीरे-धीरे" का आधार तत्कालीन कांग्रेस की राजनीति को बनाया है । इसमें उन्होंने गांधीवादी नीति की आलोचना की है।उन्होंने व्यंग्यात्मक रूप से बताया है कि अपनी धीरे-धीरे की नीति से कांग्रेस देश सेवा करने में असमर्थ रही है यहाँ तक की जब 1937 में उन्होंने विभिन्न प्रान्तों में अपनी सरकारें भी बना लीं तो भी वह मंद गति से काम करती रही । उन्होंने अपने इस नाटक में सगुनचन्द्र के शब्दों मे क्रान्तिकारी भावों को भरने की कोशिश की है।वह राष्ट्रीयता तथा आत्मसम्मान के भावों का स्फुरण करता है और पराधीनता तथा दमन के विरूद्ध संघर्ष की प्रेरणा देते हुये कहता है कि " तुम वास्तव में निर्बल नहीं हो । अपने भीतर प्रचंड बल का अनुभव करो । गुलामी की सांकलों को तोड़कर फेंक दो । शुभस्य शीघ्रम्। अपने हकों के लिये लड़ मरो, अत्याचारियों का कचूमर निकाल दो । अपनी भुजाओं को उठाओ संसार में कोई तुम्हारा मुकाबला न कर सकेगा । "[311] इन्द्रवेदालंकार कृत "स्वर्ण देश का उद्धार" नाटक में क्रान्ति का हुंकार है, क्रान्ति का उन्माद है। लेखक जैसे देशवासियों को उत्तेजित करता हुआ कह रहा है "कि दोष हम लोगों का है जो इस भयंकर अत्याचार को न सहकर तूफान की तरह उमड़ राजमहलों का दरवाजा खटखटाकर राजा

311- वृंदावन लाल वर्मा - धीरे-धीरे, पृ0 38

भी ओला शृंखला को नहीं तोड़ देते। क्या हम बिल्कुल नपुंसक हो गये है? क्या हमारे हाथों को अर्द्धांग मार गया? क्या हमारे हथियारों को जंग ने खा लिया?"[312] नाटक में अनन्त प्रभा देशवासियों को उत्तेजित करते हुये कहती है कि "उठो, अपने को समझो और स्वर्ण देश के राज्य को पलट दो।"[313] इसी नाटक में राजा के महल में जनता घुस जाती है और उसे बताती है कि अब जनता असह्य हो उठा है और वह भूखी बाघिन की तरह गरज उठी है।"[314] दशरथ ओझा ने भी अपने नाटक "प्रियदर्शी सम्राट अशोक" में क्रान्तिकारी विचार व्यक्त किये हैं। देवपाल अपने सैनिकों को अशोक की सेना के विरुद्ध उत्साह दिलाते हुये कहता है कि "भारत के भविष्य प्रासाद की नींव आज तुम्हारी तलवार के प्रहार से खोदी जायेगी।"[315]

गांधीवादी नीतियों एवं कार्यक्रमों को ब्रिटिश हठधर्मिता के समक्ष व्यर्थ समझा जाने लगा था। अब शक्ति का मुकाबला अध्यात्मिक या आत्मिक शक्ति से नहीं वरन् प्रकट शारीरिक शक्ति से करने का निश्चय किया गया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रान्तिकारियों ने आंतकवादी उपायों से ब्रिटिश सरकार को आतंकित करने का प्रयास किया था जिससे वे शीघ्रातिशीघ्र भारत को स्वाधीन कर सकें।

312- इन्द्र वेदालंकार -स्वर्ण देश का उद्धार", पृ0 9

313- वही, पृ0 61

314- वही, पृ0 72

315- दशरथ ओझा- प्रियदर्शी सम्राट अशोक, पृ0 102

अनेक हिन्दी साहित्यकार स्वयं क्रान्तिकारी आन्दोलन में सक्रिय रहे थे।[316] और जन विप्लव में सहयोग देना साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।[317] अतः साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में क्रान्ति लाता है। इन्द्रवेदालंकार, वृन्दावन लाल वर्मा, दशरथ ओझा इत्यादि नाटककारों ने अपने नाटकों में क्रान्ति का समर्थन किया है।[318]

आर्थिक -

प्रसादोत्तर युग में हिन्दी नाट्य साहित्य मे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के आर्थिक पहलू पर भी ध्यान आकर्षित किया गया। लाहौर घोषणा के उपरान्त भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में समाजवाद का पदार्पण हो चुका था। पण्डित जवाहर लाल नेहरू, अच्युत पटवर्धन, जय प्रकाश नारायण इत्यादि नेताओं ने भारत की स्वाधीनता के साथ ही साथ आर्थिक स्वाधीनता का भी प्रश्न जोड़ दिया।[319] नेहरू जी ने 1946 ई0 में उद्देश्य प्रस्ताव के अन्तर्गत समाजवाद को भारत की स्वाधीनता तथा उसके विकास के लिए अनिवार्य माना।[320] अत प्रसादोत्तर युग के हिन्दी नाट्यशास्त्री भी राष्ट्रीय

316- देखिये, पूर्वोल्लिखित पृ0 153

317- देखिये, वही, पृ0 124

318- देखिये -वृन्दावन लाल वर्मा-धीरे-धीरे पृ038, इन्द्रवेदालंकार -स्वर्णदेश का उद्धार, पृ0 9, 61, 72, दशरथ ओझा- प्रियदर्शी सम्राट अशोक, पृ0 102

319 देखिये, पूर्वोल्लिखित, पृ0 101

320 देखिये, पूर्वोल्लिखित, पृ0 113

आन्दोलन के अन्तर्गत उत्पन्न हो रहे परिवर्तनों से प्रभावित हो रहे थे। उन्होंने अपने नाटकों में ऐसे तथ्यों को स्थान देना अपना कर्तव्य समझा।

हरिकृष्ण प्रेमी जी ने अपने नाटक "आहुति" में आर्थिक शोषण एवं अत्याचार का वर्णन किया है। प्रेमी जी स्वार्थ को सब प्रकार के शोषण एवं अत्याचार की जड़ मानते हैं। उनका संकेत विदेशी शासकों और देशी राजाओं दोनों की ओर है जो कि अपने स्वार्थवश भारतीय जनता पर अत्याचार कर रहे थे। नाटक में एक ग्रामीण कहता है कि " मनुष्य के स्वार्थ ने दूसरों पर प्रभुत्व जमाने की इच्छा पैदा की । जैसे बैलों को हम जुए में कसते हैं, उसी तरह बहुत से मनुष्य गरीब को दास बनाकर उनसे तरह-तरह के काम कराते हैं। स्वयं मौज उड़ाते हैं और उनसे काम कराते हैं। हम अपने बैलों को तो पेटभर घास-दाना देते हैं। अपनी थान में उन्हें बाँधते तो है, लेकिन मनुष्य तो अपने दासों को न पेटभर खाना देता है न रहने का घर।[321] आर्थिक शोषण का वर्णन वृन्दावन लाल वर्मा जी के नाटक "धीरे-धीरे" में भी प्राप्त होता है नाटक में गोपाल जमींदार गुलाब सिंह की सत्ता को चुनौती देते हुए उसे धिक्कारता है कि "अपने दीन-दुखी किसानों को रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए तरसते देखकर आप लोग क्यों नहीं पसीजते ? क्या निर्बल- दुर्बल जनता के बाहुबल पर राष्ट्र बन सकता है ? टिक सकता है ? थोड़े से जमींदार तो राष्ट्र बनाते नहीं।"[322] वर्मा जी द्वारा प्रस्तुत विवरण

321- हरिकृष्ण प्रेमी- आहुति, पृ0 58 ।

3 2- वृन्दावन लाल वर्मा- धीरे-धीरे , पृ0 89 ।

में आर्थिक लोकतन्त्र की धारणा प्रतिफलित होती है ।

प्रेमी जी के नाटक "बन्धन" में मार्क्सवाद के 'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त की झलक प्रस्तुत की गई है। मोहन कहता है "रायबहादुर साहब, डाका आपने डाला है, जो मजदूरों के परिश्रम से आये हुए रुपये को अपनी तिजोरी में डाल लेते हैं । विद्रोह आपने किया है जो आप अपने मजदूरों को भूखा मारते हैं । यह विद्रोह है- प्रकृति के साथ विद्रोह ।"[323]

दाउदयाल गुप्त जी ने अपने नाटक "देश के दुर्दिन" में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और विदेशी के बहिष्कार की राय दी है ।[324] उन्होंने अपने एक अन्य नाटक "भयंकर पतन" में कृषकों की विषमता, गोवध तथा भारतीय सम्पत्ति के विदेशगमन पर आक्रोश व्यक्त किया है ।[325]

इस प्रकार प्रसादोत्तर युग के नाटकों में भी तत्कालीन राष्ट्रीय समस्याओं को स्पष्ट करते हुए उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । इस युग के नाटककारों ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं को राष्ट्रीय चेतना के सन्दर्भ में उठाने का प्रयास किया है ।

323- हरिकृष्ण प्रेमी - बन्धन, पृ0 8

324- दाउदयाल गुप्त - देश के दुर्दिन, पृ0 15

325- वही- भयंकर पतन, पृ063, 78, 110

में [illegible]र्थिक लोकतन्त्र की धारणा प्रतिफलित होती है ।

प्रेमी जी के नाटक "बन्धन" में मार्क्सवाद के 'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त की झलक प्रस्तुत की गई है। मोहन कहता है "रायबहादुर साहब, डाका आपने डाला है, जो मजदूरों के परिश्रम से आये हुए रूपये को अपनी तिजोरी में डाल लेते हैं । विद्रोह आपने किया है जो आप अपने मजदूरों को भूखा मारते हैं । यह विद्रोह है- प्रकृति के साथ विद्रोह ।"[323]

दाउदयाल गुप्त जी ने अपने नाटक "देश के दुर्दिन" मे स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और विदेशी के बहिष्कार की राय दी है ।[324] उन्होंने अपने एक अन्य नाटक "भयंकर पतन" में कृषकों की विषमता, गोवध तथा भारतीय सम्पत्ति के विदेशगमन पर आक्रोश व्यक्त किया है ।[325]

इस प्रकार प्रसादोत्तर युग के नाटकों में भी तत्कालीन राष्ट्रीय समस्याओं को स्पष्ट करते हुए उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । इस युग के नाटककारों ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं को राष्ट्रीय चेतना के सन्दर्भ में उठाने का प्रयास किया है ।

323- हरिकृष्ण प्रेमी - बन्धन, पृ० 8

324- दाउदयाल गुप्त - देश के दुर्दिन, पृ० 15

325- वही- भयंकर पतन, पृ०63, 79, 110

अध्याय -- चार

कहानी

कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति मानव जीवन में आदिम काल से ही प्राप्त होती है । प्राचीन वैदिक साहित्य में भी कहानी की प्रवृत्ति विद्यमान थी । लौकिक संस्कृत साहित्य में पंचतन्त्र की कहानियाँ प्रसिद्ध ही हैं । पुराणों में कहानी की प्रवृत्ति का उपयोग ज्ञानोपदेश के लिए है । बुद्ध की जातक कथाएँ भी कहानी की प्रवृत्ति का परिचय देती हैं । वस्तुत: कहानी "कहने का मनोरंजक एवं विशिष्ट ढंग है जिसके द्वारा कि जटिल एवं गहन विषयो को समझाने का प्रयत्न मानव समाज में बहुत प्राचीन काल से ही होता आया है ।[1] परन्तु हिन्दी में कथा साहित्य का आविर्भाव 19 वीं शताब्दी की ही देन है ।[2]

आधुनिक हिन्दी कहानियों का विकास भारतीय कथा साहित्य की परम्परा में न होकर पाश्चात्य साहित्य, विशेषत: अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव रूप में हुआ ।[3] यद्यपि हिन्दी कथा-साहित्य का आरम्भ ब्रजभाषा में लिखी गई भक्त कवियों की कथा " दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" तथा " चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता" से भी कुछ आलोचको ने माना

1- डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, दसवाँ संस्करण 1977, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ० 70।

2= वही, पृ० वही

3- डॉ० शिवमूर्ति शर्मा- हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1982, पृ० 363 ।

है । परन्तु आधुनिक कहानियों के तत्वों, उनके विषयों और उनकी विचारधाराओं को देखते हुए, आधुनिक युग में विकसित कहानी कला का जन्म भारतेन्दु युग से माना जा सकता है ।[4]

अतः अध्ययन की सुविधा व दृष्टिकोण से स्वतन्त्रता संग्राम की घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कहानी के विकास को चार युगों में बांटा जा सकता है :-

(1) भारतेन्दु युग

(2) द्विवेदी युग

(3) प्रसाद व प्रेमचन्द युग

(4) वर्तमान युग

<u>(1) भारतेन्दु युग -</u>

भारतेन्दु युग में लिखी गई सर्वप्रथम कहानी स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखी गई "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न" थी । इसके अतिरिक्त पं० गौरीदत्त शर्मा ने "कहानी टकाकमानी" और "देवरानी जिठानी की कहानी" लिखी । इस युग में लिखी गई कहानियों में परिपक्वता का

4- वही, पृ० वही,
पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने "सरस्वती" में प्रकाशित कुछ मौलिक कहानियों के आधार पर उनके आरम्भ को संवत 1957 अर्थात् सन् 1900 ई० से माना है । देखिये पं० रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1942, पृ० 462

... पाया जाता है। पं० गौरीदत्त शर्मा ने उपदेश-प्रधान कहानियों को ...कर कहानी-साहित्य में अपूर्व योगदान किया। तथापि उनकी कहानियों ... सामाजिक समस्याओं का वास्तविक समाधान नहीं परिलक्षित होता है।

§2§ द्विवेदी युग -

द्विवेदी युग में प्रयाग से निकलने वाली "सरस्वती" पत्रिका का बहुत महत्व है। इस पत्रिका के माध्यम से अनेक कहानियों का प्रकाशन सम्भव हो सका। इस पत्रिका में प्रकाशित होने वाली सर्व प्रथम कहानी किशोरीलाल गोस्वामी रचित "इन्दुमती" है। पं० रामचन्द्र शुक्ल की "ग्यारह वर्ष का समय" गिरजादत्त बाजपेयी की "पंडित और पंडितानी" ... आदि कहानियाँ जो "सरस्वती" मे प्रकाशित हुई थीं, विशेष उल्लेखनीय मानी जा सकती हैं। इन कहानियों मे आधुनिक कहानी की परिपक्वता के दर्शन किये जा सकते हैं। इस पत्रिका में कुछ बंगाली कहानियों, जैसे गिरिजा कुमार घोष की 'पार्वती नन्दन' तथा बंगाली महिला की "बंग-महिला" आदि कहानियों का भी प्रकाशन हुआ। यद्यपि इस युग में कहानी कला का अभूतपूर्व विकास हुआ तथापि उसमें जीवन के वास्तविक मनोभावों को, विशेषतः राष्ट्रीय एवं सामाजिक को प्रदर्शित करने का प्रयास बहुत ही कम दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचन्द ने कहानी को परिभाषित करने का प्रयास किया था कि "कहानी §गल्प§ एक रचना है जिसमें जीवन के किसी

एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है।[5] वास्तव में प्रेमचन्द ने कहानी में " जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव " की बात कही है, उससे तात्पर्य जीवन की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों से है, जिसके दर्शन स्वयं प्रेमचन्द की कहानियों में किये जा सकते हैं। प्रारम्भिक कहानियों मे दैवी घटनाओं और संयोग को प्रमुख स्थान दिया जाता था। किन्तु प्रेमचन्द ने उनके स्थान पर यथार्थ घटनाओं, सामाजिकता आदि पर जोर दिया।[6]

प्रसाद और प्रेमचन्द युग -

यद्यपि जयशंकर प्रसाद प्रेमचन्द से पहले कहानी-क्षेत्र में आये तथापि उनकी कहानियों में जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं का वर्णन उतना श्रेष्ठ नहीं हो सका जैसा कि प्रेमचन्द की कहानियों में। वास्तव में प्रेमचन्द द्वारा लिखित लगभग तीन सौ कहानियों से हिन्दी कहानी-साहित्य में कहानियों के अभाव की पूर्ति हुई। जिस प्रकार उपन्यास साहित्य का उत्कर्ष प्रेमचन्द युग में देखा जाता है वैसे ही कहानी साहित्य का भी चरम विकास प्रेमचन्द की कहानियों में देखा जा सकता है। उन्होंने

5- प्रो० वासुदेव -हिन्दी कहानी और कहानीकार, वाणी विहार, वाराणसी तृत्यावृत्ति 1961, पृ० 2

6- लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय -हिन्दी साहित्य का इतिहास, बारहवाँ संस्करण, 1975, पृ० 246

उपन्यास से पृथक होकर कहानियों को एक नये ढंग से लिखने का प्रयास किया । यद्यपि सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को उन्होंने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में समान रूप से उठाया है । उन्होंने हिन्दी कहानी को उपन्यास से पृथक बताते हुए कहा कि उपन्यास की भाँति उसमें ‌‌{कहानी में} मानव जीवन का सम्पूर्ण तथा वृहत् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का सम्मिश्रण ही होता है । वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल-बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है ।[7] प्रेमचन्द ने उपन्यासों की भाँति ही अपनी कहानियों में विशेष रूप से ग्रामीण जीवन और उनकी समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया है ।[8] उन्होंने समाज के निम्न तथा मध्यवर्ग के व्यक्तियों को अपनी कहानियों का विषय बनाकर यह दिखाया कि कहानी जीवन का एक खण्ड चित्र है ।[9] अतः डॉ० शिवमूर्ति शर्मा ने प्रेमचन्द की कहानियों को उनके उपन्यासों में चित्रित भावनाओं का लघु संस्करण माना है ।[10]

7- वही, पृ० 2, 3

8- देखिये, डॉ० जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल-हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० 705

9- डॉ० मोहन अवस्थी - हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1970, पृ० 135

10- डॉ० शिवमूर्ति शर्मा - हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास, पृ० 374

हिन्दी कहानी साहित्य के विकास का, विशेषत प्रेमचन्द युग में तात्कालिक स्वातन्त्र्य संग्राम से सम्बद्ध आन्दोलनों से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। प्रेमचन्द पर तो इसका प्रभाव उनके प्रथम कहानी संग्रह "सोजेवतन" जो 1907 ई0में उनके धनपतराय नाम से प्रकाशित हुआ था, में देखा जा सकता है। इस कहानी-संग्रह के प्रकाशित होते ही सरकार द्वारा उसे जब्त कर लिया गया और उसकी पाँच सौ प्रतियाँ सरकारी आदेशानुसार जलवा दी गई। प्रेमचन्द को चेतावनी दी गई कि वे आगे को ऐसी कहानियाँ न लिखें। परन्तु प्रेमचन्द तो "वास्तव" के पुजारी थे। वे ऐसे साहित्यकार थे, जो यथार्थ की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने प्रेमचन्द के अज्ञात नाम से कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। उनकी सभी कहानियाँ उनके "मानसरोवर" नामक कहानी-संग्रह के आठ भागों में संकलित है। इनमे से अधिकांश कहानियों पर तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

प्रेमचन्द युग की कहानियों को मुख्यतः सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक शीर्षकों के अन्तर्गत देखा जा सकता है।

सामाजिक -

प्रेमचन्द युगीन कहानियों में कहानीकारों ने तत्कालीन समाज की समस्याओं को उठाने का प्रयास किया है। उन्होंने भारतीय

समाज की उन कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया जिनसे तत्कालीन समाज ग्रसित था । तत्कालीन समाज की समस्याओं को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत देखा जा सकता है -

छुआछूत समस्या -

छुआछूत की समस्या भारतीय समाज के लिए एक अभिशाप थी । यह वह कलंक था जिससे भारतीय समाज पीड़ित था । विशेषत एक ऐसे समाज में जहाँ पर विदेशी प्रभुत्व स्थापित हो छुआछूत, दासता को प्रोत्साहित करने वाला था । इसका लाभ विदेशी शासकों ने पूर्णरूपेण उठाया ।

प्रेमचन्द ने अपने कहानी संग्रह "मानसरोवर" भाग चार की " सद्गति" कहानी में "छुआछूत समस्या" को उठाया है । कहानी में दुखी चिलम के लिए आग मांगता है तो पंडित पंडिताइन से आग देने को कहते हैं । पंडिताइन ने भौंवे चढ़ाकर कहा तुम्हे तो जैसे पोथी-पत्रे के फेर में धरम-करम किसी बात की सुधि ही नहीं रही । चमार हो, धोबी हो, पासी हो, मुँह उठाये घर में चला आये । हिन्दू का घर न हुआ कोई सराय हुई । कह दो दाढ़ीजार से चला जाय । नही तो इसी लुआठी से मुँह झुलस दूँगी । आग मांगने चले ।

जब पंडिताइन आग देती भी है तो पाँच हाथ की दूरी से फेंक कर। एक बड़ी सी चिनगारी दुखी के सर पर पड़ गई । जल्दी से

पटकर सिर को झोटे देने लगा ।[11] "मानसरोवर" भाग आठ में "ब्रह्म का स्वांग" कहानी मे प्रेमचन्द ने वृन्दा के माध्यम से सामाजिक भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया है । वृन्दा के द्वारा भोजन के सम्बन्ध में घर के सदस्यों तथा अन्य निम्न लोगों के मध्य कोई भेदभाव नहीं किया जाता है ।[12] "ठाकुर का कुँआ" कहानी में अछूतो के कष्टों का वर्णन किया गया है । इस कहानी में प्रेमचन्द ने अछूतों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है । अछूत चाहे कितनी ही मुसीबतें उठायें परन्तु ऊँची जाति वालों के कुँओ से पानी तक नहीं भर सकते ।[13]

"मन्दिर" कहानी में सुखिया को पुजारी मन्दिर में प्रवेश नही करने देते । रात में चोरों की तरह वह मन्दिर में पूजा करने के लिए जाती है जिस पर उसे बहुत मार पड़ती है । वह तथा उसका बीमार बच्चा दोनों मर जाते हैं ।[14]

विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" ने अपनी कहानी "पगली" में अछूत समस्या का वर्णन किया है । सुखिया चमारिन से जब उसके मालिक रामाकान्त अच्छा व्यवहार करते हैं और उसे पढ़ाते-लिखाते है तो वह समझती है कि उसके प्रति दूसरों का व्यवहार अनुचित है । इस सत्य के।

11- प्रेमचन्द - मानसरोवर, भाग 4, पृ0 21-22 ।
12- वही, भाग 8, पृ0 139
13- वही, भाग एक, पृ0
14- वही, भाग पांच, पृ0

अनुभव होने पर वह पागल हो जाती है ।[15]

धार्मिक अन्धविश्वास -

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में धार्मिक अन्धविश्वास को भी एक प्रमुख सामाजिक समस्या के रूप में उठाया है । धार्मिक अन्धविश्वास अज्ञानता का प्रतीक होता है । इसका कारण जनता में साक्षरता का अभाव होना है । व्यक्ति जब अज्ञानतावश भाग्यवादिता को स्वीकार कर लेता है तो अन्धविश्वास को उत्पन्न करता है जिसके कारण वह आत्मविश्वास को खो बैठता है । प्रेमचन्द की कहानी "सद्गति" में जब पंडिताइन दुखी को आग देती है और उसकी चिनगारी दुखी के सर पर पड़ती है तो वह इसे पंडिताइन का दोष नहीं मानता वरन् अपने मन मे कहता है " यह एक पवित्तर ब्राह्म्मण के घर को अपवित्तर करने का फल है । भगवान ने कितनी जल्दी फल दे दिया । इसी से तो संसार पंडितों से डरता है । और सब के रूपये मारे जाते है । ब्राह्म्मण के रूपये भला कोई मार तो ले । घर भर का सत्यानाश हो जाय, पॉव गल-गल कर गिरने लगे ।"[16] इसी कहानी में जब दुखी लकड़ी काटते-काटते थक कर सिर पकड़ कर बैठ जाता है तो गोंड आता है और उससे पूछता है -" कुछ खाने को मिला कि काम ही कराना जानते हैं । जाके मागते क्यो नहीं । " दुखी कहता है -

---

15- विश्वम्भरनाथ शर्मा'कौशिक-"चित्रशाला कहानी संग्रह, 'पगली' कहानी, पृ0 233-246

16- प्रेमचन्द -" मानसरोवर" भाग चार "सद्गति" कहानी, पृ0 22

"कैसी बात करते हो चिखुरी, ब्राह्मण की रोटी हमको पचेगी ।"[17]
"आगा पीछा" कहानी में भगतराम मर जाता है और उसके माता-पिता मन्त्र और बलि आदि में ही लगे रहते हैं ।[18]

साम्प्रदायिकता -

साम्प्रदायिक भेदभाव न केवल एक सामाजिक दोष था वरन् भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतवासियों को विभक्त कर रहा था जिसके कारण सभी भारतवासी एक होकर अंग्रेजों का सामना करने में असमर्थ थे । प्रेमचन्द ने इस समस्या की गम्भीरता को समझते हुए साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने हेतु अपनी लेखनी उठाई ।

"मानसरोवर" भाग एक की कहानी "दिल की रानी" में प्रेमचन्द ने धर्म को परिभाषित करने का प्रयास किया है । उनके अनुसार "मजहब खिदमत का नाम है, लूट और कत्ल का नहीं ।"[19] इसी कहानी का तैमूर प्रेमचन्द के इन्हीं उदार एवं मानववादी विचारों को प्रकट करता है । वह कहता है -" बेशक जजिया मुआफ होना चाहिए । मुझे कोई मजाज नहीं है कि दूसरे मजहब वालों से उनके ईमान का तावान लूं । कोई मजाज नहीं है, अगर मस्जिद में अजान होती है, तो कलीसा में घण्टा क्यों न बाजे?

---

17. वहीं, पृ०
18- वही, 'आगा पीछा' कहानी, पृ०
19- वही, भाग एक, "दिल की रानी" कहानी, पृ० 203

घण्टे की आवाज में कुफ्र नहीं है। ..... काफिर वह है, जो दूसरों का हक छीन ले, जो गरीबों को सताए, दगाबाज हो, खुद गरज हो। काफिर वह नहीं, जो मिट्टी या पत्थर के टुकड़ो में खुदा का नूर देखता है, जो नदियों और पहाड़ो में, दरख्तों और झाड़ियों में खुदा का जलवा पाता हो। ...... किसी को काफिर समझना ही कुफ्र है। हम सब खुदा के बन्दे हैं, सब।"[20]

"क्षमा" कहानी में शेख हसन अपने बेटे को मारने वाले ईसाई दाऊद से कहता है " दाऊद, मैने तुम्हें माफ किया। मैं जानता हूँ मुसलमानों के हाथ ईसाईयों को बहुत तकलीफें पहुँची हैं, मुसलमानों ने उन पर बड़े-बड़े अत्याचार किये हैं, उनकी स्वाधीनता हर ली है। लेकिन यह इस्लाम का नही मुसलमानों का कुसूर है। विजय गर्व ने मुसलमानों की मति हर ली है। हमारे पाक नबी ने यह शिक्षा नहीं दी थी, जिस पर आज हम चल रहे हैं। वह स्वयं क्षमा और दया का सर्वोच्च आदर्श है। मैं इस्लाम के नाम को बट्टा न लगाऊँगा।"[21] शेख हसन के उपर्युक्त कथन से प्रेमचन्द ने जातीय एकता एवं धार्मिक सहिष्णुता को स्थापित करने का प्रयास किया है। "जुलूस" कहानी में इब्राहीम की मृत्यु से हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इब्राहीम ने मृत्यु

20- वही, पृ0 210

21- वही, भाग तीन, "क्षमा" कहानी, पृ0 208

से पूर्व अपनी इच्छा प्रकट की कि मृत्योपरान्त उसके शव को गंगा में स्नान कराकर दफनाया जाय।[22]

पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" ने अपनी कहानियों में हिन्दू - मुस्लिम जातीय दंगों पर कठोर व्यंग्य किया है और इसके माध्यम से जातीय सद्भाव एवं एकता को स्थापित करने का प्रयास किया है। अपनी कहानी "दोजख ! नरक !! में उन्होंने हिन्दू -मुस्लिम दंगों पर व्यंग्य किया है। इसमें खुदा के सामने दो बन्दियों का फैसला होता है जिन्होंनें हिन्दू-मुस्लिम दंगे में अपने-अपने धर्म के अनुसार दूसरे धर्म के लोगों को मारा था। अदालत दोनों को (एक हिन्दू और एक मुसलमान) दोजख ! नरक !! की सजा सुनाती है। मुसलमान मुल्जिम नजर अहमद अपनी सफाई खुदा के सामने देते हुए कहता है कि हिन्दुओं ने मस्जिद के सामने बाजे बजाकर खुदा की याद करने में अडंगा लगाया था इसलिए सजा के लिए उसने अन्य मुसलमानों के साथ हिन्दुओं को मारा था। हिन्दू ने कहा कि मुसलमान जब सभी हिन्दुओं को मार रहे थे तो वह भी अन्य हिन्दुओं के साथ मिलकर मुसलमानों को मारने चला था। इन दोनों के बाद "पाप" ने गवाही दी कि ये दोनो पापी हैं। इन्होंने धर्म से बढ़कर मुझे (पाप को) आदर दिया।" इसके बाद सरकारी वकील "मनुष्यत्व" ने साबित किया कि " दोनो ही मनुष्यता की दृष्टि से

भयानक अपराधी है । अन्त में खुदा या भगवान ने फैसला दिया कि " मनुष्य हत्या से बढ़कर कोई भी भयानक पाप नही है । ये दोनो "धर्म" और "ईश्वर के नाम पर लड़े है । जो धर्म दूसरे धर्मवालों की हत्या की आज्ञा दे, वह धर्म हो ही नहीं सकता । .....वह ईश्वर राक्षस है, वह खुदा शैतान है, जिसके नाम पर हिंसा की अग्नि में स्नेह दान किया जाय । " मनुष्य का काम हत्या करना नही प्यार करना है जिसके हृदय में प्यार करने की शक्ति नहीं वह मनुष्य नहीं । हत्या शैतान का नाम है और प्यार खुदा का । हत्यारे खुदा परस्त नहीं शैतान परस्त हैं । वे चाहे हिन्दू हों या मुसलमान अथवा ईसाई ।" " अस्तु इस भयानक पाप के पापी इन दोनो -मनुष्य का नाम बदनाम करने वाले - नरपशुओं के लिए एक ही सजा है, और वह है दोजख ! नरक !! " जिस समय वे दोनों नारकीय नरक की ओर भयानक दूतों के साथ जा रहे थे, उसी समय स्वर्ग के द्वार की ओर एक जुलूस जा रहा था । जिसमे देवताओं के बीच एक तेजस्वी नवयुवक दूल्हे की भांई सजा हुआ जा रहा था । जब उन्होंने पूछा कि किसका जुलूस है तो पता चला कि यह जुलूस एक हिन्दू नवयुवक का है जिसकी जान कलकत्ता के दंगे में एक मुसलमान की रक्षा करने में गई थी ।"[23]

23- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र "- ऐसी होली खेलो लाल कहानी-संग्रह 'दोजख ! नरक !!' कहानी पृ0 38-40

"खुदा के सामने " कहानी में नास्तिक नामक एक चरित्र के माध्यम से लेखक हिन्दू-मुसलमानों में मानवता [illegible] एकता और प्रेम की भावना लाने का प्रयत्न करते हैं। विष्णु प्रसाद (नास्तिक) मुसलमान बहन (जोहरत) की रक्षा में मारा जाता है तथा रहमान गाय की रक्षा के लिए। दंगे में मारे गये सभी लोग जब खुदा या ईश्वर के सामने पहुँचते है तो खुदा इन तीन लोगों (नास्तिक, रहमान और जोहरत) को छोड़ सबको शैतान बताते हुए नरक में भेजता है।[24] "शाप" कहानी भी हिन्दू -मुस्लिम दंगों पर लिखी गई है जिसे इस विषय पर उग्र जी की सर्वश्रेष्ठ कहानी भी स्वीकार किया गया है। कहानी में मस्जिद के सामने बाजा बजने के खिलाफ मुसलमान उठ खड़े होते हैं और परमहंस जी की गाय और गाय को बचाने की कोशिश करने वाले मुसलमान इसहाक को काट डालते हैं। गाँव के हिन्दू भी मर मिटने को उतारू हो जाते हैं। तब गाय का सिर हाथ में लेकर परमहंस शाप देते हैं कि निरीह जीव की हत्या की ओर प्रेरित करने वाले ये धर्म ही नही टिकेंगे।[25] परमहंस जी जात-पांत को बिल्कुल नहीं मानते थे। "खुदाराम" कहानी में खुदाराम धार्मिक एकता के प्रतीक हैं। एक गलती से मुसलमान नौकरानी रख लेने के कारण देवनन्दन जी और उनका परिवार मुसलमान बना दिया जाता है।

24- वही " खुदा के सामने " कहानी

25- वही, 'शाप' कहानी ।

बात में ...नका पुत्र रघुनन्दन उर्फ इनायत अली हिन्दू बनना चाहता है । इसी बात को लेकर हिन्दू लोग शुद्धि (इनायत और उसके परिवार की) के लिए वेद भगवान का जुलूस निकालने का निश्चय करते है लेकिन मुसलमान इसके विरोध में खड़े हो जाते हैं । फलत: दंगा लगभग निश्चित हो जाता है । लेकिन खुदाराम हिन्दू- मुस्लिम औरतों और बच्चों का जुलूस लेकर दंगा रोकता है । इस कहानी के अन्त में उग्र जी लिखते है "इस पवित्र जुलूस के नेता थे खुदाराम, उनके पीछे हिन्दू- मुसलमान बच्चे, बच्चों के पीछे जाति की माताऐं और सबके पीछे मुसलमान पुरूष - जुलूस के सशस्त्र रक्षकों की तरह चल रहे थे । प्रकृति पुलकित कलेवरा थी, तारिकाऐं खिल-खिला रही थी, चन्द्रमा हंस रहे थे । वह दृश्य पृथ्वी का स्वर्ग था ।[26]
"दिल्ली की बात " कहानी में भी गान्धी जी और मौलाना मुहम्मद अली के द्वारा दंगों को बन्द कराने का प्रयास किया गया है ।[27]

स्त्रियों की दशा -

भारतीय समाज का एक अन्य कलंक नारी की पतितावस्था रहा था । प्रारम्भ से ही नारियों को पुरूषों से हीन समझा जाता रहा । सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों की भूमिका को कोई स्थान नही प्राप्त था ।

26- वही, "दोजख की आग " कहानी संग्रह, "खुदाराम" कहानी, पृ० 219
27- वही, "ऐसी होली खेलो लाल " कहानी संग्रह, "दिल्ली की बात," कहानी ।

नारी पूर्णत: पुरूष पर निर्भर रहने वाली एक वस्तु मात्र बन कर रह गई थी । प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में नारी की पतितावस्था का वर्णन करते हुए उसका समाधान ढूंढ़ने का प्रयास किया है । "बेटो वाली विधवा" कहानी मे प्रेमचन्द ने विधवा विवाह को ही विधवा समस्या का समाधान बताया है । इस कहानी में स्त्रियो की दुर्दशा का कारण पति की सम्पत्ति में उसकी विधवा का रोटी, कपड़े के अतिरिक्त अन्य अधिकारों का न होना दिखाया गया है । लेखक के अनुसार विधवा चाहे आमोद- प्रमोद में जीवन बिताए, चाहे सन्यासिनी हो जाय, चाहे अध्यापिका हो जाय, प्रत्येक परिस्थिति में समाज उसकी निन्दा ही करता है । उनके विचार से विधवा विवाह ही एक मात्र उपाय है । परन्तु समाज के डर से हम उसे कर नही सकते ।[28] ऐसा ही वर्णन "प्रेम पचीसी' की "नैराश्य लीला" कहानी में भी है ।[29]

"कुसुम" कहानी में प्रेमचन्द ने दहेज प्रथा का विरोध किया है । कुसुम का पति विवाह के बाद कुसुम का कोई समाचार नही लेता क्योंकि वह चाहता है कि कुसुम के पिता उसे विलायत भेज दे । कुसुम इसे उसी तरह की डाकाजनी समझती है जैसे डाकू किसी व्यक्ति को पकड़ कर ले जायें और उसके मुक्तिधन की तरह उसके घरवालों से रूपया ऐठें ।

28- प्रेमचन्द - मानसरोवर, भाग एक, "बेटों वाली विधवा" कहानी ।

29- वही, प्रेम पचीसी, कहानी संग्रह, "नैराश्य लीला," कहानी ।

वह ऐसे स्वार्थी और नीच व्यक्ति के साथ रहना नही पसन्द करती और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती है ।[30] इस प्रकार प्रेमचन्द ने नारी के प्रति सामाजिक अत्याचार एवं शोषण की भावना की भर्त्सना की है तथा नारी में स्वतन्त्रता की भावना को जागृत करने का प्रयास किया है ।

"सुदर्शन" जी ने भी सामाजिक आन्दोलन में विशेषकर स्त्री समस्या को उठाया है। उन्होंने अपनी कहानियों में स्त्रियो का पक्ष लेते हुए उनकी पतितावस्था से उद्वार का समर्थन किया है । "परिवर्तन" कहानी में भारतीय स्त्रियों के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते समय हरिसेन यह कहते हैं कि " भारतीय स्त्रियों के सम्बन्ध में यह धारणा है कि उन्हें किसी बात का सलीका नही है । परन्तु यदि उनको शिक्षा नहीं दी जाती, यदि उन्हें सभ्य बनाने का यत्न नही किया जाता तो क्या यह उनका दोष है ? "[31] "अमरीकन रमणी" कहानी में कहा गया है कि कदाचित भारतवर्ष ही एक ऐसा अभागा देश है जहाँ कन्याओं के लिए विवाह में भी राय देना एक भारी अपराध है ।[32] परन्तु सुदर्शन जी ने स्त्री को मात्र दासी अथवा परतन्त्र रूप में छोड़ नही दिया है वरन् उसमें जागरण एवं चेतना की भावना को प्रदर्शित किया है । "हँस

30- वही, मानसरोवर, भाग दो, "कुसुम "कहानी ।

31- सुदर्शन -"परिवर्तन" कहानी, पृ0 25

32- वही, "सुप्रभात" कहानी संग्रह, "अमरीकन रमणी" कहानी, पृ0 20

की चाल " कहानी में भगीरथी का नाम साहित्य जगत में विख्यात हो जाने के बाद स्त्री शिक्षा के पक्षपाती कहते थे कि क्या अब भी लोग वही पुरानी रट लगाये जायेंगे कि स्त्रियों को विधाता ने केवल घर के आंगन में काम करने के लिए उत्पन्न किया है ।[33]

विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक" ने अपनी कहानी "नरपशु" में एक स्त्री की दीनदशा का चित्रण किया है । उसके पति मनुष्य मात्र के समान अधिकार के सिद्धान्त को मानते हैं और प्रत्येक प्राणी के स्वाधीनता के अधिकार में विश्वास करते हैं । परन्तु अपनी पत्नी के साथ गुलामों जैसा व्यवहार करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उसका देहान्त हो जाता है ।[34] स्त्री के प्रति लोगों का कैसा व्यवहार होना चाहिए, इस बात को "कौशिक" जी ने अपनी कहानी "पगली" में वर्णित किया है ।[35]

मद्यनिषेध -

गान्धी जी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में मद्यनिषेध को विशेष महत्व प्रदान किया था । इसी कारण मद्यनिषेध राष्ट्रीय आन्दोलन का एक हिस्सा बन गया था । गान्धीयुगीन साहित्यकारों ने युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होने के कारण मद्यनिषेध के सम्बन्ध मे भी अपनी

33- वही, "सुदर्शन सुमन" कहानी संग्रह, " हंस की चाल" कहानी, पृ0 131

34- विश्वम्भर नाथ शर्मा" कौशिक"- "चित्रशाला" कहानी संग्रह, "नरपशु" कहानी ।

35- वही, वही, "पगली" कहानी ।

निकाली चलायी । प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में मद्य-निषेध को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया है ।

"दुस्साहस" कहानी में मुंशी मैकूलाल मुख्तार जो गांजे और चरस के शौकीन है, वे नित्य कचहरी से आते ही अलगू कहार के सामने दो रूपये फेंक देते थे । शाम को शराब की एक बोतल और कुछ गांजा तथा चरस मुंशी जी के सामने आ जाता था । देश के किसी आन्दोलन, किसी सभा, किसी सामाजिक सुधार से उनका सम्बन्ध न था । बंग भंग हुआ, स्वदेशी का आन्दोलन हुआ, नरम-गरम दल बने, राजनीतिक सुधारो का आविर्भाव हुआ, स्वराज्य की आकांक्षाओं ने जन्म लिया । आत्म रक्षा की आवाजें देश में गूँजने लगीं , किन्तु मुंशी जी की अविरल शान्ति में जरा भी विघ्न न पड़ा ।[36]

एक दिन अलगू मुंशी जी के लिए बोतल न ला सका क्योंकि स्वराज्य वाले शराब की दुकान पर धरना दिये थे । इसलिए मुंशी जी को अलगू पर तो नहीं लेकिन स्वराज्य वालों पर क्रोध आया । चरस भी नहीं मिली । इस पर मुंशी जी स्वयं शराब लाने चलते हुए बड़े गर्व के साथ कहते है " अच्छी बात है मैं खुद जाता हूँ देखूँ किसी के मजाल है जो रोके । एक-एक को लाल घर दिखा दूँगा , यह सरकार का राज्य है कोई बदमती नहीं है । वहाँ कोई पुलिस का सिपाही नहीं था ?

36- प्रेमचन्द - 'मानसरोवर', भाग आठ "दुस्साहस" कहानी,

मुंशी जी अपने चारों साथियों (ईदू, रामबली, बेचन तथा झिनकू) के साथ शराब खाने की गली के सामने पहुँचे तो वहाँ बहुत भीड़ थी। बीच में दो सौम्य मूर्तियाँ खड़ी थीं। एक मौलाना जामिन थे, जो शहर के मशहूर मुजतहिद थे, दूसरे स्वामी धनानन्द थे जो वहाँ की सेवा समिति के संस्थापक और प्रजा के बड़े हितचिन्तक थे। थानेदार के कहने पर मुंशी जी जब शराब की गली में घुसे तो ईदू से मौलाना जामिन ने बड़ी नम्रता से कहा-" दोस्त यह तो तुम्हारी नमाज का वक्त है, यहाँ कैसे आये? क्या इसी दीनदारी के बल पर खिलाफत का मसला हल करेंगे?" ईदू के पैरों में जैसे लोहे की बेड़ियाँ पड़ गई, आगे कदम रखने का साहस न हुआ।

स्वामी धनानन्द ने मुंशी जी और उनके बाकी तीनों साथियों से कहा - "बच्चा, यह पंचामृत लेते जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा।" झिनकू, बेचन और रामबली ने अनिवार्य भाव से लिया और पी गये। परन्तु मुंशी जी ने कहा" इसे आप खुद पी जाइये मुझे जरूरत नहीं।"

स्वामी जी उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये और विनीत भाव से बोले -" इस भिक्षुक पर आज दया कीजिए उधर न जाइये।" लेकिन मुंशी जी ने स्वामी जी का हाथ पकड़कर हटा दिया और गली में दाखिल हो गये। अपने साथियों को खड़ा देख आने को कहने

थे। लेकिन उन्होंने इन्कार कर दिया।[37] यहाँ पर प्रेमचन्द ने मद्यपान की समस्या का निराकरण गान्धीवादी उपायों से किया है तथा सत्य और अहिंसा की विजय को स्थापित किया है।

"शराब की दूकान" कहानी में कांग्रेस कमेटी के द्वारा बेगमगंज की शराब और ताड़ी की दूकान पर धरना देने के प्रश्न का वर्णन है। इसमें कमेटी के दो सदस्य मिसेज सक्सेना और जयराम है। जो अपने-अपने ऊपर धरना देने का भार लेना चाहते थे। जयराम मे कुछ क्रान्तिकारी भावना है। परन्तु प्रेमचन्द ने मिसेज सक्सेना और जयराम के प्रयास से शराब की दुकान पर उपस्थित शराब पीने वालों, यहाँ तक शराब के लैसेंसदार का हृदय परिवर्तन दिखाया है। शराब पीने वाले शराब पीना छोड़ देते हैं और लैसेंसदार शराब की जगह स्वदेशी वस्त्रो का रोजगार करने का निर्णय लेते हैं।[38]

"मैकू" कहानी में कादिर और मैकू ताड़ी खाने के सामने पहुँचे तो वहाँ कांग्रेस के वालंटियर झण्डा लिए खड़े नजर आये। द्वार पर स्वयं सेवक ने हाथ जोड़कर कहा-" भाई साहब, आपके मजहब में ताड़ी हराम है। " मैकू ने जवाब चाँटे से दिया। मगर वह अपने स्थान पर रहा और सिर सामने करके कहने लगा जितना चाहे मारिये मगर अन्दर न जाइये।

37- वही, पृ0 204-206

38- वही, भाग 7, "शराब की दूकान " कहानी, पृ0 47-48

मैकू ने चेहरे पर अपनी उंगलियों के निशान देखे तो ग्लानि से भर गया । मैकू ने कहा उठ जाओ मुझे अन्दर जाने दो लेकिन स्वयं सेवक ने कहा आप मेरी छाती पर पाँव रखकर जा सकते हैं । उसने कहा मैं कहता हूँ उठ जाओ मैं अन्दर ताड़ी न पीऊँगा एक दूसरा काम है । यह सुन स्वयंसेवक उठ गया । मैकू अन्दर गया तो ठीकेदार से एक लकड़ी माँगकर ठीकेदार और बाकी आये ताड़ी बाजों को मारना शुरू किया और शराब-ताड़ी के मटकों को तोड़ना शुरू किया ।[39]

"उग्र " जी ने भी मद्यनिषेध को अपनी कहानी का विषय बनाया है। "मेरी माँ " कहानी में माँ अपने पुत्र भीम को शराब छोड़ने तथा देश सेवा के लिए प्रेरित करती है । उसने उसे बताया " तेरी दादी ने गृहस्थी की सारी सम्पत्ति देने के समय यह भी बताया था कि तेरे दादा को सन् सत्तावन के गदर में विदेशी शासकों ने पेड़ से लटकाकर मारा था । " दादी ने कहा था " बहु, मेरे बेटे को विलासी न होने देना, ठीक उसी साल जब मैं ब्याह कर आई, तेरे पिता अंग्रेजी पलटन में दाखिल हुए । राज्य सेवा के लिए कम, साम्राज्य ध्वंस के लिए अधिक । उनका उद्देश्य था पाश्चात्य सैन्य संचालन के तमाम भेद जानना । " माँ आगे फिर कहती है " तू विलासी है । तू जानता होता कि तू

39- वही, पृ0 61-64

सबेदार रणवीर सिंह का खून है, जिनका खून जालिमों ने जालियाँवाला बाग में किया था, तो आज तू शराबी नहीं, गान्धी के दल का भिखारी होता । तू आज इस अपवित्र और दानवी शासन प्रणाली के नाश के लिए गली-गली की खाक छानने वाला पागल होता । तू मेरे मान का नाश करने वाला वह कायर न होता जो रणभेरी बज जाने पर भी विलास भवन में बैठा अपने पूर्वजों की इज्जत पर कालिख पोत रहा है। " माँ फिर डाँटते हुए कहती है " मेरा दूध पीने वाला तेरा ही एक भाई जेल में उपवासों और पीड़ाओं से लड़ रहा है, और तू नराधम । अभी तक बोतलों की उपासना में लगा है ।[40]

राजनीतिक -

हिन्दी कहानीकारो ने अपनी कहानियों में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न राजनीतिक पहलुओं को वर्णित करने का प्रयास किया है। इन कहानीकारों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान प्रेमचन्द का माना जा सकता है । वास्तव में हिन्दी कहानी में युगीन समस्याओं को प्रश्रय प्रेमचन्द युग में ही मिल सका । प्रेमचन्द ने अपने कहानी संग्रह "मानसरोवर" के आठ भागों में सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्र खींचने का प्रयास किया है। यह सत्य है कि अपने उपन्यासों में वे गान्धीवादी

40- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र " -"मेरी माँ" कहानी, पृ0 23-24 ।

विचारधारा से प्रभावित थे, परन्तु अपनी कहानियों में गान्धीवादी विचारधारा से हटते हुए क्रान्तिवाद एवं समाजवाद की ओर उन्मुख होते हुए प्रतीत होते हैं। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन विशेष रूप से साम्राज्यवादी अत्याचार की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ था। अतः सम्पूर्ण आन्दोलन की जड़ साम्राज्यवादी अत्याचार को माना जा सकता है।

साम्राज्यवादी अत्याचार.-

हिन्दी कहानियों में साम्राज्यवादी अत्याचार को उस स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त नही किया गया है जितनी स्पष्टता के साथ उपन्यासों में किया गया है। हिन्दी कहानियों में विशेषतः भारतीय देश-द्रोही वर्ग पर व्यंग्य किया गया है, जो उपाधि एवं अन्य लाभ की दृष्टि से अंग्रेजों की चापलूसी करता था तथा अंग्रेजो की कृपा प्राप्त करने के दृष्टिकोण से अपने ही देश बन्धुओं पर अत्याचार करता था।

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में ऐसे साम्राज्यवादी अत्याचार की निन्दा की है। उन्होंने ऐसे भारतीयों की आलोचना की है जो विदेशी शासकों की चापलूसी करने के नशे में अपने भाइयों पर ही तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। "समरयात्रा" कहानी में मोहरी का कथन उस दरोगा की निन्दा करने वाला है जो पद के नशे मे चूर अपनी गुलामी को भूलकर अपने ही भाइयों पर अत्याचार करता है और इस प्रकार अपने

अधिकारियों को खुश रखने का प्रयास करता है।[41] "जुलूस" कहानी में बीरबल सिंह की पत्नी मिट्ठनबाई उसे, उसके बर्बरता पूर्ण कार्य के लिए धिक्कारती है, जो वह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनकारियों पर करता था।[42] "अनुभव" कहानी एक ऐसे परिवार की कहानी है जहाँ पर पुरूष के पकड़े जाने का "अपराध केवल इतना था कि तीन मास पहले जेठ की तपती दोपहरी में उन्होंने राष्ट्र के कई सेवकों का शर्बतपान से सत्कार किया था"।[43] "माता का हृदय" कहानी में पुलिस के हथकण्डों का वर्णन किया गया है। राजनीतिक कार्यकर्ताओं को चोरी-डाके के झूठे अपराधों में फांसकर लम्बी-लम्बी सजाएं दिलाना साम्राज्यवाद की पुरानी नीति रही है। अपने समय के अन्य सैकड़ों-हजारों देशभक्त नवयुवकों की तरह प्रस्तुत कहानी का आत्मानन्द भी साम्राज्यवाद की इस नीति का शिकार बनता है।[44]

"उग्र" जी की कहानी "उसकी माँ" में लाल के द्वारा अपने चाचा को उनकी राजभक्ति के सम्बन्ध में उलाहना दी जाती है।[45] सुदर्शन

41- प्रेमचन्द -"मानसरोवर" भाग 7, 'समरयात्रा" कहानी, पृ0 72-73
42- वही, "जुलूस, कहानी, पृ0 54
43- वही, भाग 1, "अनुभव " कहानी, पृ0 271
44- वही, भाग 3, "माता का हृदय "कहानी, पृ0 96 ।
45- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" "उसकी माँ कहानी, पृ0 4 ।

सी "सत्यमार्ग" कहानी में मुहम्मद अब्बास के उपाधि प्रेम तथा देशभक्ति के साथ संघर्ष के सम्बन्ध में व्यंग्य किया गया है। सुदर्शन लिखते हैं कि जब कभी उपाधि को भूल जाते थे तब वे देश की अधोगति पर आँसू बहाते थे ।[46]

प्रेमचन्द ने रियासतों में राजाओं के स्वेच्छाचार को भी चित्रित किया है। "रियासत का दीवान" कहानी में उन्होंने प्रदर्शित किया है कि राजा साहब विचारों में केवल देशभक्त ही नहीं है । वरन् क्रान्ति के भी समर्थक हैं, परन्तु पॉलिटिकल एजेण्ट के आने पर हर एक किसान और जमींदार से जबरदस्ती रूपया (चन्दा) लिया जाता है । राजा साहब अपने भाषण में राष्ट्रीय आन्दोलन की खूब खबर लेते हैं और हरिजनोद्धार पर भी छींटे कसते हैं ।[47]

सुदर्शन जी ने भारतीय राजाओं की विलासप्रियता का वर्णन "राजा" कहानी में किया है। रणजीत सिंह की प्रजावत्सलता का वर्णन करने के बाद लेखक लिखते हैं कि "आज वह समय कहाँ चला गया ? आज ऐसे लोग क्यों नजर नहीं आते ? उनको भ्रमण का शौक है, विषय-वासना का चाव है परन्तु अपनी प्रजा के हित -अहित का ध्यान नहीं ।"[48]

46- सुदर्शन -'सत्यमार्ग' कहानी, पृ0 58

47- प्रेमचन्द-'मानसरोवर' भाग2, 'रियासत का दीवान,' कहानी ।

48 सुदर्शन -"सुदर्शन सुमन" कहानी संग्रह, "राजा" कहानी, पृ0 2[illegible] ।

साम्राज्यवादी शासन के अन्त के लिए भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में जो अहिंसक आन्दोलन गान्धी जी द्वारा चलाया गया था। उसको हिन्दी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में चित्रित करने का प्रयास किया है।

सत्याग्रह एवं हृदय परिवर्तन -

गान्धीवादी आन्दोलन चाहे किसी भी रूप में चलाये गये हों। अन्तत: वे एक दूसरे से अन्त:सम्बन्धित हैं और उनको किसी भी रूप में एक दूसरे से पृथक करके नहीं देखा जा सकता। अत: गान्धी जी द्वारा चलाये गये सामाजिक आन्दोलन को उनके राजनीतिक आन्दोलनों से पृथक नहीं किया जा सकता। उनके राजनीतिक आन्दोलन को मुख्यत: सत्याग्रह एवं असहयोग आन्दोलनो के रूप में देखा जा सकता है जिनके अन्तर्गत समस्त गान्धीवादी आन्दोलन समा जाते हैं।

प्रेमचन्द ने सत्याग्रह एवं हृदय परिवर्तन को अपनी कहानियों में विशेष स्थान प्रदान किया है। इसका कारण यह था कि प्रारम्भ से ही गान्धी जी का प्रभाव प्रेमचन्द पर पड़ा था। अत: गान्धीवादी विचारों में उनकी आस्था गहरी हो गई थी। उन्होंने "डामुल का कैदी" कहानी में सेठ खूबचन्द का हृदय परिवर्तन दिखाया है। जब मजदूर सेठ खूबचन्द को मार डालने का प्रयत्न करते हैं और गोपी उनकी जान बचाता

। तो सेठ खूबचन्द का हृदय परिवर्तित हो जाता है । जब लोग गोपी की अर्थी उठाये सेठ खूबचन्द के घर पहुँचते है तो पुलिस भी सामना करने को तैयार रहती है । लेकिन सेठ जी अपना अपराध स्वीकार करते हैं और उन्हें चौदह साल की काला पानी (डामुल) की सजा होती है ।[49] बाद मे जब सेठ खूबचन्द के पुत्र कृष्णाचन्द को हड़ताल में गोली लगती है और वह मारा जाता है तब सेठ खूबचन्द कहते हैं " अन्याय के सामने जो छाती खोलकर खड़ा हो जाय, वही तो सच्चा वीर है ..... ।"[50]

सत्याग्रह के सम्बन्ध में प्रेमचन्द अपनी "दुस्साहस" कहानी में मुंशी जी और उनके अन्य साथियो, जो मद्यपान करते है, का हृदय परिवर्तन दिखाते हैं । जब मुंशी जी उनके (अपने साथियो के) निश्चय की याद दिलाते है तो रामबली कहता है -"निकले थे कि कोई जबर्दस्ती रोकेगा तो उससे समझेंगे ।"[51] परन्तु वहाँ तो सत्याग्रही पिकेटिंग कर रहे थे, जो आत्मबल से कार्य ले रहे थे, जिसका सामना करने का साहस मुंशी जी के साथियों को नहीं हो सका । मुंशी जी के साथियों ने बोतल फेंक दी । ईदू ने कहा-" दीन के खिलाफ ऐसा काम क्यों करें कि शर्मिन्दा होना पड़े । मैं तो आज मारे शर्म के गड़ गया आज तोबा करता हूँ । अब इसकी तरफ आँख उठाकर भी न देखूँगा ।...

49- प्रेमचन्द - 'मानसरोवर" भाग दो, "डामुल का कैदी" कहानी, पृ0 237

50- वही, पृ0 255

51- वही, भाग आठ, "दुस्साहस" कहानी, पृ0 206

अगर फिर कभी मुझे पीते देखना तो मुँह में कालिख लगा देना । "बेचन भी कहता है -" अच्छा तो इसी बात पर आज से मैं भी इसे छोड़ता हूँ । अब पीऊँ तो गऊ रक्त बराबर । " इस पर झिनकू बोलता है- " तो क्या हम ही सबसे पापिनहन । फिर कभू जो हमका पियत देखयों बैठाय के पचास जूता लगायो । .... मुंशी जी के साथ बैठे देखयो तो सौ जूता लगायो, जिसके बात में फरक है उसके बाप मे फरक है ।" इस पर रामबली भी कहता है-" तो भाई मैं भी कसम खाता हूँ कि आज से गांठ के पैसे निकालकर न पीऊँगा । हाँ मुफ्त की पीने में इनकार नही । " बेचन कहता है -" गाँठ के पैसे तुमने कभी खर्च किये हैं ? " इतने में मुंशी जी के आ जाने पर रामबली उन्हें बताता है कि इन सभी ने फिर न पीने की कसम खा ली है लेकिन उन्हें विश्वास न था । घर आकर वो गिलास निकालने लगे लेकिन रामबली को छोड़ तीनों चले गये । जब रामबली से उन्होंने पीने को कहा तो रामबली भी अपने फैसले के पक्ष में तर्क देता हुआ बिदा हो गया । अन्त में मुंशी जी ने स्वयं भी इसका अनुभव किया । वे कहने लगे -"लोग इसे कितनी त्याज्य वस्तु समझते हैं, इसका अनुभव मुझे आज ही हुआ, नहीं तो एक सन्यासी के जरा से इशारे पर बरसों के लती पियक्कड़ यो मेरी अवहेलना न करते । .... तो क्या मैं उनसे भी गया गुजरा हूँ ? .....आज इस

वासना का अन्त कर दूँगा, अपमान का अन्त कर दूँगा । " एक धड़ाके की आवाज हुई । अलगू चौंक कर उठा तो देखा कि मुंशी जी बरामदे में खड़े हैं और बोतल जमीन पर टूटी पड़ी है ।[52]

"शराब की दूकान " कहानी में मिसेज सक्सेना और जयराम शराब की दूकान पर धरना देते हैं जिससे शराब की दूकान पर उपस्थित आदमी शराब पीना छोड़ देते हैं । यहाँ तक कि लैसेंसदार शराब की जगह स्वदेशी वस्त्रो का रोजगार करने का निर्णय लेता है ।[53] "जुलूस" कहानी में भी बीरबल नामक राजभक्त एवं अत्याचारी व्यक्ति का हृदय परिवर्तन दिखाया गया है ।[54] सत्याग्रह आन्दोलन का अत्यन्त ही मार्मिक वर्णन प्रेमचन्द ने इस कहानी में किया है। जुलूस स्वाधीनता के नशे में चूर चौरास्ते पर पहुँचा तो देखा, आगे सवारों और सिपाहियों का एक दस्ता रास्ता रोके खड़ा है । दरोगा बीरबल सिंह जुलूस को रोककर उन्हें वापस जाने का हुक्म देता है लेकिन जुलूस का बूढ़ा नेता इब्राहीम अली वापस न जाने की बात कहता है । परिणाम यह हुआ कि दरोगा डी०एस० पी० साहब को घोड़े पर आते देख जुलूस पर घोड़े चढ़ाने लगा उसे देख और सवारों ने भी घोड़े चढ़ाना शुरू किया । परिणामस्वरूप इब्राहीम अली गम्भीर रूप से घायल होकर अचेत हो गये । जुलूस वाले सभी अविचलित रूप से खड़े थे । हिंसा का कोई निशान उन पर नहीं था । ....जब भीड़ उत्तेजित

52- वही, पृ0 208-210
53- वही, भाग 7, शराब की दूकान" कहानी, पृ0 47-48 ।
54- वही, "जुलूस" कहानी ।

हो मरने-मारने पर उतारू हो गई तो शोर सुनकर इब्राहीम की आँखे खुल गईं। पता चलने पर वापस होना ही उसने अच्छा समझा। इसलिए उन्होंने उठने की कोशिश की लेकिन उठ न सके। झण्डे, डण्डों और साफों तथा रूमालों से एक स्ट्रेचर तैयार किया गया। उस पर लिटा कर इब्राहीम को लेकर वापस फिरे। लेकिन इसमे उनकी पराजय नही थी। वास्तव में उन्होंने एक युगान्तरकारी विजय प्राप्त कर ली थी, वह थी जनता की सहानुभूति प्राप्त करना।[55] परन्तु इस चोट से इब्राहीम की मृत्यु हो जाती है। परिणामस्वरूप "अन्त में बीरबल की पत्नी ने फैसला किया कि ऐसे देश-द्रोही के घर वह न जायेगी और वह इब्राहीम की वृद्धा विधवा के घर चल पड़ी। वहाँ उसने देखा कि बीरबल सादे वस्त्र पहने आंखों में आँसू भरे वृद्धा से बाते कर रहा है।[56] "उग्र" जी की कहानी "नागा नरसिंहदास" में नागा नरसिंहदास देश भक्त सन्यासी हैं। महात्मा गान्धी के सत्याग्रह आन्दोलन के वह प्रबल समर्थक है। साधुओं की जमाअत उनका साथ नहीं देना चाहती है, किन्तु अपने मनोबल से, अपनी समाधि से वह साधुओं को अपने वश में कर लेते हैं। नागा नरसिंह दास के प्रयत्न से अकर्मण्य नागा साधु सत्याग्रह आन्दोलन में

55- वही, पृ० 50-52।

56- वही, पृ० 60।

शामिल हो जाते हैं ।[57]

सुदर्शन जी की कहानी "हारजीत" में सेठ नरोत्तमदास का जो गान्धीवादी आन्दोलन के विरोधी हैं, हृदय परिवर्तन दिखाया गया है ।[58] "अन्तिम साधन" कहानी में रायबहादुर देवीचन्द सरकार के पिछलग्गू हैं, जबकि उनकी पत्नी में देश-प्रेम की भावना है, पत्नी के देह के उपरान्त रायबहादुर जी का हृदय परिवर्तित हो जाता है और वे राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थक बन जाते हैं ।[59]

स्वराज्य -

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य स्वराज्य रहा था। बाल गंगाधर तिलक ने कहा था कि "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, मैं उसे लेकर रहूँगा ।"[60] यद्यपि 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक में कांग्रेस में इस प्रश्न पर मतभेद हो गया था कि स्वराज्य का स्वरूप कैसा हो । जहाँ नरम दल के लोग औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में थे, वहीं गरम दल वाले पूर्ण स्वराज्य की मांग कर रहे थे ।[61] इस मतभेद की समाप्ति 1929 ई0 के लाहौर अधिवेशन में दिखाई पड़ती है जबकि

57- पाण्डेय बेचनशर्मा "उग्र" -"ऐसी होली खेलो लाल " कहानी
58- सुदर्शन" "सुप्रभात" कहानी संग्रह, "हारजी
59- वही, "अन्तिम साधन" कहानी ।
60- देखिये पूर्वोल्लिखित, पृ0 62
61- देखिये पूर्वोल्लिखित, पृ0 वही

कांग्रेस के अध्यक्ष पद से प0 जवाहरलाल नेहरू ने "पूर्ण स्वराज्य" को कांग्रेस का लक्ष्य निर्धारित किया।[62]

हिन्दी कहानीकारों ने भी, विशेषतः प्रेमचन्द ने, स्वराज्य की महत्ता को स्वीकार किया। क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्ति का ही दूसरा रूप स्वराज्य है। जब तक स्वराज्य नहीं स्थापित होता, भारतीयों पर अत्याचार एवं शोषण का अन्त नहीं हो सकता। प्रेमचन्द ने अपनी कहानी "समरयात्रा" में "स्वराज्य" के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। कहानी में लेखक की यह मान्यता है कि "भय ही पराधीनता है, निर्भयता ही स्वराज्य है"[63] इस कहानी में स्वराज्य दल एक गांव में आने वाला है। इसलिए सारे गाँव में हलचल और उमंग भरी हुई है। सारा गांव स्वराज्य दल के स्वागत की तैयारियों में लगा हुआ है। स्वराज्य दल का नायक गाँववालों से कहता है कि हमें सत्य और न्याय के हथियारों से लड़ना है, हिंसा और क्रोध को दिल से निकाल देना है।[64] स्वराज्य की प्राप्ति के लिए प्रेमचन्द ने

62- देखिये - पूर्वोल्लिखित पृ0 8।

63- प्रेमचन्द- "मानसरोवर" भाग 7, "समरयात्रा" कहानी, पृ0 68

64- वही, पृ0 71, स्वराज्य दल के नायक का उपर्युक्त कथन प्रेमचन्द द्वारा दी हुई स्वराज्य की व्याख्या को स्पष्ट करता है। गान्धीवादी विचारधारा के अनुसार अहिंसा निर्भीक व्यक्ति का मार्ग है। देखिये- गांधी- दि स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स पृ0 346-347

अपनी "लाग -डाँट " कहानी में अहिंसा को ही महत्व प्रदान किया है । उनके अनुसार इसके लिए खून की नदी बहाने की आवश्यकता नहीं है ।[65]

प्रेमचन्द अपनी कहानी " पत्नी से पति " में पति अर्थात् मि० सेठ, जो कि स्वराज्य आन्दोलन के विरोधी है, के विचारों का खण्डन उनकी पत्नी से करवाते हुए स्वराज्य आन्दोलन का समर्थन करते हैं । कहानी में मि० सेठ स्वराज्य वालों को देखकर उसकी निन्दा करता है और कहता है कि ये लोग कहते हैं कि भारत आध्यात्मिक देश है तो परमात्मा के विधानों का विरोध नहीं करना चाहिए क्योंकि यदि परमात्मा की इच्छा न होती तो भारत पर अंग्रेजों का शासन कदापि न होता । लेकिन उसकी पत्नी गोदावरी उससे कहती है कि परमात्मा उन्ही की मदद करता है जो अपनी मदद स्वयं करते है ।[66] इसी कहानी में गोदावरी एक अन्धे को एक घिसा हुआ पैसा भीख में देती है । जब वह कांग्रेस के जलसे में जाती है तो मंत्री चन्दे की अपील करते हैं तो वह अन्धा वही पैसा चन्दे की झोली में डाल देता है । सभापति ने कहा कि इस अन्धे के पैसे की कीमत किसी अमीर के हजार रूपये से कम नहीं हैं । उन्होंने यह भी कहा कि फकीर इसलिए दिखाई देते हैं

65- प्रेमचन्द -"प्रेम प्रसून " कहानी संग्रह
"लाग-डांट" कहानी, पृ० 100

66- वही, "मानसरोवर" भाग7, पृ० 18-19

क्योंकि समाज में इन्हें कोई काम नहीं मिलता । स्वराज्य के सिवाय इन गरीबों का उद्धार कौन कर सकता है ? गोदावरी उस एक पैसे को दो सौ में खरीद लेती है ।[67] जो लोग स्वराज्य आन्दोलन का मजाक बनाते थे उनका मुंह तोड़ जवाब प्रेमचन्द ने अपनी कहानी "जुलूस" में दिया है और स्वराज्य की महत्ता को स्पष्ट किया है । कहानी में पूर्ण स्वराज्य का जुलूस निकल रहा था। शम्भूनाथ और दीन दयाल के मत में इसमें लौंडे-लप्पे और सिरफिरे लोग है, कोई बड़ा आदमी शहर का नही है । लेकिन मैकू ने हँसकर जवाब दिया बड़े आदमियों को इस राज्य में कौन सा आराम नही है, कष्ट तो केवल हम गरीबों को है। मैकू का कहना है कि बड़े आदमी जिन्हें कि पहले कोई पूछता भी न था इन्ही लोगों के द्वारा बनाये गये है । लेकिन बड़े होते ही वे इनसे घृणा करने लगते हैं । गान्धी जी का प्रभाव मैकू पर उसके इस कथन से दिखाई देता है । वह कहता है, "हमारा बड़ा आदमी तो वही है, जो लंगोटी बान्धे नंगे पांव घूमता है, जो हमारी दशा को सुधारने के लिए अपनी जान हथेली पर लिये फिरता है ।"[68]

67- वही, पृ0 22-24
68- वही, "जुलूस" कहानी, पृ0 49-50 ।

स्वदेशी तथा बहिष्कार आन्दोलन -

"स्वराज्य" की प्राप्ति के लिए स्वदेशी को अपनानातथा विदेशी का बहिष्कार अत्यन्त आवश्यक था । अतः गान्धी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन मे इन दोनों ही बातों को महत्व प्रदान किया था । जिसे हिन्दी कहानीकारों ने भी स्वीकार किया । उन्होंने अपनी कहानियों में गान्धी जी के साथ पूर्ण सहयोग किया और अपनी कहानियों के माध्यम से जन-साधारण तक स्वदेशी एवं बहिष्कार आन्दोलन को पहुँचाने का प्रयास किया । इन कहानीकारों में प्रेमचन्द का नाम सर्वश्रेष्ठ है ।

प्रेमचन्द ने स्वदेशी का अपनी कहानी "पत्नी से पति" में उल्लेख किया है । कहानी में पति अंग्रेज सरकार का चापलूस तथा उसे खुश करने वाला है । वह स्वदेशी वस्तुओं को घृणा की दृष्टि से देखता है और अपने घर में सारी विलायती वस्तुओं का प्रयोग करता है । उसकी पत्नी यद्यपि पति को खुश करने के लिए विलायती वस्तुओं का उपभोग करती है । लेकिन इस हालत में वह अपने आपको कैदी के समान अनुभव करती है । कहानी में जब विदेशी वस्तुओं की होली जलाई जाती है । तो एक अन्धा गाता है" वतन की देखिये तकदीर कब बदलती है ।"[69] "शराब की दूकान"

69- वही, "पत्नी से पति" कहानी, पृ0 19 । अन्धे के द्वारा गाये जाने वाले गीत के शब्द लेखकके विचारों को स्पष्ट करते है कि वह स्वदेशी से स्वराज्य का सम्बन्ध स्थापित कर रहा है ।

कहानी में शराब की दूकान का लैसेंसदार स्वदेशी वस्त्रों का शराब के स्थान पर रोजगार करने का निर्णय लेता है ।[60] " सुहाग की साड़ी" कहानी में एक बार विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई जा रही थीं । स्वयं सेवकों के जत्थे द्वारों पर विदेशी वस्त्रों की भिक्षा माँग रहे थे । रतन सिंह अपनी पत्नी गौरा से विदेशी कपड़े निकालने के लिए कहते हैं तो गौरा बड़ी अनिच्छा से कुछ कपड़े निकालती है । लेकिन अपनी सुहाग की साड़ी नहीं देती है । परन्तु जब उनका साईस रामटहल और मेहरी केसर अपने विदेशी कपड़े स्वयं सेवकों को दे देते हैं । तो अन्त में गौरा बड़ी अनिच्छा से अपनी सुहाग की साड़ी दे देती है ।[71] " बौड़म" कहानी में बौड़म एक पूँजीपति परिवार का लड़का है लेकिन वह सादे रहन-सहन में विश्वास करता है । रोटी और दाल खाना, मोटा-गाढ़ा कुरता पहनना और उसी की तहमत बाँधना उसका जीवन है ।[72] "लाग-डांट" कहानी में प्रेमचन्द स्वराज्य का अर्थ बताते हुए उसका उपाय बताते हैं कि "अपने घर का बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतों को त्यागो, अपने लड़कों को धर्म-कर्म सिखाओ, मेल से रहो बस यही स्वराज्य है ।[73] "होली का उपहार" कहानी में पत्नी सुखदा

70- वही, शराब की दूकान, कहानी, पृ० 44
71- वही, "सुहाग की साड़ी" कहानी, पृ० 270-272
72- वही, भाग8, "बौड़म" कहानी, पृ० 212 ।
73- वही, प्रेमप्रसून" कहानी संग्रह, "लाग-डांट "कहानी, पृ० 100 ।

देवी द्वारा पिकेटिंग में भाग लिया जाता है जिससे उसका पति अमरकान्त भी आन्दोलन में भाग लेने लगता है और जब वह पकड़ा जाता है तो सुखदा देवी आगे बढ़कर उसका स्थान ले लेती हैं ।[74]

स्वदेशी आन्दोलन के सम्बन्ध में सुदर्शन ने भी कहानियाँ लिखी है । "लोकाचार" कहानी में रईस हरद्वारी लाल के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि "उसकी कोठी भी सोलहो आना पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगी हुई थी, वही रविशें, वही रेशमी पर्दे, वही गद्देदार कुर्सियाँ, वही भारी और लम्बी-चौड़ी मेजें, वही चीनी की रकाबियाँ, वही अंग्रेजी के समाचार-पत्र, फर्श पर दरियाँ, दीवारों के साथ शेक्सपियर के नाटकों के चित्र । यह सब देखकर किसी को कल्पना न हो सकती थी कि यह किसी भारतीय की कोठी है ।"[75] इसी कहानी में लेखक ने दिखाया है कि सुशीला पर भी पश्चिमी सभ्यता का यह प्रभाव होता है कि वही सुशीला जो पहले प्रातः काल भोजन बनाती थी, दोपहर को चर्खा कातती थी और सायंकाल पति के आने की राह देखा करती थी, अब इन कामों को अपमान का कारण समझने लगी ।[76] "माया" कहानी मे भी विद्यावती स्वप्न में देखती है कि उसके पति को लाटरी मिलने के बाद उनकी यह इच्छा होती है कि उनकी पत्नी विलायती वेश धारण करे ।[77]

74- वही, "मानसरोवर" भाग "होली का उपहार" कहानी ।

75- सुदर्शन - "सुदर्शन सुधा" कहानी संग्रह, "लोकाचार" कहानी, पृ० 227 ।

76- वही, पृ० 243

77- वही "माया" कहानी पृ० 80 ।

"हार जीत" कहानी का कथानक स्वदेशी से सम्बन्धित है। सेठ नरोत्तमदास का पुत्र स्वदेशी आन्दोलन का समर्थक है और वह अपने विदेशी कपड़े जला देता है। उसके पिता की सहानुभूति उसके साथ नहीं है। वे विदेशी वस्त्र अपनी दूकान पर बेचते हैं। परन्तु स्वयं-सेवकों के साथ अपने पुत्र को भी पिकेटिंग करते देखकर उनके विचार बदल जाते हैं। फलस्वरूप वे खद्दर पहनना प्रारम्भ कर देते हैं और चर्खे के समर्थक बन जाते हैं।[78]

"अन्तिम साधन" कहानी में लेखक ने दिखाया है कि रायबहादुर देवीचन्द सरकार के पिछलग्गू हैं। उनकी पत्नी विदेशी वस्त्र स्वयं-सेवकों को जलाने के लिए दे देना चाहती है, परन्तु वह ऐसा नहीं करने देते। पत्नी के देहान्त के बाद वे अपनी भूल समझ कर स्वदेशी आन्दोलन के कट्टर समर्थक बन जाते हैं।[79]

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में स्वदेशी के साथ ही बहिष्कार आन्दोलन को भी चित्रित किया है। प्रेमचन्द की "लाल फीता" कहानी में गान्धी जी के बहिष्कार आन्दोलन से प्रभावित होकर नायक हरविलास अपनी बीस वर्ष की सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे देता है। माँ कहानी में लेखक ने सरकारी नौकरी को पराधीनता की जंजीर बताया है। प्रकाश एक बुद्धिमान बालक है। वह सरकारी खर्च पर इग्लैण्ड में आई०सी०एस० के

78- वही, "सुप्रभात" कहानी संग्रह "हारजीत" कहानी।

79- वही, "अन्तिम साधन" कहानी।

प्रशिक्षण के लिए चुना जाता है । परन्तु उसकी माँ करूणा नहीं चाहती कि उसका पुत्र आई० सी० एस० की ट्रेनिंग लेकर मैजिस्ट्रेट बने । वह चाहती है कि उसका पुत्र प्रकाश अपने पिता की तरह कांग्रेस में सम्मिलित होकर स्वदेश सेवा करे । जब प्रकाश अपनी माँ से कहता है कि कांग्रेस में सम्मिलित होने की अपेक्षा वह मैजिस्ट्रेट बनकर देश की सेवा अधिक कर सकता है, तो करूणा उससे सहमत नही होती । उसके विचार में सरकारी नौकरी में किसी की भी स्वाधीनता नहीं होती । उन्हे सरकार के कानूनों पर चलना पड़ता है ।[30]

देशभक्ति एवं आत्मबलिदान –

प्रेमचन्द युगीन लगभग समस्त कहानियों में देशभक्ति एवं आत्मबलिदान की भावना प्राप्त होती । तद्‌युगीन साहित्यकारो ने अपनी कहानियों में युगीन परिस्थितियों के प्रभाव वश देश भक्ति एवं आत्म-बलिदान की भावना को प्रोत्साहित किया। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में विशेष रूप से इस भावना को प्रश्रय प्रदान किया है। "सती" कहानी में चिन्ता नामक लड़की की देशभक्ति एवं साहस का वर्णन किया गया है । वह अपने पिता के युद्ध में जाने के समय अकेली निर्जन स्थान मे भूखी-प्यासी रात-रात बैठी रहती थी । उसको किसी बात का भय नही होता था ।

80- वही, मान0 भाग "माँ" कहानी ।

ने उसका पिता वीरगति प्राप्त करता है, तो वह कहती है " अगर उन्होंने वीरगति पाई तो तुम लोग रोते क्यों हो ? योद्धाओं के लिए इससे बढ़कर और कौन मृत्यु हो सकती है ? इससे बढ़कर उनकी वीरता का और क्या पुरस्कार मिल सकता है ? यह रोने का नही आनन्द मनाने का अवसर है । " जब एक सिपाही चिंतित स्वर में कहता है -" हमें तुम्हारी चिन्ता है। तुम अब कहाँ रहोगी ? चिन्ता ने गम्भीरता से कहा-" इसकी तुम चिन्ता न करो, दादा । मैं अपने बाप की बेटी हूँ । जो कुछ उन्होंने किया, वही मैं भी करूँगी । अपनी मातृभूमि को शत्रुओं के पंजे से छुड़ाने में उन्होंने प्राण दे दिये । मेरे सामने भी वही आदर्श है ।"[81] जब चिन्ता का पति रत्नसिंह युद्धक्षेत्र से भाग आता है तो वह उसे पहचानने से इनकार कर देती है और कहती है कि उसका रत्नसिंह सच्चा वीर था, युद्ध से भागने वाला नही और वह स्वयं चिता में जल जाती है ।[82]

"जेल" कहानी में मृदुला की सास जो मृदुला के धरना देने के अपराध में जेल जाने पर क्रोधित है । लेखक उन्हें पुराने जमाने की चित्रित करता है ।[83] मृदुला, जो प्रथम बार जेल जाने पर अपने पक्ष में सफाई देने के कारण बरी कर दी गई थी । वही मृदुला अपने पति,

---

81- वही, भाग 5 पृ0 70

82- वही, पृ0 71 ।

83- वही, भाग 8, "जेल" कहानी पृ0 9 ।

पुत्र और सास की मृत्यु पर, जो पुलिस की गोलियों के शिकार हुए थे, अदम्य साहस के साथ सरकार की खिलाफत में नेतृत्व करती है। परिणामस्वरूप वह गिरफ्तार कर ली जाती है और जेल में डाल दी जाती है। इस समय वह पुलिस के आरोपों का प्रतिवाद नहीं करती क्योंकि उसके अनुसार जेल में रहकर वह देश सेवा अधिक भलीभाँति कर सकती है।[84] "समरयात्रा" कहानी में भी एक अत्यन्त बूढ़ी स्त्री नोहरी का हृदय भी देश प्रेम की भावना से विह्वल हो उठता है। वह कांग्रेस में सम्मिलित हो सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेती है।[85]

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द राष्ट्रीय आन्दोलन में पुरूषों के साथ स्त्रियों को भी भाग लेने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे। इसीलिए उन्होंने अपनी कहानियों में स्त्री स्वातन्त्र्य एवं चेतना को यथोचित स्थान प्रदान करने का प्रयास किया। प्रेमचन्द ने स्त्रियों में राष्ट्रीय चेतना, जागृत करने के लिए "ब्रह्म का स्वांग" कहानी में एक पुरूष के द्वारा यह कहलवाया है कि वह कौन शुभ घड़ी होगी जबकि इस देश की स्त्रियों में ज्ञान का उदय होगा और वे राष्ट्रीय संगठन में पुरूषों की सहायता करेंगी।[86]

देश-प्रेम की भावना प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी "यह मेरी मातृभूमि है" में भी दिखाई देती है। इस कहानी में साठ वर्ष बाद

84- वही, पृ0 10

85- वही, भाग 7, "समरयात्रा" कहानी।

86- वही, भाग 8, "ब्रह्म का स्वांग" कहानी, पृ0 134

मातृभूमि के दर्शन पाने पर लेखक खेद तथा प्रसन्नता दोनों व्यक्त करता है । खेद इसलिए क्योंकि साठ वर्ष तक वह मातृभूमि से अलग रहा । वह कहता है कि किसी अत्याचारी के अत्याचार या न्याय के बलवान हाथों ने, जो कि जो चाहे कर सकते हैं, उसे मातृभूमि से अलग नहीं किया था वरन् यह उसकी अपनी ही उच्च अभिलाषाएँ और ऊँचे विचार थे जो उसे उस ओर ले गये थे । उसके अपने शब्दों में "अत्याचारी के अत्याचार और कानून की कठोरताएं मुझसे जो चाहे सो करा सकती हैं, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि मुझसे नही छुड़ा सकतीं । वे मेरी उच्च अभिलाषाएं और बड़े-बड़े ऊँचे विचार ही थे, जिन्होंने मुझे देश निकाला दिया ।"[87] यहां पर लेखक ने पश्चिम की तड़क-भड़क की ओर भारतीय नवयुवकों के खिंचाव पर व्यंग्य किया है और अन्त में स्वदेश प्रेम की भावना को स्थापित किया है । लेखक कहता है कि " अब संसार की कोई आकांक्षा मुझे इस स्थान से नहीं हटा सकती, क्योंकि यह मेरा प्यारा देश और यही प्यारी मातृभूमि है। बस मेरी उत्कट इच्छा यही है कि मैं अपनी प्यारी मातृभूमि में ही अपने प्राण विसर्जन करूँ ।"[88]

"जेल" कहानी में राष्ट्रप्रेम की भावना एवं गान्धी जी का प्रभाव एक बच्चे में दिखाया गया है । मृदुला क्षमादेवी को बताती है कि उसका पुत्र सबेरे उठते ही गाता है -" झन्ना ऊँचा लये अमाला" "छोलाज

87- वही, भाग 6, "यह मेरी मातृभूमि है" कहानी, पृ05

88- वही, पृ0 11

जा ... जेल में है"। एक झण्डी कन्धे पर रखकर कहता है -"तालीम ... ब पीना हराम है । " उसका पिता अंग्रेजी कम्पनी में काम करता है तो वह उनसे कहता है - "तुम गुलाम हो"।[89] "पत्नी से पति" कहानी में गोदावरी तथा एक अन्धे भिखारी में राष्ट्रप्रेम की भावना को दिखाया गया है ।[90]

"बौड़म" कहानी में खलील मुहम्मद जिसे सब बौड़म कहते थे, में देश-प्रेम की भावना दिखाई गयी है । वह कहता है " सबसे बड़ा सितम यह है कि खिलाफत का रजाकार भी हूँ । क्यों साहब, जब कौम पर, मुल्क पर और दीन पर चारो तरफ से दुश्मनो का हमला हो रहा है तो क्या मेरा फर्ज नही है कि जाती फायदे को कौम पर कुरबान कर दूँ ? "[91] बौड़म के उक्त कथन में देश-प्रेम की भावना बलवती है । देश के लिए उसने अपना सुखविलास तक त्याग दिया था और निरन्तर देश के हित के लिए सोचता रहता था । इसीलिए उसको बौड़म कहा जाता था ।

"उग्र" जी ने भी अपनी कहानियों में देश-प्रेम एवं आत्म बलिदान की भावना को प्रदर्शित किया है । सत्याग्रही की मृत्यु के महत्व पर "उग्र" जी ने "मेरी माँ" कहानी में वर्णन किया है । इस कहानी में माँ अपने लड़के भीम से कहती है, "छोड़ ये मूर्खताएं, शक्ति सम्भाल,

---

89- वही, भाग 7, "जेल" कहानी, पृ0 7 ।

90- वही, "पत्नी से पति" कहानी ।

91- वही, भाग8, "बौड़म "कहानी, पृ0 214

और युद्धस्थल में जा अहिंसा से मर जा । मैं तेरी मृत्यु पर शहनाई बजवाऊँगी । माँ गंगा को चूनरी चढ़ाऊँगी ।"[92] "उसकी माँ" कहानी में लाल देश को स्वतन्त्र करने के लिए प्रयत्नशील है। उसमें राष्ट्रप्रेम की भावना अपनी चरम-सीमा पर दिखाई देती है ।[93]

सुदर्शन की "सत्य मार्ग" कहानी में मुहम्मद अब्बास के मित्र उन्हें देश सेवा के लिए उत्साहित करते हैं । वे कहते हैं कि अगर सचमुच देश के साथ प्रेम है तो कुछ करके दिखाओ और जाति सेवा का कार्य हाथ में लो ।[94]

हिंसक साधन -

हिन्दी कहानीकारों ने गान्धीवादी अहिंसक आन्दोलन के साथ ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए हिंसक साधनों को अपनी कहानियों में प्रश्रय दिया है। यहाँ तक प्रेमचन्द जैसे कहानीकार ने भी जो गान्धीवादी आन्दोलन से अत्यन्त प्रभावित हुए थे, कहीं-कहीं क्रान्तिकारी आन्दोलन को अपनी कहानियों में प्रश्रय देते है । फिर भी प्रेमचन्द युग और उसके उपरान्त भी हिन्दी कहानियों में क्रान्तिकारी आन्दोलन बहुत अधिक मात्रा में नहीं दिखाई देता है ।

92- पाण्डेय बेचनशर्मा "उग्र" "ऐसी होली खेलो लाल" कहानी संग्रह "मेरी माँ" कहानी, पृ0 24

93- वही, "उसकी माँ" कहानी, पृ03-4 ।

94- सुदर्शन - "सुप्रभात" कहानी संग्रह, "सत्यमार्ग" कहानी, पृ0 58 ।

प्रेमचन्द ने यद्यपि अपने उपन्यासों एवं नाटकों में क्रान्तिकारी विचारों को प्रश्रय नहीं प्रदान किया तथापि उनकी कहानियों में क्रान्तिकारी भावनाओं के दर्शन होते हैं। "कैदी" नामक कहानी में उन्होंने क्रान्तिकारी विचारों का श्रेष्ठतापूर्वक वर्णन किया है। इस कहानी में आइवन और हेलेन सुहागरात के लिए कहीं पहाड़ी जगह जाने की कल्पना बांध रहे थे। परन्तु राजनीतिक संग्राम ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया। आइवन खानदान का रईस था। जनता की सेवा एक तपस्या थी। अतः जब कभी वह हताश हो जाता तो हेलेन उसकी हिम्मत बन्धाती। उन्हीं दिनों उक्रायेन प्रान्त की सूबेदारी पर रोमनाफ नाम का एक गवर्नर नियुक्त होकर आया। वह बड़ा ही कट्टर, राष्ट्रवादियों का जानी दुश्मन, दिन में दो चार विद्रोहियों को जब तक जेल न भेज लेता, उसे चैन न आता था/आते ही उसने कई सम्पादकों पर राजद्रोह का अभियोग चला कर उन्हें साइबेरिया भेजवा दिया, कृषकों की सभाएँ तोड़ दीं, नगर की म्यूनिसिपेलिटी तोड़ दी और जब जनता ने अपना रोष प्रकट करने के लिए जलसे किये, तो पुलिस से भीड़ पर गोलियाँ चलवाई जिससे कई बेगुनाहों की जानें गईं। अतः हेलेन रोमनाफ का कत्ल करने का इरादा करती है। वह आइवन से कहती है कि वह रोमनाफ से प्रेम का नाटक कर मेल बढ़ायेगी और जब एक दिन वह और रोमनाफ पार्क में रात को जायेंगे तो वह {आइवन} उसे गोली मार देगा। आइवन कहता है कि इस तरह की

ऐसा कोई मानुषीय कृत्य नहीं है । तो हेलेन तीखेपन से कहती है जो दूसरों के साथ मानुषीय व्यवहार नहीं करता, उसके साथ हम क्यों मानुषीय व्यवहार करें ? .... तुम न जाने क्यो इतने ठण्डे हो । मैं तो उसके दुराचरण को देखती हूँ तो मेरा रक्त खौलने लगता है । मैं च्य ... हूँ जिस वक्त उसकी सवारी निकलती है, मेरी बोटी- बोटी हिंसा के आवेग से कांपने लगती है । अगर मेरे सामने कोई उसकी खाल खीच ले, तो मुझे दया न आये । अगर तुममें इतना साहस नही है, तो कोई हरज नही । मैं खुद सब कुछ कर लूँगी । हाँ, देख लेना, मैं कैसे उस कुत्ते को जहन्नुम पहुँचाती हूँ ।[95] रोमनाफ जब आइवन की गोलो से बच जाता है तो हेलेन से कहता है " ....मुझे इस युवक की दशा पर दुख हो रहा है, हेलेन । ये अभागे समझते है कि इन हत्याओं से वे देश का उद्धार कर लेंगें । अगर मैं मर जाता तो क्या मेरी जगह कोई मुझसे भी ज्यादा कठोर मनुष्य न आ जाता ।"[96] हेलेन की प्रतिहिंसा की भावना तथा रोमनाफ की दलील से स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द में स्वयं गान्धीवादी और क्रान्तिवादी विचारों के मध्य एक द्वन्द्व चल रहा था । जो इस बात का प्रतीक है कि अपनी कहानियों में प्रेमचन्द के विचारों में सम्भवत: परिवर्तन आ रहा था ।

"माता का हृदय" कहानी में "मेरठ षडयंत्र" केस की भाँति ही पुलिस के हथकण्डों का वर्णन है । राजनीतिक कार्यकर्ताओं को चोरी-डाके

95- प्रेमचन्द - मा०न० भाग 2, "कैदी" कहानी, पृ० 83

96- वही, पृ० 87

के झूठे अपराधों में फांसकर लम्बी-लम्बी सजाएं दिलवाना साम्राज्यवाद की पुरानी नीति रही है। अपने समय के अन्य सैकड़ों देश भक्त नवयुवकों की तरह प्रस्तुत कहानी का आत्मानन्द भी साम्राज्यवाद की इस नीति का शिकार बनता है ।[97]

"जुलूस" कहानी में हिंसा की विजय का भी वर्णन प्राप्त होता है। मारधाड़ की खबर शहर पहुंची तो मैकू ने उत्तेजित हो कहा" अब तो भाई, यहाँ नहीं रहा जाता , मैं भी चलता हूँ । दीनदयाल और शम्भू भी और उनके साथ अधिकांश दूकानदार दूकानें बन्द करके हजारों की संख्या में मरने-मारने के लिए उस ओर दौड़ पड़े । उन्हे देखकर सदार और सिपाहियों ने पीछे हटने में ही उचित समझा ।[98]

"उग्र" ने भी "मेरी माँ " कहानी में कायरता से हिंसा को श्रेष्ठ माना है । कहानी में माँ का लड़का वीरेन्द्र सिंह जेल में बन्द है क्योंकि उस पर डाकुओं के साथ षड्यन्त्र और सरकारी आदमी की हत्या करने का इल्जाम तथा सरकार के विरूद्ध विद्रोह का आरोप है । माँ का दूसरा लड़का भीम विलासी है । उसे उसकी माँ देश सेवा के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि तेरे पिता अंग्रेजी पलटन में दाखिल हुए थे । राजसेना के लिए कम, साम्राज्य ध्वंस के लिए अधिक । उनका उद्देश्य था

97- वही, मान0 भाग 3, "माता का हृदय"कहानी, पृ0 96

98- वही, मान0 भाग 7, "जुलूस" कहानी, पृ0 52

पाश्चात्य सैन्य-संचालन के तमाम भेद जानना । माँ कहती है कि " यह न हो सके, तो तलवार ही लेकर अपने पुरखों का मान बचा ले । मैं ही नहीं सभी कायरता से हिंसा को अच्छी समझते हैं ।[99] यहाँ पर "उग्र" जी के ऊपर गान्धी जी का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है जिन्होंने कायरता से हिंसा को श्रेष्ठ माना था । "उसकी माँ" कहानी में भी "उग्र" जी ने क्रान्तिवादी विचारों को श्रेष्ठ माना है । इस कहानी में लाल की छानबीन पुलिस द्वारा होती है । उसकी माँ जानकी से शिकायत की जाने पर जब लाल से पूछा जाता है कि वह सरकार के विरुद्ध षडुयंत्र रचने वालों का साथी है तो लाल जवाब देता है " .... मैं किसी षडुयंत्र में नहीं । हाँ, मेरे विचार स्वतन्त्र अवश्य है, मैं जरूरत-बेजरूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ । देश की दुरावस्था पर उबल उठता हूँ, इस पशु हृदय परतन्त्रता पर । "[100] लाल को समझाया जाता है कि उसे इस मामले से ध्यान हटाकर अपनी पढ़ाई की ओर लगाना चाहिए । लेकिन लाल में राष्ट्रप्रेम अपनी चरम सीमा पर दिखाई पड़ता है । वह अपने चाचा से बता देता है" इस पराधीनता के विवाद में, चाचा जी, मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं । आप कट्टर राजभक्त हैं, मैं कट्टर राजद्रोही । .... आप अपना पथ छोड़ नहीं सकते....

99- पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र -"ऐसी होली खेलो लाल "कहानी संग्रह, "मेरी माँ" कहानी, पृ0 23-24 ।

100- वही, "उसकी माँ " कहानी, पृ0 3

" अपना भी नहीं छोड़ सकता ।"[101] वह अपने चाचा से साफ-साफ कह देता है कि वह उस दुष्ट सरकार के नाश के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार है । उसके सभी साथी राष्ट्रप्रेम की भावना से ओत-प्रोत है । वे आपस में भारत को स्वाधीन देखने की इच्छा प्रकट करते हैं । उनके अनुसार यह सरकार धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है । शिक्षा व्यवस्था मे भी अज्ञानता ही है ताकि लोग धीर और स्वाधीन न हो सकें ।"[102]

"उग्र" जी की कहानियों में राष्ट्रप्रेम और बलिदान की भावना बहुत अधिक दिखाई देती है । प्रेमचन्द जी की भाँति ही वे सभी गान्धीवादी आन्दोलन के पक्षपाती थे । परन्तु इसके साथ ही वे देश की पराधीनता को किसी भी उपाय से दूर करने के हिमायती भी थे । इस प्रकार राजनीतिक आन्दोलनो की अभिव्यक्ति प्रदान करने में उग्र जी प्रेमचन्द के उपरान्त एक राष्ट्रीय कथाकार के रूप में देखे जा सकते हैं । जैसा कि प्रो० वासुदेव का भी विचार है कि "प्रेमचन्द के बाद समाज और विशेषकर देश की राजनीतिक गतिविधियों का जितना यथार्थ और सुन्दर वर्णन उग्र जी ने किया है उतना अन्य किसी ने नहीं किया ![103] राजकमल चौधरी के अनुसार भी अपनी

101- वही, पृ0 4

102- वही, पृ0 वही ।

103- प्रो0 वासुदेव -हिन्दी कहानी और कहानीकार, वाणी विहार, वाराणसी, तृत्यावृत्ति, 1961, पृ0 52-53 ।

कहानियों में उन्होंने (उग्र) गान्धीवादी आदर्शों और मर्यादाओं को सर्वोच्च स्थान दिया। देश भक्ति, हिन्दू-मुस्लिम एकता, देश के लिए सर्वस्व समर्पण, सम्प्रदायवाद का विरोध, सामाजिक पाखण्डों का विरोध, अन्धी धार्मिकता का विरोध- उग्र ने इन सभी विषयों पर एक से एक मार्मिक और विचारोत्तेजक कहानियाँ लिखी हैं।"[104] उनके अनुसार "उग्र सच्चे अर्थों में राष्ट्रवादी लेखक हैं। भारतीयता ही उन्हें सबसे अधिक प्रिय है।"[105]

आर्थिक -

प्रेमचन्द युगीन कहानीकारों में मुख्यत: प्रेमचन्द की कहानियों में राष्ट्रीय आन्दोलन के आर्थिक पक्ष का गहनतापूर्वक अध्ययन किया गया है। प्रेमचन्द ने अपने युग की आर्थिक समस्याओं को परखा था तथा उनका समाधान ढूढ़ने का प्रयास किया था। इसका कारण यह था कि प्रेमचन्द का अपना जीवन भी मूल रूप में आर्थिक पहलू से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित रहा था। वे स्वयं एक ग्रामीण जीवन का अनुभव कर चुके थे। ग्रामीण अर्थव्यवस्था का उनके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा था। यही कारण है कि उन्होंने अपनी साहित्यिक कृतियों में ग्रामीण जीवन, विशेषत: किसानों के जीवन की समस्याओं को उठाने तथा उनका समाधान प्रस्तुत करने का

104- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" -"ऐसी होली खेलो लाल" कहानी संग्रह, भूमिका।

105- वही।

प्रयास किया है ।

प्रेमचन्द एक यथार्थवादी साहित्यकार थे जिन पर युगीन परिस्थितियों का केवल प्रभाव ही नहीं पड़ा था वरन् उन्होंने परिस्थितियों का परीक्षण भी किया था । यही कारण था कि प्रारम्भ से ही गान्धीवादी विचारधारा से प्रभावित होने के उपरान्त भी उन्होंने समाजवादी विचारधारा को ग्रहण किया जो गान्धीवादी विचारधारा के शिथिल पड़ जाने के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में विकसित हो रही थी । अतः स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द एक जागरूक साहित्यकार थे जिन्होंने युगीन परिस्थितियों का अत्यन्त गूढ़ अध्ययन किया था । जवाहर लाल नेहरू ने जिस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन में व्यवहारवादिता को महत्व दिया उसी प्रकार प्रेमचन्द भी साहित्य के क्षेत्र में व्यवहारिकता को महत्व प्रदान करने वाले साहित्यकार थे । जवाहर लाल नेहरू का विचार था कि यदि भारत को उन्नति करना है, तो उसे समाजवादी आधार स्वीकार करना पड़ेगा । उनके अनुसार भारत में समाजवाद का प्रसार एवं प्रचार भारतीय परिप्रेक्ष्य एवं पर्यावरण के अनरूप होना चाहिए ।[106] प्रेमचन्द ने भी अपने साहित्य में ऐसे ही समाजवाद को प्रश्रय देने का प्रयास किया है ।

106- देखिये नेहरू -इंण्डिया एण्ड दि वर्ल्ड- जार्ज एलन एण्ड अनविन, लन्दन, 1936, पृ0 82-83 तथा पुरुषोत्तम नागर-- आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, द्वितीयावृत्ति 1984, पृ0 489 ।

प्रेमचन्द्र की कहानियों को आर्थिक दृष्टिकोण से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है किसान समस्या से सम्बन्धित तथा मजदूर समस्या से सम्बन्धित ।

किसान समस्या-

प्रेमचन्द ने मूलत: अपनी कहानियों में किसान समस्या को ही उठाने का प्रयास किया है तथा गरीब एवं शोषित किसान के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है । "रियासत का दीवान" कहानी में जयकृष्ण जब राजा साहब के पास जाता है तो उस पर उनके समाजवादी विचारों का खूब प्रभाव पड़ा । उसे लगा कि राजा साहब केवल देशभक्त ही नहीं क्रान्ति के समर्थक भी है ! रूस और फ्रांस की क्रान्ति पर दोनो में खब बहस हुई थी । लेकिन अबकी यहाँ उसने कुछ और ही रंग देखा रियासत मे हर एक किसान और जमींदार से जबरन चन्दा वसूल किया जा रहा था। वसूल करना पुलिस का काम था । रकम दीवान साहब नियत करते थे । चारों ओर त्राहि-त्राहि मची थी । राजा साहब के विचार और व्यवहार में इतना अन्तर देख जयकृष्ण को आश्चर्य हो रहा था । जयकृष्ण जब अपने पिता {मेहता जी} से पूछता है कि ये अत्याचार राजा साहब की आज्ञा के बिना किये जा रहे हैं तो वह बताते हैं कि ये राजा साहब की आज्ञा है। इसलिए जयकृष्ण मेहता जी से इस्तीफा देने को कहता है।[107]

107- प्रेमचन्द -"मानसरोवर" भाग 2, "रियासत का दीवान" कहानी, पृ0 164 ।

"जेल" कहानी में किसानों से जबर्दस्ती लगान वसूल की जाती है। यहाँ तक बीज का दाम तक किसान नहीं वसूल पाते। किसानों के घरों में घुसकर पुलिस उन्हें मारती-पीटती है, उनकी स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। इसी सम्बन्ध में एक किसान की मृत्यु हो जाती है तो भैरोगंज के लोग पुलिस के विरोध में उठ खड़े हुए। परिणामस्वरूप बारह आदमियों की जानें गईं। गांववालों ने अपने शहर के भाइयों से फरियाद करने का निश्चय किया। लाशों को देखकर जनता उत्तेजित हो गई। पुलिस ने लगभग पचास हजार की भीड़ पर गोलियां घंटे भर चलाई।[108] प्रेमचन्द ने एक ऐसे किसान को चित्रित किया है जो क्रान्तिकारी है, शोषण एवं अत्याचार का विरोध करने वाला है।

मजदूर समस्या -

गान्धी जी ने औद्योगीकरण का विरोध किया था, क्योंकि औद्योगीकरण के कारण भारतीय ग्रामीण उद्योग धंधे तो नष्ट हो ही रहे थे। इसके साथ ही साथ किसान पर ऋण का बोझ बढ़ने से उसे जमीन से हाथ धोना पड़ रहा था। जिसके परिणामस्वरूप वह मजदूर बनने के लिए मजबूर हो रहा था। प्रेमचन्द ने भी किसान की इस परिवर्तित होती हुई स्थिति को देखा था। अत: उन्होंने अपनी साहित्यिक रचनाओं में किसान

108- वही, भाग 7, "जेल" कहानी।

को मजदूर होते दिखाया है । "बलिदान" कहानी में किसान हरख का पोता 20 रूपये मासिक पर एक ईंट के भट्ठे पर काम करने लगता है ।[109]

"सुहाग की साड़ी" कहानी में प्रदर्शित किया गया है कि विदेशी वस्त्रों के चलन से, विदेशी वस्तुओं के उपभोग से स्वदेशी उद्योग धन्धे नष्ट हो गये थे और लोगों को जीवन चलाने के लिए हीन से हीन कार्य भी करने पड़ते थे जिसका उदाहरण रामटहल साईस और केहरी है। रामटहल जात का कोरी था लेकिन अस्तबल साफ करने का काम करने लगा था ।[110] इस कहानी में भी आर्थिक दुर्दशा और मशीनीकरण का विरोध प्रकट किया गया है ।

<u>मजदूर-पूँजीपति सम्बन्ध -</u>

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में मजदूर-पूँजीपति सम्बन्ध को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । मजदूर-पूँजीपति सम्बन्ध सदा से शोषित और शोषक का रहा है । इसी वास्तविकता को प्रेमचन्द ने अपनी कहानी में दर्शाया है । "डामुल का कैदी" कहानी में सेठ खूबचन्द का जेसी मिल देश के बहुत बड़े मिलों में है । जबसे स्वदेशी आन्दोलन चला है, मिल के माल की खपत दूनी हो गई है । सेठ जी ने कपड़े की

109- प्रेमचन्द -"प्रेम पूर्णिमा "कहानी संग्रह,"बलिदान" कहानी, पृ० 151 तथा 164 ।

110- वही, मानसरोवर, भाग 7,"सुहाग की साड़ी" कहानी, पृ० 277 ।

दर में दो आने रुपया बढ़ा दिये है फिर भी बिक्री में कोई कमी नहीं है। लेकिन इधर अनाज कुछ सस्ता हो गया है। इसलिए सेठ जी ने मजूरी घटाने की सूचना दे दी है। कई दिन से मजूरों के प्रतिनिधियों और सेठ जी मे बहस होती रही। सेठ जी नये मजूरों को कम मजूरी पर रख सकते थे इसलिए वे जरा भी न दबे। अन्त में मजूरों ने हड़ताल का निश्चय किया। उन्होंने कहा "प्रण कर लो कि किसी बाहरी आदमी को मिल में घुसने न देंगे, चाहे वह अपने साथ फौज लेकर ही क्यों न आये। कुछ परवाह नहीं, हमारे ऊपर लाठियाँ बरसें, गोलियाँ चलें...।"[111] सेठ खूबचन्द ने मजदूर नेता गोपी पर रिवाल्वर से गोली चलाकर आहत कर दिया। इस पर जब मिल के मजदूरों ने सेठ को मार डालने का प्रयत्न किया तो गोपी ने ही आकर सेठ की जान बचाई।[112] यहां पर प्रेमचन्द पर साम्यवादी प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है, परन्तु इस समय भी वे गान्धीवादी प्रभाव से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सके थे। बाद मे खूबचन्द का पुत्र कृष्णचन्द मजदूरों का नेता बनता है। हड़ताल होती है। उसमें गोली चलती है। कृष्णचन्द मारा जाता है।[113]

111- वही, "मानसरोवर" भाग2, "डामुल का कैदी" कहानी, पृ0 235

112- वही, पृ0 236-237।

113- वही, पृ0 254

। पर शोषण का अन्त गान्धीवादी साधनों के आधार पर किया जाने का सुझाव प्राप्त होता है । लेकिन कुछ कहानियों में स्पष्ट रूप से मार्क्सवादी साम्यवाद का प्रभाव प्रेमचन्द पर दिखाई देता है । "पशु से मनुष्य" कहानी में प्रेमचन्द घोषित करते हैं कि पूँजी और श्रम में, शोषक और शोषितों में आज जो संघर्ष चल रहा है, उसमे जल्द ही श्रम की -शोषितों की - विजय होने वाली है । यूँ तो आज से पहले भी पूँजी के प्रभुत्व को अनेक बार धक्का लग चुका है, लेकिन लक्षण बता रहे हैं कि इस बार पूँजी की जो पराजय होगी वह अन्तिम और निर्णायक होगी ।[116] "मृत्यु के पीछे " कहानी एक ऐसे ईमानदार की कहानी है जो धन और श्रम के वर्तमान संघर्ष में श्रमजीवियों का साथ देता है ।[117]

<u>नौकर तथा मालिक सम्बन्ध</u> -

नौकर तथा मालिक के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द ने "ब्रह्म का स्वांग " कहानी में वृन्दा के चरित्र को स्थापित करके भौतिक जगत की वास्तविकता को स्पष्ट किया है। "वृन्दा ने सबके लिए {नौकर तथा घरवाले} एक ही भोजन बनवाया है । मैं कुछ बोल न सका मैं भौचक्का सा हो गया । वृन्दा सोचती होगी कि भोजन में भेद करना नौकरों पर अन्याय है । कैसा बच्चों का सा विचार

116- वही, "प्रेम पचीसी" कहानी संग्रह, "पशु से मनुष्य" कहानी, पृ0 23 ।

117- वही, "प्रेमप्रसून" कहानी संग्रह, "मृत्यु के पीछे" कहानी, पृ0 83 ।

है । ना समझ ! यह भेद सदा रहा है और रहेगा । मैं भी राष्ट्रीय ऐक्य का अनुरागी हूँ । समस्त शिक्षित समुदाय राष्ट्रीयता पर जान देता है किन्तु कोई स्वप्न में भी कल्पना नहीं करता कि हम मजदूरों या सेवा-वृत्ति-कारियों को समता का स्थान देंगे । हम उनमें शिक्षा का प्रचार करना चाहते हैं । उनकी दीनावस्था से उठाना चाहते है । यह हवा संसार भर में फैली हुई है पर इसका मर्म क्या है, यह दिल में सभी समझते है, चाहे कोई खोलकर न कहे । इसका अभिप्राय यही है कि हमारा राजनैतिक महत्व बढ़े, हमारा प्रभुत्व उदय हो, हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव अधिक हो, हमें यह कहने का अधिकार हो जाय कि हमारी ध्वनि केवल मुट्ठीभर शिक्षित वर्ग की ही नहीं, वरन् समस्त जाति की संयुक्त ध्वनि है, पर वृन्दा को यह रहस्य कौन समझावे ।"[118]

बेगार समस्या -

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में बेगार समस्या को भी उठाया है । "सद्गति" कहानी में जब दुखी चमार अपनी बेटी के ब्याह के लिए "साइत-सगुन" के लिए पंडित घासीराम के घर जाता है तो वह घास का गट्ठर नज़राने के रूप में ले जाता है। घासी उससे बोलता है - "इस घास को सामने डाल दे और जरा झाड़ू लेकर द्वार तो साफ कर दे । यह बैठक भी कई दिन से नहीं लीपी गई । उसे भी गोबर से लीप दे । ....हाँ,

---

118- वही, मान0 भाग आठ, "ब्रह्म का स्वांग" कहानी, पृ0 139

घर लकड़ी भी चीर देना । खलिहान में चार खाँची भूसा पड़ा है । उसे भी उठा लाना और भुसौले में रख देना ।[119] जब दुखी लकड़ी काटते-काटते थक कर सिर पकड़कर बैठ जाता है तो गोंड़ आता है। उससे पूछता है " कुछ खाने को मिला कि काम ही कराना जानते है । जाके माँगते क्यों नहीं । " दुखी कहता है " कैसी बात करते हो चिखुरी, ब्राह्मण की रोटी हमको पचेगी ।"[120] गोंड़ कहता है " पचने को पच जायेगी, पहले मिले तो । मूँछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये, तुम्हें लकड़ी फाड़ने का हुक्म लगा दिया । जमींदार भी कुछ खाने को देता है । हाकिम भी बेगार लेता है, तो थोड़ा बहुत मजूरी दे देता है । यह उनसे भी बढ़ गये, उस पर धर्मात्मा बनते हैं ।"[121] "समरयात्रा" कहानी में नोहरी कहती है कि "उनसे बेगार लिया गया, गालियाँ और घुड़कियाँ सुननी पड़ी, न खाने को, न सोने को ठीक से मिला ।"[122]

प्रेमचन्दोत्तर युग -

प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी कहानी साहित्य के क्षेत्र में जैनेन्द्र जी का नाम उल्लेखनीय माना जा सकता है । जैनेन्द्र के अतिरिक्त उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने भी राष्ट्रीय समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई ।

119- वही, मानसरोवर भाग 4, "सद्गति" कहानी, पृ0 20

120- वही, पृ0 वही, यहाँ प्रेमचन्द के ऊपर मार्क्स का प्रभाव दिखाई देता है जिसके अनुसार धर्म मनुष्य के लिए अफीम होता है ।

121- वही पृ0 23

122- वही, भाग 7, "समरयात्रा" कहानी, पृ0 69

प्रेमचन्द उपरान्त भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बन्ध में हिन्दी कहानियों में बहुत स्पष्ट संकेत प्राप्त नहीं होते हैं। कुछ कहानीकारों के अतिरिक्त इस विषय पर अन्य कहानीकारों का कोई प्रयास नहीं प्राप्त होता। सामाजिक एवं आर्थिक आन्दोलनों के सम्बन्ध में इस युग की कहानियों में स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। जो कुछ उल्लेख किया गया है, वह राजनीतिक आन्दोलन का है।

राजनैतिक -

राजनैतिक आन्दोलन के अन्तर्गत इस युग में राष्ट्रीय एकता पर जैनेन्द्र जी ने अपनी कहानी "स्पर्द्धा" लिखी। इस कहानी में राष्ट्रीय एकता के लिए साम्प्रदायिक एवं जातिगत एकता को महत्वपूर्ण माना गया है। इस कहानी में इटली का उदाहरण लिया गया है। गिडिटो, [illegible] और लारेंजो इटली के सम्बन्ध में बात करते हैं। गिडिटो कहता है-" हम ..... इटली का ऐक्य सम्पन्न करना चाहते थे। आज हम टुकड़ों-टुकड़ों में बँटे हुए हैं। उन टुकड़ों की शक्ति आपस में ही क्षीण हो जाती है, इसीलिए आस्ट्रियन के लिए हमारी देश-भूमि रौंदना सम्भव है। हमारी लड़ाई आस्ट्रियन के खिलाफ है और इसलिए पहला काम हमारा इटली को एक राष्ट्र, एक आवाज और एक शक्ति बना देना है।"[123] इसी कहानी में जब अलबर्ट की हत्या के सम्बन्ध में समिति के सदस्यों में मतभेद

123- जैनेन्द्र- जैनेन्द्र की कहानियाँ, (प्रथम भाग), "स्पर्द्धा" कहानी, पृ० 105।

... एन्टिनों ने कहा-"किन्तु मैं कहता हूँ, बैट जाकर हम गिरेंगें, एक रहने में हमारी विजय है ।"[124]

गान्धीवादी बहिष्कार आन्दोलन के सम्बन्ध में उपेन्द्रनाथ "अश्क" ने अपनी भावाभिव्यक्ति दी है । उनकी "चट्टान" कहानी में दीन दयाल अपनी मेडिकल ग्रुप की पढ़ाई छोड़ देता है तथा पिता द्वारा अकाउन्टेन्ट जनरल के दफ्तर में नौकरी लगवा दिये जाने पर भी नौकरी से त्यागपत्र दे देता है । उसने त्याग पत्र में साफ-साफ लिख दिया कि जिस सरकार ने हमें एक सदी से गुलाम बना रखा है, उसका पुर्जा बनकर मुझे काम करना स्वीकार नहीं । उसने घर छोड़ दिया और गान्धी आश्रम चला गया और जनता की सेवा करने लगा ।[125] इस प्रकार दीन-दयाल ने स्वतन्त्रता प्राप्ति को अपना आदर्श बना लिया ।[126]

विदेशी शिक्षा के सम्बन्ध में "फांसी" कहानी में जैनेन्द्र जी ने उलाहना किया है । शिक्षा के सम्बन्ध में जो वास्तव में पाश्चात्य शिक्षा है शमशेर जो डाकू है, वह अंग्रेज कर्नल से कहता है"शिक्षा ! आज तुमने हिन्दुस्तान को क्या बना दिया ? हृदय की सारी विभूति को यह चूस लेती है, आदमी को दम्भ करना सिखाती है , वास्तव से हटाकर

124- वही, पृ0 106-107 ।

125- उपेन्द्रनाथ"अश्क"- साहित्यधारा, कहानियाँ- 2, "चट्टान" कहानी,पृ0 225

126- वही, पृ0 226

नमन करना सिखाती है, ... ।"[127]

"फांसी" कहानी मे ही भारतीय शोषक एवं ब्रिटिश सरकार के चापलूस व्यक्तियों की आलोचना की गई है । इस कहानी में शमशेर नामक का चित्रण किया गया है जो डकैतियां करते दूसरी ओर दरिद्र जनता का हित करता है ।

जैनेन्द्र जी ने विदेशी शासन से मुक्ति और राष्ट्रप्रेम को अपनी कहानियों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है । "गदर के बाद" कहानी में जब चौधरी, लालू और रहमत को गिरफ्तार करके कर्नल, जो आज मार्शल कोर्ट के मजिस्ट्रेट की कुर्सी पर बैठा है, के सामने पेश किया जाता है (जिसकी पत्नी को चौधरी ने रहमत और लाल आदि के हाथ से बचाया था) तब चौधरी ने कहा-" क्या कहलवाते हो इन बेचारों से जो है सो मैं कहता हूँ । .... मैं तुम लोगों को यहां नहीं चाहता । तुम लोगों का राज मैं नही मानता । .....तुम अंग्रेज हो, अपने देश मे रहो । हम हिन्दुस्तानी है हम यहाँ रह रहे हैं । तुम्हारे यहाँ जगह नही है, तो - अच्छी बात है, तो फिर यहां रहो, पर आदमियों की तरह से रहो । पर वैसे ? न दम-मे-दम है तब तक तुम्हारे दुश्मन रहेंगे । बस, और क्या कहलवाते हो ? "[128] "निर्मम" कहानी में जब शिवाजी औरंगजेब के साथ

127- जैनेन्द्र- जैनेन्द्र की कहानियां, प्रथम भाग, "फांसी" कहानी, पृ0 11 ।

128- वही, "गदर के बाद" कहानी, पृ0 61 ।

नकल करना सिखाती है, ... ।"[127]

"फांसी" कहानी मे ही भारतीय शोषक एवं ब्रिटिश सरकार के चापलूस व्यक्तियों की आलोचना की गई है । इस कहानी में शमशेर डाकू का चित्रण किया गया है जो डकैतियाँ करके दूसरी ओर दरिद्र जनता का हित करता है ।

जैनेन्द्र जी ने विदेशी शासन से मुक्ति और राष्ट्रप्रेम को अपनी कहानियों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है । "गदर के बाद" कहानी में जब चौधरी, लालू और रहमत को गिरफ्तार करके कर्नल, जो आज मार्शल कोर्ट के मजिस्ट्रेट की कुर्सी पर बैठा है, के सामने पेश किया जाता है (जिसकी पत्नी को चौधरी ने रहमत और लाल भादि के हाथ से बचाया था) तब चौधरी ने कहा-" क्या कहलवाते हो इन बेचारो से जो है सो मैं कहता हूँ । .... मैं तुम लोगों को यहाँ नहीं चाहता । तुम लोगों का राज मैं नही मानता । .....तुम अंग्रेज हो, अपने देश मे रहो । हम हिन्दुस्तानी है हम यहाँ रह रहे हैं । तुम्हारे यहाँ जगह नही है, तो- अच्छी बात है, तो फिर यहाँ रहो, पर आदमियों की तरह से रहो । पर वैसे ? न दम-मे-दम है तब तक तुम्हारे दुश्मन रहेंगे । बस, और क्या कहलवाते हो ? "[128] "निर्मम" कहानी में जब शिवाजी औरंगजेब के सामने

127- जैनेन्द्र- जैनेन्द्र की कहानियाँ, प्रथम भाग, "फांसी" कहानी, पृ0 11 ।

128- वही, "गदर के बाद" कहानी, पृ0 61 ।

युद्ध करते उकता जाते हैं और इस युद्धमय जीवन से, मारने-मरने के जीवन से उकता जाते हैं तब वे श्री समर्थ गुरू के पास जाते है । श्री समर्थ गुरू उपदेश देते हैं - " ...... कर्म अनिवार्य है और मनुष्य नितान्त स्वतन्त्र नहीं है । कर्म की परिधि में घिरा है, बस परिधि के भीतर स्वतन्त्र है । " बाद में गुरू उपदेश देते हैं -" .... जाओ - औरंगजेब की सेना बढ़ रही है । ब्राह्म्मणों का अपमान, धर्म पर अत्याचार और गौओं की हत्या हो रही है । भारत की भारतीयता खोई जा रही है । इसकी रक्षा करो ।"[129]

उपर्युक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द युग तथा प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी कहानीकारों ने राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित समस्याओं को उठाने का प्रयास किया है तथा भारतवासियों में राष्ट्रभक्ति तथा आत्मबलिदान की भावना को जागृत करने का प्रयास किया है ।

129- वही, "निर्मम" कहानी, पृ0 79 ।

अध्याय - पाँच

उपसंहार

पिछले अध्यायों का अध्ययन करने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीयता को मानव समाज से पृथक नहीं किया जा सकता है । वास्तव में मानव सभ्यता के साथ ही राष्ट्रीय चेतना का भी आविर्भाव हुआ । राष्ट्रीय चेतना मानव को संगठित करने वाला वह बन्धन है जिससे मानव, समाज के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एकबद्ध होकर जीवनव्यतीत करने का प्रयास करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति, चाहे वह किसी भी माध्यम से हुई हो, स्वाभाविक थी ।

साहित्य मानव जीवन से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होता है । अतः [illegible]में मानव जीवन की विभिन्न घटनाओं की प्रतिछाया स्वाभाविक है । जैसा कि प्रेमचन्द का मत है कि साहित्य का आधार जीवन होता है । इसी नींव पर साहित्य की दीवार खड़ी होती है। अतः श्रेष्ठ साहित्य उसी को माना जाता है, जिसमें जीवन की गतिविधियों का गहराई से विश्लेषण किया गया हो तथा लोगों की भावना कोस्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया हो ।

उपर्युक्त आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी भी आन्दोलन तथा तत्कालीन साहित्य को एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है । साहित्यकार के मस्तिष्क पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। साहित्यकार युगद्रष्टा होता है और समाज में घटनेवाली घटनाओं से वह आँखे नहीं बन्द करसकता है। वह अपने समकालीन समाज का प्रतिनिधित्व करता है । अतः यदि किसी समाज की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना हो तो उस समाज को तत्कालीन साहित्य में देखने का प्रयास किया जाना चाहिए ।

~~[illegible]~~ [illegible]स शोध प्रबन्ध में गान्धीयुगीन हिन्दी गद्य साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति

को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि गान्धीयुग जहाँ एक ओर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण था, जिसमें मध्यवर्गीय आन्दोलन को एक जनान्दोलन का स्वरूप प्राप्त हुआ था, वहीं दूसरी ओर हिन्दी गद्य साहित्य को इसी युग में परिपक्वता प्राप्त हुई थी। गान्धीयुग को हिन्दी गद्य साहित्य में प्रेमचन्द युग तथा प्रसाद युग से [illegible]कृत किया जा सकता है। इस युग में जहाँ एक ओर गान्धी जी ने भारतीय राजनीति के रंगमंच पर आते ही राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया मोड़ प्रदान किया। वहीं प्रेमचन्द तथा जयशंकर प्रसाद जैसे साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से राजनीति तथा साहित्य में अभूतपूर्व तादात्म्य एव सामंजस्य स्थापित किया, जिसका अनुसरण अन्य साहित्यकारों ने भी किया।

गान्धीयुगीन भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन मुख्यत: गान्धीवादी सिद्धान्तों से प्रभावित था। हिन्दी गद्य साहित्य में गान्धीवाद राष्ट्रीय, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के रूप में प्रकट हुआ है। गान्धीवादी आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इसके माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन शहरों की परिधि को लांघकर गाँवों में जा पहुँचा जिससे पहली बार राष्ट्रीय आन्दोलन एक संगठित जनान्दोलन बन सका। परन्तु इस युग में ही क्रान्तिकारी एवं समाजवादी आन्दोलन का भी विकास हुआ। क्रान्तिकारी, गान्धीवादी तकनीक से असन्तुष्ट होकर आंतकवादी साधनों के माध्यम से ब्रिटिश शासकों के मन में भय उत्पन्न कर स्वतन्त्रता की प्राप्ति करना चाहते थे। इस शताब्दी के तीसरे दशक के आरम्भ में कुछ भारतीय नेताओं के ऊपर रूस की बोल्शेविक क्रान्ति का भी पड़ा था। अत. संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तीन विचार-धाराओं से प्रभावित था - गान्धीवादी, क्रान्तिवादी तथा समाजवादी। इन तीनों के आधार पर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य भारत को स्वतन्त्र करना था। अत: इसकी अभिव्यक्ति, गान्धीयुगीन हिन्दी गद्य

साहित्य, मुख्यत: उपन्यासों, नाटकों तथा कहानियों में प्राप्त होती है ।

जहाँ तक गान्धीवादी आन्दोलन का प्रश्न है । गान्धी जी केवल सिद्धान्तवादी नहीं थे वरन् वे एक व्यावहारिक व्यक्ति भी थे । उन्होंने भारतीय परतन्त्रता के मूल कारणों को ढूँढने का प्रयास किया । इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण किया तथा परिणामस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारतीय परतन्त्रता का कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद ही नहीं था वरन् भारतीय समाज की अपनी कुरीतियाँ भी थीं । हिन्दी साहित्यकारों नेभी गान्धी जी के इन विचारों की वास्तविकता को समझा तथा उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया ।

हिन्दी गद्य साहित्य के भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग की कृतियाँ गान्धीवादी आन्दोलन से प्रभावित नहीं थीं । परन्तु प्रेमचन्द्र युग और प्रेमचन्दोत्तरयुग में गान्धीवादी आन्दोलन की अभिव्यक्ति साहित्य में हुई है। प्रेमचन्द्र युग में मुख्य रूप से प्रेमचन्द्र के उपन्यास, नाटक तथा कहानी में गान्धीवादी आन्दोलन का प्रभाव पड़ा । प्रेमचन्द्र ने अपने उपन्यासों, नाटकों एवं कहानियों मेंगान्धीवादी रचनात्मक कार्यक्रम यथा- छुआछूत, साम्प्रदायिक समस्या, मद्यनिषेध, भाग्यवाद एवं धार्मिक अन्धविश्वास, स्त्री समस्या इत्यादि के उन्मूलन पर बल दिया है । प्रेमचन्द्र भी गान्धी जी की भाँति ही भारतीय समाज के दोषों को दूर कर उस वातावरण का निर्माण करना चाहते थे जिसमें देश को ब्रिटिश शासन के विरूद्ध एक होकर खड़ा होने का अवसर प्राप्त हो सके ।

प्रेमचन्द्र ने गान्धीवादी तकनीक को महत्वपूर्ण माना है । उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह आन्दोलन को विशेष महत्व दिया जिससे शत्रु का हृदय परिवर्तित किया जा सकता है। इसकी अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में हुई है परन्तु उनके नाटकों में सामाजिक आन्दोलन पर विशेष

अधिक समीप दिखाई देते हैं । इसका कारण सम्भवत: यह था कि प्रेमचन्द
उपन्यास को मानव जीवन के अनेक पहलुओं से सम्बन्धित करते हैं । जबकि
कहानी को मानव जीवन की किसी एक घटना से सम्बन्धित करते हैं ।
चाहे उपन्यास हो, कहानी हो या नाटक हो, प्रेमचन्द ने अपने साहित्य
के लिए ग्रामीण जीवन पर अधिक बल दिया है। वे ग्रामीण जीवन को आधार
बनाकर भारत के गांवों की ओर भारतवासियों का ध्यान आकृष्ट करना
चाहते थे, जिससे न केवल गांवों में जागृति आये वरन्, राष्ट्रीय समस्याओं
को गांवों के सन्दर्भ में भी सुलझाने का प्रयास किया जा सके । प्रेमचन्द के
अतिरिक्त राधिकारमण प्रसाद सिंह, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद, सेठ
गोविन्ददास, उदयशंकरभट्ट, बद्रीनाथ भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण
प्रेमी, रामनरेश त्रिपाठी, जगन्नाथ प्रसाद "मिलिन्द", विश्वम्भरनाथ शर्मा
"कौशिक", पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र", सुदर्शन इत्यादि साहित्यकारों ने भी
गान्धीवादी आन्दोलन को अपने साहित्य में किसी न किसी रूप में अभि-
व्यक्ति देने का प्रयास किया है । उन्होंने गान्धीवादी सामाजिक आन्दोलन
में मुख्य रूप से साम्प्रदायिक समस्या पर बल दिया है। उन्होंने अपनी रचनाओं
में राजनीतिक आन्दोलन कोमुख्यस्थान देने का प्रयास किया है। जहाँ उपन्यास
और कहानी में साम्राज्यवादी अत्याचार केविरुद्ध असन्तोष की भावना को
इन साहित्यकारों ने प्रकट किया है तथा गान्धीवादी तकनीक के आधार पर
स्वतन्त्रता के लक्ष्य को प्राप्त करना स्वीकार किया है, वहीं हिन्दी नाटकों
में जयशंकर प्रसाद के नेतृत्व में अन्यनाटककारों ने प्राचीन भारतीय गौरवमयी
अतीत कोमुख्य आधार बनाकर राष्ट्रीय चेतना को उभारने का प्रयास किया
है ।

यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का गान्धीवाद से प्रभावित
काल हिन्दी गद्य साहित्य में "प्रेमचन्द युग" माना जाता है तथापि इस युग
के उपरान्त भी हिन्दी साहित्यकारों नेअपनी रचनाओं में गान्धीवादी
विचारों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । राधिकारमण प्रसाद सिंह,

सुमित्रानन्दन त्रिपाठी "निराला", इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, रघुवीर शरण मित्र, विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल "अंचल", उपेन्द्रनाथ "अश्क", भगवती प्रसाद बाजपेयी, जैनेन्द्र इत्यादि साहित्यकारों ने गान्धीवादी आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। राधिकारमण प्रसाद सिंह, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, रघुवीर शरण मित्र, विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक," भगवती चरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल "अंचल", उपेन्द्र नाथ "अश्क", भगवती प्रसाद बाजपेयी इत्यादि ने गान्धीवादी विचारों को अपने उपन्यासों में व्यक्त करने का प्रयास किया है। जैनेन्द्र, उपेन्द्रनाथ "अश्क" इत्यादि ने अपनी कहानियों में गान्धीवादी राजनीतिक आन्दोलन को व्यक्त करने का प्रयास किया है। इस युग के नाटकों में हरिकृष्ण प्रेमी, डॉ० सत्येन्द्र, इन्द्रवेदालंकार, लक्ष्मण सिंह चौहान, दाउदयाल गुप्त इत्यादि गान्धीवादी विचारों से प्रभावित होते होते है। जिससे राष्ट्रीय चेतना को साहित्य में अभिव्यक्ति मिल सकी।

क्रान्तिकारी आन्दोलन, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से ही आरम्भ हो चुका था। परन्तु इसे विशेष महत्व उस समय प्राप्त हुआ, जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कुछ नेताओंका विश्वास गान्धीवादी आन्दोलन में कम होने लगा। प्रेमचन्द गान्धी जी के समर्थकों में से एक थे, फिर भी कहीं-कहीं पर उनकी रचनाओं में क्रान्तिवाद की झलक दिखाई देती है। मुख्य रूप से हिन्दी गद्य साहित्य में क्रान्तिकारी विचार, पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र", दुर्गा प्रसाद खत्री इत्यादि की रचनाओं में दिखाई देते हैं। दुर्गाप्रसाद खत्री ने अपने उपन्यासों में क्रान्तिकारी विचार को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। प्रेमचन्द, पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" इत्यादि ने अपनी कहानियों क्रान्तिकारी आन्दोलन को अभिव्यक्ति प्रदान की। परन्तु प्रेमचन्द युग के नाटकों में इस ओर विशेष बल नहीं दिखाई देता है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में क्रान्तिकारी हिंसक आन्दोलन को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया गया है। यशपाल, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, राहुल सांकृत्यायन, रघुवीर शरण मित्र, अनन्तगोपाल शेवड़े, रामेश्वर शुक्ल "अंचल" गुरुदत्त, उपेन्द्रनाथ "अश्क", जैनेन्द्र, भगवती चरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, प्रताप-नारायण श्रीवास्तव, मन्मथनाथ गुप्त इत्यादि ने अपने उपन्यासों में क्रान्ति-कारी आन्दोलन का चित्रण कर राष्ट्रप्रेम को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया है। वृन्दावनलाल वर्मा, इन्द्रवेदालंकार, दशरथ ओझा इत्यादि ने अपने नाटकों में क्रान्तिकारी साधनों को स्वीकार किया है। प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानियों मे हिंसक आन्दोलन पर विशेष बल नहीं दिया गया है।

समाजवादी विचारों को भी गान्धीयुगीन हिन्दी गद्य साहित्य में अभिव्यक्त किया गया है। इस पक्ष पर मुख्य रूप से प्रेमचन्द युग में विचार किया गया। गान्धी जी ने अपने आर्थिक कार्यक्रम को राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण स्थान दिया था। प्रेमचन्द गान्धी जी के व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित थे तथा गान्धी जी के साथ-साथ अपनी लेखनी का भी योगदान राष्ट्रीय आन्दोलन में कर रहे थे। प्रेमचन्द स्वयं ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित थे अतः अपनी रचनाओं में उन्होंने ग्रामीण जीवन को केन्द्र माना। प्रेमचन्द के उपन्यासों का जहाँ तक प्रश्न है, वे अपने आरम्भिक उपन्यासों में गान्धीवादी आर्थिक कार्यक्रम से प्रभावित प्रतीत होते हैं लेकिन अपने बाद के उपन्यासों मे मुख्य रूप से गोदान से, उनके ऊपर समाजवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसमें वे औद्योगीकरण एवं मजदूर, श्रम, शोषण इत्यादि पर विचार करते हुए प्रतीत होते हैं। प्रेमचन्द युग में उपन्यास और कहानी में प्रेमचन्द की रचनाओं में ही आर्थिक पक्ष पर विशेष बल दिया गया है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द उपन्यास में गान्धीवादी अधिक प्रतीत होते हैं, समाजवादी कम, जबकि अपनी कहानियों में वे गान्धीवादी कम प्रतीत होते हैं, समाजवादी अधिक। नाटकों में इस युग में जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी-नारायण मिश्र, रामनरेश त्रिपाठी, सुदर्शन, प्रेमचन्द, उदयशंकर भट्ट इत्यादि

ने अपनी रचनाओं में आर्थिक समस्याओं को उठाने का प्रयास किया है तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए इसके समाधान को महत्त्वपूर्ण माना है । जिसके लिए समाजवाद के महत्त्व को स्थापित किया गया है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग मे यशपाल, रामेश्वर शुक्ल "अचल", उपेन्द्रनाथ "अश्क " इत्यादि की औपन्यासिक रचनाएँ समाजवाद से प्रभावित हैं । परन्तु रामेश्वर शुक्ल "अंचल" के उपन्यासों में गान्धीवादी साधनों पर विश्वास परिलक्षित होता है । नाटकों में वृन्दावनलाल वर्मा ,इन्द्रवेदालंकार, दशरथ ओझा, हरिकृष्ण प्रेमी, दाउदयाल गुप्त इत्यादि की रचनाओं में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के लक्ष्य को राजनीतिक के साथ आर्थिक बनाने पर बल दिया गया है । हरिकृष्ण प्रेमी के उपन्यासों में समाजवाद का प्रभाव कहीं-कहीं दिखाई देता है । इस युग की कहानियों में समाजवादी एवं आर्थिक पक्ष पर विशेष बल नहीं दिया गया है ।

अत: संक्षेप में यह कहाजा सकता है कि गान्धी युगीन हिन्दी का साहित्य की उपन्यास, नाटक तथा कहानी विधाओं में युगीन परि-स्थितियों का अंकन किया गया है। विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक रचनाओं को वह माध्यम बनाया जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन को अभिव्यक्ति देकर जन-जन तक राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया जा सके ।

सहायक एवं विवेचित ग्रन्थ सूची

मेरा ।।ऽ वृन्दावनलाल वर्मा, झांसी, ग्यारहवां संस्करण, 1971 ई0

...तश... – जयशंकर प्रसाद, हिन्दी ग्रन्थ भण्डार कार्यालय, बनारस, प्रथम संस्करण, 1922 ई0

...तसिंह चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, तृतीय बार, 1949 ई0

...ना – सुदर्शन, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

...हीन अन्त – उदयशंकर भट्ट, कृष्णगली, लाहौर, द्वितीय संस्करण 1943 ई0

...राजित – मन्मथनाथ गुप्त, दिल्ली, 1960 ई0

...रा – सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1931 ई0

... अभिलाषा – चतुरसेन शास्त्री, शंकर लाल गुप्त, दरबार प्रकाशन, दिल्ली, 1953 ई0

... सिंह – चतुरसेन शास्त्री, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1960ई0

...रा – सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1993 वि0

...निंग ऑफ इण्डिया – रैमजे मैकडोनल्ड

...क – लक्ष्मी नारायण मिश्र, हिन्दी पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय, बिहार, प्रथम संस्करण, 1984 वि0

... – ~~जयशंकर प्रसाद, सरस्वती सदन, झांसी, 1982 वि0~~

...का भारत – रजनी पामदत्त, दि मैकमिलन कं0 ऑफ इण्डिया लि0, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977 ई0

आत्मकथा - महात्मा गान्धी

आत्मदाह चतुरसेन शास्त्री, चौधरी एण्ड सन्स, बनारस, द्वितीय संस्करण

आधीरात - लक्ष्मीनारायण मिश्र

आधुनिक भारत- रतिभानु सिंह "नाहर", किताब महल, इलाहाबाद 1957 ई०

आधुनिक भारतीय चिन्तन - बी०एस० नरवणे, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1970 ई०

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन - वी०पी० वर्मा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 1987-88 ई०

आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन - अवस्थी और अवस्थी, रिसर्च पब्लिकेशन, 1987-88 ई०

आधुनिक भारतीय सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन - पुरूषोत्तम नगर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1984 ई०

आधुनिक साहित्य - नन्द दुलारे बाजपेयी, भारती भण्डार, प्रयाग 2007 वि०

आधुनिक हिन्दी नाटक - डॉ० नगेन्द्र, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, प्रथम संस्करण 1955 ई०

आधुनिक हिन्दी साहित्य (1850ई०-1900 ई०)- लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद ,प्रयाग विश्वविद्यालय,प्रयाग

आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - श्रीकृष्ण लाल, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, 1942 ई०

आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका (1750ई०-1850ई०)- डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग , 1954 ई०

रश्मा चरण - डॉ0 नगेन्द्र , नेशनल पब्लिशिंग हाउस , दिल्ली, प्रथम सस्करण,
1968 ई0

आंसू जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, अष्टम संस्करण,
1949 ई0

आहुति - हरिकृष्ण "प्रेमी", हिन्दी भवन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 19

अन सर्च आॅफ फ्रीडम - जे0सी0 चटर्जी, कलकत्ता, 1967 ई0

इन्दुमती - सेठ गोविन्ददास, दिल्ली, 1959 ई0

इनसायक्लोपीडिया आॅफ फिलासफी, सम्पादक- पॉल एडवर्ड्स, पंचम भाग मैकमिलन
कं0, न्यूयार्क ।

इण्डिया इन बॉन्डेज - सुन्दर लाल, कलकत्ता, 1929 ई0

इण्डिया एण्ड दि वर्ल्ड - जवाहरलाल नेहरू, जार्ज एलन एण्ड अनविन, लन्दन, 193

इण्डिया एण्ड दि वेस्ट - बारबरा वार्ड, अनु0 विश्व प्रकाश, एस0 चान्द एण्ड कं
लखनऊ, 1957 ई0

इण्डिया: दि रोड टु सेल्फ गवर्नमेन्ट - जोहन कोटमैन, जार्ज एलन एण्ड अनविन लि
लन्दन, प्रथम संस्करण, 1941 ई0

इण्डिया: नेशनल एण्ड लेंगुएज प्रॉब्लम - बी0आर0 कल्पूयेव, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई
दिल्ली, संस्करण 1981 ई0

इण्डिया विन्स फ्रीडम - मौलाना अबुल कलाम आजाद, कलकत्ता, 1959 ई0

इण्डियन आरेस्ट - वे. टाइन शिरोल, लाईट एण्ड लाईफ पब्लिशर्स, नई दिल्ली,
1979 ई0

इण्डियन नेशनलिज्म: एन हिस्टारिकल एनालिसिस - आर0 सुथर सिंगन विकास पब्लिशिंग हाउस, 1983 ई0

इण्डियन नेशनल इवोल्यूशन - ए0 सी0 मजूमदार, जी0ए0 नटेसन एण्ड कं0, द्वितीय संस्करण 1971 ई0

इण्डियन कांस्टीट्यूशनल डाक्यूमेन्ट्स, खण्ड- 4 - ए0सी0 बनर्जी

इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट एण्ड थॉट - वी0पी0 एस0 रघुवंशी, आगरा, 1950 ई0

इण्डियन प्रिन्सेज अण्डर ब्रिटिश प्रोटेक्शन- पी0एल0 चुरगर, संस्करण 1929 ई0

इण्डियाज फ्रीडम - जे0 एल0 नेहरू, लन्दन, 1962 ई0

इण्डियाज स्ट्रगल फॉर फ्रीडम - भाग तीन - जगदीश शरण शर्मा (सम्पा0) एस0 चाँद एण्ड कं0, दिल्ली, संस्करण 1965 ई0

इण्डियाज स्ट्रगल फॉर फ्रीडम -हिरेन मुकर्जी , नेशनल बुक एजेंसी प्रा0 लि0, कलकत्ता तृतीय संस्करण 1962 ई0

इण्डियाज स्ट्रगल फॉर स्वराज - एस0 प्रधान, संस्करण

इण्डियाज साइलेन्ट रिवोल्यूशन - एफ0 बी0 फिशर

ईशा ... - मिश्रबन्धु, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, प्रथम बार, 1937 ई0

उत्सर्ग - चतुरसेन शास्त्री, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1986वि0

उद्धार - हरिकृष्ण प्रेमी ,आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वितीय 1951 ई0

एक नीड़ दो पंछी -उदयशंकर भट्ट

[illegible] इन मेकिंग – सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

[illegible] हिस्ट्री ऑफ दि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी (1935 ई0–1959 ई0) –हरिकिशोर सिंह, लखनऊ

[illegible] ऑफ [illegible] पिवरोज (प्रयोग और [illegible]) –डब्ल्यू [illegible],
[illegible] हाउस, इलाहाबाद, 1985 ई

[illegible] नेशनलिज्म इन दि ट्वेन्टियेथ सेन्चुरी– जे0 केने[illegible], मैकमिलन, लन्दन, 1968 ई0

[illegible] एण्ड वेस्टर्न डॉमिनेन्स – के0 एम0 पानिक्कर

ऐसी होली खेलो लाल – पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र"

[illegible] – जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, काशी, द्वितीय संस्करण, 1929 ई0

कम्युनल यूनिटी – महात्मा गांधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण, 1949 ई0

कलम, तलवार और त्याग – प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1939 ई0

[illegible] – जैनेन्द्र कुमार, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, द्वितीय संस्करण 1946 ई0

[illegible] – चन्द्रशेखर पाण्डेय, भारती भवन, रायबरेली, प्रथम बार, 1990वि0

कर्मभूमि – प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वितीय संस्करण, 1932 ई0

कर्बला – प्रेमचन्द, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, प्रथमावृत्ति, 1924ई0

कर्तव्य – सेठ गोविन्ददास, महाको0 साहित्य मन्दिर, जबलपुर, द्वितीय संस्करण, 1992 वि0

काकोरी के भेंट – रामप्रसाद "बिस्मिल", पथिक एण्ड कम्पनी, दिल्ली

कामना – जयशंकर प्रसाद, हिन्दी पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय, बिहार, 1927 ई0

कायाकल्प – प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, संस्करण, 1926 ई0

कांग्रेस का इतिहास (खण्ड एक)- पी० सीतारमैया, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली द्वितीय संस्करण, 1936 ई०

कांग्रेस का इतिहास (खण्ड दो)- पी०सीतारमैया , सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1948 ई०

कुछ विचार - प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण 1965 ई०

कुण्डली चक्र - वृन्दावनलाल वर्मा, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1932 ई०

कुलीनता - सेठ गोविन्ददास, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, द्वितीय संस्करण, 1948 ई०

गदर - ऋषभचरण जैन, 1930ई०

गदर पार्टी का इतिहास - प्रीतम सिंह पंछी, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1961 ई०

गबन - प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस , द्वितीय संस्करण, 1937 ई०

गर्मराख - उपेन्द्रनाथ "अश्क"

गान्धी इन इण्डियन लिटरेचर -(सम्पा०) डॉ० एच० एम० नायक, द्वारा डॉ० नगेन्द्र, इन्स्टीट्यूट ऑफ कन्नड़ स्टडीज, यूनिवर्सिटी ऑफ मैसूर , मैसूर, प्रथम संस्करण (हिन्दी)

गान्धी: चैलेन्ज टु कम्युनिज्म - जी०एन० दीक्षित, एस० चाँद एण्ड को० प्रा० लि०, नई दिल्ली

गान्धी टोपी - राधिकारमण प्रसाद सिंह, राज राजेश्वरी साहित्य मन्दिर, शाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1938 ई०

गांधी: हिज लाइफ एण्ड थॉट - जे0बी0 कृपलानी, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया,

पब्लिकेशन डिवीजन, 1971 ई0

गरुड़ध्वज - लक्ष्मी नारायण मिश्र, हिन्दी प्रचारक पुस्तक भण्डार, ज्ञानवापी,

वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1956 ई0

गोद सियारामशरण गुप्त, 1932 ई0

गोदान - प्रेमचन्द , सरस्वती प्रेस, बनारस , द्वितीय संस्करण 1939 ई0

ग्रोथ पालिटिकल थियरी-ई0 बार्कर, मैथ्युएन एण्ड को0 लन्दन, 1957ई0

ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया (1857ई0- 1918ई0), वाल्यूम एक, सुखबीर

चौधरी , त्रिमूर्ति पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली, प्रथम

संस्करण 1973 ई0

ग्रोथ ऑफ नेशनलिज्म इन इण्डिया - एन0 एम0 पी0 श्रीवास्तव , मीनाक्षी प्रकाशन,

मेरठ, 1973 ई0

घृणामयी - इलाचन्द्र जोशी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई,

प्रथम संस्करण, 1929 ई0

चढ़ती धूप - रामेश्वर शुक्ल "अंचल", इलाहाबाद, संस्करण, 1955 ई0

चन्द हसीनों के खतूत - पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र", हिन्दी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता,

संस्करण 1927 ई0

चन्द्रगुप्त - बदरीनाथ भट्ट, रत्नाश्रम आगरा, तीसरी बार, 1938 ई0

चन्द्रगुप्त मौर्य - जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण

1983 ई0

चलते-चलते - भगवती प्रसाद बाजपेयी, दिल्ली , नवीन संस्करण 1964 ई0

चित्तौड़ की देवी - दशरथ ओझा, साहित्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, द्वितीय संस्करण

1934 ई0

[illegible] - विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक", गंगा पुस्तक माला कार्या[illegible]
द्वितीयावृत्ति 1927 ई0

[illegible] की पकड़ - सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1947 ई0

छत्रपति शिवाजी - रूपनारायण पाण्डेय, हिन्दी कल्पतरू ग्रन्थ भण्डार, प्रयाग, सातवाँ संस्करण

जनमेजय [illegible] नागयज्ञ - जयशंकर प्रसाद, साहित्य रत्नमाला कार्यालय, बनारस, 1926 ई0

[illegible]न्त - रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1934 ई0

[illegible]यात्रा - मन्मथनाथ गुप्त, वाराणसी 1956 ई0

जहाज का पंछी - इलाचन्द्र जोशी

ज्वालामुखी - अनन्त गोपाल शेवड़े, प्रयाग, संस्करण 1956 ई0

[illegible] - [illegible] पेरी, एलन एण्ड अनविन लि0 लन्दन, 1978 ई0

[illegible]ज़िप - मन्मथनाथ गुप्त, इलाहाबाद, 2003 वि0

जीनेके लिए- राहुल सांस्कृत्यायन, इलाहाबाद, संस्करण 1948 ई0

जीवन यज्ञ - डॉ0 सत्येन्द्र, सरस्वती सदन, लश्कर, ग्वालियर

जैनेन्द्र की कहानियाँ - जैनेन्द्र कुमार, प्रथम भाग

जैनेन्द्र के विचार - जैनेन्द्र कुमार, हिन्दी साहित्य रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, 1925 ई0

झाँसी की रानी - वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, प्रथम संस्करण 1946 ई0

झूठा सच (देश का भविष्य) - यशपाल, लखनऊ, द्वितीय संस्करण 1963 ई0

झूठा सच (वतन और देश) - यशपाल, लखनऊ, द्वितीय संस्करण 1959 ई0

द[illegible] [illegible] - जय प्रकाश नारायण, पद्मा पब्लिकेशन्स लि0, बम्बई, प्रथम संस्करण

[illegible] - भगवती चरण वर्मा, भारती भण्डार, काशी, प्रथम संस्करण 1946 ई0

[illegible] ज्ञ (1917 ई0- 1936ई0) कम्पाइल्ड इन दि इन्टेलिजेंस ब्यूरो, होम डिपार्टमेंट, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, 1974 ई0

[illegible] - उदयशंकर भट्ट, दिल्ली, संस्करण 1960 वि0

[illegible] वृन्दावनलाल वर्मा, बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण, 1921 ई0

[illegible] - जैनेन्द्र कुमार, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, पंचम संस्करण 1950 ई0

[illegible] - जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद संस्करण 1934 ई0

[illegible] राज्यक्रान्ति - किशोरीदास बाजपेयी, हिमाचल एजेंसी, कनखल, द्वितीय संस्करण, 1940 ई0

[illegible] - यशपाल, लखनऊ, द्वितीय संस्करण 1944 ई0

[illegible] सिंधमतन - उदयशंकर भट्ट, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, प्रथम संस्करण 1933 ई0

दि [illegible] ऑफ नेशनलिज्म : ए हिस्ट्री इन इट्स ओरिजिन एण्ड बैकग्राउण्ड-हैंस कोहन, दि मैकमिलन कं0, न्यूयार्क, पंचम संस्करण 1951 ई0

दि [illegible]नोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया इन दि विक्टोरियन एज- आर0 सी0 दत्त, संस्करण 1906 ई0

[illegible] नेशनल इवोल्यूशन : ए स्टडी ऑफ दि ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस- ए0सी0 मजूमदार, मिचिको एण्ड पन्जाथन, नई दिल्ली, 1974 ई0

नेशनल कांग्रेस एण्ड दि राज (1929 ई0- 1942 ई0) -बी0आर0 टामलिंसन, दि मैकमिलन प्रेस लि0, लन्दन, प्रथम संस्करण, 1976 ई0

दि ... - एस0 सी0 बोस, एशिया पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता, 1964ई0

... - आर0पी0 कांगले, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 196..

... ऑफ लाइफ - जे0सी0 कुमारप्पा, प्रथम संस्करण 1952 ई0

... ऑफ सोशलिज्म इन इण्डिया (1920ई-1951ई0) -लक्ष्मी गुरहा

... मिक्स ऑफ नेशनलिज्म : रीडिंग्ज इन इट्स मीनिंग एण्ड डेवलपमेन्ट- (सम्पा0) लुईस एल0 स्नाइडर, रूटगर यूनिवर्सिटी, न्यू जर्सी, 1952 ई0

... ऑफ इण्डियन फ्रीडम - जे0सी0 विन्सलो, जॉर्ज एलन एण्ड अनविन लि0 लन्दन, द्वितीय संस्करण 1932 ई0

दि ... एण्ड दि पीपुल - रैल्फ फॉक्स, पी0पी0 हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 1957ई0

दि न्यू इनसायक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका, पन्द्रहवाँ संस्करण, खण्ड 19

दि ... ड नेशनलिज्म- एन0 मेहता, मनोहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 1984ई0

... ऑफ न्यू इण्डिया- के0 एम0 पानिक्कर, जार्ज एलन एण्ड अनविन लि0, ...न, प्रथम संस्करण 1963 ई0

दि महात्मा : ए मार्क्सिस्ट सिम्पोज़ियम - एम0बी0 राव, द्वारा सुरेन्द्र गोपाल, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, बम्बई

दि मीनिंग ऑफ नेशनलिज्म - लुईस एल0 स्नाइडर, रूटगर यूनीवर्सिटी, न्यू जर्सी, संस्करण 1954 ई0

दि ... ऑफ विवेकानन्द एण्ड यूनीवर्सल गॉस्पल- रोमां रोला

दि ... रिवोल्ट - प्राण चोपड़ा, गान्धी पीस फाउन्डेशन, प्रथम संस्करण

... हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल (भाग पाँच) -(सम्पा0) आर0सी0 मजूमदार, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1968 ई0

दुर्गावती -बदरीनाथ भट्ट, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1922 ई0

देश के दुर्दिन - दाऊदयाल गुप्त, हिन्दी साहित्य मन्दिर, मथुरा, प्रथम बार 1939ई

देश द्रोही -यशपाल, लखनऊ, सप्तम संस्करण 1967 ई0

देहाती दुनिया- शिवपूजन सहाय, संस्करण 1926 ई0

दो पहल - यज्ञदत्त शर्मा, कलकत्ता, प्रथम संस्करण 1940 ई0

दो ... की आग - पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" बीसवी सदी पुस्तकालय, कलकत्ता,
प्रथमावृत्ति

धीरे-धीरे - वृन्दावनलाल वर्मा, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, प्रथमावृत्ति 1939 ई0

ध्रुवस्वामिनी- जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1944 ई0

नई इमारत - रामेश्वर शुक्ल "अंचल", वाराणसी 1965 ई0

नई समीक्षा - अमृतराय, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन हाउस, बनारस, प्रथम संस्करण 2000वि

नव्य हिन्दी नाटक - डॉ0 सावित्री स्वरूप

निमंत्रण - भगवती प्रसाद बाजपेयी, दिल्ली तृतीय संस्करण 1967 ई0

निरुपमा - सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", भारती भण्डार, प्रयाग पंचम संस्करण, 1950 ई0

निर्मला - प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, संस्करण 1938 ई0

निर्वासित - इलाचन्द्र जोशी, भारती भण्डार, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1946 ई0

नेशन बिल्डिंग इन एशिया-आर0 एस0 चावन, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली
1973ई0

[illegible] म एण्ड इण्टरनेशनलिज्म - डी0एल0 स्टर्जो, रॉय पब्लिशर्स, न्यूयार्क 1946ई0

नेशनलिज्म एण्ड कोलोनियलिज्म इन मॉडर्न इण्डिया- बिपिनचन्द्र ओरियेंट लॉगमैन लि0, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979 ई0

नेशनलिज्म एण्ड सोशल रिफार्म इन इण्डिया- सीताराम सिंह, रंजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली

नेशनालिटी इन हिस्ट्री एण्ड पॉलिटिक्स : ए स्टडी ऑफ दि सायकोलोजी एण्ड सोशियोलोजी ऑफ नेशनल सेन्टिमेन्ट्स एण्ड कैरेक्टर- फ्रैडरिक हर्ट्ज, राउटलेज एण्ड केगन पॉल लि0, लन्दन, तृतीय संस्करण 1951 ई0

नेहरू : व्यक्तित्व और विचार - बनारसीदास चतुर्वेदी

पथिक- गुरूदत्त, नई दिल्ली, चौथा संस्करण 1957 ई0

परख - जैनेन्द्र, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, पंचम संस्करण 1952 ई0

परिवर्तन - सुदर्शन, इण्डियन प्रेस लि0, प्रयाग, द्वितीयावृत्ति 1937 ई0

पाकिस्तान और दि पार्टिशन ऑफ इण्डिया- बी0आर0 अम्बेदकर, ठाकुर एण्ड को0, [illegible] 1946 ई0

पॉलिटिकल थॉट- सी0एल0 वेपर इंग्लिस यूनीवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1954ई0

पॉलिटिकल थॉट-इन इंग्लैण्ड (1848-1914)ई0 बार्कर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1950ई0

पॉलिटिक्स एण्ड दि नॉविल - इरविंग हॉवे, स्टीवेंस एण्ड सन्स, लन्दन, संस्करण 1961 ई0

पॉलिटिकल थॉट-इन इंग्लैण्ड-एच0जे0 लास्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन

पार्टी कामरेड - यशपाल, लखनऊ, संस्करण 1963 ई0

पॉवर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया- दादा भाई नौरोजी

पीजेन्ट्स स्ट्रगल इन इण्डिया -(सम्पा0) ए0आर0 देसाई, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,

पुरुष और नारी - राधिकारमण प्रसाद सिंह, राज राजेश्वरी साहित्य मन्दिर,
प्रथम संस्करण 1940 ई0

पुष्पहार - सुदर्शन, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, तृतीय संस्करण 1940ई0

प्रकाश - सेठ गोविन्ददास, महाको0 साहित्य मन्दिर, जबलपुर, दूसरा संस्करण

प्रकाश स्तम्भ - हरिकृष्ण प्रेमी, हिन्दी महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1954ई0

प्रताप प्रतिज्ञा - जगन्नाथ प्रसाद "मिलिंद", हिन्दी महल, इलाहाबाद, दसवाँ संस्करण

प्रतिध्वनि जयशंकर प्रसाद, साहित्य सदन, झांसी

प्रत्यागत - वृन्दावनलाल वर्मा, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, द्वितीय संस्करण

प्रतिशोध - दुर्गा प्रसाद खत्री, वाराणसी, नवाँ संस्करण 1965 ई0

प्रतिशोध - हरिकृष्ण प्रेमी, हिन्दी भवन, जालन्धर व इलाहाबाद, द्वितीय
संस्करण 1952 ई0

प्रतिज्ञा - प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद 1939 ई0

प्रसाद के नाटक - रामरतन भटनागर, यूनीवर्सल प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1951 ई0

प्रसाद के नाटक एवं नाट्य शिल्प - डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन,
दिल्ली, प्रथम संस्करण 1969 ई0

प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन - जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

प्रॉफिट ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म - डॉ0 करण सिंह, भारतीय विद्या भवन, बम्बई,
प्रथम भारतीय संस्करण, 1967 ई0

प्रियदर्शी सम्राट अशोक - दशरथ ओझा, साहित्य पब्लिशिंग हाउस, कानपुर, प्रथम
संस्करण, 1935 ई0

प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल एण्ड पालिटिकल थियरी - इ0 बार्कर ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी
प्रेस, लन्दन, 1963ई0

[illegible] ऑफ दि सेमिनार ऑन सोशलिज्म इन इण्डिया (1919 ई0-1939 ई0),
भाग एक, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लाइब्रेरी, तीन मूर्ति हाउस,
नई दिल्ली, 1970 ई0

प्रेमचन्द - रामविलास शर्मा, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1941 ई0।

प्रेमचन्द और उनका युग - रामविलास शर्मा, मेहरचन्द और मुंशीराम, प्रकाशक एवं
पुस्तक विक्रेता, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1952 ई0

[illegible] और गान्धीवाद - रामदीन गुप्त, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1961 ई0

प्रेमचन्द और गोर्की - शचीरानी गुर्टू,

प्रेमचन्द : एक अध्ययन - राजेश्वर गुरू, भोपाल, 1958 ई0

प्रेमचन्द : कलम का सिपाही - अमृतराय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
1962 ई0

प्रेमचन्द : घर में - शिवरानी देवी, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1956 ई0

प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व - हंसराज "रहबर", आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
1951 ई0

प्रेमचन्द : विविध प्रसंग (भाग एक) - अमृतराय द्वारा संकलित, प्रेमचन्द स्मृति दिवस,
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1962 ई0

प्रेमचन्द : विविध प्रसंग, (भाग दो) - अमृतराय द्वारा संकलित, प्रेमचन्द स्मृति
दिवस, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1962 ई0

प्रेमचन्द : विविध प्रसंग (भाग तीन) - अमृतराय द्वारा संकलित, प्रेमचन्द स्मृति दिवस,
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1962 ई0

प्रेमचन्द: व्यक्ति और साहित्यकार- मन्मथनाथ गुप्त , सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद

1961 ई0

प्रेमचन्द: साहित्य विवेचन - नन्द दुलारे बाजपेयी ।

प्रेमाश्रम - प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद संस्करण, 1962 ई0

फांसी जैनेन्द्र कुमार, सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वितीय संस्करण, 1933 ई0

बन्धन - हरिकृष्ण"प्रेमी" अर्चना मन्दिर, बीकानेर, प्रथम संस्करण 1941 ई0

बयालीस - प्रतापनारायण श्रीवास्तव

बयालीस के बाद (विसर्जन)- प्रताप नारायण श्रीवास्तव

बर्थ ऑफ आवर नेशनलिज्म : मेमोरीज ऑफ माई लाइफ एण्ड टाइम्स-बी0सी0 पाल,

जिल्द एक

बलिदान रघुवीरशरण मित्र, मेरठ, पंचम संस्करण 194. ई0

बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य: नये सन्दर्भ - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, साहित्य

भवन लि0, इलाहाबाद 1966 ई0

भगतसिंह और उनका युग - मन्मथनाथ गुप्त , लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1972 ई0

भगतसिंह: दि मैन एण्ड हिज आइडियाज- गोपाल ठाकुर, नई दिल्ली 1952 ई0

भयंकर भूल- राउदयाल गुप्त , कच्चा बाजार, मथुरा, प्रथम बार, 1934 ई0

भा - ऋषभ चरण जैन, लखनऊ, तृतीय बार, 2007 वि0

भागो नहीं बदलो - राहुल सांस्कृत्यायन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण 1948 ई0

भारत के क्रान्तिकारी-मन्मथनाथ गुप्त, हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा0लि0 दिल्ली

भारत में अंग्रेजी राज (तीसरी जिल्द) -सुन्दरलाल, ओंकार प्रेस, इलाहाबाद

1938 ई0

भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदभव और विकास- बिपिन चन्द्र, (हिन्दी

अनुवाद), भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद द्वारा

प्रवर्तित प्रथम हिन्दी संस्करण 1977 ई0

उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद-(सम्पा0) डॉ0 सत्या एम0 राय, हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1985 ई0

भारत में राजनीति - रजनी कोठारी -ओरियेन्ट लांगमैन लि0, नई दिल्ली

भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास (प्रथम खण्ड) -मन्मथनाथ गुप्त, नागरी प्रेस, प्रयाग

भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास - मन्मथनाथ गुप्त, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1960 ई0

भारतीय नवजागरण का इतिहास - बाबू राव जोशी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1954 ई0

भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका - रांगेय राघव, भारत पब्लिशिंग हाउस, आगरा

भारतीय राजनीति : विक्टोरिया से नेहरू तक - राम गोपाल

भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि -ए0आर0देसाई, दि मैकमिलनएण्ड क0 1976

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास - ताराचन्द भारत सरकार, प्रकाशन विभाग, प्रथम खण्ड, प्रथम संस्करण 1965 ई0

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास -ताराचन्द, भारत सरकार, प्रकाशन विभाग तृतीय खण्ड

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास- ताराचन्द, भारत सरकार, प्रकाशन विभाग, चतुर्थ खण्ड, 1984 ई0

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम और हिन्दी उपन्यास - डॉ0 सीताराम झा, हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1972 ई0

भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन- डॉ0 कीर्तिलता, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1967 ई0

भारतेन्दु कालीन नाट्य साहित्य -डॉ० गोपीनाथ तिवारी, हिन्दी भवन, जालन्धर व इलाहाबाद 1959 ई०

भाषा साहित्य और संस्कृति - डॉ० रामविलास शर्मा

भूले-बिसरे चित्र - भगवती चरण वर्मा, दिल्ली, 1959 ई०

मनुष्यानन्द- पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र", दिल्ली, तृतीय संस्करण 1958 ई०

ममता - हरिकृष्ण प्रेमी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1959 ई०

महात्मा (खण्ड एक)- डी० जी० तेन्दुलकर

महात्मा (खण्ड दो) डी०जी० तेन्दुलकर

महात्मा (खण्ड तीन) डी०जी० तेन्दुलकर

महात्मा (खण्ड चार) डी०जी० तेन्दुलकर

महात्मा (खण्ड पाँच) डी०जी० तेन्दुलकर

महात्मा (खण्ड छः) डी०जी० तेन्दुलकर

महात्मा ईसा - पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र", भारती भण्डार, काशी, द्वितीय संस्करण 1928 ई०

महात्मा गान्धी का समाजवाद - पी० सीतारमैया, मातृभाषा मन्दिर, प्रयाग तृतीय बार, 1946 ई०

महात्मा गान्धी : पालिटिकल सेन्ट एण्ड अनार्म्ड प्रॉफिट - धनन्जय कीर, पापुलर प्रकाशन, बम्बई, प्रथम संस्करण 1973 ई०

महात्मा गान्धी : हिज ओन स्टोरी - सी०एफ० एन्ड्रूज

मंगलसूत्र- प्रेमचन्द, हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाऊस, बनारस, प्रथम संस्करण

मॉडर्न इण्डियन थॉट -बी० एस० नरवणे, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई 1970ई०

आधुनिक भारत (1885 ई0- 1947 ई0)- सुमित सरकार, मैकमिलन इण्डिया लि0, मद्रास, 1985 ई0

मानसरोवर (भाग एक)- प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण 1936 ई0

मानसरोवर (भाग दो) -प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण 1936 ई0

मानसरोवर (भाग तीन) प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण 1938 ई0

मानसरोवर (भाग चार) -प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, पंचम संस्करण 1948 ई0

मानसरोवर (भाग पाँच) -प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वितीय संस्करण 1948 ई0

मानसरोवर (भाग छः)-प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, पंचम संस्करण 1947 ई0

मानसरोवर (भाग सात) -प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, पंचम संस्करण 1947 ई0

मानसरोवर (भाग आठ) -प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, पंचम संस्करण 1950 ई0

मार्क्सवाद और उपन्यासकार प्रेमचन्द- पारसनाथ मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972 ई0

मित्र - हरिकृष्ण प्रेमी, वाणी मन्दिर, लाहौर, प्रथम संस्करण 1941 ई0

मुक्ति का रहस्य- लक्ष्मी नारायण मिश्र, साहित्य भवन, प्रयाग. 1932 ई0

मुक्तिपथ - इलाचन्द जोशी, इलाहाबाद 1951 ई0

मुक्तियज्ञ - डॉ0 सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, प्रथम संस्करण 193... ई0

मेरा देश - धनीराम प्रेम

मेरी कहानी- जे0 एल0 नेहरू, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, दसवाँ संस्करण 1961 ई0

मेरे सपनों का भारत- महात्मा गान्धी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण 1960 ई0

... एण्ड ... थियरी ऑफ मॉडर्न पालिटिक्स, डेविड थोमस, जार्ज एलन, एण्ड अनाविन लि0 लन्दन, 1974ई0

... डिया - लाजपत राय, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, पब्लिकेशन्स डिवीजन
द्वितीय संस्करण 1964 ई0

युग और साहित्य - शान्ति प्रिय द्विवेदी, इण्डियन प्रेस लि0, इलाहाबाद 1950ई0

यूनिटी ऑफ इण्डिया- जे0 एल0 नेहरू, लिण्डसे ड्रमण्ड डब्ल्यू0सी0, लन्दन, प्रथम
प्रकाशन, 1941 ई0

... तमण्डल - दुर्गाप्रसाद खत्री, वाराणसी, भाग एक, 1970 ई0

... - प्रेमचन्द, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, बारहवीं बार, 1955 ई0

... - ... जैन, 1931ई0

... बन्धन- हरिकृष्ण प्रेमी, हिन्दी भवन, लाहौर, प्रथम संस्करण 1934 ई0

राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म - एम0ए0बुच. आत्माराम प्रेस, बड़ौदा
प्रथम संस्करण 1939 ई0

राजयोग - लक्ष्मी नारायण मिश्र, भारती भण्डार, काशी, प्रथम संस्करण
1934 ई0

राज्य श्री - जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, काशी, तृतीय बार, 1931ई0

राजसिंह - चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, द्वितीय संस्करण
1949 ई0

राम-रहीम - राधिकारमण प्रसाद सिंह, राज राजेश्वरी साहित्य मन्दिर,
इलाहाबाद 1937 ई0

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता - रामधारी सिंह "दिनकर", श्री अजन्ता प्रेस
प्रा0लि0. पटना, प्रथम संस्करण 1956 ई0

राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी - महात्मा गान्धी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर,
अहमदाबाद, 1947 ई0

राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास- मन्मथनाथ गुप्त, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं0,
आगरा, द्वितीय संस्करण 1962 ई0

राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य- रामेश्वर शर्मा, मानव भारती
प्रकाशन, नई दिल्ली, 1953 ई0

राष्ट्रीयता और समाजवाद- आचार्य नरेन्द्रदेव, ज्ञान मण्डल लि0, बनारस, प्रथमा-
वृत्ति 2006 वि0

राक्षस का मन्दिर- लक्ष्मी नारायण मिश्र, साहित्य भवन, प्रयाग, प्रथम संस्करण,
1931 ई0

रिनासेंट इण्डिया- जकारिया, एलन एण्ड अनविन, लन्दन, 1933 ई0

रीसेंट ट्रेन्डस इन इण्डियन नेशनलिज्म- ए0आर0 देसाई, पापुलर बुक डिपो, बम्बई,
1960 ई0

रोल ऑफ वोमन इन दि फ्रीडम मूवमेन्ट- मनमोहन कौर, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा0
लि0, दिल्ली 1968 ई0

लिटरेचर एण्ड रियेलिटी -हावर्ड फास्ट, एलन एण्ड अनविन लि0, लन्दन, संस्करण
1955 ई0

लोक जीवन और साहित्य- रामविलास शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा,
1955 ई0

वफाती चाचा - रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी भवन, प्रयाग, प्रथम संस्करण

वरदान - प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद पाँचवा संस्करण, 1965ई0

वर्ड्स अबाउट इण्डिया - रशब्रुक विलियम्स, संस्करण, 1928 ई0

विक्रमादित्य- उदयशंकर भट्ट, हिन्दी महल, लाहौर, प्रथम संस्करण, 1929 ई0

विकास- प्रतापनारायण श्रीवास्तव, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ प्रथम संस्करण 1943 ई0

विकास - सेठ गोविन्ददास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण 1941 ई0

विचार और विवेचन - डॉ0 नगेन्द्र, संस्करण 1949 ई0

विचार धारा और साहित्य - अमृतराय, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

विराटा की पद्मिनी- वृन्दावनलाल वर्मा, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1921 ई0

विषाद मठ - रांगेय राघव, संस्करण 1946 ई0

विदा - प्रतापनारायण श्रीवास्तव, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1933 ई0

विशाख - जयशंकर प्रसाद, हिन्दी ग्रन्थ भण्डार कार्यालय, बनारस, प्रथम संस्करण 1921 ई0

[illegible] - प्रतापनारायण श्रीवास्तव, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1941 ई0

वेन चरित्र - बदरीनाथ भट्ट, रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, आगरा प्रथम संस्करण 1979 वि0

शशिगुप्त सेठ गोविन्ददास, रामनारायणलाल प्रकाशन, प्रयाग, अष्टम संस्करण 1953 ई0

[illegible] के गौरव: प्रेमचन्द - अमृतराय, पुस्तकमाला, हंस कार्यालय, बनारस, प्रथम संस्करण 1950 ई0

शिवाजी - मिश्रबन्धु, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, प्रथमावृत्ति 1938 ई0

शिवा साधना - हरिकृष्ण"प्रेमी" हिन्दी भवन, जालन्धर व इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1939 ई0

शेखर : एक जीवनी §उत्थान§ "अज्ञेय", बनारस, सप्तम संस्करण 1961 ई0

शेखर : एक जीवनी §संघर्ष§- "अज्ञेय", बनारस, पंचम संस्करण 1961 ई0

शेष- ... - उदयशंकर भट्ट, दिल्ली, 1960ई0

स्कन्दगुप्त - जयशंकर प्रसाद, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम संस्करण 1939 ई0

स्टडीज इन मॉडर्न हिस्ट्री - जी0पी0 गूच, लांगमैन्स, लन्दन, 1931 ई0

स्ट्रगल फॉर फ्रीडम - आर0सी0 मजूमदार, वाल्यूम ग्यारह, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1969 ई0

स्पर्धा - जैनेन्द्र, भारतीय भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1932 ई0

स्पीचेज एण्ड राइटिंग्ज ऑफ सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, जी0ए0 नटेसन एण्ड कं0, मद्रास

स्वतन्त्रता की ओर - हरिभाऊ उपाध्याय, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली 1948 ई0

स्वदेशी एण्ड स्वराज - बिपिन चन्द्रपाल, युगान्तर प्रकाशक लि0 कलकत्ता 1954 ई0

स्वप्न-भंग -हरिकृष्ण प्रेमी, वाणी मन्दिर, लाहौर, प्रथम संस्करण 1940 ई0

स्वदेश का उद्धार - इन्द्रवेदालंकार, गुरूकुल कांगड़ी में मुद्रित एवं प्रकाशित, प्रथम संस्करण 1921 ई0

स्वर्ण विहान - हरिकृष्ण प्रेमी

स्वराज्यदान गुरुदत्त, दिल्ली ,प्रथम संस्करण 1949 ई0

[illegible] और राष्ट्रीय साहित्य - रामविलास शर्मा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, बनारस, प्रथम संस्करण 1956 ई0

[illegible] पर- गुरुदत्त, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 1955 ई0

सगर विजय - उदयशंकर भट्ट, मोतीलाल बनारसी दास, लाहौर, प्रथम संस्करण 1994 वि0

सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा - महात्मा गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, तृतीय संस्करण 1957 ई0

सत्याग्रह - महात्मा गान्धी, इलाहाबाद 1967 ई0

सत्याग्रह - ऋषभचरण जैन, दिल्ली, 1953

संग्राम - प्रेमचन्द, हिन्दी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्रथम बार 1979 वि0

संघर्ष - विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", साहित्य निकेतन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1945 ई0

सन्यासी - इलाचन्द्र जोशी, भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1941 ई0

सन्यासी - लक्ष्मी नारायण मिश्र, साहित्य भवन, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1931 ई0

समस्यामूलक उपन्यासकार: प्रेमचन्द -डॉ0 महेन्द्र भटनागर, हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करण।

सम्राट समुद्रगुप्त - दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1952 ई0

सरकार तुम्हारी आँखों में - पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र", श्रीनिवास रामप्रसाद लोहिया, प्रथम संस्करण 1937 ई0

...सिंह - जे0एन0 सान्याल, लाहौर, 1931 ई0

...और जीवन- बनारसीदास चतुर्वेदी, सस्ता साहित्य मण्डल, इलाहाबाद

साहित्य का उद्देश्य - प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1954 ई0

सा...धारा (कहानियाँ- दो) - उपेन्द्रनाथ "अश्क"

सिकन्दर - सुदर्शन, बोरा एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0, बम्बई, छठा संस्करण 1952 ई0

सिद्धान्त स्वातन्त्र्य - सेठ गोविन्ददास, भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1958 ई0

सिन्दूर की होली - लक्ष्मी नारायण मिश्र, भारती भण्डार काशी, 1934 ई0

सिंहावलोकन (भाग एक) -यशपाल, लखनऊ, 1964 ई0

सिंहावलोकन (भाग दो) -यशपाल, लखनऊ, 1966 ई0

सिंहावलोकन (भाग तीन) -यशपाल, लखनऊ, 1967 ई0

सिंहावलोकन (भाग छः) -यशपाल, लखनऊ, 1978 ई0

सीधा सादा रास्ता - रांगेय राघव, इलाहाबाद, 1955 ई0

सुदर्शन सुधा - सुदर्शन, इण्डियन प्रेस लि0, प्रयाग, प्रथमावृत्ति, 1926 ई0

सुदर्शन सुमन - सुदर्शन, राजपाल एण्ड सन्स, लाहौर, 1934 ई0

सुनीता - जैनेन्द्र, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, चतुर्थ संस्करण 1949 ई0

सुप्रभात - सुदर्शन, सरस्वती प्रेस, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1923ई0

सुफेद शैतान - दुर्गाप्रसाद खत्री

सेलेक्टेड स्पीचेज ऑफ सुभाषचन्द्र बोस, पब्लिकेशन डिवीजन, 1962 ई0

सेवासदन - प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद पाँचवा संस्करण 1963 ई0
सोशल कॉन्ट्रैक्ट - रूसो, जे0एन0डेन्ट एण्ड सन्स, लन्दन, 1958ई0
सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म - ए0आर0 देसाई, ऑक्सफोर्ड

यूनीवर्सिटी प्रेस, प्रथम संस्करण 1948 ई0

सोशलिज्म इन इण्डिया -{सम्पा0} बी0आर नन्दा, विकास पब्लिकेशन, दिल्ली,

1972 ई0

सोशलिज्म एण्ड गांधीज्म - पी0 सीतारमैया

सोशलिज्म एण्ड नेशनल रिवोल्यूशन - आचार्य नरेन्द्रदेव, पद्मा पब्लिकेशन्स लि0,

बम्बई, 1946 ई0

सोशलिज्म, डेमोक्रेसी एण्ड नेशनलिज्मइन इण्डिया - संकर घोस, अलाईड पब्लिशर्स,

बम्बई, प्रथम संस्करण 1973 ई0

सोशलिस्ट थॉट इन इण्डिया: दि कॉन्ट्रिब्यूशन ऑफ राम मनोहर लोहिया- एम0

अरूमुघम, स्टारलिंग पब्लिशर्स प्रा0लि0 नई दिल्ली, 1978 ई0

हर्ष - सेठ गोविन्ददास, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली, 1957 ई0

हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व और कृतित्व- विश्व प्रसाद दीक्षित बटुक, बंसल एण्ड

कं0, दिल्ली प्रथम संस्करण 1960 ई0

हाउ इण्डिया स्ट्रगल्ड फॉर फ्रीडम : ए पालिटिकल हिस्ट्री- राजगोपाल, दि बुक

सेन्टर प्रा0लि0, बम्बई, 1967 ई0

हृदय की प्यास - चतुरसेन शास्त्री, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, सातवीं

बार, 1946 ई0

हृदय की परख - चतुरसेन शास्त्री, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, चतुर्थावृत्ति, 1937 ई0
हिस्टोरियोग्राफी ऑफ मॉडर्न स्टेट-एम0एविनेरी कैम्ब्रिज यू0प्रेस [illegible], 1979 ई0
हिन्दी स्वराज - महात्मा गान्धी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951 ई

[illegible] और स्वाधीनता संघर्ष - डॉ० धर्मपाल नवीन आर्य बुक डिपो,
नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1973 ई०

हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास - डॉ० मोहन अवस्थी, सरस्वती प्रेस,
इलाहाबाद ,पथम संस्करण 1970 ई०

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल - जयकिशन प्रसाद, विनोद पुस्तक मन्दिर,
आगरा, 1961 ई०

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ० रामकुमार वर्मा, रामनारायण
लाल, प्रयाग

हिन्दी साहित्य का इतिहास - जे०पी० श्रीवास्तव एवं हरेन्द्र प्रताप सिन्हा,
पुस्तक मन्दिर,इलाहाबाद 1965 ई०

हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ० नगेन्द्र

हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल ,नागरी प्रचारिणी सभा,काशी,
2006 वि०

हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, महामना प्रकाशन मन्दिर,
इलाहाबाद, पाँचवाँ संस्करण 1961 ई०

हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास - डॉ० शिवमूर्ति शर्मा, किताब महल,
इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1982 ई०

हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - जयकिशन प्रसाद, विनोद पुस्तक मन्दिर,
आगरा, दसवाँ संस्करण 1977 ई०

हिन्दी साहित्य में गान्धी चेतना- आर०सी० शर्मा, साहित्य रत्नालय कानपुर,
प्रथम संस्करण 1981 ई०

हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद- त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2012 वि0

हिन्दी उपन्यास: उद्भव और विकास - सुरेश सिन्हा, दिल्ली, 1965 ई0

हिन्दी उपन्यास : उपलब्धियाँ - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, दिल्ली, 1970 ई0

हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण - महेन्द्र चतुर्वेदी

हिन्दी उपन्यास : ऐतिहासिक अध्ययन - शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी ,1945 ई0

हिन्दी उपन्यास विवेचन - डॉ0 सत्येन्द्र ,जयपुर, 1964 ई0

हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन - चण्डीप्रसाद जोशी, कानपुर, 1962 ई0

हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा - माखन लाल शर्मा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली , प्रथम संस्करण 1965 ई0

हिन्दी कहानी और कहानीकार - प्रो0 वासुदेव , वाणी विहार वाराणसी, तृत्यावृत्ति 1961 ई0

हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास - डॉ0 दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ,द्वितीय संस्करण 2013 वि0

हिन्दी नाट्य साहित्य- ब्रजरत्नदास, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस चतुर्थ संस्करण 2006 वि0

हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पुस्तक मन्दिर, लहेरिया सराय

हिन्दी साहित्य: बीसवी सदी- नन्द दुलारे बाजपेयी, इण्डियन बुक डिपो, लखनऊ 1949 ई0

हिन्दुस्तान की कहानी- जे0एल0 नेहरू, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 1960 ई0

हिस्टारिकल इवोल्यूशन ऑफ मॉडर्न नेशनलिज्म - सी0जे0 एच0 हेज़, शिकागो, 1948 ई0

हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन सोशल एण्ड पालिटिकल आइडियाज: फ्राम राममोहन राय टु दयानन्द - बी0बी0 मजूमदार, बुक लैण्ड, कलकत्ता, 1967 ई0

हिस्ट्री ऑफ दि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी - पी0एल0 लखनपाल, लाहौर, 1946ई0

हिस्ट्री ऑफ पालिटिकल थॉट (वाल्यूम दो)-डा0 सुखबीर सिंह, रस्तोगी एण्ड क0, मेरठ 1991 ई0।

हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट (भाग एक)- आर0सी0 मजूमदार, 1971